स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता में लोक-संवेदना

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी०फिल० (हिन्दी) उपाधि

के लिए प्रस्तुत शोध- प्रबन्ध

निर्देशिका

प्रो० डॉ० मालती तिवारी

(प्रोफेसर हिन्दी विभाग)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय,

इलाहाबाद (उ०प्र०)

प्रस्तुतकर्त्री

कु० सरिता जैन

शोध-छात्रा (हिन्दी)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद (उ०प्र०)

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

सन् - 2000

प्राक्कथन

स्वातन्त्र्योत्तर कवियो मे मैने अपने शोध प्रबन्ध के लिए जिन आठ कवियो का चयन किया है, उनमे कुछ ऐसे कवि है, जो ग्रामीण परिवेशगत सस्कारो से अधिक जुडे है। ये कवि है – नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल व धूमिल। कुछ ऐसे कवि चुने है, जो शहरी जीवन के अधिक समीप है। ये कवि है – रघुवीर सहाय, गिरिजा कुमार माथुर, मुक्तिबोध व अज्ञेय।

शहरी व ग्रामीण जीवन के अधिक करीब रहने वाले कवियो को चुनने का कारण यह नही है कि मै किसी प्रकार कवियो को और उनकी लोक–सवेदना को विभाजित कर रही हूँ, वरन् यह देखना है कि गॉव या शहरी–परिवेश के अधिक निकट रहने वाला कवि 'जन–सामान्य' की सवेदना से किस तरह जुड रहा है। क्या गॉव व शहरी पृष्ठभूमि का उनकी कविताओ पर प्रभाव पडा,आदि,-आदि।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय है – "स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता मे लोक सवेदना" – (नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन शास्त्री, सुदामा पाण्डेय 'धूमिल', गजानन माधव 'मुक्तिबोध', रघुवीर सहाय, गिरिजा कुमार माथुर तथा अज्ञेय की कविता के सन्दर्भ मे)। इस शोध प्रबन्ध का उद्देश्य मात्र कविता की व्याख्या नही है, वरन् कविताओ के माध्यम से कवि की लोक सवेद्य दृष्टि की खोज की गयी है।

विषय को ध्यान मे रखते हुए प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध को पॉच अध्यायो मे विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय मे 'लोक व सवेदना का स्वरूप' शीर्षक के अन्तर्गत प्राचीन सस्कृत–साहित्य से लेकर हिन्दी साहित्य तक मे प्रयुक्त 'लोक' शब्द के विविध पारम्परिक अर्थो व विद्वानो की परिभाषाओ को बताते हुए 'सवेदना' क्या है ? इसे स्पष्ट करते हुए "हिन्दी साहित्य मे लोक–सवेदना का महत्व" विषय पर दृष्टि केन्द्रित की गयी है।

द्वितीय अध्याय मे "हिन्दी साहित्य के प्रारम्भ से लेकर स्वतन्त्रतापूर्व तक के काव्य मे लोक–सवेदना" शीर्षक के अन्तर्गत आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल व आधुनिक कालीन परिवेश की चर्चा करते हुए इन विविध चरणो मे लिखी गयी प्रमुख कवियो की कविताओ मे लोक–सवेदना का सर्वेक्षण परक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय मे स्वातन्त्र्योत्तर परिवेश पर दृष्टिपात करते हुए, काव्य–प्रवृत्तियो मे हुए परिवर्तन की चर्चा करते हुए तथा चयनित कवियो के "सृजनशील व्यक्तित्व" पर पडने वाले पारिवेशिक व पारिवारिक प्रभाव पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित किया गया है।

चतुर्थ अध्याय मे चयनित कवियो की कविताओ मे व्याप्त लोक सवेद्य–दृष्टि के विविध रूपो की खोज की गयी है। कडी मेहनत के बाद भी जीवन की मूल–भूत आवश्यकताओ को न जुटा पाने वाले शोषित, पीडित, दलित जन की संवेदना कवि की सवेदना बनकर उनकी कविताओ मे समाहित है। कही ये कवि शोषक–पूँजीवादी राजनीतिक सत्ता का विरोध कर शोषित जन के प्रति अपनी सवेदना व्यक्त करते है, तो कही इन शोषित–पीडित जनो को जातिवाद, साम्प्रदायिकता, अधविश्वास धर्मगत रूढियो मे आकण्ठ डूबा देखकर उन पर आक्रोश व्यक्त करते है व इन्हे इससे मुक्ति के उपाय सुझाते हुए सघर्ष–शक्ति प्रदान करते है। आम–जन के जीवन का वह सुखद–पक्ष भी कवि की लेखनी से कविताओ का सृजन कराता है, जिसमे ये जन सस्कारगत रीति–रिवाजो , परम्पराओ, विश्वासो व प्रकृति के सुरम्य वातावरण मे गॉव की मिट्टी की सोधी खुशबू मे डूबे हुए जीवन का आनन्द लेते दिखाई पडते है।

पचम अध्याय मे कवियो की भाषिक सरचना के माध्यम से लोक–सवेदना की विवेचना की गयी है। इन सभी कवियो ने – अज्ञेय व मुक्तिबोध को छोडकर–सरल बोलचाल की भाषा मे आम आदमी की जिजीविषा, सत्रस्तता, भीरूता, असमर्थता, यथास्थिति मे रहने की विवशता

और उनके कारणो को स्पष्ट किया है। मुक्तिबोध की लेखनी जिस भाषा का सृजन करती है वह अपने आप मे अनोखी है। उनकी लम्बी कविताएँ आम आदमी व तथाकथित खास माने जाने वाले व्यक्तियो के सम्पूर्ण आन्तरिक और वाह्य जीवन को दृश्य के रूप मे उपस्थित करती है। उनकी भाषा सरल होते हुए भी मन स्थिति का रूप-चित्राकन करते हुए कही जटिल हो गयी है, पर सर्वत्र ऐसा नही है। उनकी कविताओ मे लोक–प्रचलित शब्दो की भरमार है। इसी तरह अज्ञेय भी अपनी चुस्त और गठी हुई भाषा के कारण कहीं–कही जटिल प्रतीत होते है, पर कुछ कविताएँ लोक–प्रचलित शब्दो की अधिकता के कारण अत्यन्त सरल व लोक–सवेद्य बन पडी है।

इन कवियो की भाषा बिकती नही है, वरन् चौराहे पर खडी होकर गरीबो के तथाकथित पक्षधर शासको की नीतियो की आलोचना करती हुई उन्हे समूल नष्ट करने के लिए क्रान्ति की आग को जलाने का प्रयास करती है। इन कवियो ने लोक जीवन को प्रभावित करने वाली कहावतो, मुहावरो, लोकोक्तियो, लोक प्रचलित शब्दो व कही–कही लोक-धुनो का सुन्दर प्रयोग कर अपनी भाषा–सवदेना को सर्वग्रह्य बना दिया है।

उपसहार मे शोध–प्रबन्ध की मौलिकता को ध्यान मे रखते हुए सक्षिप्त निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

मै अपनी गुरूवर्या प्रो0 डॉ0 मालती तिवारी की आजीवन ऋणी रहूँगी, क्योकि उन्होने समय–समय पर मॉ की ममता दी है, गुरूता की असीम अनुकम्पा दी है, मेरी शोध तृषा को स्नेहिल शीलत–सलिल दिया है। ऐसी ममतामयी, दिव्य प्रकाशदायी गुरूवर्या के चरणो मे चुन–चुन कर जितने भी पुष्प चढाऊँ वह उनकी महिमा के अनुरूप कम ही होगा। मेरा सम्पूर्ण शोधकार्य उन्ही की अनुकम्पा का फल है। इसलिए उनके चरणो मे पुन श्रद्धा–सुमन को समर्पित करती हूँ।

इस शोधकार्य मे डॉ0 मूलशकर शर्मा (विभागाध्यक्ष, हिन्दी, के0बी0पो0ग्रे0 कालेज, मिर्जापुर) और डॉ0 भवदेव पाण्डेय (निवर्तमान हिन्दी रीडर, के0बी0पो0ग्रे0 कालेज मिर्जापुर) ने अपना अमूल्य समय देकर मेरे उत्साह का वर्धन किया है। उनके चरणो मे अपने श्रद्धा–पुष्प को समर्पित करती हूँ। मै डॉ0 बैजनाथ पाण्डेय (रीडर, सस्कृत विभाग, के0बी0पो0ग्रे0 कालेज, मिर्जापुर) की विशेष रूप से आभारी हूँ, जिन्होने क्षेत्रीय लोक–बोलियो की पहचान कराने मे मुझ अज्ञ की विशेष मदद की है। यदि इनका अमोघ स्नेहाशीर्वाद प्राप्त न होता तो मै इस शोधकार्य के दुस्तर सागर को कभी भी पार नही कर सकती थी। अत इनके चरणो मे मै सदैव श्रद्धावनत् रहूँगी।

मेरी मॉ तो वस्तुत ममता की मूर्ति है। उन्होने मेरे स्व0 पिता की सम्पूर्ण जिम्मेदारियो को वहन करते हुए न जाने कितने अकथनीय दुखो को अपने हृदय मे छिपाकर मेरे कार्य मे अवर्णनीय सहयोग दिया है। यह शोध कार्य उन्ही की तपस्या की परिणति है। मै उनके चरणो मे अपने को सदा समर्पित करती हूँ। इस कडी मे मै अपने दोनो भाई सुधीर व अधीर को धन्यवाद देती हूँ जिन्होने पितृविहीन मेरे लिए पिता और भाई दोनो का दायित्व निभाकर मेरे कार्य मे सदा पूर्ण सहयोग प्रदान किया है। उनके स्नेहाकाश की शीतल छाया मे ही मै यह कार्य पूर्ण कर सकी हूँ। मैं अपनी दोनो भाभियो–सगीता व लता के चरणो मे अपने कुछ श्रद्धा–कुसुम को न अर्पित करूँ तो मै उनके साथ कृतध्नता करूँगी। इन लोगो ने मेरे कार्य को अपना समझकर 'दीप बाति नहि टारन कहेऊँ'' को चरितार्थ करते हुए सदा पूर्ण सहयोग किया है। जब कभी मै कार्य करते–करते थक जाती थी तब इन लोगो ने अपनी प्यार भरी सेवा से मेरे शुष्क काठ को सरोरूह बनाकर मुझे आगे बढने की प्रेरणा दी। एक नाम और है जिसे मै आजीवन विस्मृत नही कर पाऊँगी, वह है मेरी सहेली 'अल्माश'। इन्होने मेरे कार्य मे

सहयोग के लिए क्या नही किया है ? मै ऐसी सखी को "निश्छल प्रेम" के अतिरिक्त और क्या दे सकती हूँ।

अन्त मे मै पुस्तकालयाध्यक्ष – इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद, पुस्तकालयाध्यक्ष – हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग तथा साहित्य सदन पुस्तकालय, मिर्जापुर को धन्यवाद देना चाहती हूँ। इन्होने शीघ्रता से पुस्तक उपलब्ध कराने मे मेरा सदा सहयोग किया। टकणकर्ता निर्भय अग्रवाल जी को मै विशेष रूप से धन्यवाद देती हूँ जिन्होने मेरे शोध कार्य को कम समय मे कृति का रूप प्रदान किया।

कु० सरिता जैन

विषय–अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

लोक व सवेदना का स्वरूप [पृ०स० – 1 - 28]

- प्राचीन सस्कृत साहित्य से लेकर हिन्दी साहित्य तक प्रयुक्त 'लोक' शब्द के विभिन्न अर्थ।
- लोक और वेद का विभेद।
- लोक और जन का सम्बन्ध।
- लोक की अवधारणा।
- लोक की परिभाषा (विद्धानो के अनुसार) ।
- लोक के साथ जुडने वाले शब्द और 'सवेदना'।
- 'सवेदना' क्या है ?
- साहित्य मे लोक–सवेदनाओ का महत्व ।

सस्कृत साहित्य मे प्रयुक्त 'लोक' शब्द के विभिन्न अर्थ :-

प्राची दिशा मे जब प्रथम बार मनुष्य ने भुवन-भाष्कर को उगते हुए देखा होगा, तो उसका हृदय आनन्द से आह्लादित हो उठा होगा, क्योकि सहस्त्ररश्मि की रश्मियो ने ही निविडतम का भेदन किया था । सृष्टि के पूर्व केवल अधकार का अभेद्य साम्राज्य था।[1]

जिस प्रकार रवि-रश्मियो ने तिमिराच्छन वातावरण को आलोकित कर सृष्टि को नूतन रूप प्रदान किया, उसी प्रकार वैदिक ऋचाओ ने ज्ञान के शाश्वत आलोक से भारत को ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित किया। ऋषियो ने अपने को तपस्या के अनल मे तपाकर शाश्वत प्रकाश-पुञ्ज रूप इन ऋचाओ का साक्षात्कार किया था । इन ऋचाओ मे भारतीयो की आत्मा समाहित है । बिना आत्मदर्शन के जागतिक पदार्थों का दर्शन व्यर्थ सिद्ध होता है । जब हम किसी वस्तु पर विचार करते है तो हम सर्वप्रथम 'वेद' के हिमालय से ही गगा के उत्स का अन्वेषण करते है, क्योकि इसी हिमालय मे ज्ञान का अक्षय-भडार अन्तर्निहित है ।

वेदो का इतना प्रभाव रहा है कि जब भी उससे हटकर कोई बात की गयी तो उसे लौकिक कहा गया । महर्षि पतञ्जलि अपने "महाभाष्य" मे जब कोई अपनी बात कहना चाहते है तो इस प्रकार कहते है - 'जैसे लोक मे यह बात सिद्ध है, उसी प्रकार वेद मे भी ।'[2] महर्षि पतञ्जलि बार-बार (वेद से इतर) लोक का आश्रय लेते है । वे कहते है कि शब्द, अर्थ और उसका सम्बन्ध लोक प्रमाण से ही नित्य है ।[3] व्याकरण के प्रयोजन बताते समय उन्होने अधिकाशत ऋचाओ को ही उद्धृत कर यह बताने का प्रयास किया है कि किसी भी भाषा के तत्व को जानने के लिए व्याकरण का ज्ञान आवश्यक है । जब महर्षि पतञ्जलि जैसे विद्वान ने वेद के कल्पतरू की छाया मे ही बैठकर अपनी बात कही है, तो मै भी उसी पथ का आश्रय लेकर अपनी बात कहने का प्रयास कर रही हूँ । जैसे किसी नृप के द्वारा सेतु निर्माण कर देने पर पिपीलिका भी

नदी को पार कर जाती है,[4] उसी प्रकार ऋषियो का आश्रय लेकर मै अपनी बात कहने का प्रयास करूँगी ।

'लोक सवेदना' - इस पद के निर्माण मे दो शब्द 'लोक' और सवेदना है । इसीलिए यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम हम यह देखे कि 'लोक' का अर्थ क्या है ? 'लोक' शब्द का सबसे पहले प्रयोग 'ऋग्वेद' मे मिलता है । परमपिता परमात्मा पुरूष ने जव सृष्टि की, तब सर्वप्रथम उन्होने लोको की रचना की । सर्वप्रथम 'ऋग्वेद' मे हम लोक शब्द का अर्थ ''अन्तरिक्षादि लोक'' के रूप मे प्राप्त करते है ।[5] सायण ने 'लोक' का अर्थ 'अन्तरिक्षादि लोक' किया है - ''अन्तरिक्षादीन् लोकान''।[6] ऋग्वेद मे यह 'लोक' शब्द अधिकाशत 'भुवन' अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है तथा कहीं-कहीं अन्य अर्थों मे भी प्रयुक्त मिलता है । वाणी के सम्वाद मे ऋषि 'लोक' शब्द को 'कार्यक्षेत्र' के रूप मे सीमित कर यह बताने का प्रयास करता है कि जितने भी प्राणी है, उनका अपना-अपना एक-एक लोक है ।[7] आगे चलकर ऋषि जब 'लोक' शब्द की विवेचना करता है तो वह 'लोक' शब्द का अर्थ 'मार्ग' या 'पद्धति' के रूप मे प्रयुक्त करता है । इसीलिए वह कह उठना है कि 'इन्द्र' ने मेघ से घिरे हुए जल के लिए 'लोक' अर्थात 'मार्ग' बनाया है ।[8] 'लोक' शब्द को जब ऋषि 'प्रकाश' अर्थ मे प्रयुक्त करता है, तब यही प्रतीत होता है कि यह शब्द अपनी धातु के मूल अर्थ को प्रकाशित कर रहा है । लोक वही है जिसके द्वारा देखा जाता है अर्थात लोक 'आलोक' है । ऋषि इन्द्र से प्रार्थना करता है कि तुम मेरे लिए विस्तृत प्रकाश वाला बनो ।[9] इसी तरह कुछ अन्य ऋचाओ मे भी 'लोक' शब्द प्रकाश के लिए प्रयुक्त हुआ है ।[10] 'लोक' शब्द के विस्तृत आकाश को सीमित अर्थ मे परिच्छन्न कर ऋषि वधू को पति के घर भेजते हुए कहता है कि अब तुम्हे मै सत्कर्म के लोक मे (अर्थात् सत्कर्म के क्षेत्र मे) तुम्हारे पति के पास भेज रहा हूँ ।[11] वही ऋषि आगे

चलकर 'लोक' शब्द को 'घर' अर्थ मे प्रयुक्त करता है ।[12] ऋषि इन्द्र से प्रार्थना करते हुए कहता है कि हे इन्द्र ! सग्राम मे मनुष्य के द्वारा रचित युद्धभूमि मे आकर वृत्त का वध करो ।[13] यहॉ 'लोक' शब्द 'सामान्य मनुष्य' के अर्थ मे प्रयुक्त है। इसी तरह एक अन्य ऋचा मे ऋषि किसी विधवा को सम्बोधित करते हुए कह रहा है कि मरे हुए पति के पास क्यो विलाप कर रही हो? तुम्हारे समक्ष 'जीव लोक' अर्थात् 'साधारण मनुष्य' खडे है ।[14]

इस प्रकार के अर्थो को देखने से यह स्पष्ट होता है कि ऋग्वेद मे 'लोक' शब्द व्यापक अर्थो मे प्रयुक्त होकर सम्पूर्ण लोको मे समाया हुआ है । वस्तुत 'लोक' भुवन या ससार अर्थ को बताते हुए उसमे रहने वाले 'सामान्य जन' का ही द्योतक है ।

यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद मे 'लोक' शब्द ऋग्वेद की ही भॉति अधिकाशत 'भुवन' अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है, पर कहीं-कहीं अन्य अर्थो के साथ 'सामान्य जन' के अर्थ मे भी दृष्टिगत होता है। यजुर्वेद के तेरहवे अध्याय के ५८वे मन्त्र मे महीधर 'प्रजा' शब्द की व्याख्या लोक शब्द से करते है।[15] इससे यह स्पष्ट होता है कि 'लोक' शब्द का अर्थ 'प्रजा' या 'सामान्य जन' है । अथर्ववेद की कुछ ऋचाओ मे 'लोक' शब्द 'जन-सामान्य' के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है । ऋषि कहता है कि उच्छिष्ट मे लोक व्याप्त है । उसी मे इन्द्र और अग्नि व्याप्त है । इन्द्र और अग्नि शब्द के साथ-साथ प्रयुक्त होने से 'लोक' शब्द का अर्थ 'मनुष्य' या 'साधारण जन' किया गया है क्योकि ऋषि आगे कहता है कि इस उच्छिष्ट मे विश्व व्याप्त है ।[16] इससे स्पष्ट है कि लोक शब्द यहॉ भुवन अर्थ मे न होकर 'जन-साधारण' या 'मनुष्य' अर्थ मे है । इसी तरह एक अन्य मन्त्र मे भी लोक शब्द जन-सामान्य या मनुष्य अर्थ मे प्रयुक्त किया गया है । ऋषि कहता है कि 'लोक

इसको प्राप्त करता है।[17] लोक जड होने के कारण गमनशील नहीं हो सकता है। इसलिए (व्यजना के आधार पर) लोक शब्द का अर्थ साधारण मनुष्यो से है।

ब्राह्मण-ग्रन्थो मे 'लोक' शब्द का प्रयोग 'स्थान विशेष' व 'जन-सामान्य' दोनो अर्थो मे किया गया मिलता है। 'ऐतरेय ब्राह्मण' की एक ऋचा मे 'लोक' शब्द को स्थान विशेष या देवताओ के निवास-स्थान 'स्वर्ग' के लिए प्रयुक्त किया गया है।[18] 'शतपथ ब्राह्मण' मे कहा गया है कि 'ये लोक सर्प है' तो यहॉ पर 'लोक' का अर्थ स्थान-विशेष से नही वरन् उन मनुष्यो से है 'जो पृथिवी पर सर्पण करते है।[19] इस प्रकार के अनेक उदाहरण ब्राह्मण ग्रन्थो मे मिलते है । ये उदाहरण सिद्ध करते है कि लोक शब्द स्थान-विशेष के लिए प्रयुक्त होने के साथ ही कहीं-कहीं 'मनुष्य' या 'सामान्य-जन' अर्थ मे प्रयुक्त मिलते है। इसी तरह आरण्यक-ग्रन्थो मे लोक शब्द विशेषत स्थान-विशेष के अर्थ मे प्रयुक्त होकर भी कहीं-कहीं अन्यार्थों की अभिव्यक्ति मे सहायक बनते है। एक ऋचा मे 'योगभूमि' के अर्थ मे लोक शब्द प्रयुक्त है।[20]

उपनिषद ग्रन्थो मे तो 'लोक' शब्द स्थान-विशेष और 'जन सामान्य' के लिए समान रूप से प्रयुक्त है। 'वृहदारण्यक उपनिषद' मे जब 'लोक' शब्द 'वैश्व' व 'शूद्र' अर्थ को बताने लगता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि वस्तुत 'लोक' शब्द उन 'सामान्य-जन' के लिए है जिनका समाज मे उपेक्षित स्थान है।[21] 'कठोपनिषद्' मे "लोक दु खेन" का अर्थ 'लोगो के दु ख से' किया गया है।[22] इसी ऋचा की प्रथम पक्ति मे 'सर्व लोकस्य' शब्द आया है जो 'समस्त ससार'[23] के लिए है। अत स्पष्ट है कि अन्य वैदिक ग्रन्थो की अपेक्षा उपनिषदो मे 'लोक' शब्द स्पष्टतया 'जन-सामान्य' अर्थ में अनेक स्थलो पर मिलता है। ज्यो-ज्यो वैदिक साहित्य का विकास होता गया, त्यो-त्यो शब्दो के अर्थो मे कुछ विस्तार होता गया। आगे चलकर वैदिक साहित्य को देववाणी कहा जाने लगा और इसके समानान्तर जो भाषा लोक मे बोली जाती थी, उसे लैकिक सस्कृत की सज्ञा दी

गयी। निरूक्तकार यास्क जब वैदिक शब्दो के अर्थों की सार्थकता का प्रतिपादन करते है तो वार-बार लौकिक सस्कृत का उदाहरण देते है।[24] यास्क मुनि अत्यन्त दु खी मन से यह कहते है कि मैने इन वैदिक शब्दो का सग्रह इसलिए किया है ताकि जो साधारण जन है उन्हे भी वैदिक शब्दो का अर्थ-बोध हो जाय।[25] इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि लौकिक सस्कृत और वैदिक सस्कृत के प्रयोग मे एक विभाजक रेखा थी। सस्कृत नाटको मे जब हम दृष्टिपात करते है तो एक विशेष बात स्पष्ट होती है, वह यह कि लौकिक सस्कृत भी जन-सामान्य की भाषा नहीं थी। क्योकि सस्कृत नाटको के अधम और स्त्री पात्र सस्कृत में न बोलकर प्राकृत मे ही अपना सम्वाद बोलते हैं। 'वाल्मीकि रामायण' मे यह बात स्पष्ट है कि लौकिक सस्कृत भी विशेष वर्ग की भाषा थी, जन भाषा या लोक भाषा नहीं थी। हनुमान जी जब सीता के समक्ष उपस्थित होते है तो वह सस्कृत मे नहीं बोलना चाहते, क्योकि कहीं सीता हनुमान को रावण न समझ बैठे। इसीलिए हनुमान मानुपी-भाषा मे बोलते है,[26] जिसे अयोध्या की साधारण जनता बोलती है। कहने का आशय यह है कि जब लौकिक सस्कृत का विकास हुआ, उस समय जन-सामान्य में प्रचलित भाषा इससे पृथक् थी। अत 'वाल्मीकि रामायण' मे "सर्वलोक प्रियवद "[27](श्री रामचन्द्र सब लोगो मे प्रिय वचन बोलने वाले थे) जैसे वाक्यो मे प्रयुक्त लोक शब्द इन्हीं जन भाषा बोलने वाले लोगो का घोतक है।

व्याकरण के प्रकाण्ड ऋषि पतञ्जलि के "महाभाष्य" मे 'लोक' शब्द जन साधारण के लिए प्रयुक्त है। "महाभाष्य" के प्रथम अध्याय मे 'प्रयोगो सर्व लोकस्य' की व्याख्या करते हुए उद्योतकार ने कहा कि सर्व लोक का अर्थ 'व्याकरण अनभिज्ञ' है।[2] पतञ्जलि एक साधु शब्द 'गो' के लिए कई अपभ्रश शब्दो- जैसे "गावी, गोणी, गोता, गोपतलिका"[29] का प्रयोग करते हैं। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि जन-भाषा एक स्थापित भाषा से व्यापक होती है तथा यह जनभाषा या लोकभाषा के रूप में अपनी

विशेषताओ को लेकर ही विशिष्ट लोगो की भाषा को चुनौती देती हुई जन-मानस को आन्दोलित करती रहती है। इसलिए जब साहित्य की सर्जना होती है तो लोक की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

महाभारत, पुराण तथा अन्य लौकिक सस्कृत के ग्रथो मे भी लोक शब्द 'स्थान-विशेष' व 'जन-साधारण' दोनो अर्थों मे प्रयुक्त है। "महाभारत" के एक श्लोक मे कहा गया है कि अज्ञानान्धकार मे 'लोक' अर्थात् सामान्य जन विकृत चेष्टाऍ कर रहे थे, किन्तु ज्ञानाञ्जन की शलाका से उनके ज्ञान-नेत्र खुल गये।[30] यहॉ 'लोक' शब्द स्पष्टत 'सामान्य मनुष्य' के अर्थ को अभिव्यक्त करता है। "गीता" मे कहा गया है कि श्रेष्ठ पुरूष जैसा आचरण करता है, ससार का साधारण मनुष्य भी वैसा ही आचरण करता है, जिस वस्तु को वह प्रमाण मानकर चलता है, ससार उसी का अनुसरण करता है।[31] यहॉ ससार जड होने के कारण उसमे रहने वाले जन का ही द्योतक है क्योकि जड वस्तु अनुसरण नहीं करती। एक अन्य श्लोक मे लोक शब्द तीनो लोको (आकाश, पाताल व मर्त्त्य) के सन्दर्भ मे प्रयुक्त है।[32]

महाकवि कालिदास ने 'लोक' शब्द को सामान्य जन या प्रजा-जन के अर्थ मे प्रयुक्त किया है।[33] राम को लोक अर्थात् प्रजा-जन पिता के रूप मे मानती थी। कालिदास ने स्थल-स्थल पर 'लोक' शब्द साधारण जन के अर्थ मे प्रयुक्त किया है। भवभूति ने "उत्तर रामचरित" मे राम के मुख से कहलवाया है कि पिता दशरथ ने प्रजा की सेवा (लोकाराधन) मुझ राम को व अपने प्राणो को छोडते हुए भी निश्चय रूप मे की।[34] नैषधीयचरितम्,[35] कादम्बरी[36] आदि सस्कृत ग्रन्थो मे 'लोक' शब्द 'सामान्य जन' के अर्थ को अभिव्यक्त करता है।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से यदि हम विचार करे तो 'लोक' शब्द 'लोकृदर्शने' धातु व 'घञ्' प्रत्यय के द्वारा बनता है।[37] 'घञ्' प्रत्यय 'करण' और 'अधिकरण' अर्थ में लगता

है। यदि ‘करण’ व्युत्पत्ति से अर्थ करे तो अर्थ होगा– ‘लोक्यते अनेन इतिलोक’ अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाय। तो यह ससार मनुष्यो के द्वारा देखा जाता है। अत लोक का अर्थ ‘मनुष्य’ हुआ और ‘अधिकरण’ व्युत्पत्ति से अर्थ करने पर ‘लोकते अस्मिन् इति लोक अर्थात् जिसमे रहकर हम देखते है। इस अर्थ मे ‘ससार’ या ‘भुवन’ अर्थ की सिद्धि होती है। ‘अमरकोश’ मे भी ‘लोक’ शब्द ‘भुवन’ व ‘जन’ (मनुष्य) दोनो अर्थो मे बताया गया है। “लोकस्तु भुवने जने”।[38] ‘हैम’ कोश भी इसी अर्थ का समर्थक है।[39] महावैयाकरण पाणिनि बडे ही स्पष्ट शब्दो मे अलग-अलग ‘लोक’ और ‘वेद’ की चर्चा करते है। इनका ‘लोक’ शब्द स्पष्टत वेद (ज्ञानी जनो) से इतर ‘जन-सामान्य’ अर्थ का द्योतक है। अनेक शब्दो की व्युत्पत्ति बताते हुए उन्होने कई स्थलो पर कहा है कि वेद मे अमुक शब्द का अर्थ अलग है व लोक मे अलग। “लोक सर्व लोकाट्ठञ्”[40] सूत्र मे पाणिनि ने लोक शब्द का अर्थ स्पष्ट किया है। इनके अनुसार “लोके विदित लौकिक”[41] अर्थात् जो लोक मे विदित हो वह लौकिक है। लोक मे विदित का तात्पर्य है-जो लोक मे रहने वाले मनुष्यो के द्वारा ज्ञात हों। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ‘लोक’ शब्द मनुष्य या जन-सामान्य अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

इन सारे तथ्यो को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सम्पूर्ण सस्कृत - साहित्य मे ‘लोक’ शब्द विविध अर्थो का वाहक होते हुए भी मुख्यत तीन अर्थो मे प्रयुक्त हुआ है- ससार, मनुष्य व सामान्य जन। वैदिक-सस्कृत के साहित्य मे ‘जन-सामान्य’ अर्थ कुछेक स्थानो पर ही स्पष्ट रूप मे मिलता है, पर लौकिक सस्कृत के साहित्य मे बहुधा ‘लोक’ का अर्थ ‘जन-सामान्य’ दृष्टिगत होता है। वस्तुत जहॉ ‘मनुष्य’ अर्थ मे ‘लोक’ शब्द प्रयुक्त है, वहॉ भी कुछेक स्थलो को छोडकर गहराई से उन सन्दर्भो पर विचार करने पर स्पष्ट प्रतीत् होने लगता है कि वहॉ ‘लोक’ शब्द सम्पूर्ण मानव के लिए नहीं वरन् ‘साधारण मनुष्यो’ के लिए है।

हिन्दी साहित्य मे प्रयुक्त 'लोक' शब्द के विविध अर्थ---

सस्कृत-साहित्य हिन्दी साहित्य की जननी है। अत सस्कृत साहित्य के समग्र गुणो व रस से हिन्दी-साहित्य पल्लवित व पुष्पित हुआ है। जिस प्रकार सस्कृत-वाङ् मय मे 'लोक' शब्द अनेक अर्थों मे प्रयुक्त हुआ है, उसी प्रकार हिन्दी साहित्य मे भी 'लोक' शब्द अनेक अर्थो को अभिव्यक्त करता है । 'ज्ञान शब्द-कोश' मे 'लोक' शब्द के अनेक अर्थ - १- विश्व का एक भाग, २- चौदह भुवन, ३- ससार, ४- पृथ्वी, ५- मानव जाति, ६- समाज, ७- प्रजा (पब्लिक), ८- सामान्य लोग, ९- जनता, १०- समूह, ११- भूभाग, १२- प्रान्त, १३- निवास स्थान, १४- दिशा, १५- सासारिक व्यवहार दिये गये है।[42] जब यह 'लोक' शब्द समासगत हो जाता है, तब इसके अर्थ मे विस्तार हो जाता है। 'लोकत्रय', 'लोकनाथ', 'लोकपाल', 'लोक-प्रसिद्ध' आदि समस्त पद मे 'लोक' शब्द स्थान-विशेष का द्योतक है, किन्तु 'लोक-कण्टक' (सर्वसाधारण को सताने वाला), लोक-कार्य (सर्वसाधारण से सम्बन्ध रखने वाला कार्य), लोक कथा (जन सामान्य मे प्रचलित कथाये) लोक गीत (सर्वसाधारण मे प्रचलित गीत), लोक-तन्त्र (वह शासन-प्रणाली जिसमे शासनाधिकार जन-प्रतिनिधियो के हाथ मे हो), लोकप्रिय (जो सभी लोगो मे प्रिय हो) आदि समस्त पदो मे लोक शब्द 'साधारण जन' के अर्थ को अभिव्यक्त करता है।[43] अनेक अर्थो मे प्रयुक्त लोक शब्द "हिन्दी साहित्य कोश" मे साधारणत (१) स्थान विशेष (जैसे- इहलोक, परलोक, त्रिलोक) और (२) जन-सामान्य- दो अर्थो मे प्रयुक्त मिलता है। इन्हीं दोनों अर्थो मे लोक शब्द हिन्दी साहित्य के प्रारम्भ से लेकर अब तक प्रयुक्त मिलता है। जन सामान्य अर्थ को बताने वाला 'लोक' शब्द हिन्दी साहित्य मे 'लोग' रूप मे भी प्रयुक्त होने लगा है।[44]

आदिकालीन साहित्य में प्रमुख स्थान 'सिद्ध साहित्य', 'जैन साहित्य', 'नाथ साहित्य' तथा 'रासो साहित्य' का है। महापडित राहुल सास्कृत्यायन ने अपने ग्रन्थ "हिन्दी

काव्यधारा" मे आदिकालीन कवियो की रचनाओ का रूपान्तर कर उन्हे बोध गम्य बनाया है । सिद्ध कवि सरहपा ने 'लोक' शब्द को 'तीनो लोक[45] (स्वर्ग लोक मर्त्यलोक पाताल लोक), और भय लोक ।[46] (मनुष्यो का रहने का स्थान जहॉ उसे मृत्यु भय पीडित करता रहता है) के अर्थ मे प्रयुक्त किया । ये अर्थ स्थान-विशेष को द्योतित करते है । इसके अतिरिक्त उन्होने 'लोक' शब्द का अर्थ 'समुदाय' अर्थ मे किया।[47] एक अन्य स्थल पर इनके द्वारा 'लोक' शब्द 'सासारिक जीवन' को अभिव्यक्त करता है ।[48]

जब हम जैन साहित्य पर दृष्टिपात करते है तो हमे यह ज्ञात होता है कि इस साहित्य मे 'लोक' शब्द के पूर्व प्रचलित अर्थ ही प्राप्त होते है। देवसेन[49] और पुष्पदन्त[50] कवियो ने लोक शब्द का प्रयोग 'स्थान-विशेष के अर्थ मे किया है । पुष्पदन्त के 'लोकपाल'[51] शब्द का 'लोक' शब्द जन सामान्य या प्रजा को द्योतित करता है ।

नाथ सम्प्रदाय के एक प्रमुख कवि गोरखनाथ ने एक स्थल पर 'लोकाचार'[52] शब्द का प्रयोग किया है । 'लोकाचार' का 'लोक' शब्द 'सामान्य-जन' के अर्थ को अभिव्यक्त करता है ।

भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का महान युग है । इस काल के अनेक कवियो की रचनाओ ने समाज को एक नयी दिशा प्रदान की । इन भक्त कवियो मे कबीर की रचनाओ ने भारतीय दर्शन के रहस्य को अनोखे ढग से प्रस्तुत किया है । लोक-जीवन की यर्थाथता को अभिव्यक्त करने वाले कवि कबीर ने लोक शब्द का प्रयोग तीनो लोको के अर्थ मे अधिकाशत किया है,[53] तथा कहीं-कहीं 'लोक' शब्द 'जन-सामान्य' अर्थ का वाहक बना है । कबीर का कहना है कि प्रिय व्यक्ति के लिए जो ऑसू टपकते है वही ऑसू लोक = जन सामान्य के नेत्र से अन्य कारण से निकलते है ।[54] इस उदाहरण मे लोकशब्द 'जन-सामान्य' अर्थ को द्योतित करता है ।[55]

महाकवि सूर की रचनाओ मे 'लोक' शब्द 'स्थान-विशेष' और 'जन-सामान्य' दोनो अर्थो मे बहुतायत से मिलता है । एक स्थल पर सूर ने 'लोक कानि'[56]शब्द का प्रयोग किया है । 'लोक कानि' का अर्थ है - 'लोक-मर्यादा' । 'लोक-कानि' का 'लोक' शब्द जड ससार का वाचक नहीं है, वरन् लक्षणा से सामान्य-जनो के मध्य की मर्यादा को लक्षित कराता है । इसी प्रकार उन्होने 'लोक-लाभ'[57]शब्द के द्वारा 'लोक' शब्द को 'जन-सामान्य' के अर्थ मे प्रयुक्त किया है । उद्धव गोपियो से लोक-लाभ (जन-सामान्य के लाभ) की बात कर रहे है किन्तु गोपियो ने जन-सामान्य की कोटि से ऊपर उठकर श्रीकृष्ण के लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया है । उन्होने लोक-मर्यादा (लोक-कानि) की तिलाञ्जलि देकर श्रीकृष्ण के जीवन के साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया है ।

महाकवि तुलसीदास अनेक अर्थो मे 'लोक' शब्द प्रयुक्त करते है तथा 'जन-सामान्य' अर्थ मे 'लोक' शब्द के प्रयोग को महत्व देते है । बार-बार ये लोक और वेद की बात करते हुए यह सिद्ध करते है कि जन-सामान्य (लोक) की भाषा और उनकी मान्यताएँ वैदिक (ज्ञानी जनो की) मान्यताओ से न्यून नहीं है ।[58]

तीनो लोक[59](स्थान-विशेष) अर्थ मे 'लोक' शब्द का बहुतायत प्रयोग करने वाले जायसी ने 'सामान्य-जन' के लिए 'लोक' शब्द को सम्मान दिया है

रीतिकालीन कवियो मे घनानन्द, मतिराम और केशव आदि कवियो की रचनाएँ लोक जीवन से अधिक प्रभावित है । इनकी कविताओ मे 'सामान्य-जनो' के लिए 'लोक' शब्द अनेक-बार प्रयुक्त है । जन-सामान्य के बीच रहने वाले कवि मतिराम अपनी नायिका को जन-सामान्य द्वारा प्रतिपादित-पथ से विचलित होते हुए कैसे देख सकते है ?[60] मतिराम की ही भॉति केशव ने 'लोक' शब्द के अनेक अर्थों मे 'जन-सामान्य' अर्थ को अधिक महत्व दिया है ।[61]

आधुनिक युग हिन्दी साहित्य का विविधताओ से भरा युग है । इस नये युग का प्रारम्भ भारतेन्दु-हरिश्चन्द के काव्यक्षेत्र मे पदार्पण से होता है । अपनी व्यग्यपूर्ण रचनाओ के द्वारा उन्होने भारतीय लोक-जीवन के यथार्थ व तत्कालीन अग्रेज शासको की क्रूरता को मुखर रूप प्रदान किया है । उन्होने अपनी रचनाओ मे 'लोक-मर्यादा', 'लोक-रीति' 'लोक लाज'[62]आदि समस्त-पदो के प्रयोग के द्वारा 'लोक' शब्द के जन-सामान्य अर्थ को वरीयता दी । भारतेन्दु की दृष्टि मे 'लोक' ऐसे साधारण जन-समुदाय का द्योतक है, जो शास्त्र आदि से अनभिज्ञ है।[63] इनकी दृष्टि मे 'लोक' और 'वेद' दो भिन्न प्रकार की मर्यादाएँ है । वस्तुत वेदशास्त्र-मर्यादा का प्रतिपादक है और लोक अपनी प्राचीन अलिखित परम्पराओ का निर्वहन करने वाला जन समुदाय है । दोनो मार्ग का समान महत्व है।[64] 'प्रेमघन' के इष्टदेव असख्य 'सामान्य जनो' के दु खो को दूर करने मे समर्थ है ।[65]

द्विवेदी युग के प्रमुख ब्रजभाषा कवि जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' द्वारा प्रयुक्त 'लोक' शब्द स्थान-विशेष—'तीनो लोक'[66] का वाचक है तथा कहीं-कहीं पर 'लोक' शब्द का लाक्षाणिक प्रयोग कर इन्होने 'साधारण प्रजा' को द्योतित किया है ।[67]

छायावाद-युग के कवि जयशकर प्रसाद के काव्य मे ऐतिहासिक व सम-सामयिक आवरण मे लोक मगल की भावना के स्वर प्रबल रूप मे विद्यमान है । वे सर्वत्र लोंक (सामान्य-जनो) के अक्षय सुख की कामना करते है।[68] सुख-दु ख के अनल मे तपने के उपरान्त ही लोक (सामान्य जन) स्वर्ण-प्रतिमा बन सकता है।[69] इसीलिए प्रसाद ने लोक पथिक (जन सामान्य के पथ का) बनना स्वीकार किया।[70] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जीवन लोक-जीवन का दु खद किन्तु प्रतिष्ठित दर्पण है । वे लोक (साधारण जनो) की रीति का निर्वाह सहजता से करते है किन्तु जहॉ ये लोकरीतियॉ जनहित मे बाधक बनती है वहॉ इन्हे तोडने से उत्पन्न भय उनके मन मे नहीं है।[71] प्रकृति के अनन्य उपासक

सुमित्रानन्दन पन्त आजीवन अपनी लेखनी से लोक जीवन की व्यथा का मार्मिक चित्रण करते है।[72] पन्त करूणा लोक के प्रतिबिम्ब से लोक (सामान्य जनो के जीवन) को आलोकित करना चाहते है।[73]

हिन्दी साहित्य के प्रमुख आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'लोक' की कई अवधारणाओ को अभिव्यक्ति किया है। शुक्ल जी जब लोक-मगल और लोक रजन की बात करते है, तब वे कहते है कि मगल का विधान करने वाले दो भाव होते है-करूणा और प्रेम।[74] उनकी दृष्टि मे करूणा की गति रक्षात्मक होती है और प्रेम रञ्जनात्मक होता है। राम 'लोक' (साधारण जन-जटायु, शबरी, बाली से सतप्त गिरिवासी कपियो) की रक्षा करते है। इतना ही नहीं, साधरण जनो की बात रखने के लिए सीता का परित्याग कर देते है। लोक की रक्षा के कारण ही लोक मगल कारक और लोक-रञ्जक राम मर्यादा पुरूषोत्तम कहलाए।

शुक्ल जी 'साधारणीकरण' सिद्धान्त की विवेचना करते हुए लोक-हृदय को प्रमुखता देते है।[75] वे स्पष्ट रूप से कहते है कि ''सच्चा कवि वही है जिसे लोक हृदय की पहचान हो, जो अनेक विशेषताओ और विचित्रताओ के बीच मनुष्य-जाति के सामान्य हृदय को देख सके।''[76]

'लोक' शब्द के अर्थ को आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अत्यन्त स्पष्ट रूप मे व्यक्त करते है। उनके अनुसार - 'लोक' शब्द के अन्तर्गत वह जनता आती है, जो सुसस्कृत समझे जाने वाले लोगो की अपेक्षा अधिक सरल व अकृत्रिम जीवन जीते है।[77] तुलसी को वे 'लोक नायक'[78] कहते है जो 'आम-जनता' के प्रिय है। स्पष्ट है कि उनका 'लोक' शब्द 'सामान्य जन' के अर्थ का वाहक है।

लोक और वेद का विभेद

सम्पूर्ण सस्कृत-साहित्य 'वैदिक साहित्य' और लौकिक साहित्य'-इन दो रूपो मे प्राप्त होता है। वैदिक साहित्य के उपरान्त लौकिक-साहित्य का विकास हुआ। 'वैदिक साहित्य' और 'लौकिक साहित्य' की सरचना मे बहुत भेद नही है, किन्तु दोनो मे अन्तर है। महर्षिक पतञ्जलि के 'महाभाष्य' से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि लोक शब्द उन जनसमुदाय को द्योतित करता है जो वैदिक भाषा-नियमो का अध्ययन नहीं कर पाते थे। लौकिक सस्कृत कभी लोक-भाषा रही है जिसका प्रयोग मातृभाषा के रूप मे साधारण जनता करती आ रही थी। इसलिए पतञ्जलि ने व्याकरण-अध्ययन की आवश्यकता के सम्बन्ध मे कहा कि "जो लोग यह कहते है कि वेद के अध्ययन से हमने वैदिक शब्दो का और लौकिक शब्दो का ज्ञान कर लिया है, इसलिए व्याकरण क्यो पढे ?"[79] यह कथन स्पष्ट करता है कि उस समय वैदिक व लौकिक शब्दो मे अलगाव था। पतञ्जलि ने 'वेद' और 'लोक' शब्द के अर्थो को स्पष्ट करते हुए कहा है कि लोक के उदाहरण लोक-प्रचलित नियम है। लोक-प्रचलित नियमो के अनुकूल चलने वाले लौकिक है और वेद प्रतिपादित नियम के अनुसार चलने वाले वैदिक है।[80] इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि महर्षि पतञ्जलि के समय से पूर्व वेद और लोक की परम्परा चल पड़ी थी।

महाभारत मे कृष्ण का यह कथन-"लोक और वेद मे मै पुरूषोत्तम रूप मे प्रथित हूँ।[81] यहॉ लोक शब्द स्मृतिपरक है[82] और वेद शब्द श्रुतिपरक है। स्मृति अल्पश्रुतो की रचना है।[83] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 'लोक' शब्द उन व्यक्तियो के लिए प्रयुक्त होता है जो अल्पज्ञ या 'सामान्य जन' है। 'लोक' शब्द को स्पष्ट करते हुए श्री कृष्ण ने[84] स्वय कहा है कि श्रेष्ठ जनो के कर्मों को देखकर लोक = प्राकृतजन[85] (जन सामान्य) कर्मो को करता है। इन उदाहरणो से यह सिद्ध हो जाता है कि लोक शब्द

प्राकृत जन = (सामान्य जनो) के लिए प्रयुक्त है। प्राकृत जन न वैदिक भाषा का प्रयोग करते थे न वैदिक नियमो के अनुसार ही कार्य करते थे। लौकिक सस्कृत के नाटको को देखने से यही ज्ञात होता है कि समाज मे सुशिक्षित और उच्चवर्गीय थे वे सस्कृत भाषा बोलते थे और जो अनपढ, अकुलीन थे, वे प्राकृत भाषा मे अपनी बात कहते थे। अत स्पष्ट है कि ''भारतीय साहित्य मे . परम्परा से लोक और वेद का विभेद विदित होता है। लोक परिपाटी और वेद परिपाटी जैसी दो पृथक परिपाटियॉ है।''[३६] इसे और स्पष्ट करते हुए ''हिन्दी साहित्य कोश'' मे कहा गया है कि ''लोक और वेद का पुराना अन्तर यह बताता था कि जो वेद मे स्पष्टत नहीं है वह यदि लोक मे हो अथवा जो वेद मे है, उसके अतिरिक्त लोक मे हो, वह लौकिक है। यहॉ साहित्य मे लोक या लौकिक किसी अवहेलना अथवा उपेक्षा का भाव प्रकट नही कराता। .. यहॉ वैदिक से भिन्न शेष समस्त बाते लौकिक कहलायेगी। बाल्मीकि की 'रामायण', कालिदास का 'शकुन्तला' नाटक, भारवि, माघ, भवभूति की रचनाऍ सभी लौकिक कोटि की होगी।''[३७]

इस कथन से यह बात और स्पष्ट हो जाती है कि वैदिक सस्कृत के अतिरिक्त लौकिक सस्कृत की एक परम्परा थी, जो यह अभिव्यक्त करती है, कि वैदिक सस्कृत क्लिष्ट होने के कारण जन-सामान्य की भाषा नहीं रही। इसीलिए कवियो ने जन सामान्य की दृष्टि से लौकिक सस्कृत को आधार बनाकर रचना की।

'लोक' और 'जन' का सम्बन्ध -

प्राय 'लोक' और 'जन' शब्द को पर्याय या समानार्थी माना जाता है और एक दूसरे के स्थान पर इसका प्रयोग किया जाता है। किन्तु इन दोनो शब्दो के अर्थो मे अन्तर है। वस्तुत. ''जायते इति जन''[३८] इस व्युत्पत्तिमूलक अर्थ की दृष्टि से सभी उत्पन्न होने वाले को जन कहा जाता है। 'पृथ्वी सूक्त' में कहा गय है कि 'तुमसे उत्पन्न प्राणी तुम्हारे ऊपर जीवन बिताते है। पृथ्वी अनेक स्थानो पर विविध भाषाओ को बोलने वाले,

भिन्न-भिन्न धर्मो वाले जनो (सभी मनुष्यो) को घट के समान एक साथ धारण करती हुई एक स्थिर, दूर न भागने वाली गाय के समान धन की सहस्त्रो धाराओ को दुग्ध के रूप मे दे।'[89] यह सूक्त जन के व्यापक अर्थ (पृथ्वी के सभी मनुष्यो) को द्योतित करता है। सम्पूर्ण सस्कृत साहित्य में 'जन' इसी अर्थ का वाहक है।[90] हिन्दी-साहित्य के भक्तिकाल मे 'जन' शब्द मनुष्य अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।[91]

औद्योगिक क्षेत्र मे 'जन' शब्द श्रमिको का पर्याय बन गया है। इस दृष्टि से देखा जाय तो 'लोक' शब्द व्यापक अर्थ का वाहक है और जन सीमित अर्थ का। क्योकि लोक की व्यापकता मे ही जन निहित है। डॉ० नामवर सिह की जन विषयक दृष्टि "जन साहित्य औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न समाज व्यवस्था की भूमिका मे प्रवेश करने वाले 'सामान्य जन' का साहित्य है।"[92] यह स्पष्ट करती है कि वर्तमान समय मे जन और लोक (सामान्य जन) एक दूसरे के पर्याय बन गये है।

लोक की अवधारणा

'लोक' शब्द के विभिन्न अर्थो की विवेचना के उपरान्त यह आवश्यक है कि 'लोक' की मूल अवधारणा को स्पष्ट किया जाय। जिस प्रकार 'ग्राम्य' शब्द उन पिछडे लोगो के लिए प्रयुक्त किया जाता था, जो गॉवो में रहते थे, उसी प्रकार 'लोक' शब्द का अर्थ असाक्षर, असस्कृत, सहज व अकृत्रिम जीवन जीने वाले लोगो का द्योतक बनता गया। धीरे-धीरे इस 'लोक' शब्द के अर्थ को व्यापकता मिलती गयी और इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण 'कृषक समाज' या 'ग्राम्य-समाज' के लोग आते गये और इसका आधार 'भौगोलिक' हो गया। इसी तरह 'सास्कृतिक प्रवाह' के आधार पर लोक शब्द एक विशिष्ट मानसिक स्तर का द्योतक बन गया। इस प्रकार के लोगो के कार्य व व्यवहार मे प्राचीन भारतीय सस्कृति जिसे 'लोक-सस्कृति' की सज्ञा दी गयी है- के तत्व समाहित है। इस लोक-सस्कृति की गगा मे विभिन्न प्राचीन सस्कृतियो की धाराऍ समाहित है। इन दूसरी

सस्कृतियो ने लोक सस्कृति की प्रभावित भले ही किया हो किन्तु उसके मूल-रूप को परिवर्तित नहीं कर पायीं। अपने को अभिजात्य कहने वाले लोग भी लोक-सस्कृति से प्रभावित है किन्तु उनका अन्तर्निहित अहकार उन्हे उस सस्कृति मे घुलने नही देता है। नगरो मे रहने वाला ग्रामीण श्रमिक-वर्ग जहॉ अपनी लोक सस्कृति मे ही आनन्द का अनुभव करता है, वहीं दूसरी ओर ग्रामीण बुद्धिजीवी नगरो मे आकर आधुनिकता के आडम्बर मे फॅस कर भले ही उसे भूलने का ढोग करते हो, पर क्या कभी वे इसे भूल पाते है ?

वस्तुत 'लोक' शब्द उस मानव-समूह का बोध कराता है जो आदिम समाजों, ग्रामीण समाजो तथा नागरिक समाजो मे एक समान रूप से निवास करने वाला कोई भी मानव समूह हो सकता है । इस प्रकार के मानव-समूहो पर परिष्कृत रूचि वाले व्यक्तियो का अथवा समाज के अभिजात्य वर्ग की विशेषताओ का कम ही प्रभाव पडता हैं ।"[93] दूसरे शब्दो मे यह भी कहा जा सकता है कि लोक से तात्पर्य उस मानसिक वृत्ति से है जो प्राचीन काल से लेकर आज तक जन-जन मे अपने 'सहज' व 'अकृत्रिम' रूप मे विद्यमान है। यह 'मानसिक-वृत्ति' 'भारतीय-सस्कृति' के मूल को अपने अन्दर समाहित किये हुए है ।

लोक की परिभाषा - (विद्वानो के अनुसार)

हिन्दी साहित्य के विविध विद्वानो ने लोक शब्द को अपने-अपने ढग से परिभाषित किया है । डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'लोक' शब्द का अर्थ 'जनपद या ग्राम्य' नहीं वरन् नगरो और गॉवो मे फैली वह समस्त जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियॉ नहीं है । नगर मे परिष्कृत रूचि-सम्पन्न तथा सुसकृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यासी होते है तथा परिष्कृत

रूचि-सम्पन्न व्यक्तियो की विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने वाली आवश्यक वस्तुएँ उत्पन्न करते है ।"[94] स्पष्ट है कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मत मे 'लोक' शब्द उस समस्त जनता के लिए प्रयुक्त हुआ है जो न किसी निश्चित भू-भाग से बॅधी है और न किसी ग्रन्थो पर आधारित ज्ञान से, वरन् उसका व्यावहारिक ज्ञान परम्पराओ पर आधारित है । शहरी 'आधुनिकता' से दूर यह जनता अत्यन्त सरल, सहज, निष्कपट व सवेदनशील जीवन जीती है ।

डॉ० सत्येन्द्र की दृष्टि मे - 'लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य सस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना के अहङ्कार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह मे जीवित रहता है ।[95]

डॉ० सत्येन्द्र की यह परिभाषा अपने आप मे पूर्ण है, जिसका सार यह है कि 'लोक' शब्द उस मनुष्य वर्ग को द्योतित करता है, जो परम्परा के प्रवाह मे जी रहा है जिसमे शास्त्रीयता व पाण्डित्य की चेतना तो मिल सकती है पर इससे उत्पन्न अहङ्कार से वह शून्य है ।

श्याम परमार के अनुसार -

'लोक' साधारण जन समाज है, जिसमे भू-भाग पर फैले हुए समस्त प्रकार के मानव सम्मिलित है । यह शब्द वर्ग-भेद रहित, व्यापक एव प्राचीन परम्पराओ की श्रेष्ठराशि सहित अर्वाचीन सभ्यता सस्कृति के कल्याणमय विवेचन का द्योतक है । भारतीय समाज में नागरिक एव ग्रामीण दो भिन्न सस्कृतियो का प्राय उल्लेख किया जाता है, किन्तु 'लोक' दोनो सस्कृतियो मे विद्यमान है । वही समाज का गतिशील अग है ।[96]

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० सत्येन्द्र व डॉ० श्याम परमार की परिभाषाएँ 'कहने के ढग' के कारण भले ही अलग-अलग प्रतीत हो लेकिन गहराई से समझने पर

स्पष्ट होता है कि इनके दृष्टिकोण समान है। ये परिभाषाये 'लोक' को अत्यन्त सहज ढग से स्पष्ट करती है।

वास्तव मे लोक शब्द के अन्तर्गत वे व्यक्ति आते है, जिनका सम्बन्ध गॉव-शहर, पाडित्य-अपाडित्य, निरक्षरता-साक्षरता, से नही वरन् उनमे व्याप्त उस सहज जीवन शैली से है जो हमारी भारतीय सस्कृति को उजागर करती है। जिसे वह परम्परा से अपनाते चले आ रहे है। इस दृष्टि से देखा जाय तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि 'लोक' शिष्ट कहे जाने वाले वर्ग से इतना मिला हुआ है कि उसे दूध और पानी की तरह अलग करके देखना कठिन है।

लोक के साथ जुड़ने वाले शब्द और संवेदना -

'लोक' शब्द का अपना महत्व है। जब यह शब्द समस्त पद (किसी अन्य शब्द के साथ समास) को प्राप्त करता है तो इसका अर्थ अत्यधिक सवेदनशील हो जाता है। लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा, लोकवार्ता, लोक साहित्य और लोक-नाट्य आदि समस्त-पद के उत्तरवर्ती शब्द साहित्य की विभिन्न विधाएँ है। लोक के साथ समस्त पद होकर ये साहित्यिक विधाये लोक से सम्बन्धित जीवन की सम्पूर्ण भावनाओ को अभिव्यक्त करती है। लोक-मड्गल, लोक-धर्म, लोकापाद, लोक-व्यवहार, लोक-चेतना, लोक-मानस, लोक-परम्परा, लोक-प्रतिभा, लोक-प्रवाह और लोक-सवेदना आदि समस्त पदो मे लोक शब्द सामान्य-जन का अभिधायक है।

साहित्य मे 'लोक-सवेदना' शब्द विशेष महत्व का है क्योकि साहित्य की आत्मा सवेदनाओ मे ही निवास करती है। लोक-सवेदनाओ को अभिव्यक्त करने वाला साहित्य कालजयी होता है। सवेदनाओ से शून्य साहित्य केवल चित्र सा रमणीय लगता है। किसी भी साहित्य का सर्जन व रसास्वादन सवेदनाओ के माध्यम से ही होता है। अतः प्रश्न उठता है कि 'सवेदना क्या है ?'

<u>संवेदना :-</u>

सवेदना विशुद्ध ऐन्द्रिय सवेदना नहीं है । ऐन्द्रिय सवेदना बाह्य यथार्थ के ऐन्द्रिय प्रभावो को ग्रहण करती है । इसके बाद मे ऐन्द्रिय प्रभाव आन्तरिक यथार्थ के अनुभव मे घुल-मिल जाते है । तत्पश्चात् जो सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि या भावदृष्टि उत्पन्न होती है । उसे सवेदना कहा गया है ।

'सवेदना' मे 'विद्' धातु और 'सम्' उपसर्ग है, जिसका अर्थ है- 'सम्यक् वेदन' । सम्यक-वेदन से तात्पर्य है जब बाह्य पदार्थ का ऐन्द्रिय बोध हो तब चित्त स्वाभाविक रूप से तदाकार हो । चित्त का तदाकारित होना दो प्रकार से सम्भव है । एक तो प्रथम दृष्ट पदार्थ के साथ तदाकारिता होगी और द्वितीय अनुभव के आधार पर आन्तरिक यथार्थता के अनुसार तदाकारिता होगी । प्रथम रूप मे सवेदन की ग्रहणशीलता यत्किञ्चिद् मात्र ही होगी, द्वितीय रूप की ग्रहणशीलता मे सूक्ष्म अन्तर्बोध होगा क्योंकि वासना बाह्य-पदार्थ को आत्मसात कर सवेदना का रूप धारण कर लेती है ।

वस्तुत सवेदना ऐन्द्रिय प्रभावो को अतिक्रान्त कर यथार्थ अनुभव को आत्मसात कर-भावो के आस्वादन या विलय के चित्र का अवसर प्रदान करती है । वस्तुत वस्तु की सवेदना मे चार प्रक्रियाओ की आवश्यकता पडती है । प्रथमत ऐन्द्रिय होने पर वस्तु का आलोचनमात्र होता है । उसी वस्तु का आलोचन सफल होता है जिसका अनुभव हो चुका है । अननुभूत वस्तु से ऐन्द्रिय सम्बन्ध होने पर होने वाले आलोचन के उपरान्त सकल्प-विकल्प की स्थिति उत्पन्न नहीं होती है । अनुभूत विषय के आलोचन के उपरान्त मानसिक-प्रक्रिया के द्वारा आलोचित विषय के प्रति सकल्पात्मक-विकल्पात्मक प्रत्यय का उदय होता है, तत्पश्चात् सकल्पित (ज्ञान) प्रत्यय का अभिमानात्मक स्वरूप उपस्थित होता है । इसके बाद सात्त्विक बुद्धि के द्वारा अध्यवसित विषय का रसास्वादन आत्मतत्त्व करता है । बिना सत्त्व के उद्रेक के आत्मा को विषय का सवेदन नहीं होता है । सवेदना

की स्थिति मे आत्मा के दर्पण मे विषय का पूर्ण प्रतिबिम्ब ही नहीं उभरता वरन् आत्मा और विषय की एकाकारता हो जाती है । ऐसी स्थिति मे वेद्यान्तर-शून्यता तथा स्व-पर-ज्ञान का विलयन हो जाता है । सवेदना की वास्तविक स्थ्सति मे ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान की एकाकारता हो जाती है । यह स्थिति भावुक या सहृदय की ही हो सकती है । इसी स्थिति मे कवि या कलाकार रचना की ओर प्रवृत्त होती है ।

वस्तुत सवेदना (वेदन की सम = समतावस्था) वेदन = ज्ञान की समतावस्था है। ऐन्द्रिय ज्ञान चाहे गध-सवेदना हो या रूप सवेदना अथवा स्पर्श या श्रवण सवेदना हो- ऐन्द्रिय होने पर उसकी वास्तविकता का पूर्ण बोध नहीं हो सकेगा, केवल किञ्चिद् ज्ञान मात्र ही हो सकेगा। जब तक ऐन्द्रिय बोध का सम्पूर्ण प्रतिफल आत्मा मे न हो अर्थात् आत्मा मे ऐन्द्रिय बोध समाविष्ट न हो जाय, सवेदना नहीं हो सकती है। इसीलिए सवेदना वेदन = ज्ञान की समतावस्था है। इस ज्ञान की समतावस्था मे बोद्धा का अस्तित्व विलीन हो जाता है। यह विलयन उसकी भावुकता तथा सवेद्य वस्तु पर निर्भर करता है। कुछ लोग समुद्दीपको से कम ही प्रभावित होते है और कुछ उद्दीपन मात्र से ही भावुक हो जाते है। जो जितना भावुक होगा, वह उतना ही सवेदनशील होगा।

सवेदना का 'सम' शब्द सोऽहम् का प्रत्याहार रूप है। 'स अहम्' दो पदो के पूर्व पद 'स' और उत्तर पद के 'म' से सम् पद निर्मित होता है जिसका अर्थ होता है 'वह' 'मै' हूँ। इस सवेदना का अर्थ होता है 'वह मै हूँ' का 'ज्ञान होना'। 'वह' पद दृश्य या सवेद्य पदार्थ का द्योतक है। यह सवेद्य जब तक 'अहम्' 'मै' के रूप मे परिवर्तित नहीं हो जाता तब तक सवेदना नहीं हो सकती है। 'मै' पद आत्मा का द्योतक है। सवेद्य का आत्माकार में परिवर्तित हो जाना ही सवेदना है। जैसे- अरूणिम पुष्प स्फटिक में प्रतिबिम्बत होकर स्फटिक को अरूणिम बनाता हुआ वह स्फटिक के आकार के रूप में परिवर्तित हो जाता है उसी प्रकार विषय आत्मा मे प्रतिबिम्बत होकर आत्माकार हो जाता

है।[17] इन तथ्यो की विवेचना से यह कहा जा सकता है कि 'सवेदना' व्यक्ति के चित्त या मन की वह दशा है जहॉ ज्ञानेन्द्रियो से प्राप्त किसी के सुखात्मक-दु खात्मक भाव मे चेतना या आत्मा के विलीन हो जाने से उसका प्रथक् अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

यद्यपि सभी सवेदनाऍ विषय और ज्ञानेन्द्रिय सापेक्ष है किन्तु इन सबका पर्यवसान चित्त (मनृ) मे ही होने के कारण सवेदनाओ का चित्तात्मक होना सिद्ध होता है। चित्त सुखात्मक दुखात्मक और मोहात्मक होता है। कोई भी सवेदना तटस्थात्मक नहीं हो सकती है। ससार मे चार प्रकार के प्राणी- सुखी, दु खी, पुण्यात्मा और अपुण्यात्मा होते है। सुखी के प्रति मैत्री भाव रखना चाहिए, किन्तु बहुत से लोग सुखी के प्रति ईर्ष्या रखते है। दु खी के प्रति सज्जन के मन मे करूणा उत्पन्न होती है तथा दुष्टो के मन मे हर्ष उत्पन्न होता है। पुण्यात्मा को देखकर सज्जन मुदित होते है और अपुण्यात्माओ की उपेक्षा करते है।

लोक-जीवन मे उपर्युक्त सभी प्रकार के भाव देखे जाते है। कवि इन सभी भावो का मर्मस्पर्शी चित्रण अपनी कविता मे करता है। कुशल कवि स्वाभाविक वर्णन को चित्ताकर्षक बना देता है। उसकी लेखनी स्वाभाविक पाषाण-खण्ड को रत्न बना देती है जिसकी चमक चिरस्थायी रहती है।

सुखात्मक- सवेदनाओ की अभिलाषा सभी प्राणी मे रहती है। विश्व का प्रत्येक प्राणी सुख से प्रेम और दु ख से घृणा करता है। सुख-दु ख न विषयगत ही है और न आत्मगत । एक वस्तु किसी के लिए भले ही सुखात्मक हो किन्तु दूसरो के लिए दु खात्मक होती है तथा तीसरे के लिए मोहात्मक भी हो सकती है। इसलिए सुख-दु ख उभयात्मक है। साहित्य अपने कलात्मक सौन्दर्य से आनन्द प्रदान करता है चाहे वह दु खात्मक ही क्यो न हो क्योकि साहित्यिक सवेदनाओ की चर्वणा आनन्द मे ही समाप्त होती है ।

सुखात्मक सवेदनाए लौकिक दृष्टि से सुखमूलक है। जिन वस्तुओ की सम्प्राति से अन्त करण आह्लादित होता है अर्थात् चित्त का विकास हो जाता है अथवा चित्त विश्रान्त हो जाता है वे वस्तुऍ सुखात्मक सवेदनाओ के कारण होते है। चित्त की विश्रान्ति ही सुख है और अविश्रान्ति दु ख है। श्रृगार, धन-धान्य, प्रिय आदि की प्राप्ति का वर्णन पाठक को ऐन्द्रिय सुख प्रदान करता है। हास-परिहास, वसन्त, प्राकृतिक सौन्दर्य आदि के वर्णन से चित्त प्रमुदित हो जाता है। इसलिए इनकी सवेदनाए सुखात्मक होती है।

दु खात्मक सवेदनाओ मे चित्त सकुचित हो जाता है। दु खात्मक सवेदनाओ का साहित्य मे अधिक महत्व है।

वाल्मीकि की करूणा ही श्लोक रूप मे परिणीत हुई थी। दु खात्मक संवेदनाऍ लोक-जीवन का अग बनती जा रही है। इसका भुक्तभोगी कवि ही इनकी सवेदना को समझ सकता है। इस प्रकार के जनो की श्वॉसो मे निरन्तर अग्नि-ज्वाला धधकती रहती है जिसकी उष्मा मे वह निरन्तर तपता हुआ अपनी जीवन यात्रा को पूरा करता है। दु खात्मक सवेदनाए प्रिय का आत्यन्तिक वियोग, धन का विनाश, अकाल और दुर्घटनाओ की विभीषिका, शोषको के आतक आदि सामाजिक अपराधो की उर्वर भूमि मे जन्म लेकर सहृदय को करूणार्द्र बनाती है।

मोहात्मक सवेदनाऍ तमोगुण प्रधान होती है। शोषको के अत्याचार घृणा और क्रोध को जन्म देते है। लोक जीवन मे ऐसे लोगो को बहुतायत देखा जाता है, जो मोह ग्रस्त होकर या तो अकर्मण्य हो जाते है अथवा अनैतिक आचरण को जीवन का अग बना लेते है। उनके क्रियाकलाप अमानवीय होते है किन्तु वे उसी पङ्क मे फॅसकर ही सुख का अन्वेषण करते रहते है। ऐसे व्यक्तियो के जीवन से सम्बन्धित रचनाऍ मोहात्मक-सवेदनाओ को जन्म देती है।

सवेदनाए साहित्य को जन्म देती है और साहित्य मे सवेदनाएँ समाहित रहती है। दूसरे शब्दो मे कहे तो सवेदना ही साहित्य है और साहित्य ही सवेदना है। साहित्य के शब्द केवल शब्द नहीं होते है वरन् उसमे प्रवाहित सवेदनाओ के कारण ही उनका महत्व है। साहित्य के शब्द यदि सवेदनात्मक अर्थो के रूप मे अपने को परिवर्तित नहीं कर पाते तो वे शब्द केवल झकार-मात्र बनकर रह जाते है। सवेदनाओ के माध्यम से कवि या साहित्यकार समाज, प्रकृति व मानव जीवन की विविधताओ को अपने मन-मस्तिष्क व हदय-सिन्धु मे अकित करता है, पुन लेखनी से अजस्र प्रवाहित होने वाले विविध प्रकार के मनोरम रगो से उन भावो को नूतन व मर्मस्पर्शी रूप प्रदान करता है।

साहित्य मे लोक-संवेदनाओ का महत्व

'लोक-सवेदना' का अर्थ है "लोक-जीवन की सवेदना।" आचार्य भरत ने "नाट्यशास्त्र" मे बताया है कि नाट्य लोकवृत्त = लोक व्यवहार का अनुकरण करने वाला है जिसमे अनेक प्रकार के भावो तथा विभिन्न अवस्थाओ का समन्वय रहता है।[98] इस नाट्य मे सम्पूर्ण ज्ञान, शिल्प, विधा, कला और योग का समावेश रहता है।[99] इनकी दृष्टि मे नाट्य दु खार्त, क्षमार्त तथा शोकार्त जनो को विश्रन्ति = सुख (आनन्द) प्रदान करने वाला है।[100] भरत-मुनि का उपर्युक्त कथन यह सिद्ध करता है कि उत्तम काव्य लोक-जीवन (जन-साधारण) के व्यवहारो का मार्मिक चित्रण करने वाला होता है। समाज मे श्रमार्त, दु खार्त अैर शोकार्तो का बाहुल्य है। ये जनसाधारण अपनी जीवनवृत्तियो को काव्य मे पाकर शीघ्रातिशीघ्र साधारणीकरण की अवस्था को प्राप्त हो जाते है। इसीलिए उन्हे आनन्द की प्राप्ति होती है। वस्तुत सुख और दु ख से मिश्रित लोक-व्यवहार जब अभिनय अथवा काव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है तभी लोक में विनोद जनक सिद्ध होता है।[101]

कवि जिस स्वभाव का होता है, उसकी कविता भी उसी प्रकार की होती है। जो कवि लोक जीवन की सवेदनाओ के रगो से अपनी रचनाओ को चित्रित करता है, उसकी रचना अत्यधिक प्रभावशालिनी होती है। वही कवि सफल है जो अपनी अनुभूतियो को उसी रूप मे प्रेक्षक तक पहुँचा सके। 'काव्य का ध्येय यह कदापि नही है कि जो वस्तु एक हृदय मे घटित होती है उसका प्रेषण करके दूसरो के लिए उसे बोधगम्य बना दिया जाय, वरन् इसका काम है दूसरे व्यक्ति मे भी ऐसी मनोदशा की उत्पत्ति कराना जो कि कवि की उस मनोदशा के अनुकूल हो, जो अभिव्यक्ति द्वारा बहिर्मुख हो जाती है।[102]

यह स्थिति तभी सम्भव होती है जब कवि लोक-जीवन के मार्मिक भावो को अपनी कविता के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। लोक जीवन को प्रत्यक्ष करने वाला कवि सभी वस्तुओ को प्रत्यक्ष कर लेता है। कवि की वास्तविक अनुभूतियॉ ही कलात्मक भावो का रूप धारण करती है, जिसका परिणाम यह होता है कि कवि स्वय जिस भावो का सूक्ष्मता से भोग करता है इसी भावो के तल तक पाठक को पहुँचाने मे सफल होता है।

कवि-प्रतिभा की सार्थकता इस बात पर निर्भर करती है कि उसकी कृतियो मे लोक जीवन की सवेदनाओ का कितना व्यापक्तव अथवा वैविध्य मौलिक रूप मे प्रभावी ढग से उपस्थित किया गया है।

लोक-सवेदनाए मूलत जन-साधारण के सुख-दु ख की गहरी अनुभूति कराती है। लोक-साहित्य मे लोक-सवेदनाओ का जो रूप दिखाई पडता है, इतना सजग और सहज रूप उन कवियो के काव्य मे नही प्राप्त होता जो लोक-प्रतिबद्ध होने का दभ भरते है। वस्तुत लोक साहित्य साधारण दु खी जनो का स्वय का भोगा हुआ साहित्य है, उसमे किसी तरह की कृत्रिमता नहीं रहती क्योकि उसका प्रवाह हृदय से होता है। इसमें बौद्धिकता का विलास नहीं रहता है। कुछ प्रतिवद्ध कवि लोक पीडा को मार्मिक रूप मे व्यक्त करने

मे सफल सिद्ध हुए है परन्तु अनेक कवियो मे केवल लोक जीवन का बाह्य स्पर्श मात्र ही दिखाई पडता है। लोक सवेदनाओ का सच्चा रूप-उन किसानो के श्रम की बूँदो मे, जो गेहूँ और धान की बालियो मे परिणत होकर बाजारो मे पानी के भाव बिकते है-उन श्रमिको की हड्डियो मे, जो कारखानो की आग मे पिघलती रहती है-उन श्रमिक युवतियो के फटेहाल-यौवन मे, जिसे पेट की आग बुझाने के लिए क्या-क्या नही करना पड़ता-उन दीन-हीन बालको की पीडा मे, जो प्लेटफार्मों पर फटे दोना को लूटने के लिए आपस मे लडते रहते है, होटलो मे दो वक्त की रोटी प्राप्त करने के लिए दिन-रात श्रम किया करते है तथा बँधुआ मजदूर की जिन्दगी जीने के लिए विवश रहते है -भूख की ज्वाला मे पुत्र-पुत्रियो से घिरी हुई उन महिलाओ के दर्द मे, जिनके पति अपने प्राण हथेली पर लेकर घर से बहुत दूर कुछ कमाने गये है, एव मेहनतकश श्रमिक स्त्रियो के असहनीय परिश्रम, जो क्षुधानल मे जलती हुई भी खेतो मे धान रोपती हुई गाती रहती है, जिनके जीवन का शैशव जाडो की शीत-भरी रात मे पुआलो मे तथा यौवन गर्मी की दोपहर मे खेत-खलिहानो मे तथा वृद्धावस्था सडक के पडे ढेले की भॉति बीतता है - दिखाई पडता है।

लोक-सवेदना वस्तुत जीवन के उस अन्त करण की अभिव्यक्ति है जिसमे सहजता, सरसता, सिसृक्षा, जिजीविषा और दुर्धर्ष बाधाओ से संघर्ष करने की प्रबल अभिलाषा रहती है। जिसके द्वारा मानव हारकर भी विजय की अभिलाषा ही नही करता वरन् सन्नद्ध होकर विकराल काल से युद्ध कर प्रलय को सृजन मे परिवर्तित करता रहता है।

साहित्य की विशालता लोक-परम्परा से प्राप्त रीति-रिवाज, आचार-विचार, सस्कारो एव सस्कृति का अनुपालन विविध प्रकार के अविश्वसनीय लगने वाले क्रिया-कलापों पर

विश्वास, शकुन अपशकुन, व्रत-त्योहारो के प्रति देवमूलक आस्था आदि क्रिया-कलापो के सूक्ष्म-निरीक्षण का प्रतिफलन है। साहित्यकारो ने लोकजीवन के उफनते हुए समुद्र को केवल दूर से ही नहीं देखा, वरन् उसमे डूबकर उसके खारेपन के साथ ही उसके लावण्यमय रूप का आस्वादन करते हुए उसके हृदय तल के रत्नो को निकालकर उन रत्नो से अपनी कविता-कामिनी को सॅवारा।

विश्व का सम्पूर्ण साहित्य सुखात्मक, दु खात्मक तथा मोहात्मक सवेदनाओ की विवेचना करता है। उनके पात्रो मे वैशिष्ट्य भले ही हो, लेकिन सवेदनाओ मे अन्तर नहीं है। यह बात दूसरी है कि अभिजात्य साहित्य मे भौतिक-विलास तथा बौद्धिक क्रीडा का समावेश अधिक होने से लोक-साहित्य की भॉति हृदय की सहजता व सरसता कम दिखाई पडती है, पर लोक-सवेदनाओ से वह शून्य नहीं है। शिष्ट साहित्य का दीपक भी लोक-सवेदनाओ की स्नेहिल वर्तिका के प्रकाश से अन्धकार का भेदन करता रहा है। वस्तुत साहित्य और लोक का सम्बन्ध गत्यात्मक और इतना अन्तरग है कि विद्यमान रहने पर भी सतत मुखर नहीं होता है।

लोक-सवेदनाओ के माध्यम से ही साहित्य मे भारतीय सस्कृति मे व्याप्त धार्मिक, सहिष्णुता, नैतिकता, समन्वय, समानता व विश्ववन्धुत्व जैसी भावनाओ का समावेश हुआ है। यह भारतीय सस्कृति भारत मे रहने वाले हर भारतीय के सस्कारो मे चेतन या अचेतन रूप मे रची-बसी है जिसका आलोक कविताओ मे उतर कर जन-जन को आप्लावित करता रहता है। रामायण और महाभारत की कथाओ ने भारतीय जन-मानस को अत्यधिक प्रभावित किया। फलत लोक-गीतो मे राम व कृष्ण से सम्बन्धित कथाओ का बाहुल्य देखा जा सकता है। इन महापुरूषो से सम्बन्धित गीतो को जन्म, मुण्डन, विवाहादि सस्कारो मे गाया भी जाता है। लोक गीतो की श्रुति-परम्परा वैदिक साहित्य के उदात्तत्व को उपस्थित करती है। जिस प्रकार किसी बात की प्रमाणिकता के लिए हम

वैदिक साहित्य के शब्दार्थो मे डूब जाते है उसी प्रकार श्रुति-परम्परा को आज भी स्थिर रखने वाले लोक-गीतो की सवेदनाएँ साहित्य के लिए उपजीव्य है।

जो कवि लोक-हृदय मे पूर्ण रूप से समाया रहता है, उसी की कविता सरसता, सहजता को बिखेरती व काल-सीमा के बन्धनो को तोडती हुई वैश्वीकरण को प्राप्त होती है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से भिन्न है किन्तु लोक-हृदय की अन्तर्भूमियो मे कुछ ऐसी समानता होती है जो भिन्न-भिन्न देश, सस्कृति और जाति के मनुष्यो को एक ही क्षण मे अपने में विलीन कर देती है। इसीलिए किसी एक देश-काल का साहित्य पूरे विश्व मे प्रतिष्ठित हो जाता है।

मार्क्स ने कला के सम्बन्ध मे कहा है कि- कला जनोपयोगी होनी चाहिए और उसके द्वारा समाज के दलित वर्गो की मूक वेदनाओ, भावनाओ तथा आशाओ एव निराशाओ की अभिव्यजना होनी चाहिए। अतीत की कला महलो मे पली थी धनिक सत्ताधरियो के आमोद-प्रमोद का साधन बनी रही, परन्तु अब उसे जन-साधारण के सुख-दु ख, हास्य तथा अश्रुपात मे भाग लेना पडेगा और इसी मे उसकी सार्थकता निहित है।[10] कला के प्रति मार्क्स का यह दृष्टिकोण काव्य मे लोक-सवेदनाओ की अनिवार्यता प्रकट करता है।

लोक-सवेदनाओ मे विश्वबन्धुत्व का भाव, पडोसी तथा समाज के प्रति प्रेम, मानव के प्रति प्रेम और श्रद्धा तथा एक दूसरे के हित के लिए आत्म-बलिदान की भावना निहित है। अतः साहित्य मे इन सवेदनाओ की उपादेयता स्वय सिद्ध है।

लोक-सवेदानाओ से तादात्म्य रखने वाला कवि अह की चहारदीवारी से बाहर निकलकर समाज व जीवन के गूढ यथार्थ-सत्यो से साक्षात्कार कर उनमें व्याप्त विसगतियो, विषमताओ व विडम्बनाओं के मूल कारणो को खोजकर अपनी कविता के माध्यम से उन्हें जग-जाहिर करता हुआ उनके खिलाफ जनमत तैयार करने मे योग देता

है, ताकि समाज मे सत्य, न्याय, प्रेम,. नैतिकता, सहिष्णुता, समानता आदि मानव मूल्यो की प्रतिष्ठा हो सके। अत कहा जा सकता है कि लोक-सवेदनाओ से परिपूर्ण साहित्य समाज को नैतिक व मानवीय आधार पर सुदृढ करने मे महत्वपूर्ण योगदान देता है।

इस वैज्ञानिक युग के बढते प्रभाव ने जहॉ विश्व की दूरी कम कर दी है, वही मनुष्य से मनुष्य की दूरी को बढाया है। आज मनुष्य भौतिक विकास की लालसा मे मनुष्यता की तिलाञ्जलि दे रहा है। ऐसी भयावह स्थिति मे लोक-सवेदनाओ से सवलित साहित्य मानव का हित चिन्तक है। सभ्यता और भौतिकता की वृद्धि मे मानव की हृदयगत कोमल भावनाओ पर प्रहार किया जिसके परिणाम स्वरूप साहित्य मे अत्यधिक बौद्धिकता दिखाई पडती है। बौद्धिक-साहित्य अनिष्टकारी तो नही है पर लोक मे उनकी पकड बिल्कुल न होने से उसका मूल्य आम जनता की दृष्टि से नगण्य है। स्पष्ट है कि भौतिकता के बढते प्रभाव से साहित्य को लोक-सवेदनाएँ ही बचा सकती है क्योकि इन लोक-सवेदनाओ मे ही भारतीय सास्कृतिक मूल्य समाहित है जो जन-जन को सही व स्वस्थ दिशा देने मे समर्थ है। ये मूल्य है – त्याग की भावना, सहज निश्छलता, परस्पर सौहार्द की भावना, धर्म-परम्पराओ के प्रति अनुराग की भावना आदि। त्याग की भावना स्वार्थ सकुचित मनुष्य के हृदय को विशालता प्रदान करती है। सहज निश्छलता लोभी व चतुर मनुष्य को आडम्बरमय जीवन की सकीर्ण गुफा से निकालकर विश्वबधुत्व की धारा मे प्रवाहित करने मे सक्षम है। परस्पर सौहार्द्र की भावना नैतिकता तथा धर्म-परम्पराओ के प्रति अनुराग की भावना विश्रृङ्खलित मानव समाज को पाप के पङ्क से निकालकर उसे 'सत्य शिव और सुन्दरम्' के रहस्य का साक्षात्कार कराकर परमानन्द प्रदान करने मे पर्याप्त कराने मे पर्याप्त है।

अन्तत कहा जा सकता है कि इस भौतिकवादी युग मे लोक सवेदनाओ से युक्त साहित्य ही मनुष्य की प्रकृति विजयनी वैज्ञानिक लालसा को ध्वस्त कर, उसके आन्तरिक सन्तुलन, अनुशासन और उसके उत्कर्ष को लोकमगलकारी बना सकता है, तथाकथित सभ्य पुरूष की बर्बरता तथा अहङ्कार शीतला को नम्रता, सरसता और सहृदयता मे परिवर्तित कर सकता है क्योकि इन्ही लोक सवेदनाओ मे समरसता की अजस्र धारा प्रवाहित होती रहती है।

प्रथम अध्याय - सन्दर्भ ग्रंथ सूची

(1) "तम आसीत्तमसा गूढमग्रे" – (ऋग्वेद 10/129/3)" उद्धृत The New Vedic Selection" - Pt N Kanta Nath Shastry Telang and Dr Braj Bihari Chaubey Sel No 28 का 3।

(2) "यथा लौकिकवैदिकेषु" – महाभाष्य–1 – 1।1। आ, पृ0–66।

(3) "लोकत" – महाभाष्य, 1।1।1 (पृ0 – 64)।

(4) "अति अपार जे सरित वर, जौ नृप सेतु कराहि।
चढि पिपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम पारहि जाहि।। 13 ।।
रामचरित मानस (बाल काण्ड), पृ0 – 26।

(5) "तथा लोका अकल्पयन्" – ऋग्वेद, 10/90/14 (Sel No 25 का 14)

(6) सायण भाष्य – ऋग्वेद 10/90/14 (Sel No 25 का 14)

(7) "आ सीदत स्वभु लोक विदाने" – ऋग्वेद 10/13/2 (पृ0 480)

(8) "यो वो वृताभ्यो अकृणोदुलोक .।" ऋगवेद 10/30/7 (पृ0 – 570)।

(9) "ममान्तरक्षिमुरूल लोकस्तु" – ऋग्वेद 10/128/2 (पृ0 1095)

(10) "अकृणोरू लोकम्" – ऋग्वेद 10/181/3 (पृ0 1224)

(11) "ऋतस्य यौनो सुकृतस्य लोके ऽरिष्टा ।" ऋग्वेद 10/85/24 (पृ0–845)।

(12) "अदुर्मग्डली पति लोकमा विश ।" ऋग्वेद 10/85/43 (पृ0 – 853)।

(13) "अभीकेचिदु लोक कृत्सगे . ।" ऋग्वेद 10/133/13 (पृ0 –1113)

(14) "उदीर्ष्वनार्यभि जीवलोक . . ।" ऋग्वेद 10/18/8 (पृ0–512)।

(15) "प्रजाभ्यो नानालोकेभ्य" – 13/58, शुक्ल यजुर्वेद सहिता – श्री महाधराचार्यकृत।

(16) उच्छिष्टे नाम रूप चोच्छिष्टे लोक अहित ।

उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्त समाहितम्।। 1 ।।

अथर्ववेद (द्वितीय खण्ड), का011, अध्याय–1, (पृ0 – 50)।

(17) एन लोको गच्छति ।। 5 ।।

अथर्ववेद (द्वितीय खण्ड), का0 – 11, अध्याय–4, (पृ0 – 225)।

(18) "देवा वै तृतीयेनान्हा स्वर्गलोकमायस्तान सुरा ।" ऐतरेय ब्राह्मण 5 1 ,

उद्धृत – ऐतरेय ब्राह्मण का एक अध्ययन (पृ0 – 104)।

(19) "इमे वै लोका सर्पा" – शतपथ ब्राह्मण 7.4 1 25, उद्धृत–ऐतरेय ब्राह्मण का एक अध्ययन, पृ0 – 71।

(20) "यावदनु पृथिवी यावद्न्वग्निस्तावानस्य लोको भवति" – ऐतरेय आरण्यक,] [1 7 , Sel No - 42, उद्धृत – "The New Vedic Selection" Pt N Kanta Nath Shastry Telang and Dr Braj Bihiri Chaubey

(21) "इद ब्रह्मेद क्षत्रमिमे लोका इमे देवा इमामि भूती नीद सर्व यदयमात्मा ।। 6।। वृहदारण्यक उपनिषद II 4 6 , Sel No - 44, उद्धृत उपर्युक्त।

(22) "न लिप्यते लोक दु खेन बाह्य ।" ।। 11 ।। कठोपनिषद (द्वितीय–बल्ली), कृति– "इशादि नौ उपनिषद" पृ0 – 128।

(23) सूर्यो यथा सर्व लोकस्य चक्षु . ।" ।। 11 कठोपनिषद द्वितीय बल्ली कृति – "ईशादि नौ उपनिषद," पृ0 – 128।

(24) तिलौकिकेष्वप्यतद्यथेन्द्राग्नी पिता पुत्राविति ।। 4 ।। "निरूक्तम्" (निघन्टु भाष्य) – यास्क मुनि (1/16/4) पृ0 – 75 (प0 बदरीलाल तनूज व पण्डित शिवशर्मा कृत – टिप्पणी आदि)।

(25) (अ) लौकिकेष्वप्येतथाऽसपत्नोऽय ।'' ।। 7 ।। (1/16/7), निरूक्तम् (निघष्टुभाष्य) – यास्कमुनि, पृ0 – 75।

(ब) सर्वमिति लौकिकेष्वप्येतद्यथा सर्वरसा अनुप्राप्ता पानीयमिति ।। 9 ।।, (1/16/9), पृ0–77 (उपर्युक्त प0 बदरी लाल उपर्युक्त)।

(26) ''अपश्यमेव वक्तव्य मानुष वाक्यमर्थक्त् ।। 9।।, श्री बाल्मीकि रामायणे, सुन्दरकाण्डे (पञ्चत्रिंश सर्ग), पृ0 – 940।

(27) बाल्मीकि रामायणे (सुन्दर काण्डे) पञ्चत्रिंश सर्ग (सु0 35/21), पृ0–95।

(28) भाष्ये सर्व लोकस्येति, व्याकरणानभिज्ञोऽपि साधु–शब्द प्रयोगात् फललभतैवेव्यर्थ।'' ''महाभाष्य'' (भाग–1), पृ0 – 54।

(29) कृति "व्याकरण महाभाष्ये नवाह्रिकम्'' 1/1/1, (पृ0 – 53)'

(30) अज्ञानतिमिराधस्य लोकस्यतु विचेष्टत।
ज्ञानाजन शलाकाभि नेत्रोन्मीलन कारकम्।।'' श्री मन्महर्षिवेद व्यास प्रणीत 'महाभारत' (प्रथम खण्ड) आदिपर्व (1/84) पृ0–7।

(31) यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्त देवेतरो जन।
स यत्प्रमाण कुरूते लोक स्तदनुवर्तते ।। 3/21।। ''श्रीमद् भगवत् गीता'' – पृ0 – 112।

(32) ''न मे पार्थास्ति कर्तव्य त्रिषु लोकेषुकिचन।'' 3/22, श्रीमद् भगवत् गीता, पृ0–113।

(33) ''तेनार्थवॉल्लोभ पराङ्मुखेन ध्नताविध्न भय क्रियावान्।
तेनास लोक पितृमान्विनेत्रा तेनैव शोका पनुदेन पुत्री ।। 23 ।।
कालिदास – रघुवंशम् (चतुर्दश सर्ग) पृ0 – 166।

(34) "सता केनापि कार्येण लोकस्याराधन व्रतम्। "1/41, पृ0 – 102,
महाकवि श्री भवभूति प्रणीतम् – "उत्तररामचरितम्"।

(35) "व्यलोकि लोकेन न केवलचतन्मुदा . .।" ।। 71 ।। महाकवि हर्ष प्रणीतं"
नैषधीयचरितम् महाकाव्य" (पञ्चदश सर्ग) पृ0 – 399।

(36) श्री बाणभट्ट कृत "कादम्बरी" पृ0–617 (ऊपर से तीसरी चौथी पक्ति)

(37) अमरकोश, 2/1/6, पृ0–112।

(38) "अमरकोश" – श्रीमद् अमरसिह विरचित 3/3/18, पृ0–397।

(39) "लोको विश्वे जने इति हैम" – 2/1/7, उद्धृत – अमरकोश पृ0–112।

(40) अष्टाध्यायी काशिका – व्याख्याकार – श्री नारायण मिश्र, 5/1/44, पृ0–11।

(41) सन्दर्भ – उपर्युक्त।

(42) ज्ञान शब्द कोश – सम्पा0 मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, पृ0 – 712।

(43) सन्दर्भ – उपर्युक्त।

(44) हिन्दी साहित्य कोश (भाग–1) पृ0 – 747,प्रधानसम्पा0 – धीरेन्द्र वर्मा।

(45) "ब्रह्मा विष्णु त्रैलोक्य सकलहि निलीन जहँ।" ।।50।। दोहा कोष–उद्धृत
"हिन्दी काव्य धारा" – राहुल सास्कृत्यायन, पृ0–9।

(46) "नाथ पाई दलिया भयलोका" ।। 24 ।। "दोहा कोष", उद्धृत – हिन्दी काव्य धारा–
राहुल सास्कृत्यायन, पृ0–7।

(47) "पशु लोक निर्बोध जिमि रहिया।" ।। 21।। दोहाकोश, उदधृत हिन्दी काव्य धारा –
राहुल सास्कृयायन, पृ0 – 7।

(48) "मिथ्यै लोक बँधावे अपना।" चर्यापद ।।2।। शेष–उपर्युक्त, पृ0–17।

(49) "धर्महि सुख पावहि दुख, एह प्रसिद्धउ लोक।" ।।101।। उद्धृत–हिन्दी काव्य धारा – राहुल सास्कृत्यायन।

(50) प्रा' श्चित तासु यदि कासि आज। तो घरै तोर परलोक कार्य।।
`पुष्पदत्त-महापुराण,' उदधृत – हिन्दी काव्य धारा – राहुल सास्कृत्यायन, पृ0–181।

(51) "ठिय लोकपाल जीवित निरीह/ /पुष्पदन्त-आदिपुराण उदधृत – हिन्दी काव्य धारा, पृ0–209।

(52) छोडौ वैद–वणज–व्यौपार/पढिवा गुणिबा लोकाचार।" गोरखनाथ (170/9)
उद्धृत – हिन्दी काव्य – धारा – राहुल सास्कृत्यायन, पृ0–163।

(53) "तत्त तिलक तिहुॅलोक मै, राम नाम निज सार।" "कबीर वाणी पीयूष"
सम्पा0-डॉ0 जयदेव सिह व डॉ0 वासुदेव सिह,। साखी न0 –3, पृ0 – 1।

(54) "सोई ऑसू साजना सोई लोक बिडाहि"। कबीर वाणी पीयूष" – सम्पा0 उपर्युक्त, (साखी न0 – 23), पृ0–25।

(55) "सकल लोक सूनो लागतु ।" ।।88।। भ्रमरगीत सार – सम्पा0 रामचन्द शुक्ल, पृ0–38।

(56) "लोककानि कुल को भ्रम .।" ।।26।। शेष उपर्युक्त, पृ0–14।

(57) "कहत कथा अनेक ऊधो लोक लाभ दिखाय।" ।।65।।, शेष उपर्युक्त, पृ0 – 28।

(58) (क) "वेदहू पुरान कही, लोकहू विलोकयत्।" ।।97।। कवितावली (उत्तरकाण्ड), टीकाकार लाला भगवानदीन, पृ0–135।

(ख) "लोक वेदमत मजुल कूला" ।। 39 ।। बालकाण्ड, रामचरित मानस (मूल मझला साइस) गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ0–41।

(59) ''तीनि लोक चौदह खण्ड सवै पर मोहि सूझि।'' ।। 5 ।। जायसी ग्रन्थावली, (पद्मावत), राजा सुआ – सवाद खण्ड, पृ0 – 132।

(60) ''खैमे न अलीक लोक–लीक न बिसारिए ।। 125 ।। रसराज, (मतिराम ग्रन्थावली) – सम्पा0 कृष्ण बिहारी मिश्र, पृ0–25।

(61) जो सुत अपने बाप को, बैर न लेई प्रकास।
तासौ जीवत ही मर्यो, लोक कहै तजि–तास ।। 28 ।।
''सक्षिप्त राम चन्द्रिका'' सम्पा0 डॉ0 पीताम्बर दत्त बडथ्वाल, बालकाण्ड, पृ0 – 3 ।

(62) ''भारतेन्दु ग्रन्थावली'' (दूसरा खण्ड) पृ0 69, 48, 70। सकलनकर्ता व सम्पादक – ब्रजरत्न दास।

(63) ''लोक सिखावन हेतु कबहुँ सध्या अनुसरही'' – ''भारतेन्दु ग्रन्थावली'' (दूसरा खण्ड) – पृ0 647, सकलनकर्ता व सम्पादक-ब्रजरत्न दास।

(64)(अ) ''लोक वेद दोऊ कूल सरोवर, गिरे न रहे सम्हारे''। भा0ग्र0 (दूसरा खण्ड) पृ0–116।

(ब) ''लोक वेद दोउन सो न्यारी हम निज रीति निकाली''। भा0ग्र0 (दूसरा खण्ड) पृ0–274, सकलनकर्ता व सम्पादक-ब्रजरत्न दास।

(65) ''तुमही असख्य लोकरजन तुमही अधिनायक'' – ''प्रेमघन सर्वस्व'' (प्रथम भाग) पृ0–236।

(66) सम्पत्ति त्रिलोक की विलोकन मै आवै ना ।। 10 ।। उद्धव–शतक–रत्नाकर पृ0–7।

(67) ठाकुर त्रिलोक के कहाइ करिहै कहा।'' ।। 9 ।। उद्धव–शतक–'रत्नाकर', पृ0–6।

(68) ''लोक सुखी हो आश्रय ले यदि उस छाया मे।'' ''कामायनी'' (सघर्ष सर्ग) पृ0–88।

(69) ''यह लोक अग्नि मे तप गलकर/थी ढली स्वर्ण प्रतिमा बनकर।''
कामायनी (दर्शन सर्ग) पृ0–117।

(70) "चले आ रहे छाया पथ मे लोक पथिक जो थकते,।" कामायनी (कर्मसर्ग), पृ0–52।

(71) "होगा मुझको यह लोक–रीति/कर दूँ पूरी,, जो नही भीति।।"
'सरोज स्मृति' शीर्षक कविता, राग विराग–सम्पा0 रामविलास शर्मा, पृ0–88।

(72) इस क्षुद्र लेखनी से केवल
करता मै छायालोक सृजन ? "युगवाणी (कविता सग्रह) उद्धृत काव्य रश्मि – सम्पा0 - डॉ0 कन्हैया सिह, डॉ अनन्त सिह, पृ0–98।

(73) क्षीण करूणा लोक का भी लोक को/है बृहत् प्रतिबिम्ब दिखलाता सदा।"
ग्रन्थि (कविता सग्रह), उद्धृत–काव्य–रश्मि–सम्पा0 उपर्युक्त, पृ0–91।

(74) "काव्य मे लोक मगल और माधुर्य" – पृ0 109, कृति आचार्य शुक्लः प्रतिनिधि निबन्ध" सम्पादक सुधाकर पाण्डेय।

(75) "साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद" – पृ0 126, कृति–आचार्य शुक्लः प्रतिनिधि निबन्ध – सम्पा0 सुधाकर पाण्डेय।

(76) "साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्यवाद" – पृ0 – 119, कृति–उपर्युक्त।

(77) "जनपद", वर्ष–1, अक–1, पृ0–65, उद्धृत–हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास (षोडश भाग) "हिन्दी का लोक साहित्य', पृ0–3, सम्पादक कृष्णदेव उपाध्याय व महापडित राहुल सास्कृत्यायन।

(78) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली (भाग 3) पृ0 – 379।

(79) "वेदान्नो वैदिका" शब्दा सिद्धा लोकाच्चा लौकिका" महाभाष्य पस्पशः 1/1/1,

(80) दृष्टव्य , वही0 1/1/1।

(81) "अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथित पुरूषोत्तम।" 15/18, श्रीमद् भागवत् गीता (श्री रामानुज भाष्य)।

(82) "वेदार्थो व लोकनाल्लोक इति स्मृतिरिहोच्यते।" पृ0 500–501, श्रीमद् भगवत् गीता (श्री रामानुज भाष्य)।

(83) स्मृतिरव्यल्पश्रुतै । पृ0–189, श्रीमद् भगवत गीता (शाकर भाष्य) प्रथमोगुच्छ, (13–18, तृतीय षट्कम्)।

(84) "यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन ।
य यत्प्रमाण कुरूते लोक स्तदनुवर्तते।।" गीता 3/21,
श्रीमद् भगवत् गीता (शाकर भाव्य)।

(85) "लोक प्राकृतो जनोऽनुवर्तते।" पृ0–312, श्रीमद् भगवत् गीता (शाकर भाष्य)।

(86) हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 – 747।

(87) ~~उपर्युक्त~~ साहित्य कोश, पृ0–747।

(88) हलायुध कोश, पृ0–310, सम्पादक जयशकर जोशी।

(89) जन विभ्रती बहुधा विवाचस . ।" (12/1/45) पृथ्वी सूक्त,अथर्ववेद।

(90) "जनस्य साकेत निवासिनास्तौ', 5/31, रघुवशं।

(91) कृपा सिन्धु । जनदीन दुआरे दादि न पावत काहे।" विनय पत्रिका– तुलसी दास, पृ0–145।

(92) जनपदे, खण्ड–1, अक–2, पृ0 63–64, उद्धृत–पद्मावत का लोक तात्विक अध्ययन– डॉ0 नृपेन्द्र प्रसाद वर्मा, पृ0 – 32।

(93) "लोक साहित्य का अध्ययन" – त्रिलोचन पाण्डेय, पृ0–109।

(94) (जनपद, वर्ष–1, अक–1, पृ0–65) उद्धृत – हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास (षोडश भाग) – हिन्दी का लोक साहित्य, सम्पादक कृष्णदेव उपाध्याय व महापडित राहुल सास्कृत्यायन, पृ0 – 3।

(95) हिन्दी साहित्य कोश (भाग–1) पृ0–7, (डा0 सत्येन्द्र)। सम्पा०

(96) भारतीय लोक साहित्य – डा0 श्याम परमार, पृ0 10।

(97) श्रीमदानन्दवर्धनाचार्य विरचित – ध्वन्यालोक, 1/1 (प्रथम उद्योत)

(98) "नानाभावोपसम्पन्न नानावस्थान्तरात्मक।

लोक वृत्तानुकरण नाट्यमेतन्मया कृतम्।" नाट्यशास्त्र। 1। 112

(99) "न तज्ज्ञान न तच्छिल्व न सा विद्या न सा कला।

नासौ योगे न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।" उपर्युक्त 1/11

(100) "दु खार्ताना श्रमार्ताना शोकार्ताना तपस्विनाम्।

विश्रान्ति जनन काले नाट्यमेतद् भविष्यति।। उपर्युक्त, 1/115।

(101) "विनोद जनन लोक नाट्यमेतद् भविष्यति। वही, 123।

(102) उदद्यृत "काव्य समीक्षा" – डा0 विक्रमादित्य राय, पृ0–98।

(103) उद्धृत – "काव्य समीक्षा" – डा0 विक्रमादित्य राय, पृ0 – 164।

द्वितीय अध्याय

हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक चरण से लेकर स्वतन्त्रता–पूर्व तक के काव्य मे लोक–सवेदना – [पृ०सं० – २१ - ६४]

(क) आदिकालीन काव्य मे लोक सवेदना

(1) धार्मिक साहित्य मे लोक–सवेदना

(2) रासो साहित्य मे लोक–सवेदना

(3) आदिकालीन अन्य काव्यो मे लोक–सवेदना

(ख) भक्तिकालीन काव्य मे लोक–सवेदना

(ग) रीतिकालीन काव्य मे लोक–सवेदना

(घ) आधुनिक कालीन कविता और लोक सवेदना

(1) भारतेन्दु युगीन काव्य मे लोक–सवेदना

(2) द्विवेदी युगीन कविता और लोक–सवेदना

(3) छायावाद युगीन कविता और लोक सवेदना

(4) प्रगतिवाद युगीन काव्य मे लोक सवेदना

(5) प्रयोगवादी काव्य और लोक सवेदना

हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक चरण से लेकर स्वतन्त्रता पूर्व तक के काव्य मे लोक सवेदना-

(क) आदिकालीन-काव्य मे लोक-सवेदना

हिन्दी साहित्य का प्रारम्भिक चरण राजनीतिक-दृष्टि से अत्यन्त उथल-पुथल से भरा हुआ था। उत्तर पश्चिम की ओर से लगातार होने वाले मुसलमानो के आक्रमणो से भारतीय जनता अत्यन्त त्रस्त थी। कन्नौज, अजमेर, अन्हलवाड आदि राजधानियो मे निवास करने वाला राजा अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए विदेशी आक्रान्ताओं से मिल-जुलकर निपटने के बजाय अपने ही देश मे गृहयुद्ध की सी स्थिति बनाये हुए थे। अत तत्कालीन राजनीति उस समय के सामाजिक जीवन, सास्कृतिक-परिवेश, अर्थ-व्यवस्था व धार्मिक-वातावरण सभी पर अपना प्रभाव डाल रही थी। सामान्य-जन युद्ध की विभीषिकाओ से भयाक्रान्त था। युद्धो मे होने वाले धन का दुरूपयोग उनकी आर्थिक स्थिति को अत्यन्त जर्जर बनाता जा रहा था। श्रमिको के व्यवसाय पर भी युद्धो का असर पड रहा था। हिन्दू-स्थापत्य का विकास अवरूद्ध सा हो गया था, क्योकि युद्धो के कारण शिल्पी एकाग्रचित होकर अपने कार्य मे प्रवृत नहीं हो पा रहे थे।

विदेशी आक्रमण तथा गृह-कलह के विषम-परिवेश मे कवि-गण अपनी अलग-अलग मन स्थितियो के अनुरूप काव्य-सृजन मे प्रवृत थे। राजाश्रय मे जीवन-यापन करने वाले कवि की काव्य रचना राज्य-प्रशस्ति मे रत थी। कुछ अन्य-जन राजाश्रय-विहीन, स्वच्छन्द वातावरण मे रह रहे थे, वे धार्मिक-आवरण मे जन-सामान्य के हित के अनुरूप लोकभाषा में काव्य-सृजन कर रहे थे। अत आदिकालीन साहित्य मे एक ओर तो अध्यात्म की चर्चा तथा उपदेशों का प्राधान्य है, वहीं, दूसरी ओर देशहितार्थ अपने प्राण-न्योछावर कर देने की भावना अपने परिष्कृत रूप मे निविडतम मे आलोक प्रदान

करती हुई दिखाई देती है। प्रेममयी श्रृड्गार भी राजा के लिए प्रेरक-शक्ति बनकर काव्यो मे समाहित हुआ है।

आदिकालीन 'रासो' काव्य तत्कालीन सामन्ती-सस्कृति और लोक-सवेदनाओ की जीती जागती तस्वीर है। इन काव्यो के रचयिता प्रशस्ति मूलक रचना करते हुए भी लोक-जीवन की विविध अनुभूतियो तथा सवेदनाओ से अछूते नही हैं वरन् उनका काव्य लोक को ही समर्पित है। सिद्धो व नाथो की साधना तथा जैन कवियो के काव्य सभी लोक-स्वभाव के प्रतिबिम्ब है। इन धार्मिक कवियो ने जनमानस को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए अपने अध्यात्म-विवेचन के पुष्प मे लौकिक जीवन के सौरभ को समाहित किया। इनकी तान्त्रिक सिद्धियो तथा उलटबॉसियो ने कर्मकाण्डो से प्रभावित भोले-भाले सामाज्य जन को नूतन चिन्तन के लिए विवश किया, जिससे जनता इनके करीब आती गयी।

वस्तुत आदिकाल की रचनाऍ शिष्ट व सामान्य जनो के लिए समन्वयात्मक इन्द्रधनुष है। इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कहा है- "आदिकाल के धार्मिक साहित्य, सिद्धो, नाथो और जैन कवियो की रचनाओ मे जैसे रहस्य भावना, कर्मकाड और मन्त्र के तत्व समाहित हुए है, रासो-काव्यो की ऐहिक श्रेणी मे कुछ उसी तरह शिष्ट और लोक साहित्य के तत्व घुल-मिल गये है। यह पूरा परिदृश्य किसी भाषा मे साहित्य की आरम्भिक स्थिति का पक्का साक्ष्य प्रस्तुत करता है। लोक अैर शिष्ट साहित्य का सक्रमण इन अवस्था मे बडे सहज भाव से होता है।"[1]

(१) धार्मिक साहित्य मे लोक-सवेदना-

सिद्ध-साहित्य

समय के स्वर को पहचानने वाला कवि समाज मे पल रही लोक चेतना व विशिष्ट वर्ग की चेतना से भली-भॉति परिचित होता है। वह परिस्थितियों के कारण

समाज मे प्रधानता प्राप्त कर लेने वाले विषय को बहुधा अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना चाहता है, ताकि उसकी बात आम-जनता के बीच अधिक से अधिक सुनी व पढी जा सके। हिन्दी साहित्य के आदिकालीन 'सिद्ध साहित्य' मे यही हुआ। कभी प्रसिद्धि-प्राप्त बौद्ध धर्म क्रमश परिवर्तित होते-होते सामाजिक चेतना के अनुरूप 'लोकमत' की प्रधानता को अभिव्यक्ति करने के कारण सिद्ध-साहित्य के रूप मे मान्य हुआ।

सिद्ध-साधको मे कुछ अपनी तान्त्रिक सिद्धियो के द्वारा जनता को आकृष्ट करने का प्रयत्न कर रहे थे, कुछ अपने आचार्यो के मतो का दुरूपयोग कर सामाजिक अनाचार मे लिप्त हो जनता को पथ-भ्रष्ट कर रहे थे, पर ऐसे साधनो की भी कमी नहीं थी, जो सच्चे अध्यात्मवादी होने के कारण समाज के प्रति विमुख न होकर अत्यन्त सजग भाव से समाज के हित-चिन्तन मे लगे हुए थे। ऐसे साधको मे सरहपा, शबरपा, कण्हपा, कुक्कुरिया, लुइपा आदि मुख्य है। इन्होने समाज मे प्रचलित सभी रूढियो व पाखण्ड का विरोध किया। "सिद्धो मे से बहुत से मछुये चमार, धोबी, डोम, कहार, लकडहारे, दर्जी, तथा और बहुत से शूद्र कहे जाने वाले लोग थे। अत जाति-पॉति के खण्डन तो वे आप ही थे।"[2] ये सिद्ध कवि शास्त्र-ज्ञानियो की उन प्रवृत्तियो की निन्दा करते थे जो सामाजिक समरसता मे बाधक थी। ब्राह्मण, बौद्ध व जैन धर्म मे व्याप्त पाखड की उन्होने अत्यन्त कटु शब्दो मे निन्दा की है।[3]

इन सिद्ध कवियो ने उस समय आम जनता मे प्रचलित भाषा को काव्य की भाषा बनाया, जन जीवन मे प्रचलित लोकप्रिय छन्दो को अपनाया और लोक प्रचलित शब्दो- जुलाहा, धुनिया, वृक्ष, नौका, चौपड आदि को रूपको के रूप मे प्रयुक्त किया। ये सभी काव्याभिव्यक्ति के तत्त्व उनके काव्यो मे लोक-सवेद्य भावो के सहायक बन कर आये।

जैन साहित्य

जैन आचार्यो व कवियो ने अपने काव्यो मे सुभाषित व नीति-कथनो के माध्यम से

समस्त जन के कल्याण भाव को प्रमुखता दी है । इन कवियो ने जीवन के विविध पहलुओ पर दृष्टि डालकर उनमे से प्रेम, विरह, युद्ध व उपदेश परक विषयो का चयन किया, जिसकी परिणति अन्तत लोक मे "सामाजिक जागरूकता" को ही प्रश्रय देती है, साथ ही जैन कवियो के लोक-सवेद्य होने का प्रमाण भी प्रस्तुत करती है।

जैन-कवियो ने लोक मे प्रख्यात पौराणिक चरित्र 'राम' और 'कृष्ण' को अपने कथानको मे लेकर लोक-मानस को अपनी ओर मोडने का सफल प्रयास किया। कहीं-कहीं इन कवियो ने आध्यात्मिक विषय का परित्याग कर लोक और उसमे फैली 'सामाजिक विषमता' का जीवन्त रूप अकित किया है।[4]

जन-सामान्य उनकी बात बडी सरलता से समझ सके, इसके लिए उन्होने लोक-प्रचलित भाषा को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। कवि स्वयभू ने इस सन्दर्भ मे कहा-

"सामान्य भाषा यदि ना गढऊ। यदि आगम युक्ति किछु गढऊ।

यदि होइ सुभाषित बचनाई। ग्रामीण भाष परिहरणाई।।[5]

नाथ साहित्य

नाथ-पथ के पुरस्कर्त्ता गोरखनाथ के समय मे भारतीय धर्मो मे अनेक विकृतिया थी, जो साधु व सामान्य जन दोनो को व्यर्थ की रूढियो से आक्रान्त किये हुए थी। कवि गोरखनाथ ने धर्म के विकृत रूप को जन-सामान्य के समक्ष रखकर उसकी समस्त रूढियो पर प्रहार कर, ईश्वर के सर्वमान्य रूप को दिखाया।[6] राजा व प्रजा दोनों के प्रति उनकी 'समान दृष्टि' जन-सामान्य के प्रति उनकी आस्था को व्यक्त करती है-

"राजा-परजा सम करि देष।"[7]

अपनी बात आम जनता तक पहुँचाने के लिए उन्होने उन्ही के बीच प्रचलित भाषा को अपनाकर काव्य-सृजन किया। अपनी एक विशिष्ट शैली, जिसे वे उलटवॉसी कहते है, के माध्यम से जन मानस मे कुतूहल अत्पन्न करने का प्रयास किया, ताकि अधिक से अधिक

जनता इससे आकृष्ट हो इसका अर्थ जानने का प्रयास करे। इनके सहज, सरल उपदेश प्रदायक पद्यो ने जनता को एक सूत्र मे बॉध दिया। वस्तुत "शकराचार्य के वाद भारतीय लोकमत को इतना प्रभावित करने वाला आचार्य भक्ति काव्य के पूर्व दूसरा नहीं हुआ।"[8]

लोक व वेद किसी से भी समझौता न करने वाले व अपनी बात की सत्यता पर अडिग रहने वाले गोरखनाथ द्विवेदी जी की दृष्टि मे इस प्रकार है- "किसी भी रूढि पर चोट करते समय उन्होने दुर्बलता नहीं दिखाई। वे स्वय पण्डित व्यक्ति थे, पर यह अच्छी तरह जानते थे कि पुस्तक लक्ष्य नहीं, साधन है। उन्होने किसी से भी समझौता नहीं किया, लोक से भी नहीं, वेद से भी नहीं, परन्तु फिर भी उन्होने समस्त प्रचलित साधना मार्ग से उचित भाव ग्रहण किया।"[9]

नाथ पथ के अन्य कवियो मे चौरगी नाथ, चुणकरनाथ, भरथरी, जलन्ध्रीपाव, गोपीचन्द आदि प्रसिद्ध है। इनकी रचनाओ मे उपदेश व खण्डन-मण्डन का प्राधान्य है। जन-सामान्य मे प्रचलित भरथरी व गोपीचन्द के गीत आज भी लोक के हृदय मे अपनी पहचान बनाये हुए है।

आदिकाल का यह आध्यात्मिक साहित्य लोक जीवन की विविध सवेदनाओ से अछूता नहीं रहा है। जन सामान्य मे प्रचलित भाषा को अपनाकर इन कवियो ने स्वत ही लोक के प्रति अपनी निष्ठाको व्यक्त करते हुए उन्हे अपनी ओर मोडने का प्रयास किया। "असल मे लोकमत की जैसी प्रधानता (इस युग के प्राक्काल मे) दृष्ट हुई, वैसी सम्पूर्ण भारतीय साहित्य मे शायद ही कभी दिखी हो।"[10]

रासो साहित्य मे लोक-संवेदना-

रासो काव्यो मे "पृथ्वीराज रासो" नामक महाकाव्य की रचना महाकवि चन्दबरदाई ने की है। यह महाकाव्य सामन्ती व लोक सस्कृति का मिला-जुला रूप प्रस्तुत करता है।

तत्कालीन सामाजिक, सास्कृतिक आर्थिक व धार्मिक परिवेश के अनुरूप दोनो सस्कृतियो को अपने आवरण मे लिए यह महाकाव्य युग-चेतना का जीता जागता रूप है।

ऊँचे-ऊँचे महलो मे रहकर ऐश्वर्य का उपभोग करने वाले राजाओ की प्रशस्ति के साथ-साथ सर्व-साधारण जन की दुनिया का भी बारीको से किया गया वर्णन महाकवि को लोक के अत्यन्त निकट ले आता है। यह महाकाव्य लोक जीवन की विविध अनुभूतियो, जन्म से लेकर मृत्यु तक के विविध सस्कारो, विविध उत्सवो, अनुष्ठानो व विश्वासो, रीतियो, लोक-मनोरजन के विविध साधनो से भरा हुआ है। जन-सामान्य के हृदय मे व्याप्त ये भाव व विश्वास कवि की लोक-सवेद्य दृष्टि के परिचायक है। पद्मावती और पृथ्वीराज चौहान के विवाह के अवसर पर महाकवि चन्द अनेक लोक-रीतियो के द्वारा विवाह का सजीव चित्राकन करते हैं।[11]

सामन्ती परिवेश व लोक परिवेश दोनो से जुडा हुआ यह महाकवि अपने महाकाव्य मे दोनो के साथ न्याय करता दिखाई पडता है। अत स्पष्ट है कि- "ये कवि केवल राजाश्रित प्रशस्तिमूलक रचनाकार नहीं, वरन् लोक जीवन लोक भाषा तथा लोकाभ्युदय के प्रतिनिधि बनकर समष्टि का न्यास करते है।"[12]

नरपति नाल्ह कृत 'बीसलदेव रासो' महाकाव्य नायिका राजमती के विवाह व विरह से सम्बन्धित कथा है, जिसमे सर्वत्र व्याप्त लोक जीवन की सरसता सहज ही मन को आकृष्ट करती है। विरह-व्यथित राजमती जीवन को सहज रूप मे जीने के निमित्त कभी कोयल बनने की कामना करती है, तो कभी रानी न बनकर जाटनी बनना पसन्द करती है ताकि वह भी अपने भरतार के साथ खेत कमाती, अच्छी लोमवटी पहनती। वह लोक-जीवन की सहज सवेदनाओ से युक्त नारी होने को ज्यादा अहमियत देती है, जहॉ कृत्रिमता उसे न छू सके। जगनिक का "परमाल रासो" जिसमे 'आल्हा' और 'ऊदल'

नामक दो वीरो की गाथा है, आज भी लोक-कण्ठ मे विराजमान होकर कवि की लोक -सचेतना का जीता-जागता प्रमाण बना हुआ है

आदिकालीन अन्य काव्यो मे लोक-सवेदना-

प्रेमकथा लोकगाथाओ का मुख्य विपय रहा है। राजस्थान मे प्रसिद्ध लोकगाथा "ढोला मारू का दूहा" लोक जीवन का गतिशील चित्र है। गॉव के स्वस्थ वातावरण मे इसका विकास इसकी स्वाभाविकता का स्वय प्रमाण प्रस्तुत करता है, जहॉ कृत्रिमता का नामो निशान नही है। लोक जीवन मे प्रचलित उपमान, जनपदीय भाषा सर्वत्र प्रेम व विरह की अभिव्यक्ति मे सहायक बने है।[13]

लोक-जीवन से गहन सपृक्ति के कारण अमीर खुसरो हिन्दी के आदिकालीन साहित्य मे बहुत प्रसिद्ध रहे है। अलाउद्दीन खिलजी, तुगलक जैसे शासको के साथ रहकर भी उन्होने मातृभाषा हिन्दी की सवृद्धि मे योग दिया। मानवतावादी दृष्टिकोण लेकर ये हिन्दू व मुसलमान दोनो के ही दु ख दर्द मे समान रूप से शरीक हुए। इनकी लेखनी जन-जीवन के गहरे रगो से आपूरित है। एटा जिले के पटियाला गॉव की गध इनकी चेतना मे सदैव रची बसी रही है । भारतीय लोक-जीवन के बहुरगी व मर्मस्पर्शी भाव चित्र जनजीवन के प्रति इनके अगाध स्नेह को स्वत ही व्यक्त करते है।

खुसरो की पहेलियॉ और मुकरिया आज भी जन जीवन की रगो मे रची-बसी है।[14] खुसरो द्वारा स्थापित लोक-जीवन की महत्ता मुल्ला दाऊद, मलिक मुहम्मद जायसी कुतुबन मझन आदि बाद के कवियो के लिए प्रेरणा स्त्रोत रही है।

विद्यापति की 'पदावली' लोकभाषा में लोक जीवन के सरस चित्र उकेरने के कारण राजमहलो व कुटियो दोनो मे समादृत है। सस्कृत के विद्वान होते हुए भी विद्यापति ने लोक भाषा में काव्य-रचना को महत्ता दी ।[15]राजाश्रित कवि होकर भी उन्होने अपनी कविता-कामिनी के सीमन्त को लोक जीवन के वर्णन के सिन्दूर से अरूणिम किया।

तर्भा तो आज भी मिथिला की अमराइयॉ उनके लोक गीतो का गान करती दिखाई पडती है।

आदिकालीन सम्पूर्ण साहित्य पर दृष्टिपात करने पर यह स्पष्ट है कि लोक सवेदना ही कृष्ण की बॉसुरी की भॉति इन कवियो की रचना रूपी गोपीयो को आकर्षित कर रही थी। एक ओर सिद्ध, जैन और नाथ कवि जन-सामान्य को तत्कालीन रूढियो व आडम्बरो से दूर करने के लिए उन्हे धार्मिक आवरण मे लेकर लोक-भाषा मे काव्य-सृजन कर रहे थे तो दूसरी ओर राजाश्रित कवि अपने गौरव-पूर्ण छन्दो से देश-हित के लिए जान कुरबान करने की भावना जागृत कर रहे थे। प्रेममय श्रृगृडार का वर्णन युद्धरत राजा की प्रेरक शक्ति बनकर उनमे ओज का सचार किया करता था। युद्ध मे विजय अन्तत जन जीवन के हित से जुडी हुई थी।

(ख) पूर्वमध्यकालीन हिन्दी काव्य में लोक-सवेदना

हिन्दी काव्य-जगत् मे पूर्वमध्यकाल अपनी स्वर्णिम-आभा बिखेरता हुआ नये कलेवर के साथ उदित होता है। इस समय देश की राजनीतिक परिस्थितियो मे मौलिक परिर्वतन दिखाई पड़ते है। देश के गौरव माने जाने वाले राजपूत-वशो का अन्त हो गया था तथा मुसलमानो का साम्राज्य स्थापित हो गया था, जिसके परिणाम स्वरूप देश की आम-जनता (जो अधिकाश हिन्दू थी) और मुसलमान शासक के बीच दूरी बढती जा रही थी।

समाज पूर्ववत् उच्च व निम्न वर्ग मे विभाजित था। उच्च वर्ग के शासकों, सामन्तों व साहूकारों में अधिकाशत· वैभव-विलास मे ही आपादमस्तक डूबे रहते थे। किसान, मजदूर आदि श्रमिकों का वर्ग कठोर श्रम करने के बाद भी उचित पारिश्रमिक के अभाव में अत्यन्त कठिनाई से जीवन-यापन कर रहा था। किसान के पास अपनी खेती न थी, भिखारी को भीख भी नहीं मिलती थी, बनिये के पास अपना व्यवसाय नहीं था, यहॉ तक

कि नौकरो को कहीं काम भी नहीं मिल पाता था।[16] सामान्य-जन मे अज्ञानता व अशिक्षा इस हद तक व्याप्त थी कि वे बहुविवाह, सतीप्रथा, परदा प्रथा जैसी कुरीतियो को अपना धार्मिक कर्त्तव्य समझकर उनका निर्वाह करते थे।

धार्मिक दृष्टि से हिन्दी-साहित्य का यह चरण अपने साथ हिन्दू, इस्लाम, जैन, बौद्ध, पारसी व ईसाई आदि अनेक धर्मो की बाढ लेकर आया। पर इनमे 'हिन्दू' व 'इस्लाम' ये दो धर्म ही उस समय मुख्य थे। इन दोनो धर्मो मे धर्माचार के नाम पर किये जाने वाले- मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, अवतारवाद, गौ ब्राह्मण रक्षा, जाति-भेद, छूआछूत आदि कृत्यो से समाज मे साम्प्रदायिकता बढती जा रही थी। दोनो धर्मो द्वारा प्रतिपादित नियम इतने कठोर थे कि इस पर प्रहार किये बिना समानता की बात सोची भी नहीं जा सकती थी।

हिन्दी साहित्य का पूर्व-मध्यकाल इन्हीं परिस्थितियो की उपज है। इस युग के (सन्तो) भक्त कवियो ने तत्कालीन परिस्थितियो के अनुसार ही साहित्य-सृजनकर समाज को एक नया प्रगतिशील दृष्टिकोण प्रदान किया। उन्होने अपने काव्यो मे आत्मानूभूति को प्रमुखता दी तथा वेद-शास्त्रो की अवेहलना की। तत्कालीन भक्त कवि आम जनता के सच्चे प्रतिनिधि थे। अत उनका काव्य जन-जागृति का प्रतीक बनकर आया। राजाश्रय-विहीन इन कवियो ने जन-सामान्य के दु ख-दर्द, गरीबी और असमानता की पीडा पर भक्ति व विश्वास का लेप किया, जो उनके लिए उपयोगी सिद्ध हुआ। गरीबो, किसानो, श्रमिकों, अछूतो व जुलाहो को उनकी दयनीय स्थिति व उनके अधिकारो के प्रति जागरूक करके इन भक्त कवियो ने अपनी रचनाओ के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप मे जन-जागरण का मार्ग प्रशस्त किया। धर्म इन कवियो के मार्ग में बाधक नहीं, वरन् सहायक बना। "बैष्णवो के सिद्धान्त मूलत उस समय व्याप्त सामाजिक, आर्थिक यथार्थ की आदर्शवादी अभिव्यक्ति थे। सास्कृतिक क्षेत्र मे उन्होने राष्ट्रीय नव जागरण का रूप

धारण किया। सामाजिक विषय-वस्तु मे वे जाति प्रथा के आधिपत्य और अन्यायो के विरूद्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण विद्रोह के द्योतक थे।"[17] अत कहा जा सकता है कि मध्य-युग के जाति-पॉति, अन्धविश्वास, व साम्प्रदायिकता की भावना से भरे समाज मे इन कवियो के सामाजिक, धार्मिक चेतना से परिपूर्ण साहित्य की देन अमूल्य है।

ये सन्त कवि वैरागी नहीं थे। उन्होने समाज व परिवार के बीच रहकर सर्व-साधारण जनता को भक्ति का सम्बल प्रदान किया तथा जिन्दगी की सच्चाई से उनका परिचय कराया। हिन्दी की इस अखण्ड काव्य-धारा को सामान्य-जन की ओर उन्मुख करने वाले कवियो मे कबीर जायसी, सूर व तुलसी प्रमुख है।

कबीर

कबीर वेद-शास्त्रो के अध्ययन से उत्पन्न पाण्डित्य से बहुत दूर थे। उन्होने पाडित्य को लोक की आवश्यकताओ के अनुपयुक्त माना और उस ज्ञान को लोक के लिए उपयुक्त माना जिसे वह अपने अनुभवो से जान सके। उनकी दृष्टि मे चारो वेदो को पढने वाला पंडित उस कटे हुए खेत मे बालियॉ ढूढने वाले व्यक्ति के समान है जो कबीर जैसे कर्मशील के द्वारा पहले ही चुन ली गयी है।[18]

कबीर इस बात को भली-भॉति जानते थे कि हिन्दू व मुसलमानो के बीच आपसी भाई-चारा स्थापित करने के लिए दोनो धर्मो को वाह्याडम्बरो से मुक्त कराना अत्यन्त आवश्यक है। अत उन्होने अपने अनेक पदो व साखियो के द्वारा सामान्य जन को धर्म का सच्चा स्वरूप दिखलाने का प्रत्यन्त किया।[19] वर्ण-व्यवस्था जो मूलत कर्म पर आधारित थी, उसे जन्म और जाति से जोडकर उसका मूल स्वरूप विकृत करने वालो पर कवि आक्रोश व्यक्त करता है। उनकी दृष्टि मे निम्न वह व्यक्ति है जो ईश्वर (ब्रह्म) का स्मरण नहीं करता।[20] शूद्रो के साथ अन्याय करने वाले ब्राह्मण से वे कहते है कि जब एक ही ज्योति ने सभी को उत्पन्न किया तो कोई ब्राह्मण और कोई शूद्र कैसे हो गया ।[21]

कबीर ने सामान्य-जन को कभी अपनी ऑखो से ओझल नहीं होने दिया। सर्व-साधारण जनता के बीच उत्पन्न कबीर अपने जीवन के अन्तिम समय तक इन्हीं लोगो के बीच रहे और अपने पदो के द्वारा उनमे प्रेम, एकता, भाईचारा उत्पन्न कर हृदयाभिभूत करते रहे। निरकुश शासको, मुल्ला मौलवियो तथा पडितो का कोप सहते हुए भी उन्होने लोक हित को प्रमुखता दी।

लोक उनकी बात सहजता पूर्ण समझ सके, इसके लिए उन्होने लोक प्रचलित बोलियो के शब्दो[22] को मुख्यत काव्य मे स्थान दिया तथा लोक प्रचलित उपमानो[23] को आधार बनाकर ब्रह्म, जीव, जगत, माया, सम्बन्धी ज्ञान को सहज ढग से जन-जन तक पहुचाने का प्रयास किया। उनकी उलटवासियॉ सामान्य जनता को आश्चर्य चकित कर उनमे पदो व साखियो के अर्थ के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करती थी, जो उनकी ज्ञान-वृद्धि मे सहायक था।

कबीर के अलावा दादू, रैदास, धन्ना, पीपा, सुन्दरदास, प्राणनाथ आदि सन्त कवि भी अपनी रचनाओ के द्वारा सामाजिक वैषम्य को दूर कर मानव-प्रेम का आदर्श लोक के सम्मुख रख रहे थे। रज्जब, दरिया साहब, दीन दरवेश आदि मुसलमान सन्त भी इस कार्य मे कबीर के पूर्ण सहयोगी रहे।

जायसी

भारत मे मुस्लिम साम्राज्य स्थापित हो जाने के बाद लम्बे समय तक साथ-साथ रहने के कारण हिन्दू व मुसलमान दोनो ने एक दूसरे को समझने का प्रयास किया और पाया कि प्रेम-भावना का बीज दोनो के हृदयो मे एक समान है। जायसी आदि सफूी कवियो ने इस प्रेम-भावना के विकास मे अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होनें हिन्दुओ में प्रचलित आख्यानो को चुना और उन्ही की भाषा मे उसे ऐसा रग दिया, जो दोनो मे आपसी सौहार्द्र व घनिष्ठता स्थापित करने की मिसाल कायम कर सका ।

जायसी ने अपने प्रमुख लोकाख्यानक महाकाव्य "पद्मावत" मे मध्ययुगीन भारतीय सरकृति का यथार्थ-चित्र उकेरा है। जायसी स्वभावत उदार होने के कारण मुस्लिम-सस्कृति के साथ-साथ भारतीय लोक जीवन से भी भली-भॉति परिचित थे। उन्होने भारतीय लोक-जीवन मे प्रचलित विविध विश्वासो, सस्कारो, प्रथाओ, रीति-रिवाजो, पर्वोत्सवो को अत्यन्त सहज ढग से महाकाव्य मे स्थान दिया तभी तो यह महाकाव्य 'लोक जीवन का महाकाव्य'[24] कहलाने का अधिकारी बना।

हिन्दू-विश्वास के अनुसार 'विवाह' एक शाश्वत बन्धन है, जिस पर महाकवि जायसी ने अपनी आस्था व्यक्त की है।[25] प्राचीन आख्यानो मे पशु-पक्षियो द्वारा मनुष्य की बोली बोलने की चर्चा मिलती है जिसे कवि जायसी ने भी अपनाया। 'पदमावत्' मे हीरामन तोता कथा का मूल सूत्रधार है। रानी पदमावती द्वारा उसे अपनी व्यथा सुनाये जाने पर वह उसकी व्यथा मुक्ति के लिए योग्य वर की तलाश मे जाने की आज्ञा मॉगता है।[26] ज्योतिष, ग्रह-नक्षत्रो व राशियो के प्रभाव पर भारतीय लोक जीवन की गहन आस्था है। यात्रा के लिए प्रस्थान से पूर्व भारतीय जन दिक् शूल[27] (दिवस विचार) देखकर चलता है ताकि उसकी यात्रा मे किसी प्रकार की बाधा न उत्पन्न हो पाये। भारतीय लोक जीवन मे व्याप्त अनेक सस्कार, व्रत व पर्वोत्सवो के वर्णन से पद्मावत भरा हुआ है। बच्चे के जन्म[28] से लेकर मृत्युपरान्त तक भारतीय जन विविध सस्कारो से बॅधा हुआ है, जिसकी सूक्ष्म जानकारी महाकवि जायसी रखते है। विभिन्न पर्वोत्सवो को लेकर भारतीय लोक-जीवन बहुत सम्पन्न है। इन पर्वोत्सवो के पीछे जन-साधारण के विश्वास की एक परम्परा है। जायसी ने 'बसन्त खण्ड' मे जन-सामान्य के बीच प्रचलित 'धमार' और 'चॉचरि' नृत्य का सजीवाकन किया है जो बसन्तोत्सव का प्राण है।[29] हिन्दुओ के पवित्र त्यौहार होली,[30] दीपावली का सरस वर्णन पद्मावतकार ने अनेक स्थलो पर किया है।

विभिन्न लोक उपमानो का आश्रय लेकर महाकवि जायसी ने बारहमासा मे विरह का अत्यन्त मर्मस्पर्शी, सवेदनामय रूप चित्रित किया है। रानी नागवती का विरह अनुभूति व अभिव्यक्ति दोनो ही दृष्टियो से ग्रामीण बाला से किसी प्रकार कम नही।[31] "उनकी भाषा उनकी कल्पना, उनकी अभिव्यक्ति शैली इन सबका लोक जीवन से सीधा सम्बन्ध है। जिस मिट्टी से जायसी का सम्बन्ध था उसकी सारी महक उसमे आदि से अन्त तक व्याप्त है।"[32]

सूर

तत्कालीन सामन्ती समाज मे साधारण मनुष्य शासक-शोषक वर्ग के हाथो कठपुतली बना हुआ था। उसकी अपनी जिन्दगी भी अपनी नही थी, सभ्रान्त माने वाले लोगो के यहॉ गिरवी रखी हुई थी। ऐसे घुटन भरे माहौल मे जीवन व्यतीत करने वाले इन्हीं साधारण जनो की वेदना व पीडा महाकवि सूर व उनके अन्य समकालीन कवियो की रचनाओ मे मार्मिक अभिव्यक्ति पाती है।[33] ये कवि सिर्फ उनकी व्यथा को ही वाणी नहीं देते वरन् मन शान्ति के लिए अपने सम्पर्क मे आने वाले व्यक्ति को सासारिकता से विमुख किये बिना ही प्रेमा भक्ति का सम्बल प्रदान कर आनन्द की उस भूमि पर पहुँचाते है, जहॉ अध्यात्म और प्रेम दोनो मिलकर उनके जीवन को नये रगो से आपूरित करते है। उन्होने ज्ञान व योग की लोक विरोधी धारा का प्रतिरोध जन-मानस को दृष्टि मे रखकर ही किया है क्योकि यह विद्या सहज लोगो की समझ से परे थी।

अपने महाकाव्य 'सूरसागर' मे ब्रज के सभी सस्कारो, विश्वासो, प्रथाओ, रीति-रिवाजो व पर्वोत्सवो का अत्यन्त जीवन्त व सवेदनामय रूप उकेरने वाले महाकवि सूर जन-मानस के प्रतिरूप है। भारतीय जन-मानस प्राचीन काल से ही यह विश्वास करता चला आ रहा है कि व्यक्ति को कर्मानुसार ही फल की प्राप्ति होती है।[34] सूर के कई पद जन-मानस के इस विश्वास की पुष्टि करते है । इसी तरह जन्म के अवसर पर

गीत गाना व अन्य लोक-रीतियो का निर्वाह करते ब्रजवासी सूर की जन निष्ठा को व्यक्त करते है।[35] बसन्तोत्सव, होली, गोवर्धन-पूजा[36] से सम्बन्धित विभिन्न पद सूर काव्य मे भारतीय-सस्कृति की अनुपम छटा बिखेरते है।

मुहावरो व लोकोक्तियो मे लोकानुभवो की अभिव्यक्ति मिलती है। इससे जन-सामान्य के व्यवहार व समझ की सही परख होती है क्योकि यह उन्हीं के द्वारा बनायी गयी है। "लोकोक्तियाॅ मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न है, जिन्हे बुद्धि और अनुभव की किरणे फूटने वाली ज्योति प्राप्त है।"[37] सूर काव्य मे इन मुहावरो व लोकोक्तियो का भण्डार है। गोपियो द्वारा उद्धवो को दिये गये उपालम्भो मे 'एक म्यान मे दो तलवारे नहीं समा सकती', 'सूखी नदी मे नाव चलाना', 'हाथी के दॉत खाने के और दिखाने के और', 'सबके सब एक डार के तोडे है'- मुहावरो व लोकोक्तियो की छटा मर्मस्पर्शी है।[38]

उनका यह महाकाव्य "सूरसागर" ग्राम व नगर दोनो की सस्कृतियो का जीवन्त रूप जनमानस के पटल पर अकित करता है। ग्राम-सस्कृति की सहजता उन्हे विशेष रूप से आकृष्ट करती है, तभी तो वह उद्धव को माध्यम बनाकर कृत्रिम नगरीय सस्कृति के प्रति उपेक्षा भाव प्रकट करते है।[39] उनकी रचनाओ मे व्यक्त यह ग्रामीण सवेदना से प्रभावित उनका मन लोक से सहज लगाव को व्यक्त करता है।

लोक की पीडा व उन्हीं के प्रेम, आनन्दोल्लास को सजोये सूर व उनके समकालीन नन्ददास, नाभादास, कुभनदास, चतुर्भुज दास आदि 'अष्टछाप' के कवि जन-मन की सघन सवेदनामय अनुभूति कराते है। "सूर अपने लिए या अपने प्रभु के लिए गीत नहीं गाते है। सूर ने कृष्ण के प्रति अपने प्रेम को लोक मे बॉटने की उत्कठा से गीत गाए है।"[40] अत कहा जा सकता है कि सूर के लिए 'लोक' या 'सामान्य जन' प्रमुख है। तभी तो सूर के प्रति सम्मान व्यक्त करते हुए उनके पद शताब्दियो बाद आज भी लोककण्ठ मे सुशोभित है।

तुलसी–

तत्कालीन मुगल-शासको के अत्याचार से पीडित जनता की मुक्ति के लिए 'परहित सरिस धर्म नहि भाई'[41] पंक्ति के रचयिता महाकवि तुलसीदास ने राम के 'लोक-रक्षक' रूप को अपने काव्यो मे प्रमुखता दी।" उनके राम किसी सामन्ती पीडा को दूर करने के लिए अवतरित नहीं हुए वरन् केवट जैसे अधम माने जाने वाले व्यक्ति को गले लगाने के लिए, वनवासी, गिरिवासी जन-जातियो को मित्र बनाने के लिए, शबरी जैसी उपेक्षित नारी के उच्छिष्ट बेर को खाने के लिए मानव रूप मे इस पृथ्वी पर उत्पन्न हुये है। उनके राम का राज-परित्याग यह दर्शाता है कि लोक की सेवा राज प्रसाद मे रहकर नहीं हो सकती वरन् ग्राम व कानन-कानन घूमकर सबकी पीडा की तप्त जल-धारा मे अपने को विमज्जित कर देने से होती है।

राजा, महाराजाओ व सामन्तो की अधीनता स्वीकार न कर तुलसीदास ने दु ख-दारिद्र व विपन्नता मे ही अपना जीवन व्यतीत किया। वे आजीवन जन-सामान्य के बीच रहे। अत उनके दु ख-दर्द व आभावो को भी उन्होने अत्यन्त निकट से देखा था। "वे 'विनय पत्रिका' मे कलि अत्याचारो तथा कलि के अभिशापो से ग्रस्त जन-सामान्य के प्रतिनिधि बनकर राम को विनय की पत्रिका भेजते है, उनसे जन की मुक्ति की दरख्वास्त करते है ।"[42]

सामान्य जन के दु खो से उत्पन्न तुलसी की व्यथा स्वॉस-प्रक्रिया की भॉति उनके काव्यो मे समाहित है। उनके राम बालि और रावण जैसे निरकुश राजा को धूल मे मिलाकर वहॉ की राजसत्ता वही के जनप्रतिनिधि सुग्रीव और विभीषण को दे देते है। आज का तथाकथित जन-सेवक, जनसेवा के नाम पर जनता के पसीने की खान से निकले हुए स्वर्ण को चुराकर लकापुरी बनाकर रहता है और राम के हनुमान ने तो सोने की लका को ही जला डाला ।

वेदो के प्रति अक्षर ज्ञान से रहित होने पर भी भारतीय जनता की वेदो मे अटूट आस्था है, इस बात से तुलसीदास भली-भॉति परिचित थे। अत उन्होने सामान्य जन के हित की दृष्टि से ऐसी नीति अपनायी जिससे वे न तो वेद के अध समर्थक हुए न लोक-लीक के। उन्होने वेदपाठी पडितो की उन मान्यताओ का खुलकर विरोध किया, जो सहज लोक-धर्म के विकास मे बाधक थीं। भारतीय-सस्कृति से पुष्ट ऐसे समाज का स्वरूप उन्होने लोगो के समक्ष रखा, जिससे ह्रासोन्मुख वर्णाश्रम व्यवस्था को आश्रय मिला। वर्णाश्रम व्यवस्था के बिना लोगो का जीवन पतित होता जा रहा था।[43] अत तुलसी दास द्वारा वर्णाश्रम व्यवस्था की पुन प्रतिष्ठा जीवन को नियन्त्रित कर उसे सुखी व सार्थक बनाने के लिए की गयी;[44] न कि मनुष्य-मनुष्य मे भेद उत्पन्न करने के लिए। यदि ऐसा होता तो क्या तुलसी के राम व महाकर्मकाण्डी वशिष्ठ केवट[45] को गले लगाते ? क्या शबरी जैसी भीलनी के जूठे बेर खाते। तुलसीदास का वेद-शास्त्र सम्मत दृष्टिकोण भी लोक जीवन से विमुख नहीं है। तभी तो डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सुन्दर शब्दो मे कहा कि "लोकचित्त का इतना विस्तृत और यथार्थ ज्ञान रखने वाला कवि अगर लोकमत पर शासन न करता तो आश्चर्य की बात थी, शासन करना स्वाभाविक है।"[46]

हिन्दी साहित्य का यह पूर्व-मध्यकाल वाह्य रूप से भले ही केवल भक्तिगाथा प्रतीत हो, पर वस्तुत यह अन्याय, अत्याचार के खिलाफ जन-मानस को आन्दोलित करने वाला है। लोक प्रचलित बोलियो मे काव्य सृजन करने वाले ये कवि कभी किसी दरबार के आगे नहीं झुके व सदैव सामान्य जन के सच्चे हितैषी बने रहे। "जाहिर है कि अपने समय की शीर्ष सत्ता को चुनौती देने का साहस वही कर सकता है जो उतनी ही गहराई से जन-साधारण के जीवन से जुडा हो। इन रचनाकारो की आस्था का स्त्रोत यही साधारण जन से इनकी गहन सपृक्ति है। इस सपृक्ति के नाते ही ये प्राकृत जनो की प्रशस्ति से बच सके तथा नर की मनसबदारी को धिक्कार सके।"[47]

स्पष्ट है कि इन सभी भक्तिकालीन कवियो ने अपनी रचनाओ के द्वारा तत्कालीन जन-मानस को स्वस्थ दिशा प्रदान की। कवीर ने आडम्बर विहीन समाज की रचना करने के लिए सबको प्रेम के एक ही ताने-बाने मे बुनकर उन्हे नवीन वस्त्र से आच्छादित करने का प्रयास किया। जायसी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रेम-भावना के वीज को विशाल वट-वृक्ष मे परिवर्तित करने मे अपना महत्वपूर्ण योगदान किया। यद्यापि उनकी रचना के पुष्प मे दार्शनिक सौरभ अधिक है, किन्तु बारहमासा के माध्यम से वे लोक-सवेदनाओ को भी मूर्त करना नहीं भूलते। तत्कालीन विषम सामाजिक परिवेश मे तुलसी व सूर ने जन मानस को एक सूत्र मे बॉधने के लिए भक्ति की ऐसी गगा बहायी जिसमे अवगाहन कर सबका मन निर्मल हो गया। इस प्रकार हम कह सकते है कि सम्पूर्ण भक्तिकाव्य अपने उदात्त रूप मे मानवतावादी दृष्टिकोण को सजोये हुए है। मानवतावादी काव्यो के इस सरोवर मे कही पर क्रान्तिकारी आस्था के अरूणकमल खिले हुए है, तो कहीं पर रागात्मक स्वरो को गुजरित करने वाले भ्रमर प्रेम व हल्लोल्लास का वातावरण सृजित कर रहे है ।

रीतिकालीन (उत्तरमध्यकालीन) काव्य और लोक-संवेदना

हिन्दी साहित्य का यह काल राजनीतिक दृष्टि से विलास प्रिय मुगल-शासको व सामन्तो का काल था। राग-रग मे डूबे सामन्तो व शासको का अनुकरण करती जनता भी 'यथा राजा तथा प्रजा' की कहावत को चरितार्थ कर रही थी। "इस सभ्यता और वाह्य परिस्थितियो का प्रभाव कवियों पर पडे बिना न रह सका। कवियो के भावुक कण्ठो से भी वही गाने फूटे जो जनता अनुभव कर रही थी। राजदरबार मे आश्रय पाने के कारण उन्हे अपनी सरस्वती (वाणी) को उसी प्रकार नचाना पडता था जिस प्रकार आश्रयदाता चाहता था।" [48]

रीतिकालीन कवि यद्यपि साधारण वर्ग के व्यक्ति थे, पर उनमे से अधिकाश कवियो का जीवन-यापन राजाश्रय मे होनें के कारण ये प्रतिष्ठित व्यक्तियो मे गिने जाते थे।[49] इनमे चिन्तामणि, कुलपति मिश्र, कुमारमणि देव, सोमनाथ, भिखारीदास, प्रताप साहि आदि महत्वपूर्ण है, जो राजप्रसादो की अभिरूचि के अनुरूप काव्य-सृजन के कारण अपनी प्रतिभा को अन्यत्र न लगा सके। राजाश्रय-विहीन कुछ कवि ऐसे भी थे, जो सामन्ती जीवन से न जुडकर जन-सवेदना से प्रभावित हो काव्य-सृजन कर रहे थे। इन्होने अपने नीति-कथनो के माध्यम से लोक-सवेदना को मूर्त रूप प्रदान किया। इन कवियो मे रहीम, घाघ, भड्डरी, गिरिधरदास आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कुछ राजाश्रित कवि भी ऐसे है जो काव्य-लक्षणो के उदाहरण देते समय लोक-जीवन व उनकी सवेदनाओ से प्रभावित दिखाई पडते है। वस्तुत इन सभी कवियो ने लोक जीवन के उस पक्ष को अपनी लेखनी से जीवन्त किया, जो विविध सस्कारो, मान्यताओ, अन्धविश्वासो व पर्वोत्सवो आदि के रूप मे जन-जन के हृदय मे समाहित है। भारतीय लोक जीवन मे सस्कारो का प्रवेश सतानोत्पत्ति पूर्व से ही प्रारम्भ हो जाता है। इस अवसर पर विभिन्न पारम्परिक रीति-रिवाजो द्वारा शुभ-कार्य किये जाते है। जन्मोपरान्त से लेकर मृत्यु तक के सोलह सस्कारो मे 'पाणिग्रहण' सस्कार को कवियो ने प्रमुखता से अपने काव्यो मे वर्णित किया है।[50]

समाज मे व्याप्त विभिन्न शकुन-अपशकुनो मे सामान्य जन की आस्था को देखते हुए इन कवियो ने अपनी कविताओ के माध्यम से उसे स्थायित्व प्रदान किया। प्राकृतिक कार्यो शारीरिक सकेतो व जीव-जन्तुओ की क्रियाओ के माध्यम से ये शकुन-अपशकुन व्यक्त होते है तथा इनका निदान लोक-परम्परा से प्राप्त विधि के अनुसार होता है। बिहारी के दोहो मे तो इनकी भरमार है। ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान भी रीतिकालीन कविताओ मे बहुतायत रूप मे मिलता है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार निष्कलक चन्द्रमा का दर्शन ससार

मे प्रणय का सूचक है, जिसे महाकवि बिहारी अपने एक दोहे मे व्यक्त करते है।[51] भारतीय लोक-जीवन प्राचीन काल से ही स्वप्न, भाग्य व जादू-टोनो पर अन्तर्मन से आस्था व्यक्त करता आ रहा है। रोग-निवारण के लिए वे औषधियो का प्रयोग न कर टोने-टोटके का सहारा लेते है कुदृष्टि से बचने के लिए बिहारी की नायिका डिटौना लगाती है।[52] इसी तरह व्रत व पर्वोत्सवो की पुरातन-परम्परा के आज तक जीवित रहने का मूल कारण लोक-सवेदना है। जन सामान्य इन्हे परम्परागत रीतियो के अनुसार अत्यन्त श्रद्धा व उल्लास के साथ मनाते चले आ रहे है। जन-जन मे प्रेम, सौहार्द्र व सहिष्णुता की भावना जागृत करने मे इन त्यौहारो का महत्वपूर्ण योगदान है। लोक को सवेदित करने वाले इन उत्सवो से कवि भला अपने को कैसे अलग रख सकता है। प्राय सभी कवियों ने होली, दीपावली जैसे महत्वपूर्ण त्योहारो के वर्णन द्वारा जन-जन के हृदय मे अपनी पहुँच बनायी। बिहारी की नायिका प्रिय द्वारा ऑखो मे डाले गये गुलाल को कष्ट होने पर भी नहीं निकालना चाहती।[53]

अन्तत कहा जा सकता है कि रीतिकालीन कवियो ने अपने चरित नायको का ही अधिक गुणगान किया है, पर अवसर पाते ही वे सामान्य-जन की सवेदना को साकार करना नहीं भूलते है। घाघ, भड्डारी आदि राजाश्रयहीन कवियों ने अपने नीति कथनो के माध्यम से सामान्य जीवन के अनेकानेक प्रसग मार्मिक रूप से वर्णित किये है।[54]

आधुनिक कालीन कविता और लोक-संवदेना

दीर्घकालीन परतन्त्रता के दौरान ही हिन्दी साहित्य अपने तीन ऐतिहासिक काल-खण्डो की यात्रा समाप्त कर जब आधुनिक युग में प्रवेश करता है, उस समय हमारे देश के मनीषियों ने जग-जागरण की दृष्टि से अनेक महत्ववूणे सुधार कार्यो को आरम्भ किया था। इस जन-जागरण के उपयुक्त वातावरण में जन-चेतना के सवाहक कवियो की संवेदनशील दृष्टि ने लोक की पीडा का गहराई से अनुभव किया और अपनी

कविताओ के माध्यम से उन लोक-सवेदनओ को मुखर रूप प्रदान कर जागरण के शखनाद को जन-जन तक पहुँचाने मे अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

भारतीय युगीन कविता और लोक-सवेदना

अग्रेजो के विरूद्ध सन् १८५७ के विद्रोह के असफल होने के पश्चात् १ नवम्वर १८५८ को ब्रिटिश साम्राज्ञी ने अपनी प्रथम घोषणा मे कहा कि "हमारी प्रजा के लोग चाहे वे किसी भी जाति, रग व धर्म के हो, बिना किसी रोकटोक एव भेदभाव के सरकारी नौकरियो मे उनकी शिक्षा, योग्यता और कार्य-क्षमता के अनुसार भरती किये जायेगे।"[55] पर उन्होने अपनी इस घोषणा पर कभी अमल न किया। उन्होने भारत को निर्धन बनाने, वहाँ के मजदूरो व श्रमिको को बेरोजगार करने के लिए विविध हथकण्डे अपनाये। ग्रामीण किसान लगान की बढी हुई दर देते-देते पस्त थे। धीरे-धीरे उनकी स्थिति इतनी बिगडती गयी कि उन्हे अपनी जमीन से भी हाथ धोना पडा। देशी सामन्तो व जमींदारो का सरक्षक बनने का अग्रेजो का ढोग देश की अमीर व गरीब जनता के लिए वेहद मँहगा पडा।

जाति-व्यवस्था की जजीरों को स्वय अपने पैरो मे बॉधे हुए व पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, सती प्रथा आदि कुरीतियो को ढोते हुए भारतीय समाज निरन्तर रसातल की ओर जा रहा था। शास्त्रोक्त-नियमो से वे इस तरह चिपके हुए थे कि तत्कालीन परिस्थितियो मे उसकी अप्रासगिकता पर उनकी दृष्टि ही नहीं गयी। धर्म के क्षेत्र मे विविध धार्मिक-सम्प्रदायो की बाढ आ जाने से उसका मूल स्वरूप निरन्तर उनसे दूर होता गया। तत्कालीन समाज में व्याप्त इन विकृतियो को दूर करने के लिए अनेक विद्वान पुरूष सामने आये। राजा राममोहन राय, महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर, केशवचन्द सेन, महर्षि दयानन्द, श्रीमती ऐनी बेसेन्ट, महादेव गोविन्द रानाडे आदि महापुरूषो ने अपने विविध सुधार कार्यो के द्वारा भारतीय समाज मे जागरूकता उत्पन्न करने का भरसक प्रयत्न किया।

इन राजनीतिक, सामाजिक, सास्कृतिक व धार्मिक परिस्थितियो ने तत्कालीन बुद्धिजीवी वर्ग पर गहरा प्रभाव डाला जिसके फलस्वरूप भारतेन्दु युगीन साहित्य का जन्म हुआ। इन कवियो ने रीतिकालीन काव्य प्रवृत्ति को त्यागकर तत्कालीन समाज की आवश्यकताओ को ध्यान मे रखते हुए उन समस्याओ को अपनी रचनाओ के द्वारा उठाया जो आम जनता को पतन की ओर लिए जा रही थी।

हास्य-व्यग्य की शैली अपनाकर भारतेन्दुयुगीन कवियो ने तत्कालीन कुरीतियो पर गहरा प्रहार किया। ताकि जन सामान्य इनके कुपरिणामो से बच सके। उन्होने विदेशी शासको के काले कारनामो का कच्चा चिट्ठा एक-एक कर जनता के सामने रखते हुए उन्हे अपनी कविताओ के माध्यम से यह समझाने का प्रयास किया कि किस तरह ये शासक उनका शोषण करते है। फैशन मे पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति की अंधी नकल करने वालो पर भी उन्होने कटाक्ष किये। इसी तरह रिश्वतखोरी,[56] जातिगत-भेदभाव को बढावा देकर फूट डालने वालो पर उन्होने अपनी कविताओ के द्वारा तीखे प्रहार किये। तत्कालीन समाज में चारो ओर फैली हुई अव्यवस्था से जीविकोपार्जन के साधन सीमित होते जा रहे थे। जनता अन्धविश्वासी होकर धूर्त और पाखण्डी लोगों की चपेट मे आती जा रही थी। धर्म और मठ के नाम पर ऐसे लोग अपना अच्छा व्यवसाय चला रहे थे। काशी जैसी धार्मिक नगरी में फैले पाखण्ड का यथार्थ रूप प्रस्तुत पक्तियो में मिलता है -

"देखी तुमरी कासी, लोगों, देखी तुमरी कासी।
जहॉ बिराजे विश्वनाथ विश्वेश्वर जी अविनासी।

X X X

लोग निकम्में भंगी-गंजड, लुच्चे - वे - बिसवासी।
महा आलसी झूठे शुहदे बे - फिकरे बदमासी।।"[57]

अनमेल विवाह तत्कालीन समाज की बुनियाद को दिन प्रतिदिन अत्यन्त तीव्रता के साथ खोखला करता जा रहा था। प्राय सभी कवियो ने इस लोक-प्रचलित सामाजिक बुराई की कटु आलोचना की।[58] इसी तरह बाल विवाह पर व्यग्य करती यह पक्तियाँ बालवधू के प्रति कवि की गहरी सवेदना की परिचायक है-

"भौरा चकई बहाय, गुल्ली डडा विसराय

तनी नाच इतराय मोरे बारे बलमू।।

x x x

प्रेमधन अकुलाय, रस बिन बिलमाय

कहै खिल्ली सी उडाय, मोरे बारे बलमृ।।"[59]

जहाँ एक ओर इन कवियो ने तत्कालीन समाज मे व्याप्त विकृतियो पर प्रहार किया है वहीं दूसरी ओर जन-सामान्य मे प्रचलित विविध पर्वोत्सवो, रीति-रिवाजो व सस्कारो पर लेखनी चलाकर ये कवि उनकी खुशियो मे भी शामिल हुए है। "होली" के लोकोत्सव पर इन कवियो ने अनेक लोक प्रचलित शैली मे गीत लिखे है। इन गीतो मे कहीं ब्रज की मस्ती है व कहीं बनारस की सरसता। ये गीत अधिकाश राधा-कृष्ण को माध्यम बनाकर लिखे गये है। होली की मस्ती मे जन-जन इस तरह डूबे हुए है कि उन्हे अपने खाली पेट भी याद नही-

"मॅहगी परी न पानी बरसा, बजरौ नाहीं सस्त।

धन सब गवा अकिल नहि आई तो भी मगल-कस्त।।

होली होय रही।।"[60]

लोकपर्व एव महोत्सवो के साथ-साथ जन्म, विवाह व मृत्यु से सम्बन्धित सस्कारो का भारतीय लोक जीवन मे विशेष महत्व रहा है। कवियो ने इन सस्कारो का भी विस्तार से वर्णन किया है, जो कवि की लोक-सवेद्य दृष्टि से जुडकर भारतीय परम्परा व सस्कृति को साकार करता है। विवाह से सम्बन्धित अनेक लोक-रीतियो- बारात, मण्डप, वर-वधू

की गॉठ बॉधना, भॉवर, ज्योनार आदि से सम्बन्धित कविताओ मे उनकी लोक के प्रति आस्था दिखलाई पडती है।[61] इन कवियो ने जन-सामान्य की भावनाओ को ध्यान मे रखते हुए कजली, होली, बारहमासा आदि ऋतुगीत व सोहर, बन्ना, ज्योनार, गाली आदि सस्कार गीत भी लिखे है, जो विविध पर्वो व सस्कारो के अवसर पर गाये जाते है।

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि इन कवियो ने जहॉ एक ओर जन-सामान्य को आर्थिक शोषण से मुक्ति दिलाने तथा कुरीतियो और अन्धविश्वासो को दूर करने के लिए अपने काव्य को माध्यम बनाया तो दूसरी ओर गॉवो व नगरो मे अभाव ग्रस्त जिन्दगी जीने के बाद भी किलकारियॉ भरते बच्चो, खेतो मे काम करते किसानो की थकान को दूर करने वाले लोकगीतो, विभिन्न पर्वोत्सवो व अनेक सुअवसरो पर मगल गीत गाती औरतो का सजीवाकन कर जन भावना का आदर किया। जन-सवेदना से सम्पृक्त इन कवियो की कविताओ मे लोक का सम्पूर्ण जीवन मुखरित हुआ है। डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार "भारतेन्दु और उनके सहयोगियो की शक्ति का मुख्य स्रोत तत्कालीन जन-जीवन है। उनकी सारी रचना-प्रकिया वही से गति पकडती है। लोक-चिता- टैक्स और महामारी तथा मॅहगाई की, अग्रेजो के शोषण की- उनके मुख्य विषय है। भारतेन्दु द्वारा ग्रम-गीतो को प्रोत्साहन और उनका उपयोग लोक जीवन के इस तादात्म्य के ही कारण है।[62] अत स्पष्ट है कि सम्पूर्ण भारत के हित की भावना रखने वाले ये कवि अपने काव्य को लोक मगलकारी स्वरूप प्रदान करते है।

द्विवेदी युगीन काव्य और लोक सवेदना

भारतीय राजनीति में बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दो दशक विविध उतार-चढावो से भरे हुए थे। इस दौरान हुई घटनाओं ने भारतीय जन-मानस को गहराई से प्रभावित किया। १९०५ मे अंग्रेजों द्वारा किया गया "बगाल विभाजन", १९०६ मे "मुस्लिम लीग" की स्थापना व १९०९ में "मार्ले-मिंटो सुधार" का मुख्य उद्देश्य हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य

को बढावा देना था ताकि जनता जाति के आधार पर देश मे अलगाव की भावना मे वृध्दि कर सके। अग्रेजो की यह चाल जन-जागरूकता के कारण सफल न हो सकी। जन-आन्दोलन के समक्ष घुटने टेकते हुए १६११ मे उन्हे साम्प्रदायिकता का बीज बोने वाले बगाल विभाजन की नीति को समाप्त करना पडा। यह जागरूक होती जनता की पहली जीत थी। इसके पश्चात् १६१४ का विश्व-युद्ध, १६१६ के लखनऊ अधिवेशन मे हिन्दू-मुसलमानो के बीच राजनीतिक समझौता, १६१७ की रूस की साम्यवादी क्रान्ति, बगाल का क्रन्तिकारी आन्दोलन, गॉधी जी का सत्याग्रह आन्दोलन जिसे जनता द्वारा भरपूर सहयोग मिल रहा था- आदि घटनाओं ने मिलकर भारतीय जन-आदोलनो को तीव्रता प्रदान की। इस समयावधि के आन्दोलनो की खास बात यह रही है कि साधारण जनता भी सक्रिय राजनीति मे हिस्सा लेकर देश-हित की खातिर बलिदान देने के लिए तैयार हो गयी थी।

आर्थिक-क्षेत्र मे जमींदारी-व्यवस्था के कारण किसानो की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी। उन पर निरन्तर ऋणो का बोझ बढता जा रहा था। एक ओर देश मे भूखमरी बढ रही थी, तो दूसरी ओर अन्न विदेशो में निर्यात किया जा रहा था। देश का कच्चा-माल विदेशो को भेजने व तैयार माल का आयात करने की नीति के चलते भारतीय उद्योगो को गहरा धक्का लगा। साथ ही इन उद्योगो मे काम करने वाले श्रमिको की छटनी से बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न हो गयी । यद्यपि ब्रिटिश पूॅजी के भारत आगमन से कुछ भारतीय उद्योग फले-फूले, पर यह उन्नति साधारण जनता के हित की दृष्टि से नगण्य रही।

राजनीतिक और आर्थिक-व्यवस्था मे उथल-पुथल व विभिन्न आन्दोलनों के कारण भारतीय समाज मे एकजुटता की भावना बढ़ी, जिसके परिणामस्वरूप जाति-व्यवस्था के बधन ढीले हुए। शिक्षित वर्ग में वृद्धि होने से हानिकारक परम्पराओं व रूढ़ियो के प्रति

लोगो मे सामाजिक समझ बढी। अछूतोद्धार व नारी पर होने वाले अत्याचारो से उसे मुक्ति दिलाने के लिए चलाये गये आन्दोलनो ने अपने को निम्न मानने वाले व्यक्तियों की हीन-भावना को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया। इन विविध आन्दोलनो को सफल बनाने मे तत्कालीन कवियो का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

मानवीय सवेदनाओ के इस बदलते परिदृश्य मे द्विवेदी युगीन काव्य ने जनता के सघर्ष को मानवतावादी रूप दिया। श्रमिक, किसान, दलितवर्ग, अकाल, भूखमरी, रूढियॉ व कुरीतियॉ आदि कथ्य तदयुगीन परिवेश मे उनकी रचनाओ का अटूट हिस्सा स्वत ही बनते गये। भारतीय अर्थ-व्यवस्था की रीढ किसान ही जब भूखा मर रहा हो तो देश की साधारण जनता की स्थिति क्या रही होगी इसका अनुमान स्वत ही लगाया जा सकता है। किसान जीवन की व्यथा का सवेदनशील रूप कवि मैथिलीशरण गुप्त की इन पक्तियो मे दृष्टव्य है-

"पानी बनाकर रक्त का, कृषि कृषक करते है यहॉ।

फिर भी अभागे भूख से, दिन रात मरते है यहॉ।।[63]

किसानो की हताशा को अभिव्यक्ति देने के साथ ही कवियो ने उनमें सामाजिक, आर्थिक जागरूकता उत्पन्न करने का प्रयास किया ताकि वे सगठित होकर अपने अधिकारो के लिए सघर्ष कर सके।

किसान की समस्याओं के साथ-साथ भारतीय समाज में व्याप्त अनमेल विवाह, बहुविवाह, विधवा-विवाह निषेध व दहेज प्रथा जैसी कुरीतियॉ इन युग में भी बनी हुई थी। यद्यपि इन कुरीतियो को दूर करने के प्रयत्न भारतेन्दु युग मे प्रारम्भ हो चुके थे, पर उनका प्रभाव अनेकानेक समस्याओं से घिरी जनता पर अधिक न पड सका। अत द्विवेदी युगीन कवियो ने भी जोरदार शब्दों में इन कुरीतियो की भर्त्सना की। ये कुरीतियॉ स्वस्थ समाज के विकास में बाधक थी। इन्हें दूर किये बिना जन-कल्याण असम्भव था।

बीसवीं शताब्दी मे प्राचीन भावो, विचारो और सस्कारो का जिस तरह नवीनीकरण हो रहा था, उससे अवतारवाद पर बौद्धिक चिन्तन का गहरा रग चढता जा रहा था। परिणाम स्वरूप राम, कृष्ण, बुद्ध, सीता, राधा, शकर और पार्वती आदि सव अपना लोकोत्तरत्व छोडकर लोक-कल्याण के अनुकरणीय पात्रो के रूप मे काव्य मे स्थान पाने लगे। जो भगवान अब तक मन्दिर मे प्रतिष्ठित थे उन्हे दीन-दुखियो, पीडितो के बीच तथा झोपडियो मे खोजा जाने लगा। इस युग मे राम और कृष्ण दैवी नहीं बल्कि मानवीय रूप मे ही चित्रित किये गये है। 'साकेत' और 'प्रियप्रवास' की नायिका केवल पत्नी या प्रेमिका नहीं, वरन् वे लोक-कल्याण विधायिका बनकर समाज की सेवा मे रत दिखाई गयी है-

"वे छाया थीं सुजन सिर की, शासिका थीं खलो की।

कगालो की परम-निधि थीं, औषध पीडितो की।"[64] 'प्रियप्रवास'

इस युग का कवि मानव-धर्म, मानव-प्रेम मानव-एकता व सर्वधर्म समन्वय व समानता की भावना मे वृद्धि करता है। अभावो से पीडित मानवता के दु खो को बॉटना ही इनके लिए ईश्वर के प्रति सच्ची निष्ठा है। इसी अर्थ मे उन्होने सामाजिक समरसता से युक्त सच्चे मानव धर्म की प्रतिष्ठा की।[65]

अन्तत कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय जन-जागरण के इस दौर मे कवियो ने जन चेतना को जागृत करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होने महसूस किया कि जन-जन पीडा का मूल कारण गुलामीं है। जब तक वे (स्वय अपने अधिकारों के लिए) देश की मुक्ति के लिए एकजुट होकर सघर्ष नही करेगे तब तक उनके सभी प्रकार के कष्ट दूर न हो सकेगे। अत देश की आजादी ही उनके दु.खो को दूर कर सकती है। इतिहास गवाह है, किसी राष्ट्र की मुक्ति जन-समर्थन व परस्पर सहयोग के बिना सम्भव नहीं। जब जनता अपनी भूख की समस्या व उससे जुड़ी अन्य समस्याओं में फॅसी रहेगी तब

तक उन्हे सगठित करना असम्भव है। अत कवियो ने उनकी समस्याओ के मूल कारण को पहचान कर अपनी कविताओ के माध्यम से उन्हे उनसे मुक्ति के उपाय सुझाये। उन्होने अपनी कविताओ को लोकगीतो की शैली मे ढालकर यह कार्य अत्यन्त सहजता से किया।

छायावादी काव्य मे लोक सवेदना

प्रथम विश्व-युद्ध मे भारतीयो के द्वारा अग्रेजो का किया गया सहयोग उनके लिए रौलट-एक्ट बनकर उपस्थित हुआ, जिसके परिणामस्वरूप औपनिवेशिक स्वराज की प्राप्ति तो दूर रही वरन् भारतीयो को कठोर कानून की श्रृङ्खला मे जकड दिया गया। इसके विरोध में भारतीयो ने जलियॉवाला-बाग मे शान्ति-पूर्ण प्रदर्शन किया, जिसका अग्रेजो द्वारा क्रूरता से दमन किया गया। इस क्रूरता ने उन भारतीयो की भी ऑखे खोल दी, जो अग्रेजो की गुलामी करते चले आ रहे थे। इस घटना ने भारतीय राजनीति व समाज पर जो महत्वपूर्ण छाप छोडी, वह हिन्दू-मुस्लिम एकता के रूप मे दिखाई पडी। इसी समय भारतीय राजनीति मे गॉधी का पदार्पण हुआ। उनकी अहिसा व सर्वधर्म समभाव की नीति ने उन्हे करोडो जनता का एक मात्र प्रतिनिधि बना दिया। उनका मानना था कि तत्कालीन परिस्थितियो मे जब-तक देश की तीन-चौथाई से अधिक आम जनता का एकजुट समर्थन नहीं मिलता, देश की आजादी सम्भव नहीं।

गॉधी जी द्वारा चलाये गये 'असहयोग आन्दोलन' व बाद के अन्य आन्दोलनों ने भारतीय किसानो, श्रमिकों व आम-जनता को एकजुट करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। १६३० के आस पास विश्व आर्थिक मदी के दौर से गुजरा, जिसके कारण कृषि-उत्पादित वस्तुओ के भाव गिर गये। इसका प्रभाव भारतीय किसानों पर पड़ा जिससे उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी। ऐसी स्थिति में भी सरकार ने अपने अधिकाधिक लाभ के लिए 'मुक्त द्वार की नीति' समाप्त कर 'सरक्षण की नीति' अपनाते हुए भारतीय जनता को

खूब लूटा। फलत सरकार के प्रति किसानो का आक्रोश बढता जा रहा था। पर १६३४ मे समाजवादी पार्टी की स्थापना ने श्रमिको व कृषको को कुछ राहत सॉस प्रदान की।

सामाजिक व सास्कृतिक-क्षेत्र मे विविध आन्दोलनो मे जनता की भागीदारी ने उन्हे अपने अधिकारो के प्रति जागरूक बनाया। उनकी इस सक्रियता के कारण ही उनके हित मे अनेक कानून बनाये गये। "आर्य-विवाह कानून", "शारदा एक्ट", व "बाल-विवाह निरोधक कानून" आदि जनता की जीत के ही द्योतक है।

एक ओर जन-जन मे राजनीतिक जागरूकता बढती जा रही थी तथा समाज मे विविध परिर्वतन दिखाई पढ रहे थे वहीं दूसरी ओर साहित्यिक-क्षेत्र मे एक नवीन-युग का सूत्रपात हो रहा था जिसे छायावाद नाम दिया गया इस काल की कविताओ मे विवेकानन्द, गॉधी, रविन्द्रनाथ टैगोर, महर्षि अरविन्द आदि महापुरूषो का प्रभाव दिखाई पडता है। गॉधी जी के अहिसात्मक-आन्दोलन व मानवतावादी दृष्टिकोण ने इन छायावादी कवियो को अत्यधिक प्रभावित किया। इन कवियो ने तत्कालीन परिवेश में उन शाश्वत-मूल्यो की स्थापना की, जिसकी जन जन को महती आवश्यकता थी और जो देशकाल से परे हर काल के लिए प्रासगिक है ।

गॉधी जी के व्यक्तित्व से प्रभावित इन कवियों ने अपनी कविताओं में लोकहित, विश्व-बन्धुत्व, करूणा, ममता, मैत्री, उदारता आदि भावनाओ को प्रमुखता से रूपायित किया। इनकी रचनाओ मे समष्टि के कल्याण की कामना की गयी। पन्त, प्रसाद, निराला आदि सभी छायावादी कवियों ने जीवन के "मधुमय रूप" का ही गान नहीं किया, वरन् सदियों से मृतादर्शो, रूढियों, अन्ध-विश्वासों मे जकडे हृदय-कपाटो को अपनी लेखनी से कठोर प्रहार करते हुए खोला और उसे मानवतावादी भावनाओ की धारा में निमज्जित करते हुए समाज को एक नयी दिशा प्रदान की। इन कवियों के काव्य मे यदि कहीं निराशा की अभिव्यक्ति दिखाई पडती है तो उसके मूल में पलायन वादिता नहीं, वरन् वह विवशता

है, जो जन-सामान्य के द्वारा जीर्ण शीर्ण रूढियो को ढोने से उत्पन्न हुई है। यह विवशता भी अन्तत नष्ट होकर मानवीय-मूल्यो की स्थापना मे सहायक बनती है।

"सुन्दर है विहग सुमन सुन्दर, मानव तुम सबसे सुन्दरतम्'[66] के गीत गाने वाले कवि साम्राज्यवाद की पाशविक-वृत्तियो को देखकर उनसे मुँह नहीं मोडते, वरन् विप्लवी बादल वनकर उन्हे नष्ट करने के लिए प्रलयकारी गर्जन करते है। "राम की शक्ति पूजा" कविता के द्वारा कवि निराला ने शोषको को रावण के रूप मे स्थापित कर भारतीयो को राम बनने की प्रेरणा दी। रावण जैसी अमानवीय वृत्तियो को अपने ही अहकार के कारण नष्ट होते हुए दिखाकर तत्कालीन परिदृश्य मे कवि ने साम्राज्यवादी ब्रिटिश शक्तियो को उनके भविष्य का रूप दिखाया है। सम्पूर्ण छायावादी कवि भारतीयो को कायरता के पक से निकालकर सिह बनने की प्रेरणा प्रदान करते है।

छायावादी कवियो ने एक ओर मनुष्य को शक्तिशाली होकर विजय प्राप्त करने की प्रेरणा दी तो दूसरी ओर पूजीपतियो के उत्पीडन को चित्रित कर अपनी लोक सवेदना को मूर्त रूप प्रदान किया। विदेशी-पूँजी के आगमन के परिणाम स्वरूप भारत मे यान्त्रिक सभ्यता का तेजी से विकास हुआ। इस यान्त्रिक पद्धति ने प्राचीन भारतीय दस्तकारी व कारीगरी का व्यवसाय नष्ट कर दिया। लोग मशीनो से बनी-चीजो का अधिकाधिक उपयोग करने लगे। अत हाथ से बनी चीजों का कोई मूल्य न रह गया, जिसका सीधा प्रभाव उनकी रोजी-रोटी पर पडा। मशीनों पर काम करने वालो को भी उचित पारिश्रमिक नहीं मिलता था, जिससे उनकी स्थिति निरन्तर गिरती जा रही थी। कवि सुमित्रानन्दन ऐसे पूँजीपतियो को 'जोंक' का रूप प्रदान करते है, जो जन-सामान्य के रक्त को चूसने के लिए सदैव तत्पर रहते है।[67] कवि निराला ऐसे पूँजीपतियों की जो भिक्षुक के पसरे हुए हाथ की उपेक्षाकर कपियों को मालपुये खिलाते है- 'श्रेष्ठ मानव' कहकर उपहास-पूर्ण भर्त्सना करते हैं।[68] कवि की दृष्टि में वही मानव श्रेष्ठ है, जो

दीन-दलितो को अपने गले लगाकर उनकी व्यथा को अपनी व्यथा समझ सके। अपनी "तुलसीदास" कविता के द्वारा कवि निराला तत्कालीन परिस्थितियो मे "रूप-सम्मोहन" को त्यागकर विदेशी शासन से जन-जन की मुक्ति हेतु जुट जाने की प्रेरणा देते दिखाई पडते है। स्पष्ट है युगीन यथार्थ के प्रति वे अत्यन्त सजग रहे है जिसकी अभिव्यक्ति उनकी कविताओ मे कहीं शोषितो के प्रति करूणा दया ममता के रूप मे, तो कही शोषको पर किय गये व्यग्य, उपहास व क्रान्ति के आह्वान[69] के रूप मे मिलती है।

कवि पन्त अपने काव्य जीवन के आरम्भिक दौर मे प्रकृति-प्रेम से सरावोर कविताएँ लिखते हुए स्वय घोषणा करते हैं- "छोड द्रुमो की मृदु छाया, तोड प्रकृति से भी माया। वाले तेरे बाल जाल मे कैसे उलझा दूँ लोचन।।" परन्तु धीरे-धीरे उन्हे मानव का वह सुन्दर रूप आकर्षित करने लगा, जो दया, ममता, स्नेह, मैत्री व विश्व प्रेम का प्रतिरूप है। उनकी बाद की रचनाओं मे गॉधी व अरविन्द दर्शन का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पडता है, जिसके कारण उनकी कविताए प्रकृति से दूर विश्व-मानव के सुख-दु ख से जुडती गयी।[70]

सामाजिक जीवन की रूढियो व वर्जनाओ के बीच प्रेमानुभूतियो की जो एकान्तिक पीडा कवि जयशकर प्रसाद के 'ऑसू' महाकाव्य व महादेवी वर्मा की कविताओं में दिखलाई पडती है, वह अन्तत जन-जन की पीडा के रूप मे विश्व-वेदना बनकर उसी मे समाहित हो जाती है। दलित-पीडित मानवता के प्रति कवि जयशकर प्रसाद के स्नेह को राष्ट्रीयता से भरे हुए उनके गीतों मे देखा जा सकता है। इन गीतों के द्वारा वे जन-जन को गुलामी ही जजीरों से मुक्त कराने के लिए उनमें ओज व शक्ति का सचार करते है। भारतीयता पर उन्हे गर्व है, जिसके लिए वे सर्वन्योछावर करने वालो का आह्वान करते है।[71] परतन्त्रता के इस युग में इस काल के कवि एक ओर देशी व विदेशी पूँजीपतियो के द्वारा आम जनता के शोषण का सवेदनशील चित्रण कर जहॉ उनमें जागरूकता उत्पन्न करने

का प्रयास कर रहे है वही दूसरी ओर उन्होने लोक के उस रूप का भी चित्राकन किया, जहॉ वह हॅसता, मुस्कराता खुशियो मे शामिल होता है। विविध सस्कारो, मान्यताओ, रीति-रिवाजो, पर्वोत्सवो से पारम्परिक रूप मे बॅधा हुआ लोक-जीवन उनकी कविताओ मे लोकगीतो की शैली के माध्यम से अपनी अलग छटा बिखेरता दिखाई पडता है। अबीर से लाल सिदूरी कपाल की सुषमा मे डूबे हुए जन-जन की खुशी को निराला अपनी कविता मे अत्यन्त सहजता से होली के वातावरण की निर्मिति के साथ व्यक्त करते है।[72] गॉव की गोद मे ही पले-बढे, पर उच्च्य शिक्षा व आजीविका की खोज मे शहर आ जाने वाले अधिकाश छायावादी कवियो की कविताओ मे ग्रामीण व आचलिक लोक-जीवन के तत्वो व सवेदनाओ का सन्निवेश अत्यन्त सहजता से हुआ है।

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि छायावादी कवियो ने आरम्भ से ही लोक-सवेद्य भावो की अभिव्यक्ति अपनी कविताओ के माध्यम से की। पर आलोचको द्वारा प्रकृति के प्रति मोह, सौन्दर्य व प्रेम, पलायनवादिता, निराशा व रहस्यानुभूति आदि छायावाद कालीन प्रवृतियो की चर्चा इतनी अधिक की गयी कि राष्ट्रीयता की भावना मे छिपे लोक-सवेद्य भावो की सही पहचान न हो पायी । इन कवियो की राष्ट्रीय-सास्कृतिक चेतना ने उन जीवन-मूल्यो से अपनी कविताओ को सॅवारा जो जन-जन को गुलामी की जंजीरो से मुक्त करने हेतु उनमे प्रेंम, दया, ममता सहिष्णुता, व विश्वबन्धुत्व आदि भावनाओ का सचार करते है। इनकी आत्मानुभूतियों में समाहित 'वेदना व करूणा' मात्र उनकी अपनी नहीं वरन् तत्कालीन परिवेश से आक्रान्त जन जन की पीडा है जिसमे सहभागी बनते हुए ये कवि अन्तत उनमें वह शक्ति पैदा करना चाहते है, जिससे वह मात्र दया व सहानुभूति के पात्र न बनकर अभिमन्यु जैसे शक्तिशाली बन सके।[73]

प्रगतिवादी काव्य मे लोक सवेदना

ब्रिटिश शासित भारत मे बढते निरन्तर जन-सकट के कारण तत्कालीन राजनीति रूस मे स्थापित 'मार्क्सवादी साम्यवाद' से प्रेरणा प्राप्त कर रही थी, क्योकि यह व्यवस्था बहुसख्यक सर्वहारा वर्ग के हित से जुडी हुई थी। इस मार्क्सवादी साम्यवाद के प्रणेता कार्लमार्क्स "पूँजी के आधार पर समाज को दो वर्गो मे विभाजित करते है- सर्वहारा और बुर्जुआ। व्यक्तिगत सम्पत्ति आर्थिक विषमता और वर्ग-भेद का कारण बनती है। अत सर्वहारा की सरकार बनने पर व्यक्तिगत सम्पत्ति समाप्त होती है और सारी सम्पत्ति राज्य की हो जाती है। इस प्रकार विषमता और सघर्ष का अन्त होता है।"[74] रूस में इस प्रकार की साम्यवादी व्यवस्था के स्थापित हो जाने से वहॉ की जनता को नयी जीवन-शक्ति मिली। रूसी समाज अनेक सकटो व विसगतियो को पीछे छोडता हुआ जन-जन के जीवन मे हरियाली बिखेर रहा था। इसका प्रभाव भारतीय राजनीति पर भी पडा। "सन् ३० तक आते-आते हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय सस्था काग्रेस के भी प्रस्तावों मे हिन्दुस्तान के श्रमजीवी जन-समूह की चर्चा होने लगी थी। किसान-मजदूर आन्दोलन मे काफी ताकत आ गयी थी। तत्कालीन साहित्य मे भी इस राजनीतिक जागरण की छाया दृष्टिगोचर होने लगी थी।"[75]

तत्कालीन भारत की अधिकाश जनसख्या काफी मेहनत के बाद भी दो वक्त की रोटी बडी मुश्किल से जुटा पा रहा थी। ऐसी स्थिति मे कमजोर वर्ग के प्रति सहानुभूति व उनके उद्धार उपायों से जुड़ी इस साम्यवादी व्यवस्था ने तत्कालीन कवियो को प्रभावित किया। उन्होनें अपनी कविताओं के द्वारा शोषितों, दलितों, पीड़ितो के प्रति सवेदना ही व्यक्त नहीं की, वरन् उनमे वर्ग-सघर्ष की भावना भी उत्पन्न की।

मार्क्सवादी साम्यवाद से प्रभावित प्रगतिवादी साहित्य का शुभारम्भ सन् १६३६ के आस-पास हुआ। पेरिस में १६३५ मे "प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन" (प्रगतिशील लेखक

सघ) नामक अन्तर्राष्ट्रीय सस्था की स्थापना हुई, जिससे प्रभावित होकर १६३६ में सज्जाद जहीर व मुल्कराज आनन्द ने भारत मे इस सस्था की स्थापना की। मुशी प्रेमचन्द इसके प्रथम अध्यक्ष हुए। उन्होने अपने प्रथम अध्यक्षीय भाषण मे कहा – "जो दलित है, पीडित है, वचित है चाहे वह व्यक्ति हो या समूह उसकी हिमाकत करना उसका फर्ज है।"[76] यो तो इस उद्घोषणा के पूर्व भी साहित्य मे इस तरह की प्रवृत्तियॉ मिलती है पर इस उद्घोषणा के बाद स्पष्ट रूप से प्रगतिवादी काव्यधारा बहुसख्यक शोषित वर्ग से सम्पृक्त हुई।

"प्रगतिवाद के बीस वर्षों का इतिहास साहित्य में स्वस्थ सामाजिकता, व्यापक भावभूमि और उच्च विचार के निरन्तर विकास का इतिहास है, जो केवल राजनीतिक जागरण से आरम्भ होकर क्रमश· जीवन की व्यापक समस्याओ की ओर, आदर्शवाद से आरम्भ होकर क्रमश यथार्थवाद की ओर और यथार्थवाद अथवा नग्नयथार्थ से आरम्भ होकर क्रमश· स्वस्थ सामाजिक यथार्थवाद की ओर अग्रसर होता जा रहा है।"[77] इस सामाजिक यथार्थवादी साहित्य में दुःख, पीड़ा, हताशा व अभाव की ही अभिव्यक्ति नहीं मिलती वरन् जीवन के प्रति विश्वास व भविष्य के प्रति आशावादी दृष्टिकोण का उषाकालीन अरूण आलोक भी दिखाई पडता है। शोषक वर्ग के प्रति सर्वहारा वर्ग का सामूहिक सघर्ष ही इस सामाजिक यथार्थवादी साहित्य का मूल है। इस युग के साहित्य में सर्वहारा ही वह बुनियादी शक्ति है, जो पूँजीवादी प्रवृतियों पर आघात कर देश में समानता पर आधारित समाजवाद स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील है।

प्रगतिवादी काव्य रचना के आरम्भकर्ताओं में 'निराला' एक प्रमुख कवि हैं। उन्होंने छायावादी युग में ही प्रगतिशीलता के बीज बो दिये थे। उनकी 'दीन' (१६३५), 'भिक्षुक' (१६२१), 'बादल राग' (१६२०) कविताएँ छायावाद युग की ही देन है, जिसमे तत्कालीन काव्यधारा से अलग प्रगतिवादी स्वर सुनाई पड़ते हैं। इन कविताओं में पीड़ित

का जैसा सवेदनशील, प्रभावकारी व मर्मस्पर्शी चित्रण मिलता है, वही सम्पूर्ण प्रगतिवादी साहित्य की सशक्त बुनियाद बनता है जिस पर बाद सम्पूर्ण प्रगतिवादी साहित्य रचा गया। प्रगतिवादी काल मे लिखी गयी तोडती पत्थर(१६३१) कविता लोक सवेदना की दृष्टि से अत्यन्त ममस्पर्शी है। छायावादी दृष्टि को छोडकर सुकुमार हृदय कविवर पन्त भी अपने "युगान्त" (क० स १६३८) मे युगान्तर की घोषणा करते हुए समाजवादी विचारो की ओर उन्मुख हुए। उनके "युगान्त", "युगवाणी", "ग्राम्या" कविता सग्रह इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, डॉ० राम विलास शर्मा, शिवमगल सिह 'सुमन', 'दिनकर' आदि प्रगतिवादी कवियो ने अपनी सशक्त कविताओ के द्वारा वर्ग-सघर्ष को प्रेरणा देते हुए सर्वहारा व शोषित दलित वर्ग के प्रति अपनी सवेदना व्यक्त की। कवि केदारनाथ अग्रवाल अपनी 'मूलगज', 'अमीनाबाद', 'कानपुर', 'मजदूर', 'रनिया', 'चदू' आदि कविताओ के माध्यम से शोषक वर्ग की क्रूरता व विलासिता पर व्यग्य-पूर्ण शैली मे प्रहार करते हुए शोषित वर्ग की दयनीय जिन्दगी का सजीवाकन करते है। किसान-जीवन का यथार्थ कवि को अत्यन्त द्रवित करता है। उसकी करूण-कथा को कवि केदार अपनी अनेक कविताओ मे सच्ची सवेदना के साथ व्यक्त करते है।[78] जिस धरती को किसान कडी मेहनत से उपजाऊ बनाता है उस धरती पर कोई अन्य अपना हक जताये, यह उन्हे स्वीकार नहीं।

किसानों-मजदूरो का शोषण करने वाले पूँजीपतियो मिल-मालिकों, भूमि को हडप लेने वाले धरणीधरो को नष्ट करने के लिए वह सर्वहारा वर्ग मे अपनी कविताओ के द्वारा क्रान्तिकारी-चेतना जागृत करते हैं।[79] तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक-वैषम्य के साथ धार्मिक जड-परम्पराओं को ढोने की सामान्य-जनो की मनोवृति ने उन्हें क्षुब्ध किया, जिस पर उन्होने तीखे प्रहार किये है। वकालत जैसे पेशे मे व्यस्त रहने वाले कवि केदार गॉव

के जन-जीवन व प्रकृति का अत्यन्त सहज भाषा मे सवेदनापूर्ण चित्रण करते हैं। उनकी यह सहजता पाठको को बरबस आकृष्ट करती है।

अपनी ओजस्वी लेखनी के द्वारा जन-जन मे ऊर्जा का सचार करने वाले कवि नागार्जुन का व्यक्तिगत जीवन दु ख व अभावो मे व्यतीत हुआ है।वे अपनी कविताओ के माध्यम से ऐसे राजपथ का निर्माण करना चाहते हैं जिस पर चलकर आम-जनता उन कठिनाइयो को न भोगे जिसका कवि स्वय भुक्त भोगी रहा है। वे अपने लिए कुछ भी सग्रह नहीं करना चाहते। आम जनता के दु खो को बॉटते हुए जीवन-जीना चाहते हैं। सवेदनशील, मानव हृदय के पारखी कवि नागार्जुन कहीं मिथिला की अमराइयों, धान के खेतो, कमल-कुमुदनी से भरे तालाबो, पोखरो, बादल, वर्षा व प्रकृति के अन्यान्य रूपो को अपनी कविता मे सहज भाषा के माध्यम से रूपायित करते हैं तो कहीं सामाजिक-अव्यवस्था, धार्मिक अन्ध-विश्वास, राजनीतिक भ्रष्टाचार पर अत्यन्त तीखे व्यग्य करते है। देश की बहुसख्यक शोषित-पीडित जनता के वे प्रबल पक्षधर हैं। यह पक्षधरता उनकी कविताओ मे स्पष्ट देखी जा सकती है। एक ओर देश मे फैली भुखमरी व दूसरी ओर एलिजाबेथ के सम्मान मे करोडो रूपयो का अपव्यय उन्हे अत्यन्त क्षुब्ध करता है। अनावश्यक व्यय पर उनके तीखे व्यग्य उनकी अनेक कविताओं मे देखे जा सकते है, जिसका प्रभाव सीधे आम जनता पर पडता है।

कवि त्रिलोचन अपनी कविताओ के माध्यम से सर्वत्र मिट्टी की सोधी गध बिखेरते है। उनकी कविताएँ जन-जन को अनास्था, पराजय व घुटन भरे माहौल से निकालकर उनमे जीवन के प्रति आस्था, उत्साह व दृढ-आत्मविश्वास का सचार करती है। ''धरती'' का यह कवि गॉव के नैसर्गिक सौन्दर्य तथा वहॉ बसने वाले किसानो के जीवन के मनोरजन पहलुओ को व्यक्त करने के साथ-साथ पूजीवाद व्यवस्था की क्रूरता से त्रस्त किसान के अभावो का अत्यन्त सवेदनशील चित्रण करता है। गिरे हुए व्यक्तियो को सहायता देने वाला यह कवि संम्पूर्ण मानव-जाति को समानता के स्तर पर लाकर उन्हें स्वस्थ

जीवन प्रदान करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहा है। कवि दिनकर का लोक मगलकारी मन तत्कालीन समाज के यथार्थ को देखकर हाहाकार कर उठता है, जहॉ एक ओर श्वानो को दूध व वस्त्र से सुसज्जित कर पाला-पोसा जा रहा है। वही दूसरी ओर बच्चा भूख व ठड से व्याकुल है।[80] देश की यह विषम स्थिति पूँजीपतियो की शोषण-प्रवृति के चलते समाप्त नहीं हो सकती। अत कवि क्रान्ति के लिए जन-जन का आह्वान करता है, ताकि यह व्यवस्था समूल नष्ट हो सके। डा० रामविलास शर्मा, शिवमगल सिह 'सुमन' व रागेय राघव की सामाजिक सवेदना को आत्मसात कर लिखी गयी कविताए जन-जीवन के यथार्थ को वेगवती भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करती है।

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण प्रगतिवादी कवियो की कविताए जन-सवेदना से अनुप्राणित होकर लिखी गयी है। इन कविताओ मे कही जमींदारो, सामतो द्वारा किसानों-मजदूरो पर किये जाने वाले अत्याचारो का अत्यन्त सवेदनशील रूप दिखाई पडता है, तो कहीं पुलिस की निर्दयता का शिकार होता आम-आदमी। कहीं दवा के अभाव मे अन्तिम सॉस गिनता बच्चे की तडप है, तो कहीं आर्थिक अभावो के कारण अनपढ रह जाने वाला बालक। कहीं भिक्षुक की पीडा को सहता कवि तत्कालीन समाज पर व्यग्य करता दिखाई पडता है तो कहीं वह नारी की दयनीय स्थिति को ऑखो से ओझल नहीं कर पाता। तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक विषमता को समाप्त करने के लिए सभी कवि अन्तत जन-क्रान्ति का आह्वान करते हैं।

प्रयोगवादी काव्य और लोक-सवेदना

प्रगतिवादी कवियों के तत्कालीन परिस्थितियो मे किसानों, मजदूरों व देश की आम जनता की कठिनाइयों पर ध्यान केन्द्रित करते हुए घोषित रूप में प्रतिबद्ध होकर उनके हितार्थ काव्य-सर्जना की। पर १६३६ में आरम्भ हुए द्वितीय विश्व-युद्ध कालीन परिस्थितियों में राष्ट्रीय आन्दोलन के सम्भ्रम की स्थिति मे पड जाने से उत्पन्न निराशा ने

कविताओ मे एक नयी प्रवृति को जोडा, जिसमे अनास्था, अविश्वास, घुटन व टूटन के स्वर प्रमुख रूप से दिखलाई पडते है। इन प्रयोगवादी कवियो ने प्रगतिवादी कवियो की भॉति प्रतिबद्ध होकर काव्य-सर्जना तो नही की, पर उनकी कविताओं में भी कुछ नये-बोध के साथ कुरूप-यथार्थ का सवेदनामय रूप दिखाई पडता है। वहीं दूसरी ओर अस्थिर मन स्थिति से उत्पन्न घुटन व टूटन के परिणाम स्वरूप कुछ जटिल-सवेदनाओ की अभिव्यक्ति हुई है।

अत यह काल प्रगतिवादी बोध व कुछ नये बोधो व सवेदनाओ के साथ साहित्य-जगत मे आया और अभिव्यक्ति के नये शिल्पगत प्रयोगो के कारण ''प्रयोगवाद'' नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस काल का आरम्भ ''तारसप्तक'' नामक कविता-सकलन के प्रकाशन (१९४३) के साथ होता है। मुक्तिबोध, शमशेर, डा० रामविलास शर्मा, प्रभाकर माचवे, भारतभूषण अग्रवाल, नेमिचन्द जैन आदि प्रयोगवादी कवि मूलत यथार्थवादी है, जिन्होंने भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता को अपनाते मध्य व निम्नवर्गीय जीवन की जड़ता, पराजय बोध, उनके जीवन-सघर्ष व मानसिक-सघर्ष को पीड़ा के अनेक स्तरो के साथ उभारा। इन कवियो ने 'व्यक्ति' की घुटन को कविता का विषय बनाया हो या 'समाज' की घुटन को, मूलत उनकी दृष्टि मार्क्सवाद से प्रभावित समाजवादी विचारों पर ही टिकी हुई है।

अपने युग की ज्वलन्त समस्याओं से जुड़े कवि 'मुक्तिबोध' मानवीय दुःखो, उलझनो वा सामाजिक-आर्थिक विषमताओ से समाज को मुक्ति दिलाने हेतु मार्क्सवादी दृष्टिकोण के प्रति आकृष्ट हुए। अपनी 'तारसप्तक' मे संकलित 'पूँजीवादी समाज के प्रति' कविता में ऐसे पूँजीपतियों के प्रति तीव्र आक्रोश से भरे हुए दिखलाई पड़ते हैं, जो जनता के रक्त की एक-एक बूँद को चूसकर अपने को रेशमी सांस्कृति में लपेटे रखता है। ऐसे शोषकों से जन-जन की मुक्ति के लिए वे जन-क्रान्ति का आह्वान करते हैं।[81]

मार्क्सवादी दृष्टिकोण से प्रभावित कवि नेमिचन्द जैन तीव्रतम सघर्ष के इस युग मे अपनी कविताओ मे सामाजिकता को विशेष महत्व देते हुए कहते है कि "साहित्य मे प्रगतिशीलता मे मेरा विश्वास है और उसके लिए एक सचेष्ट प्रयत्न का भी मै पक्षपाती हूँ, किन्तु कला की सच्ची प्रगतिशीलता कलाकार के व्यक्तित्व की सामाजिकता मे है । कवि से प्रगतिशील होने की मॉग का अर्थ है कि वह जीवन की ओर अपने दृष्टिकोण को बदले। अपने ही सामाजिक दायित्व और स्थान को नहीं, बल्कि अपने काव्य के भी सामाजिक महत्व को समझे।"[82] इस वक्तव्य के अनुरूप ही उनकी कविताएँ समाज के प्रति सच्ची सवेदना व्यक्त करती दिखाई पडती है। "कविगाता है" शीर्षक कविता मे नेमिचन्द जैन उन लाखो नगे-भूखे नर-ककालो की वेदना से अत्यन्त द्रवित है जो अपने गरम रक्त से सींचकर महलो का निर्माण करते हुए अन्तत मौत को गले लगा लेते है। प्राप्ति की कुछ आशा न होते हुए भी मालिक के प्रति उनकी निष्ठा तथाकथित अभिजात्यो की क्रूरता पर कटु प्रहार करती है।[83] यह सामाजिक वैषम्य कवि को असहय है जिसे मिटाने के लिए वह लाल क्रान्ति को अनुचित नहीं मानता।[84]

कवि भारत भूषण अग्रवाल की प्रयोगवादी दौर मे लिखी गयी तार सप्तकीय रचनाओ मे मार्क्सवाद का प्रभाव दिखलाई पडता है। उस समय कविता जगत मे व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों को लेकर फैले विवादो के बीच वे अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए कहते है- " . यदि कविता का उद्देश्य व्यक्ति की इकाई और समाज की व्यवस्था के बीच के सम्बन्ध को स्वर देना और उसको शुभ बनाने मे सहायता करना है, तो हिन्दी के कवि को समाज से नाराज होकर भागने की बजाय समाज की उस शोषण सत्ता से लडना होगा जिसने उसको कोरा स्वप्नाभिलाषी और कल्पनाविलासी बना कर छोडा है।"[85] उनकी "मसूरी के प्रति" कविता उनके इस कविता विषयक वक्तव्य को साकार करती है जहाँ वे पूँजीपति शोषको के खिलाफ आवाज उठाते हुए शोषितों के प्रति

सहानुभूति पूर्ण सवेदना व्यक्त करते है।[86] शोषितो की सगठित शक्ति पर उन्हे पूरा भरोसा है, जो बादल बनकर पूँजीपतियो पर बरसने के लिए तैयार है।[87]

कवि प्रभाकर माचवे की समाजवादी दृष्टि से अनुप्राणित कविताओ मे जन-जन की सवेदना पिरोयी हुई है। प्रयोग-शीलता के इस दौर मे उनकी समाजवादी यथार्थ दृष्टि से प्रभावित "वह एक" कविता एक सामान्य अखबार बेचने वाले के चित्र को बडे ही सवेदनशील रूप मे प्रस्तुत करती है। अखबार मे लिखी खबरो व उसकी महत्ता से अनभिज्ञ वह उसे चिल्ला-चिल्लाकर इसलिए बेचा करता है क्योकि उसकी रोजी-रोटी उसी से चलती है।[88] जहाँ एक पूँजीवादी समाज मे व्याप्त अतडियो के सुखा देने वाली भूख का मर्मस्पर्शी रूप कवि के हृदय को दुःख व पीडा से भर देता है[89] वही लोक जीवन से सम्पृक्त अन्य कविताओ मे ग्राम्य जीवन के प्रति उनका अनुराग सर्वत्र नयी आभा बिखेरता दिखाई पडता है।

कविता को जन-साधारण की पूँजी मानने वाले डॉ० रामविलास शर्मा की कविताओं मे प्रगतिशीलता के स्वर स्पष्ट रूप मे देखे जा सकते है। तत्कालीन सकटग्रस्त वातावरण मे घुटता एकाकी मानव-व्यक्तित्व उन्हे बेचैन करता है,[90] तो वहीं दूसरी ओर उन्हीं सामाजिक सन्दर्भो में भूख, महामारी की विभीषिका झेलते 'रक्त-हीन तनों' से भरी धरती कवि को असह्य-पीडा से भर देती है।[91] इस भयावह पीडा से मुक्ति हेतु कवि शोषितो मे असन्तोष के बीज बोकर क्रान्ति का वातावरण निर्मित करना चाहता है।[92] लोक-जीवन में व्याप्त अभावो के सवेदनशील चित्रण के साथ ही साथ उनकी कविताओं मे भारतीय गॉवो का विविधताओ से भरा स्वाभाविक रूप भी दिखाई पडता है। गॉव से उन्हे अत्यन्त लगाव रहा है। हिन्दुस्तान का कोई भी गॉव उन्हे अपने गॉव की याद दिलाता है।

प्रयोगवादी काव्य के प्रवर्त्तक माने जाने वाले कवि सच्चिदानन्द-हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', जो "तारसप्तक" संकलन के सम्पादक है, के काव्य में प्रयोगशीलता 'कथ्य' और

'शिल्प' दोनो ही स्तरो पर देखी जा सकती है। वैयक्तिक सत्य को महत्ता देकर उसे व्यापक-सत्य मे परिणत के लिए वे सम्प्रेषण के साधनो पर विशेष ध्यान देते है। उनके अनुसार कवि का भोगा हुआ यथार्थ जब कविताओ के माध्यम से पाठक तक पहुँचकर उनके जीवन का भी सत्य बन जाता है तो उनकी कविता वैयक्तिक न रहकर सामाजिक बन जाती है। इतना ही नही उनकी कुछ कविताओ मे युग-बोध भी मिलता है जो कवि की सवेदना के साथ एकाकार हो जन-जन की करूणा के रूप मे अभिव्यक्ति प्राप्त करता है ।[93] कविताएँ लिखते हुए वे अपने काव्य को किसी भी सीमा मे प्रतिबद्ध नहीं करना चाहते है। उनके अनुसार कलाकार अपनी सोच के अनुरूप कुछ भी लिखने के लिए स्वतन्त्र है।

इन सभी तारसप्तकीय प्रयोगवाद कालीन कवियो की कविताओ पर दृष्टिपात करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये कवि युग-बोध से जुडकर ही अपनी जन-सवेदना को व्यक्त करते है । इनमे से अधिकाश कवियो की दृष्टि मार्क्सवादी साम्यवाद से प्रभावित दिखाई पडती है। उनकी कविताओ में जो 'व्यक्ति सत्य' अभिव्यक्त हुआ है, वह भी समाज से कटा नहीं है। प्रयोगवादी कवि एक निश्चित चौखट से बँधकर काव्य-रचना नही करता। अत उनकी रचनाओ मे कथ्य व शिल्प दोनो ही स्तरो पर विविधता के दर्शन होते है।

द्वितीय अध्याय – सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास – डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ० 33–34।

(2) हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ०–17।

(3) "ब्राह्मणहि ना जानन्ता भेद। यो ही पढेउ ये चारो वेद ।। 1 ।।

माटि पानि कुस लिए पढन्त। घर ही बइठी अग्नि होमन्त।

X X X

लोम उपाटे होय सिद्धि, तो युघति नितम्बहु।"

सिद्ध कवि सरहपा – दोहा कोश, पृ०–2।

उद्धृत – हिन्दी काव्य धारा – सम्पा० राहुल सास्कृत्यायन, पृ०–5।

(4) "कवि आसिग कलि अन्तरि जाइ। एक समाण नदी सई कोई।

X X X X

के नर सालि दालि भुजता। घिय घलहतु मच्छे विलहता।।"

कवि आसगु – जीव दयारास, पृ० – 31–32।

उद्धृत – हिन्दी साहित्य का आदिकाल – डॉ० हरिश्चन्द्र वर्मा, (अध्याय 5, आदिकालीन कृतिकार और कृतियाँ)।

(5) "स्वयभू रामायण" 1/3 । उद्धृत – हिन्दी काव्य धारा – सम्पादक राहुल सास्कृत्यायन, पृ०–25।

(6) "कुम्हरा कै घरि हाँडी ओछ, अहिरा के घर साँडी।

X X X

भणत गोरष त्रिगुणी माया, सतगुर होई लषावै ।।" (136/42)

उद्धृत – हिन्दी काव्य धारा – सम्पादक– राहुल सास्कृत्यायन, पृ० – 162।

(7) उद्धृत – हिन्दी काव्य धारा – सम्पादक– राहुल सास्कृत्यायन, पृ0 – 163।

(8) हिन्दी साहित्य कोश (भाग–2) – प्रधान सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा पृ0–154।

(9) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली (भाग–6), पृ0–211।

(10) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली (भाग–3), पृ0–89।

(11) बोलि विप्र सोधे लगन्न सुभ घरी परिठ्ठिय।

हर बौसह मण्डप बनाप कर भॉवरि गठिप।।

ब्रह्य वेद उच्चरहि होम चौरी जु प्रति पर।

पद्मावति दुलहिन अनूप दुलह प्रथिराज राज नर।। 69।।

"पद्मावती समय" – सम्पादक, विश्वनाथ गौड, पृ0–32।

(12) आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य परम्परा एव भारतीय सस्कृति – डॉ0 राकेश चतुर्वेदी, पृ0 12–13।

(13) कुमलाणी कन्त विण, जलह विहूणी वेल।

विणजारा री भाइ जिऊँ, गया धुकती मेल्ह।। 163।।

"ढोलामारू रा दूध", उद्धृत – हिन्दी साहित्य का सक्षिप्त इतिहास – डॉ0 रामकुमार वर्मा , पृ0–34।

(14) "खेत मे उपजे सब कोई खाये,
घर मे उपजे घर खा जाये।।" अमीर खुसरो
उद्धृत – हिन्दी साहित्य अनिर्दिष्ट शोध भूमियॉ– भगवती प्रसाद सिह, पृ0–20।

(15) "सक्कअ वाणी बहुअ न भावइ
पाउअ रस को मम्म न पावइ,
देसिल बअना सब जन मिट्ठा
तै तैसन जम्बओ अव हट्ठा।।" (कीर्तिलता 1/19–22)
उद्धृत– विद्यापति– सम्पादक, शिव प्रसाद सिह, पृ–202।

(16) ''खेती न किसान को, भिखारी को न भीख भलि।

बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।''

कवितावली – 'गोस्वामी तुलसीदास (उत्तरकाण्ड), पृ0स0 – 178।

(17) भक्ति काव्य और लोक जीवन – शिव कुमार मिश्र, पृ0–5।

(18) ''कबीर चार्‍यू वेद पढाई करि, हरि सू न लाया हेत।

बालि कबीरा ले गया, मण्डित ढढै खेत।।9।।'' (चाणक को अग)

कबीर ग्रन्थावली – सम्पादक माता प्रसाद गुप्त, पृ0–62।

(19) ''हमारै राम रहीम करीमा केसौ, अलह राम सति सोई।

विसमिल मेटि बिसभर एकै और न दूजा कोई ।। 58।।

कबीर गन्थावली – सम्पादक, माता प्रसाद गुप्त, पृ0 – 180।

(20) ''जो पै करता वरण विचारै।

तौ जनमत तीनि डाडि किन सारै।

X X X

कहो कबीर मधिम नहीं कोइ

सो मधिम जा मुखि राम न होइ ।। 41।।''

कबीर ग्रन्थावली – सम्पादक माता प्रसाद गुप्त, पृ0 170–171।

(21) ''एक जोति थै सब उतपन्ना, कौन बाम्हन कौन सूदा।। 57।।''

कबीर ग्रन्थावली – सम्पादक, माता प्रसाद गुप्त, पृ0 – 179।

(22) ''दुलहिनी गावहु मगलचार

हम घर आए राजा राम भरतार।। 1।।''

(23) "सन्तो भाई आई ग्यान की आँधी रे।

भ्रम की टाटी सबै उडानी, माया रहै न बाँधी ।। 6।।"

कबीर ग्रन्थावली – सम्पादक, माता प्रसाद गुप्त, पृ0–154।

(24) भक्ति काव्य और लोक जीवन – शिव कुमार मिश्र, पृ0–74।

(25) "जियन्त कन्त तुम हम्म गर लाई। मुझे कण्ठ नहि छोडहि साँई।

औ जो गाँठि कन्त तुम जोरी। आदि अन्त लगि जाय न छोरी ।। 3 ।।

जायसी ग्रन्थावली – सम्पादक राजनाथ शर्मा, पृ0 – 805।

(पद्मावती नागमती सती खण्ड)

(26) "हीरामत तब कहा बुझाई। विधि कर लिखा मेटि नहि जाइ।

अज्ञा देउ देखौ फिर देसा। तोहि जोग वर मिलै नरेशा ।। 7।।

जायसी ग्रन्थावली – सम्पादक रामचन्द्र शुक्ल, पृ0–21। (जन्म खण्ड)।

(27) "पत्रा काढि गवन दिन देखहि, कौन दिवस दहुँ चाल।

दिसा सूल चक दोगिनी सौह न चलिए काल।।8।। "जायसी ग्रन्थावली–सम्पादक प0 रामचन्द्र शुक्ल, (रत्न सेन विदाई खण्ड) पृ0–168।

(28) "भै छठी राति छठि सुरव भागी। रहस कूद सोरैनि बिहागी।।

भा विहान पडित सब आये। काढि पुराण जन्म अरथाए।।3।।

जायसी ग्रन्थावली – सम्पा0 – प0 रामचन्द्र शुक्ल, (पद्मावती जन्म खण्ड) पृ0–19।

(29) "नवल बसत नवल सब बारी। सेदुर बुक्का होई धमारी।।

खिनहि चलहिं, खिन चाँचरि होई। नाच कूद भूला सब कोई ।।7।।"

(30) "खेलि फाग सेदुर छिरकावा। चॉचरि खेलि आगि जन लावा ।। 13।।

"जायसी ग्रन्थावली" – सम्पादक– प0 रामचन्द्र शुक्ल (गोरा + बादल शुद्व खण्ड)

पृ0 – 291।

(31) "तपै लागि अब जेठ–असाढी। मोहि पिउ बिनु छाजनि भइ गाढी।।

तन तिनउर भा, झूटौ खरी। भइ बरखा, दु ख आगरि जरी ।। 16।।"

जायसी ग्रन्थावली – सम्पादक– राजनाथ शर्मा–पृ0–46। (नागमती वियोग खण्ड)

(32) "भक्ति काव्य और लोक जीवन" – शिव कुमार मिश्र, पृ0–74।

(33) "जन के दु ख उपजत किन काटत

X X X

पुनि पाछे अध सिधु बढति है, 'सूर' अवहि किन पारत।।10।।"

"विनयावली","सूर सागर"(प्रथम भाग),सकलनकर्ता, स्वामी श्री जयरामदेव जी महाराज,

पृ0–19।

(34) "कर्म रेखा मिटति नाही, जो विधि आनि ठई।।"।। 93 ।।

भ्रमरगीत सार – सम्पादक– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल व विश्वनाथ प्रसाद, पृ0–85।

(35) "महरि जशोदा ढोटा जाओ घर–घर देति बधाई।।

X X X X

कचन थार दूध दधि रोचत गावत चली बधाई।। 3।।"

सूर सागर (प्रथम भाग), पृ0 57–58।

(36) "गोवर्धन सिर तिलक बन्दियो, मेटि इन्द्र ठकुराय।

अन्नकूट ऐसो रचि राख्यो, गिरि की उपमा पाय।।

X X X X

सूर स्याम सो कहत ग्वाल, गिरि जेवत काहे न आयं ।। 286।।"

सूर सागर (प्रथम भाग), पृ0 – 149।

(37) हिन्दी साहित्य कोश (भाग 1) – प्रधान सम्पादक – डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा, पृ0–692।

(38) भ्रमरगीत सार – सम्पादक– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और विश्वनाथ प्रसाद, पद सख्या 25, 42, 45, 80।

(39) "आयो घोष बडो व्योपारी ।। 23।।"

भ्रमरगीत सार – सम्पादक– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ0–67।

(40) हिन्दुस्तानी (त्रैमासिक पत्रिका) – सम्पादक ब्रजेश्वर वर्मा, (सूर विशेषाक) "सूर काव्य मे लोक भावना" – डॉ0 भानुदेव शुक्ल का लेख।

(41) रामचरित मानस – गोस्वामी तुलसी दास, उत्तर काण्ड, 41वी चौपाई, पृ0–550।

(42) भक्तिकाव्य और लोक जीवन – शिव कुमार मिश्र, अध्याय – 7, पृ0 – 105।

(43) "सोचिउ विप्र जो वेद विहीना। तजि निज धर्म विषय लयलीना।

X X X X

सोचिउ शुद्र विप्र अवमानी। मुखर मान प्रिय ग्यान गुमानी।।172।।

रामचरित मानस (अयोध्या काण्ड) – तुलसी दास, पृ0–283।

(44) "वर्णाक्षय निज–निज धरम, निरत वेद पथ लोग।

चलहि सदा पावहि सुखहि नहि भय सोक न रोग।।20।।"

रामचरित मानस (उत्तर काण्ड) – तुलसी दास, पृ0–540।

(45) प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि से दण्ड प्रनामू।

राम सखा रिषि बरबस भेटा। जन्हु महि लुटत सनेह समेद्य।।" ।।243।।

रामचरित मानस (अयोध्या काण्ड) – तुलसी दास, पृ0–316।

(46) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली (भाग–3) पृ0–76।

(47) "भक्तिकाव्य और लोक जीवन" – शिव कुमार मिश्र, पृ0–80।

(48) "हिन्दी साहित्य का सक्षिप्त इतिहास" – डॉ0 रामकुमार वर्मा, पृ0 112–113।

(49) हिन्दी साहित्य का इतिहास" – सम्पादक, डॉ0 नगेन्द्र (उत्तर मध्यकाल) पृ0 298।

(50) "स्वेद–सलिलु रोमाच कुसु–गहि दुलही अरू नाथ।

दियौ हियौ सग हाथ कै हथ लेयै ही हाथ।।" उद्धृत-बिहारी रत्नाकर।

(दो0 259, पृ0–121) – श्री जगन्नाथदास रत्नाकर।

(51) "बुरौ–बुराई जौ तजै तौ चितु खरौ डरातु।

ज्यौ निकलकु मयकु लखि गनै लोग उतपातु।। ।।584।।

बिहारी रत्नाकर – श्री जगन्नाथ दास रत्नाकर, पृ0–272।

(52) "लौने मुहुँ दीठि न लगै यौ कहि दीनौ ईठि।

दूनी व्है लागन लगी,, दियै दिठौना, दीठि ।। 28।।"

बिहारी रत्नाकर – श्री जगन्नाथ दास रत्नाकर, पृ0–20।

(53) "दियो जु पिय लखि चखनु मै खेलत फाग–खियालु।

बाढत हूँ अति पीर सु न काढत बनतु गुलालु ।। 280।।"

बिहारी रत्नाकर – श्री जगननाथ दास 'रत्नाकर, पृ0–133।

(54) रीतिकालीन साहित्य का पुनर्मूल्याकन – डॉ0 राम कुमार वर्मा, पृ0–220।

(55) आधुनिक भारतीय इतिहास – बी0एल0 ग्रोवर, यशपाल, पृ0–263।

(56) "रोओ ! सब मुँह बाय–बाय ! हय हय टिक्कस हाय–हाय।

रोज कचहरी धाय–धाय! अमलन के ढिग जाय–जाय।।"

प्रेमघन सर्वस्व (प्रथम भाग) – सम्पादक, श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय, श्री दिनेश नारायण उपाध्याय, पृ0–185।

(57) भारतेन्दु ग्रन्थावली (पहला खण्ड) – सम्पादक– शिव प्रसाद मिश्र, पृ0–209।

(58) "हरि हम बारह बरिस कै, अब ही बाला रे हरी।

पापी बेईमान ।भला तै कुकरम कवन – विचारे रामा।।"

प्रेमघन सर्वस्व (प्रथम भाग) – श्री प्रभाकरश्वेर प्रसाद उपाध्याय, श्री दिनेश नारायण उपाध्याय, पृ0–536।

(59) प्रेमघन सर्वस्व (प्रथम भाग) – सम्पादक श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय, श्री दिनेश नारायण उपाध्याय, पृ0 533–534।

(60) भारतेन्दु ग्रन्थावली (दूसरा खण्ड) – सपादक व सकलनकर्ता ब्रजरत्न दास, पृ0–396।

(61) "विधि सो जब व्याह भयो दोउ को' मनि मण्डप मगल चॉवर भे।

X X X X

हरिचद महान अनन्द बढयौ दोउ मोद भरे जब भॉवर भे ।। 25।।

भारतेन्द्र ग्रन्थावली (दूसरा खण्ड) –सकलनकर्ता व सम्पादक–ब्रजरत्न दास, पृ0–777।

(62) इतिहास और आलोचक–दृष्टि–रामस्वरूप चतुर्वेदी,, पृ0 43–44।

(63) भारत भारती – मैथिली शरण गुप्त, पृ0–99।

(64) प्रिय प्रवास – अयोध्या सिह उपाध्याय 'हरिऔध' पृ0 – 254।

(65) "सासारिक सम्पत्ति पर सबका सम अधिकार हो।

वह खेती या शिल्प हो, विद्या या व्यापार हो।।

सुख–दु ख सम सबके लिए हो, इस नये समाज मे।

सबका हाथ समान हो लगा तख्त मे, ताज मे।।"

'साम्यवाद' शीर्षक कविता–गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'

प्रताप (पत्रिका), अप्रैल 1920, पृ0–8।

(66) छायापथ – डॉ0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, डॉ0 रामदेव शुक्ल, पृ0–79।

(67) "वे नृशस है वे जन के श्रम बल से पोषित,

दुहरे धनी जोक जग के, भू जिनसे शोषित।"'युगवाणी'(कविता सग्रह)–सुमित्रानन्दन पन्त, पृ0–3 ।

(68) "झोले से पुये निकाल लिए, बढते कवियो के हाथ दिये,

देखा भी नही उधर फिर कर, जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर।

चिल्लाया किया दूर दानव, बोला मै – "धन्य श्रेष्ठ मानव"।

"छाया तप" – सम्पादक प्रो0 डॉ0 सत्यनारायण त्रिपाठी, डॉ0 रामदेव शुक्ल, पृ0–25।

(69) (बादल राग – 6 शीर्षक कविता)

राग विराग – सम्पादक राम विलास शर्मा, पृ0–55।

(70) "चुन–चुन ले रे कन–कन रे, जगती की सजग व्यथाएँ।"

ऑसू – जयशकर प्रसाद, पृ0–58।

(71) "जिये तो सदा उसी के लिए यही अभिमान रहे, यह हर्ष/

निछावर कर दे हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारत वर्ष।।"

"स्कन्दगुप्त" नाटक – जयशकर प्रसाद, पृ0–157।

(72) "फूटे है आमो मे बौर

X X X

ऑखे हुई है गुलाल/गेरू के ढेले फूटे है।

"फूटे है आमो मे बौर" – शीर्षक कविता (निराला)

"राग विराग" – सम्पादक डॉ0 राम विलास शर्मा, पृ0–156।

(73) "अभिमन्यु – जैसे हो सकोगे तुम"। "भिक्षुक" (शीर्षक कविता)

छायातप – सम्पादक प्रो0 डॉ0 सत्यनारायण त्रिपाठी,, डॉ0 रामदेव शुक्ल, पृ0–20।

(74) काव्य–रश्मि–सम्पादक डॉ0 कन्हैया सिह, डॉ अनन्त मिश्र, पृ0–22।

(75) आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियॉ – नामवर सिह, पृ0–73।

(76) आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ0 बच्चन सिह, पृ0–278।

(77) आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियॉ – डॉ0 नामवर सिह, पृ0–76।

(78) "जब बाप मरा तब यह पाया/भूखे किसान के बेटे ने,/

घर का मलवा, टूटी खटिया,/कुछ हाथ भूमि, वह भी परती/"

"पैतृक सम्पत्ति" शीर्षक कविता।

"फूल नही रग बोलते है" –कविता सग्रह– केदानाथ अग्रवाल पृ0–74।

(79) "मिलो के मालिको को/अर्थ के पैचाशिको को/भूमि को हडपे हुए धरणीधरो करो

X X X X सर्वहारा की नवोदित सभ्यता से जीतता हूँ।" "मोरचे पर"

शीर्षक कविता। 'फूल नही रग बोलते है (कविता सग्रह)–केदारनाथ अग्रवाल, पृ0–78।

(80) "श्वानो को मिलता दूध–वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते है।

मॉ की हड्डी से चिपक ठिठुर, जाडे की रात बिताते है।।

"विपथगा" (शीर्षक कविता) हुंकार – रामधारी सिह 'दिनकर', पृ0–83।

(81) "तेरी रेशमी वह शब्द सस्कृति अध

देती क्रोध मुझको, खूब जलता क्रोध

X X X

तेरा ध्वस केवल एक तेरा अर्थ।"

"पूँजीवादी समाज के प्रति" (शीर्षक कविता) – मुक्तिबोध।

उद्धृत – तार सप्तक – सम्पादक अज्ञेय, पृ0–35।

(82) तारसप्तक – सम्पादक अज्ञेय, नेमिचन्द जैन का वक्तव्य पृ0–56।

(83) राजमहल वे,/जिनकी गहरी नीवो पर बलिदान हो गए

भूखे, नर–ककाल, अस्थि–पजर–से वे लाखे–मजूर।''

उद्धृत–तारसप्तक–सम्पा0अज्ञेय,।''कवि गाता है''शीर्षक कविता–नैमिचन्द जैन, पृ0–59–60।

(84) ''नव ज्वाल की भीषण प्रभा का लाल पावन रग-तडपता विद्रोह से अस्थिर सितारा।

आज पथ दर्शक वही है/चले आओ उसी आशा के सहारे ,।''

उद्धृत– तार सप्तक – सम्पा0 अज्ञेय।,''जिन्दगी की राह'' शीर्षक कविता, नैमिचन्द जैन, पृ0–70।

(85) उद्रधृत– तारसप्तक – सम्पा0 अज्ञेय। भारत भूषण अग्रवाल का वक्तव्य, पृ0–84।

(86) जब चीखा करती है क्षुधार्त नीचे मैदानो की बस्ती।

हॉ, मैने अपनी ऑखो देखा है विभेद यह, यह विरोध

जो साधारण घटना है अपनी पूॅजीवादी प्रणाली की।''

उद्धृत– तारसप्तक – सम्पा0 अज्ञेय। ''मसूरी के प्रति'' (शीर्षक कविता)।

भारत भूषण अग्रवाल, पृ0–91।

(87) ''युग का, युग की भूखी,, कमजोर हड्डियो का, जिनका पानी

है उठा खौल घिर रहा विश्व पर घटाघोप बादल बनकर।''

उद्धृत–तार सप्तक–सम्पा0 अज्ञेय। ''अपने कवि से'' शीर्षक कविता – भारत भूषण अग्रवाल, पृ0–85।

(88) उद्धृत–तार सप्तक–सम्पा0 अज्ञेय।'' ''वह एक'' शीर्षक कविता-प्रभाकर माचवे, पृ0–202।

(89) उद्धृत–तारसप्तक–सम्पा0 अज्ञेय।"गैंहू की सोच" शीर्षक कविता- प्रभाकर माचवे, पृ0–120।

(90) "एकाकीपन के साथी है केवल क्षगाल।"

उद्धृत– तारसप्तक – सम्पा0 अज्ञेय,"कवि" शीर्षक कविता–डा0 राम विलास शर्मा, पृ0–192।

(91) "बस भूख महामारी का आकुल क्रन्दन ।

X X X

पट गया अध–जली लाशो से कवि गुरू का प्रिय

यह हरा–भरा नन्दन वन।"

उद्धृत–तार सप्तक–सम्पा0 अज्ञेय,"गुरूदेव की पुण्य भूमि" शीर्षक कविता।

– डॉ0 राम विलास शर्मा, पृ0–201।

(92) "कुसस्कृति भूमि ये किसान की,

X X X

बोना महातिक्त वहॉ बीज असन्तोष का।

काटती है नये साल फागुन मे फसल जो क्रान्ति की।"

उद्धृत – तार सप्तक – सम्पादक अज्ञेय।" कार्यक्षेत्र" शीर्षक कविता।

डॉ0 रामविलास शर्मा, पृ0–232।

(93) उद्धृत – तार सप्तक–सम्पा0 अज्ञेय, 'मै वहॉ हूँ" शीर्षक कविता – अज्ञेय, पृ0–247।

तृतीय अध्याय

स्वातन्त्र्योत्तर परिवेश :– कवियो के सृजनशील व्यक्तित्व मे सहायक मुख्य प्रेरक–तत्व एव उनका काव्य विषयक दृष्टिकोण[पृ0स0 – ६१ – 153]

स्वातन्त्र्योत्तर परिवेश :– भारतीय लोक–तान्त्रिक व्यवस्था।

- स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता मे परिवर्तन के विविध आयाम।
- कवि चेतना का उदय विविध सन्दर्भ।
- कवि नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन शास्त्री, सुदामा पाण्डेय 'धूमिल', गजानन माधव 'मुक्तिबोध', रघुवीर सहाय, गिरिजा कुमार माथुर और सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' के सृजनशील व्यक्तित्व मे सहायक मुख्य प्रेरक तत्व एव उनका काव्य विषयक दृष्टिकोण।

किसी भी कवि की काव्य-सम्पदा का. मूल्याकन करते हुए सर्वप्रथम यह जानने की उत्सुकता होती है कि उसे 'सर्जनात्मक व्यक्तित्व' की प्रेरणा कहॉ से मिली। वे कौन सी ऐसी परिस्थितियॉ या तत्त्व होते हैं जो उसे काव्य-रचना को विवश करते है। परिवेश से निर्मित 'व्यक्तित्व' का विश्लेषण उसकी रचना के मूल्याकन मे अत्यन्त सहायक होता है। इसके बिना काव्य की मूल-सवेदना को पकडना असम्भव तो नहीं पर कठिन अवश्य है।

कवि समकालीन परिस्थितियो से प्रभावित तो होता ही है, साथ ही उसकी रचना मे उसकी 'मूल प्रकृति' का भी विशेष महत्व होता है दूसरे शब्दों में कहे तो कवि एक ओर जहॉ समाज से प्रभावित होता है वही दूसरी ओर वह समाज को अपनी प्रतिभा की तूलिका से रॅगता भी है। यह प्रतिभा उसे अपने पारिवारिक परिवेश से प्राप्त होती है। वस्तुत· तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियॉ, राजनीतिक-विचारधारा आर्थिक स्थिति व कवि का नितान्त निजी पारिवारिक जीवन ये सभी तत्व कवि की कविता को प्रभावित करते हैं। कुशल कवि इन सभी परिस्थितियो के पुष्पों से रस लेकर समाज को मधुमय काव्यात्मक सदेश देता है।

स्वातन्त्र्योत्तर परिवेशः भारतीय लोकतान्त्रिक व्यवस्था-

प्राचीनकाल से लेकर आज तक के इतिहास मे यों तो मूल्यहीनता की स्थिति कई बार आयी और उसने समाज को अध·पतित भी किया। पर द्वितीय विश्व युद्ध व स्वातन्त्र्योत्तर भारत में मूल्यों का यह विखराव कुछ अधिक ही दिखाई पडा। इन मूल्यों के विखराव का एक प्रमुख कारण तत्कालीन समाज का विज्ञान और प्रविधि की ओर अधिक रूझान है विज्ञान और प्रविधि का इस्तेमाल विश्व युद्ध काल में जम कर किया गया। इससे विश्वशान्ति के प्रतिमान डगमगाये। यह डगमगाहट देश, समाज, परिवार, धर्म व संस्कृति सभी क्षेत्रों में दिखाई पड़ी। वैज्ञानिक चेतना से उत्पन्न बौद्धिकता हमारी उपलब्धियों, मान्यताओं व दर्शन पर बोझ बनती गयी। विज्ञान के प्रभाव के कारण हमारी

नैतिक एव व्यावहारिक मान्यताए बदल गयीं। विज्ञान धीरे-धीरे हमारी सस्कृति में समाहित होने लगा। इससे सभी सामाजिक, सास्कृतिक राजनीतिक व आर्थिक मान्यताए प्रभावित हुई। विज्ञान से बुद्धिवाद को इस हद तक बढावा मिला कि 'बसुवैध कुटुम्बकम्' की भावना लुप्त होती गयी।

द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त होने के बाद भी युद्ध की मनोवृति प्रत्येक राष्ट्र मे कम होने के स्थान पर बढ़ी। वे युद्ध की विभीषिकाओं से निबटने के लिए पहले से कहीं अधिक तैयारी में जुट गये। फलत शीत युद्ध की स्थिति बनी रही। 'शीत-युद्ध' के बने रहने के कारण एक-दूसरे पर विश्वास की भावना में कमी आयी। मनुष्य ही मनुष्य के लिए खतरा बनता गया। इससे नैतिक शक्ति का ह्रास हुआ तथा कोमल भावनाओं का क्षरण हुआ। यह क्षरण मनुष्य में द्वन्द, संघर्ष, तनाव, कुण्ठा व अजीब का कसमसाहट पैदा करने लगा।

विश्व स्तर पर हो रहे इन वैज्ञानिक अथवा बौद्धिक परिवर्तनों के बीच १५ अगस्त सन् १९४७ का दिन, स्वतन्त्रता के लिए निरन्तर संघर्षरत भारतीय जनता के समक्ष एक नया सबेरा लेकर आया। लेकिन उसके एक दिन पहले देश को 'विभाजन' का ग्रहण ग्रस चुका था। पाकिस्तान के जन्म से साथ ही देश में साम्प्रदायिक दगे हुए। निर्दोष रक्त की धाराए बही। लाखों लोग अपने ही देश में शरणार्थी हुए। शान्ति के लिए किये जाने वाले प्रयासों को सफलता नहीं मिल पा रही थी। शान्ति के प्रयास में जी जान से जुटे गॉधी की ३० जनवरी १९४८ को हत्या कर दी गयी। मानवता के इस पुजारी की हत्या देश के लिए बेहद शर्मनाक थी।

स्वतन्त्रता की दहलीज पर कदम रखते ही देश में पुनर्निर्माण की प्रक्रिया आरम्भ हुई। शरणार्थियों को बसाने के लिए आवास, गरीबी, अशिक्षा आदि अनेक समस्याएँ देश में मुहँ खोले खडी थी। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के साथ ही एक नये युग का शुभारम्भ हो रहा

था- नव-भारत की प्रथम आवश्यकता थी देश की पिछडी अर्थव्यवस्था को सुव्यवस्थित व सुदृढ़ करना ताकि भारत विकास के पथ पर अग्रसर हो सके। भारतीय अर्थव्यवस्था की मूलाधार 'कृषि' अत्यन्त पिछडी हुई थी। कृषको पर सामन्तवादियो का अधिकार बना हुआ था। फलत· श्रमजीवी वर्ग की स्थिति निम्न व दयनीय बनी हुई थी।

स्वतन्त्र भारत की सरकार ने देश-हित को ध्यान मे रखकर अपनी आर्थिक योजनाएँ बनाई व उसे पूरा करने के लिए विदेशी पूँजी को आमन्त्रित किया। आरम्भ के कुछ वर्षों मे विनियोग कुछ कम हुआ, पर जैसे-जैसे विश्वास बढ़ता गया, विदेशी पूँजीपतियो ने अपनी अधिक पूँजी भारतीय उद्योगो मे लगाई। विदेशी पूँजी के सन्दर्भ मे सरकारी दृष्टिकोण था कि यह आपसी लाभप्रद शर्तों पर है। विदेशी पूँजीपतियो को लाभ अपने देश ले जाने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। अत· आजादी के बाद भी देश से धन बाहर जाता रहा। बहुत सी विदेशी कम्पनियों ने लाभ को दृष्टि मे रखकर भारतीय कम्पनी के रूप मे ही अपना पंजीकरण करवाया। अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से भारत के महत्त्व को ध्यान मे रखकर अमेरिका ने भी भारत में रूचि लेना आरम्भ किया। उसने भारत की आर्थिक स्थिति मे सुधार के लिए काफी धन देकर भारतीय अर्थव्यवस्था में अपना मजबूत स्थान बनाने का प्रयत्न किया।

विदेशी पूँजीनिवेश का एक दुष्परिणाम तो यह हुआ कि उसने भारत को आत्म-निर्भर बनाने के स्थान पर 'पर-निर्भर' बना दिया। और दूसरा दुष्परिणाम देश में पूँजीवादी मनोवृत्ति के प्रसार के रूप में दिखाई पड़ा। देशी उद्योगपति जो अब तक स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग ले रहे थे, स्वातन्त्र्योत्तर परिस्थितियों मे अपने हितो को प्रमुखता देने लगे। फलतः उससे सरकारी नीतियाँ भी प्रभावित हुई। यह देश की आम जनता के लिए अहितकर सिद्ध हुआ। व्यक्तिगत हितों को प्रमुखता देने की मनोवृत्ति ने राष्ट्रीय सम्मान को ठेस पहुँचाई। इससे सामाजिकता की भावना में भी बदलाव दिखाई पड़ा।

सरकार ने कृषि-सुधार की ओर ध्यान दिया। कानून बनाकर भूमि को राज्य की सम्पत्ति बनाया व लगान निश्चित कर दी। तथा वसूली का अधिकार राज्य-सरकार को मिला। इससे जमींदारी-व्यवस्था को आघात जरूर लगा, पर वह पूर्णत नष्ट नहीं हुई। गॉवो मे जमीदारों की मनमानी चलती रही, क्योकि उनके पास जमींदारी उन्मूलन के बाद भी बहुत बड़ा क्षेत्र जोत के लिए रहा। किसानो के पास इतना पैसा नहीं था कि वे इच्छित भूमि का मूल्य चुकाकर उसे खरीद पाते। जमींदारों की जबरदस्ती कृषक-वर्ग में असन्तोष उत्पन्न कर रही थी। सरकार धीरे-धीरे नियमो में संशोधन करती रही, पर विभिन्न सुधारो के बाद भी सामान्य कृषक सुखी नही था।

पंचवर्षीय योजनाओं के फलस्वरूप देश मे उद्योगों का विकास हुआ, पर बहुत से क्षेत्रों में आत्म-निर्भरता आने के बाद भी विविध समस्याएँ बनी रही। समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य अभी दूर था। एकाधिकार को सीमित करने के लिए सरकार प्रयत्नशील थी। इसी के तहत बैकों का राष्ट्रीयकरण किया गया। कुछ लघु उद्योगों का भी विकास हुआ। पर विकास के साथ-साथ मॅहगाई भी बढ रही थी, काला धन बढ़ रहा था व शोषण की मनोवृति भी बढ रही थी। अभी समाजवाद आकाश-कुसुम बना हुआ था।

स्वातन्त्र्योत्तर भारत निरन्तर भौतिक प्रगति करता हुआ समाज व अर्थव्यस्था को तेजी से प्रभावित कर रहा था। यान्त्रिक अविष्कारों ने उद्योगों के क्षेत्र मे हमारे उत्पादन को तो बढाया, पर कुटीर उद्योगों के लिए अनेक जटिलताएँ उत्पन्न कीं। उद्योगों की वृद्धि के साथ-साथ पूंजी व साख की मात्रा में वृद्धि की आवश्यकता महसूस हुई। साथ ही पूंजी व श्रम की समस्या भी जटिल होने लगी। औद्योगीकरण के फलस्वरूप आवास, शिक्षा व स्वास्थ्य सम्बन्धी मॉग भी बढने लगी, क्योंकि इससे गॉव से शहर जाकर मजदूरी व नौकरी करने की प्रवृति को बढावा मिला।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में कृषि-शिक्षा, तकनीकी शिक्षा व उच्चस्तरीय चिकित्सीय शिक्षा की ओर काफी ध्यान दिया गया। कृषि-शिक्षा को एक प्रमुख राष्ट्रीय मामला समझा गया । अत कृषि-कालेजो की सख्या में वृद्धि की गयी। तकनीकी सस्थान व कालेज भी बढे। दूसरी, तीसरी पचवर्षीय योजनाओ के दौरान देश मे कोई आठ कृषि-विश्वविद्यालयों की स्थापना की गयी। छात्रवृत्तिया देकर मेधावी छात्रों को आकृष्ट किया गया। पर जनसंख्या मे तीव्र वृद्धि होने के कारण उपलब्धियॉ कम ही दिखाई दी, और शिक्षा का स्तर लगातार गिरता गया। छात्रों की सख्या अधिक होने के कारण उनकी योग्यता व बेहतर स्तर का सही मूल्यांकन न हो सका। फलत उचित प्रेरणा के अभाव से उत्पन्न निराशा के कारण उनकी योग्यता मे निखार न आ सका। १६६० से १६७० के बीच विश्वविद्यालयों की डिग्री का मूल्य अचानक इतना गिर गया कि कई दीक्षान्त समारोहो, मे यह बात सुनने को मिली-'डिग्रियॉ नही नौकरियॉ चाहिए।' बेराजगारी की चिन्ता के कारण छात्रों में उच्च अध्ययन के प्रति रूचि कम हुई। अध्यापकों के अध्ययन और अध्यापन पर भी इसका प्रभाव पडा। उनके और छात्रों के बीच मानसिक असहयोग का माहौल बनता गया। इसका देश के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक भविष्य पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

स्वाधीनता प्राप्ति के साथ ही सामाजिक समस्याओं को एक नये दृष्टिकोण से देखा गया। सामाजिक बुराई 'अस्पृश्यता' (छूआछूत) को तुरन्त समाप्त करने के प्रयत्न किये गये। भारतीय संविधान के अनुच्छेद १७ में अस्पृश्यता खत्म करने के लिए व्यवस्था की गयी। अस्पृश्यता के आधार पर किसी को अयोग्य मान लेना कानून के अन्तर्गत दण्डनीय अपराध माना गया। संविधान के अनुच्छेद १५(२) के अनुसार धर्म जाति-पॉति, जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव किये बिना सभी नागरिकों को सभी स्थानों पर कुओं, तालाबों व सडकों का उपयोग किये जाने का अधिकार दिया गया। सामाजिक बुराइयों को दूर करने

के लिए बाद में भी अन्य अनेक कानून बने। और उनसे कुछ हद तक लाभ भी हुआ। पर इन सामाजिक बुराइयों को जड से समाप्त न किया जा सका।

भारतीय लोकतन्त्र आकार व जनसंख्या की दृष्टि से दुनियॉ का सबसे बडा लोकतन्त्र है। साथ ही, यहॉ की जनता को अन्य लोकतान्त्रिक देशों की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्रता मिली हुई है। भारतीय लोकतन्त्र में सभी वयस्कों को, चाहे वे किसी भी जाति या धर्म के हों, मतदान का समान अधिकार मिला हुआ है। जनता द्वारा चुनी हुई सरकार में जनमत के आदर की भावना मिली हुई है। यहाँ सत्ता विकेन्द्रित है। राष्ट्र की आवश्यकता व जनता की भावनाओं का आदर करते हुए भारतीय संविधान रचा गया है। लोकतन्त्र के महत्वपूर्ण पहलुओं की जड़े जन–जन में दृढ़ता के साथ समाई हुई हैं।

हमारे संविधान में यह स्पष्ट व्यवस्था है कि संसद में जिसे बहुमत प्राप्त होगा वही अन्य सभी दलों की सहायता से देश में शासन करेगा। किन्तु बहुत सारे राजनीतिक दलों के अस्तित्व में आने से लोकतन्त्र के व्यावहारिक पक्ष पर बुरा असर पड़ा। इससे शासन में अस्थिरता आयी, क्योंकि एक दल के अकेले बहुमत प्राप्त करने में असमर्थ होने या उसे अन्य दलों की सहायता से सरकारें बनानी पड़ती थी। वैचारिक मतभेद होने के कारण ऐसी सरकारों की स्थिरता अनिश्चित थी। स्वयं पार्टी में फूट व दल–बदल प्रणाली भी शासन की अस्थिरता के लिए उत्तरदायी बनती थी। १९६९ में ऐतिहासिक कांग्रेस पार्टी में विघटन ने इसी प्रकार की अस्थिरता को जन्म दिया।

भारतीय लोकतन्त्र का भविष्य राजनीतिक व अन्य संवैधानिक व्यवस्था की अपेक्षा सामाजिक व आर्थिक समानता पर अधिक निर्भर था। अतः स्वतन्त्रता के बाद संविधान निर्माताओं ने कुछ आर्थिक लक्ष्य रखे। ये लक्ष्य इस सोच के तहत बनाये गये थे कि राज्य अपनी आर्थिक सीमाओं के अन्दर रहकर इन्हें प्राप्त कर सके। ये इस प्रकार हैं – (१) सबको काम व शिक्षा

दिलाना (२) बेराजगारी, विकलागता, बीमारी, बुढापा आदि से ग्रस्त लोगो तथा अन्य जरूरत मन्द लोगो के लिए सरकारी सहायता जुटाना आदि।

आजाद भारत के सविधान से देशवासियो को यह आशा थी कि वह जनता के सकटो को दूर करेगा। विभिन्न समस्याओं का सन्तोषजनक हल अवश्य ही निकलेगा। समाजवाद की स्थापना का सकल्प पूरा होगा। सविधान में बनाये गये कानून, सिद्धान्त व नीतियॉ आम आदमी के हित को ध्यान मे रखकर ही बनायी गयी थी। पर आजादी के बाद की यथार्थ वास्तविकता तो कुछ और ही थी-

"सन् ४७ मे जिस अर्थनीति, विदेश-नीति, राजनीति और नौकरशाही तन्त्र को स्वीकार किया गया उसका तार्किक अन्त वही होना था, जिससे आज देश गुजर रहा है। देशी विदेशी लूट, आर्थिक मॅहगाई की मार, उत्पादन सम्बन्धों का पिछडापन, नौकरशाही का आतक तरह-तरह के भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, जाति-पॉति आदि कितनी ही समस्याओं ने हमारे समाज में जीवन को संकटपूर्ण बना दिया है।"[1]

स्वतन्त्रता के पहले तक तो राष्ट्र-हित, जन-हित प्रमुख था पर अब स्वहित साधना अधिक बलवती हुई। जातीयता, प्रान्तीयता, भाई-भतीजावाद, घूसखोरी, अनैतिकता आदि का ही बोलबाला हो गया। ईमानदार व्यक्ति इस वातावरण मे घुटन महसूस कर रहा था। स्वार्थी व घूसखोर व्यक्ति देश के सर्वेसर्वा बनकर जनता के शोषण में रत थे। हडतालो, आन्दोलनों, तालाबन्दी का दौर थमा नही था। इससे जन-जीवन त्रस्त था। त्याग के प्रतिरूप गॉधी के समान दूसरा युग-पुरूष पैदा नहीं हुआ, जो समग्र जन-सामान्य को साथ लेकर चल सके। फलत जन-जन के बीच खाई बढ़ती रही।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-कविता में परिवर्तन के विविध आयाम-

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद 'आम-जनता की आशा आकांक्षाओं की पूर्ति' के सन्दर्भ

पहले से भिन्न परिस्थितियों मे आम-आदमी को उसका हक अवश्य मिलेगा। पर सत्ता की प्रारम्भिक नीतियो व कार्यो से उनकी आशा निराशा मे परिवर्तित होती गयी। उनका मन नवीन स्पन्दनो को सुनने के लिए बेचैन था, पर जब स्वातन्त्र्य-पूर्व युग की पुनरावृत्ति होती उन्हे दिखाई दी (स्वतन्त्रता के बाद भी विशिष्ट वर्ग बने रहे और पीडित जन की विपन्नता में कोई कमी न आयी) तो ऐसी स्थिति में कवियों का आक्रोश स्वाभाविक था। यह विषम परिस्थिति साहित्यकारो के सामने चुनौती बन कर उभरी। उन्होंने इस विषम परिस्थिति के लिए जिम्मेदार सत्तासीनो के पूँजीवादी-शोषक चरित्र को अपनी लेखनी के माध्यम से उजागर करने व जनता की आवाज को समाज के हर वर्ग तक पहुँचाने का बीडा उठाया।

आजादी के बाद कवियो का एक वर्ग ऐसा भी दिखाई पड़ता है, जिन्हें सत्ता पक्ष से पूरा-पूरा सहयोग मिल रहा था। ये कवि उस समय व्यक्तिगत सुख-दुःख, निराशा, कुष्ठा से मुक्त कविताएं लिख रहे थे। उनका मानना था कि आजादी मिल गयी है तो सबकी आकांक्षाएँ अवश्य ही पूरी होगी। धीरे धीरे ही सब कुछ व्यवस्थित हो पायेगा। शीघ्रता पूर्ण सब कुछ पा लेने की आशा व्यर्थ है। अतः कुछ वर्ष तक सत्ता के विरूद्ध संघर्ष की आवश्यकता नहीं है। यह प्रवृति लेखकों के एक बड़े तबके में देखी गयी। समय बीतता गया, पर आम आदमी की स्थिति मे परिवर्तन न होते देख कवियों का यह वर्ग भी व्यक्तिगत दुःख-दर्द का आँचल छोड़कर आम-आदमी के दुःख-दर्द में शामिल हुआ और सत्तासीनो के खिलाफ अपनी लेखनी के माध्यम से जमकर प्रहार किये। इन प्रवृत्तियों के साथ ही स्वातन्त्र्योत्तर कुछ कवि रोमाटिक अन्दाज में अपनी रागात्मक, रंगीन भावनाओं को शिल्प के सौन्दर्य से सजाकर उसका चित्रात्मक विधान कर रहे थे।

स्वतन्त्रता के बाद नगरों के आडम्बर-युक्त, कृत्रिम-जीवन ने जनमानस को अपनी ओर तीव्रता से आकृष्ट किया पर कुछ समयोपरान्त औद्योगीकरण व नगरीय जीवन-बोध

के आकर्षण से उपजी अनेक समस्याओं ने .जन मानस के साथ-साथ कवियों कौ भी गॉव की ओर आकृष्ट किया। उन्हे ग्रमीण जीवन व सुषमा के बीच वह सहजता दिखी, जो शहरी कृत्रिमता से कोसो दूर थी । फलत कवियो ने गॉव की प्रकृति, वहॉ के जीवन की उन्मुक्तता, सरलता, सहजता को जीवन-आदर्श के रूप में अपनाने की प्रेरणा देते हुए अपनी लेखनी मे प्रमुख स्थान दिया।

वस्तुत आजादी के बाद की परिस्थितियो को लेकर कवियो के अलग अलग दृष्टिकोण के कारण उनकी कविताओं मे विविध काव्य-प्रवृत्तियो के दर्शन होते है। आजादी के बाद की कविता में दिखाई पडने वाले कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन इस प्रकार है-

(१) स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता उस तत्कालीन यथार्थ जीवन से सजीवनी प्राप्त कर रही थी, जो साम्प्रदायिकता, भ्रष्टाचार, जातिवाद, भाई-भतीजावाद से आक्रान्त था। सत्ता की दुर्नीतियो व पूॅजीवादी मनोवृत्ति का सीधा प्रभाव आम जनता की बदहाली से जुडा हुआ था। अत शासन के पूॅजीवाद समर्थक व जन-विरोधी चरित्र का पर्दाफाश करना इन कवियो का प्रमुख लक्ष्य था।

(२) स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता मे जीवन के प्रति आस्था दिखाई पडती है। उसने जीवन को 'जीवन' की तरह देखा, 'वर्ग', 'व्यक्ति' या 'समाज' में बॉटकर नहीं। जीवन के एक-एक क्षण की सच्चाई कवि की अनुभूति का विषय बनी है। यह अनुभूति उनकी कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्त होकर सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का निर्वाह अत्यन्त कुशलता से करती है।

(३) स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता झंझावातों के झेलने की शक्ति प्रदान करती है। इसका नायक कोई राजकुमार नहीं, वरन् वह आम आदमी है जो सत्ता व व्यवस्था की दुर्नीतियों से सबसे अधिक पीड़ित है। इस आम-आदमी की जीवनेच्छा को सुदृढ़ करना व उसमे आत्म-विश्वास जागृत करना इन कवियों के कथ्य का एक महत्वपूर्ण पहलू है।

(४) यह सत्य है कि स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता मे निराशा, कुण्ठा, हताशा व मरण धर्मिता दिखाई पडती है, लेकिन इसका कारण 'मात्र व्यक्तिगत दु ख-दर्द' ही नही है। आम-जनता का पुराने जड-मूल्यो से चिपके रहना व कवियो द्वारा उन्हे न बदल पाने से उत्पन्न दर्द भी उनमे निराशा उत्पन्न करता है। पर यह निराशा स्थायी नही रहती। अन्तत कवि आशावादी दृष्टिकोण के साथ नये परिवेश मे नये व सार्थक मूल्यो की स्थापना के प्रति आश्वस्त दिखाई पडते है।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता की एक प्रमुख विशेषता 'लोक के प्रति उनकी निष्ठा' है। उसका सहज रूझान लोक जीवन व उसकी सवेदनाओ की ओर है । सामान्य-जन के प्रति उसका लगाव आजादी-पूर्व के काव्य-सन्दर्भो से भिन्न है। आजादी के पूर्व की कविता मे तत्कालीन परिवेशानुरूप आन्दोलन का स्वर प्रमुख है, पर स्वाातन्त्र्योत्तर कविता में व्यक्त लोक जीवन विविध सहजानुभूतियों व सवेदनाओं से भरा है। गॉव का सहज प्राकृतिक रूप, वहॉ की मिट्टी की सोंधी महक ने कवियो को विशेष रूप से प्रभावित किया।

कवि चेतना का उदय · विविध सन्दर्भ

स्वातन्त्र्योत्तर कवियो मे जिन प्रमुख कवियो की कृतियो मे 'लोक सवेदना' का अध्ययन किया गया है, वे कवि लोक जीवन व सवेदना के विविध पहलुओ से गहराई से जुडे हुए है। नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन शास्त्री धूमिल, मुक्तिबोध व गिरिजा कुमार माथुर का जीवन ग्रामीण धरती के कणो से प्रारम्भ हुआ है। इस कवियों ने अपने जीवन में विषम परिस्थितियो के झझावतो को झेलते हुए अपनी प्रतिभा की दीपशिखा को सुरक्षित रखा है। कवि नागार्जुन, त्रिलोचन, धूमिल व मुक्ति बोध का बचपन अभाव की अग्नि में पला, यौवन काटो के पथ पर चलते-चलते छलनी हुआ और जीवन का उत्तरार्ध उत्तम भविष्य के सूर्योदय की प्रतीक्षा में ओस कण की तरह चमकता हुआ भले ही

लुढक गया हो किन्तु उन्होनें कभी आशा न ही छोडी। शोषित-पीडित जनो के दु ख-दर्द मे अपने दु ख की अनुभूति करते हुए उन्होनें इनके प्रति संवेदना ही व्यक्त नही की वरन् इनकी निम्नतम स्थिति के जिम्मेदार शासक व शोषक वर्ग को आवरणहीन करने का भरसक प्रयास अपनी लेखनी के माध्यम से किया। नागार्जुन धूमिल और मुक्तिबोध तो हनुमान की भॉति लका-दहन को तत्पर रहते हैं। केदारनाथ अग्रवाल और गिरिजाकुमार माथुर भी इनसे पीछे रहने वाले नहीं है। इनकी कविता के हाथ में न बुझने वाली अद्भुत चिन्गारी है। त्रिलोचन की 'धरती' तो हृदय को हिला देने की क्षमता रखती है। अज्ञेय की रचनाऍं शोषितों को 'बावरा अहेरी' जिसके लिए कुछ भी अबध्य नही है, से सुरक्षा प्रदान करने के लिए सघर्ष की ओर चलने की प्रेरणा देती है। मुक्तिबोध ॲंधेरे में पडे हुए दलितो-शोषितों के हाथ में न बुझने वाली मशाल देकर उन्हें सचेत करते है कि चॉद (पूॅंजीपति) की चॉदनी के छलावे कभी मत आना क्योंकि उसका मुॅंह सदा ही टेढा रहता है। रघुवीर सहाय शासन की दुर्नीतियों से इतना क्षुब्ध थे कि उन्होनें शोषितों-पीडितों व दलितों के अस्तित्व की सुरक्षा के लिए "आम हत्या के विरूद्ध" होकर अपनी लेखनी को अत्यन्त प्रभावकारी व जीवन्त रूप प्रदान किया।

इन कवियों की रचनाओं का प्रेरक तत्त्व न केवल उनका अपना भोगा हुआ जीवन मात्र है वरन् समाज मे पशुओं से भी बदतर जीवन जीने वाले किन्तु सबको अन्न-पानी, रहने के लिए महल, तन ढंकने के लिए वस्त्र देने वालों के प्रति-अमिट प्यार है। कवि के निजी पारिवारिक जीवन व विषम परिवेशिक स्थितियों ने ही मिलकर उनकी "काव्य-दृष्टि" का निर्माण किया । उनकी यह "काव्य-दृष्टि" उनके सृजनशील व्यक्तित्व का आइना है, जो जन-जन की संवेदनाओं से लबालब भरी हुई है, जिसे व्यक्तित्व के भली भाति विश्लेषण के द्वारा ही समझा जा सकता है।

नागार्जुन के सृजनशील व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक मुख्य प्रेरक तत्व तथा उनकी काव्य विषयक दृष्टि :-

कलाकार के सामाजिक-दायित्व के प्रति सजग कवि नागार्जुन अपनी कविताओं से सर्वत्र जीवन व जगत् की विसंगतियों व विद्रपताओं से जूझते व उनके प्रति आक्रोश व्यक्त करते दिखाई पड़ते हैं। जब हम तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक परिवेश में व्याप्त जड़ता व इनके बीच पिसते आम जन की व्यथा के प्रत्यक्ष साझीदार बनकर देखते हैं तो उनका यह संघर्ष या आक्रोश कहीं निरर्थक प्रतीत नहीं होता। नागार्जुन का बचपन इन विसंगतियों के बीच गरीबी की मार झेलते शोषित-पीड़ित जनों के साथ ही व्यतीत हुआ है। उन्हीं के शब्दों में ".. .. मेरे पिता मिथिला के एक साधारण गरीब किसान थे। पढ़े-लिखे वे कुछ थे नहीं। मुझे पढ़ाना चाहते थे। .... मुझे प्राइमरी स्कूल में डाला गया, पर मेरी पढ़ाई वहाँ न हो सकी। गरीबी के कारण गाड़ी आगे नहीं बढ़ी।"[2] अपनी शिक्षा व साहित्य-लेखन की चर्चा करते हुए आगे वे कहते हैं "उस समय संस्कृत-पाठशालाएं हुआ करती थी। मुझे ऐसी ही पाठशाला में दाखिल करा दिया गया। वहीं मैंने संस्कृत पढ़नी आरम्भ की। उन्हीं दिनों में संस्कृत में श्लोक लिखने लगा .... मेरा मन तो शब्दों के खेल में ही लगता था। मैं श्लोक ही गढ़ा करता था।"[3] उनके काव्य-गुरू थे - अनिरूद्ध मिश्र और पं० सीताराम, जिनके सहयोग से उन्होंने भाषा व छन्द सम्बन्धी ज्ञान अर्जित किया। जब उनके विद्धान् चाचा ने नागार्जुन के श्लोक लिखने की बात पिता से कही, तो उन्हें कुछ अच्छा न लगा, क्योंकि वे कुछ और ही आशा अपने पुत्र से करते थे। पर नागार्जुन ने अपने पिता की उम्मीदों की परवाह कभी नहीं की, क्योंकि बचपन में ही माँ पर किये गये अत्याचारों से क्षुब्ध नागार्जुन कभी दिल

से उनसे आत्मीय सम्बन्ध नहीं बना सके। मॉ के प्रति पिता के इस दुर्व्यवहार का उनके जीवन पर गहरा प्रभाव पडा, जिसे वह कभी भुला न सके और जिसकी मुखर अभिव्यक्ति उन्होनें अपने उपन्यास "रतिनाथ की चाची" मे की।

चार-वर्ष की उम्र में ही मातृ-विहीन हो जाने वाले नागार्जुन को जो चीज पिता से विरासत के रूप में प्राप्त हुई, वह है- उनका भ्रमणशील स्वभाव व गृहस्थ जीवन के प्रति उपेक्षा। पिता के समान ही भ्रमणशील होने के कारण वे भी आपका नियमित स्त्रोत न बना सके और गृहस्थ जीवन की देख-रेख मे विफल रहे। इस बात से यह अनुमान लगाना ठीक नहीं कि वे पारिवारिक-दायित्व से बिलकुल ही बेखबर रहे। नागार्जुन पिता के कृत्यो से असन्तुष्ट हो घर से भाग तो जाते हैं पर अपने गृहस्थ जीवन को वह कभी भुला नहीं पाते। घुमक्कडी करते वक्त भी उन्हें अपने परिवार का ध्यान रहता है, तभी तो वे कह सके है कि "वहॉ से (प्रकाशकों से रायल्टी का) पैसा वसूले तो दो बोरा धान डलवा आएँ गॉव में, फिर निश्चिन्त निकल जाए घुमक्कडी पर।"[4] उन्होनें एक गृहस्थ-व्यक्ति की भॉति घर की देखभाल कभी नहीं की, इस बात को वे स्वयं स्वीकारते है। "हमने नौकरी की ही नहीं तब स्थायी गृहस्थी कैसे होती। .... गाँव जाते रहते हैं लेकिन एक पल जो वह लगातार निरन्तर गृह-जीवन होता है, वह हमारा हुआ नहीं।"[5] उनकी पत्नी अपराजिता देवी को उनसे कोई शिकायत नहीं। वे कहती है ". ... ..जिसे अपनी चिन्ता नहीं, ऐसे आदमी से क्या शिकायत करें।"[6] पिता की मृत्यु के बाद उनकी पत्नी गॉव की जमीन से खाने लायक कमा लेती थी, अत उन्हें कमाने की महती आवश्यकता कभी प्रतीत नहीं हुई। पत्नी का परिवारिक दायित्व को भली-भॉति संभालना उन्हें इससे मुक्त रखने में सहायक हुआ।

पारिवारिक 'बंधन' को स्वीकार न करने वाले कवि नागार्जुन के स्वभाव का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि वे जहाँ कहीं भी रहते हैं उनसे नितान्त आत्मीय सम्बन्ध बना

लेते है। बच्चो, बडो व बूढो के साथ उनके जैसा ही व्यवहार उनके स्वभाव की सहजता का परिचायक है। उनकी तुनक-मिजाजी भी उन पर ही व्यक्त होती है जिसे वे आत्मीय मानते है। जिसे पसन्द नहीं करते, उसे कभी मुँह नहीं लगाते। इस सन्दर्भ में वे स्वय कहते है- "जिससे हम मिलना चाहे उसके लिए हम अति सुलभ है और जिससे न मिलना चाहे, उसके लिए दुर्लभ।"[7] नागार्जुन से मिलने वाला हर वह व्यक्ति जो उनके तुनक-मिजाजी वाले रूप को भली-भॉति जानता है, उनके सहज व्यवहार, रहन-सहन व जीने के ढग से अवश्य ही प्रभावित होता है। "खद्दर की मोटी पोशाक, मोटादाना पानी और न टूटने वाला सजीव सघर्ष"[8]-यह नागार्जुन के व्यक्तित्व का वह रूप है जो उन्हें जन-जन में प्रसिद्धि दिलाये हुए है। यह फक्कड़ और घुमक्कड कवि जन-जन के दिलों में उनका ही प्रतिरूप बनकर जीना चाहता है। यही जन उन्हें एक स्थान पर टिक कर विश्राम करने से रोकता है और वे ऐसे जन की पीडा को दूर करने के लिए सतत् चलते रहते है।

धार्मिक-कट्टरता, जातिगत-भेदभाव व छुआछूत की भावना तनिक भी उनके मन मे नहीं है। अत भ्रमण के दौरान उन्हें खान-पान व इससे उत्पन्न अन्य कठिनाईयों का सामना कभी नहीं करना पडा और बडी सहजता से इनका भ्रमण कार्य चलता हैं। यायावर जीवन के दौरान ही उन्होनें अनुभव किया कि साधारण जनों की अज्ञानता व अशिक्षा के कारण ही जाति व धर्म उनकी समस्याओं का मूल कारण बना हुआ है, जिससे सामाजिक विषमता बढती है व इसके फलस्वरूप जन-जन में स्वस्थ भारतीय-दृष्टि नहीं पनपने पाती। उन्हीं के शब्दों में "इतिहास साक्षी है कि हमारे समाज में वर्णवाद, जातिवाद, सम्प्रदाय और वर्ग की गन्दी नालियॉ बराबर बहती रही हैं। इसी पृथकत्व की भावनाओं ने अखिल-देशीय-भावना को उभरने से रोका है। ब्राह्मण-अब्राह्मण, सवर्ण अछूत जैसे पचड़ों ने ही एक सेहतमन्द व्यापक भारतीय-दृष्टि को पनपने नहीं दिया।"[9]

अत उन्होने जन-जन मे व्याप्त इन जाति व धर्मगत रूढियो व आडम्बरो की कटु आलोचना की। ब्राह्मण होकर भी उन्होने कभी ब्राह्मणत्व का रौब न झाडा। भिक्षु इसलिए बनना पडा कि संस्कृत के अध्यापन के दौरान उनके शिष्यो को अपने गुरू से उच्च आसन पर बैठकर पढने मे असुविधा होती थी, क्योंकि बौद्ध नियमों के अन्तर्गत बौद्ध-भिुक्ष ही गुरू के उच्च-आसन का अधिकारी था। कहने का तात्पर्य यह है कि धर्म और जाति उनकी दृष्टि में कभी महत्वपूर्ण नहीं रहे। वे अपनी जाति के उच्चवर्ग से जुडने की अपेक्षा सदैव अपने से निम्न माने जाने वाले लोगो से घुलमिल कर रहे। इसलिए अपनी कविताओं में उन्होने सर्वत्र ऊॅच-नीच की भावना का विरोध किया।

जन-जन की एकता का सपना सजोये कवि नागार्जुन ने अपने भ्रमणशील जीवन मे विविध अनुभवो से गहन साक्षात्कार किया । सन् १६३४ से १६४१ के बीच विभिन्न स्थानों पर भ्रमण करते हुए उन्होनें अनेक कार्य किये। आठ-दस महीनों तक पंजाब मे रहकर स्वामी केशवानन्द की "दीपक" नामक मासिक-पत्रिका का सम्पादन किया।[10] वहॉ से स्वामी केशवानन्द के आर्शीवाद के साथ दक्षिण की ओर गये। सन् १६३६ के अन्त मे श्रीलका गये, जहॉ उन्होनें मूल बौद्ध-ग्रन्थों के अध्ययन के लिए 'पालि' सीखी तथा बौद्ध-भिक्षुओ को संस्कृत का ज्ञान कराया।[11] इसी कार्य के चलते वे बौद्ध-भिक्षु बने थे। लका-प्रवास के समय ही समाजवादी अध्यापक-बन्धुओं से परिचय बढ़ा तभी मार्क्स, लेनिन स्टालिन की कृतियों को पढने का अवसर मिला। सन् १६३८ में लंका से वापिस आने पर अपने राजनैतिक गुरू विख्यात किसान नेता स्वामी सहजानन्द के सम्पर्क में आने पर ही इन्होंने प्रगतिशीलता[12] का पहला पाठ पढ़ा । स्वामी जी ने उनसे कहा "क्या करोगे पुरातत्त्व का, पुरालेख का, नये तत्त्व से जूझो, नये लेख को बाँचो ।" इस कथन ने उनके जीवन में आशातीत परिवर्तन कर दिया और वे वर्तमान समस्याओं से मुँह मोड़कर अतीत की ओर न जा सके। १६३८ में पुरातत्त्व की जानकारी के लिए तिब्बत यात्रा पर

जाने के निर्मित से भारत लौट आये, पर बदली हुई मनोवृत्ति के कारण तिब्बत न जाकर भारत मे ही किसान-आन्दोलन के नेतृत्वकर्त्ता स्वामी सहजानन्द के सहयोगी हुए और उनके जेल जाने पर उन्होनें स्वय आन्दोलन का नेतृत्व किया, जिसके कारण उन्हे भी जेल-यात्रा करनी पडी।[13]

इस भ्रमणशील जीवन काल में विविध कार्यो को करते हुए नागार्जुन दलित-पीडित जन की ओर सर्वाधिक आकर्षित हुए। उनके हाथों में मजबूती से लेखनी पकडाने वाला यह दु खी-पीडित जन ही है, जिनकी अन्तहीन पीडा उनकी लेखनी को विश्राम नहीं करने देतीं। वे पीडित-जनो के बीच में रहकर उनके हृदय की व्यथाओं मे समाविष्ट रहे। अपनी कविताओ में व्यक्त किये गये जीवन के कटु अनुभवों को उन्होंनें पग-पग पर भोगा है। गरीबों की व्यथा का भुक्त भोगी यह कवि तत्कालीन यथार्थ से मुँह मोडकर कविता के स्वप्निल-आकाश में विचरण करता कहीं भी नजर नहीं आता। सच कहा जाय तो, शोषित-पीडित-दलित जन-जीवन के साथ अपने को विलीन कर देने वाले कवि नागार्जुन की पहचान ही दुःख सवलित मानवता की पीडा का साकार रूप है। नगरों में रहते हुए भी वे कभी सीमान्त बस्तियों में अभावों में सॉस लेने वाले दुःखार्त जनों को विस्मृत न कर सके। उन्ही के शब्दों में "जब कभी मैं ग्रमाचलों के किनारे-किनारे बसी हुए झुग्गियों की दुनियॉ में जाता हूँ, तो सुविधा प्राप्त वर्गो द्वारा परिचालित राजनीति के प्रति मेरा रोम-रोम नफरत में सुलग उठता है।"[14] इन झुग्गियों में बसे लोगों का पीड़ादायी जीवन ही उन्हें इस स्थिति के जिम्मेदार व्यक्तियों, राजनीतिज्ञों, व पूँजीपतियों पर कटु प्रहार करने को विवश करता है और वे कह उठते है कि इन सामाजिक-विषमताओं व विद्रूपताओं के बीच वे कैसे प्रेम और शान्ति की कविता लिखें। अपने जैसे कोटि-कोटि जनों की दयनीय स्थिति ही उनसे आक्रोश भरी व्यग्यपूर्ण कविताओं की अग्निमयी सृष्टि कराती है।[15]

देश मे बढती पूजीवादी मनोवृति व राजनीतिज्ञो का इन वैभवशाली शक्तियों से गठजोड उन्हे असह्य है, क्योकि इसका सीधा प्रभाव आम-जनता पर पडता है। आम जनता के हित मे बनने वाली नीतियो का मात्र पन्नो पर ही सुशोभित होना कवि में सत्ता के प्रति आक्रोश उत्पन्न करता है। इन स्थितियो मे कवि नागार्जुन प्रश्न करते है कि क्या यह स्थितियॉ लेखक की चिन्ता के विषय नही ?[16] कवि नागार्जुन अपने को हर उस व्यक्ति के साथ खडा करते है, जो इस विषमता को मिटाने में कृतसंकल्प है। उनकी लेखनी एक ऐसे समाज के सृजन की पक्षधर है, जहॉ पीडित-जन जागरूक होकर अपने अधिकारों की लडाई लड सके। इस अर्थ में काव्य में सार्थक पक्षधरता या प्रतिबद्धता को वे अनुचित नही मानते। अपनी एक कविता में वे कहते हैं-

"प्रतिबद्ध हूँ, जी हॉ प्रतिबद्ध हूँ
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त
संकुचित-स्वार्थ की आपा-धापी के निषेधार्थ
अविवेकी भीड की भेडिया-धसान के खिलाफ
अन्ध बधिर व्यक्तियों को सही राह बतलाने के लिए।"[17]

नागार्जुन अपने साहित्य में ही नहीं वरन् जीवन में भी पीडित जन की संवेदना से गहरे स्तर पर जुड़े हुए है। इनके हित कुछ कर सकने की आशा के साथ ही उन्होनें मार्क्सवाद को व्यावहारिक स्तर पर अपनाया, क्योंकि मार्क्सवादी-सिद्धान्त शोषित-पीड़ित जन को दु:ख से मुक्ति के प्रमुख लक्ष्य के लेकर ही अस्तित्व में आया था। इसी शोषित-पीडित वर्ग की चिन्ता को केन्द्र में रखते हुए वे मार्क्सवादी विचारधारा के अलावा गॉधीवादी, सुभाषवादी, समाजवादी, आदि विचारधारा वाले सगठनों के साथ जुड़े, पर अपने स्पष्टवादी मुखर स्वभाव के कारण उन्होंने किसी सिद्धान्तहीन संगठन से समझौता नहीं किया। वे कहते है- "हम संगठन के विरूद्ध नहीं है, लेकिन संगठन के साथ होने का

मतलब अगर यह लगाया जाता हो कि हम अपने विवेक के शत्रु हो जाय तो हमे स्वीकार नहीं। हम सर्वहारा के साथ है अपनी राजनीति मे, अपने साहित्य मे किन्तु हमे इस विषय में किसी की लगायी कोई कैद मजूर नहीं है।"[18] स्पष्ट है कि उनका कवि किसी भी राजनीतिक पार्टी से सम्बद्ध होकर नही वरन् तत्कालीन राजनीति से प्रभावित शोषितों के पक्ष मे काव्य सृजन करता है। अब अगर कोई पार्टी या खेमा गरीबो, पीडितो व शोषितो के लिए कुछ करना चाहता है तो लेखक का उससे मदद लेना अनुचित नहीं।[19]

पर तानाशाही राजनीतिक शक्तियो के वे खिलाफ है। इनसे सर्वहारा वर्ग की मुक्ति हेतु सगठित जन-सघर्ष के लिए जनमत तैयार करने को कवि अपने प्रमुख दायित्वो मे से एक मानते है। उन्हीं के शब्दो में "शोषण और तानाशाह शक्तियों के खिलाफ जनमत तैयार करना मेरा पहला काम हो जाता है। सघर्ष के लिए जो प्रतीक मुखरित होते है, उन्हे उभारता हूँ ताकि रग रग में वह माहौल पैदा हो जाए।"[20]

नागार्जुन को युवा-पीढ़ी का वही कवि पसन्द है, जिसकी रचना में मौजूदा सघर्ष मुखर हो।[21] अपनी ही कुण्ठा, घुटन को लेकर आत्म केन्द्रित रहने वाला कवि उनकी दृष्टि मे निरर्थक काव्य-रचना करता है, क्योकि कविता की सार्थकता तो तभी है जब कवि उसमे अपनी व्यथा व उल्लास का साधारणीकरण का सके।[22] कविता की रञ्जकता को वे अस्वीकार नहीं करते, पर वे अच्छी तरह जानते है कि देश में "शिक्षा का अनुपात कभी इतना नहीं होगा कि सबके सब कालिदास के 'मेघदूत' का आनन्द ले सकें। इसलिए हमारे युग के कवि को मोटे मुद्दों को लेकर भी कविता लिखनी होगी।"[23] इसी क्रम में आगे वे कहते है कि "मेरे लिए भूख अभी तो स्थायी भाव है। जब तक यह है, तब-तक मुँह कैसे फेरा जा सकता है इस ओर से ।"[24] स्पष्ट है कि देश में व्याप्त भूख और इससे जुड़ी समस्याएँ कवि को मनोरंजन का साहित्य लिखने से रोकती हैं। उनके लेखन-परिवार में खेतिहर, मजदूर, मेहनतकश, ठेला खींचने वाले, लारी चलाने वाले, भिखारी, बूढ़े व बच्चे

शामिल है न कि आराम करने की ऊब से बेचैन लोग।[25] कविता रचते समय यही जन उनके सामने रहते है। इन्ही की पीडा व अन्य जीवनानुभव इन्हीं के बीच प्रचलित व शब्दो के माध्यम से अभिव्यक्ति पाते है। परिस्थितियॉ चाहे कैसी भी हो, उनकी कविताओ मे व जीवन मे भी साधारण जन से उनकी निकटता कभी कम नहीं होती। यह निकटता ही कवि को इनके हित के लिए सक्रिय योगदान करने को सदैव तत्पर रखती है। अन्य लेखकों से भी कवि यही अपेक्षा करते हुए कहते हैं "मै सक्रिय हूॅ। अन्य लेखक भी सिर्फ हाथ सेकने के लिए ही न खड़े हों, बल्कि इस विशाल देश के करोड़ो शोषित-पीडित इन्सानों की जिन्दगी को बेहतर बनाने और एक नये मानवीय, शोषणविहीन समाज की रचना मे अपनी सक्रिय साझेदारी निभाएँ।"[26]

अन्ततः कहा जा सकता है कि जन-जन के दुःखों से सदैव उद्वेलित रहने वाले नागार्जुन के व्यक्तित्व ने उनके कृतित्व को वह रूप प्रदान किया, जिसमे जन-जीवन के प्रति गहरी आस्था, तथा मानव को सही मंजिल तक पहुॅचाने के लिए सुव्यवस्थित सोपान दिखाई पड़ता है।

केदारनाथ अग्रवाल के सृजनशील व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक मुख्य प्रेरक तत्व तथा उनकी काव्य विषयक दृष्टि -

कवि केदारनाथ अग्रवाल पेशे से वकील रहे हैं। इस पेशे में लोग गलत-सही किसी भी तरह से मुकदमें जीतकर दौलत इकट्ठी करते हैं, पर कवि केदारनाथ जी ने अपने ईमान को गिरवी रखकर कभी मुकदमा नहीं लड़ा। ईमानदारी की कमाई पर ही वे सदैव गुजर-बसर करते रहे हैं। सरकारी वकील हो जाने पर भी छप्पर के मकान में रहने वाले कवि केदार ने कभी पक्के मकान या कोठी में रहने का स्वप्न नहीं देखा, न अपने रहन-सहन में कोई परिवर्तन किया और न ही पहले की भाँति स्टेशन रोड पर आम-जनों के बीच बैठना ही

छोडा, क्योकि दिखावटी जिन्दगी उन्हे कतई पसन्द नहीं थी। उन्हीं के शब्दों मे "वकील हो गया पेट भरने के लिए। तो पेट भरने के लिए अब भी, बस खाने भर को मिल जाय तो कोई जरूरत नही किसी चीज की, न कपडे की, न कोई।"[27] वकालत ने उनके जीवन व व्यक्तित्व पर काफी गहरा असर छोडा है। वे इस बात को सहर्ष स्वीकार करते है कि वकालत ने ही उन्हें सच्चा आदमी बनाया और दूसरे लोगों को भी समझने व परखने की दृष्टि दी। अपने कवि रूप को सफल बनाने में वे वकालत के योगदान को स्वीकार करते हुए स्वय कहते है कि अगर वे वकील न होते तो असफल कवि होते क्योकि उनकी कविताओ मे दिखाई पडने वाली सत्य की पकड उन्हे कचहरी से ही मिली।[28] कविता के वे इस अर्थ मे शुक्रगुजार है कि उसने ही उन्हे मार्क्सवादी दृष्टिकोण जानने के लिए प्रेरित किया जिससे से भाववादी संसार से निकलकर तत्कालीन यथार्थ जगत् की स्थिति पर गहराई से विचार कर सके। उन्ही के शब्दों मे "कविता से अगर प्रेम न होता तो न मैं मार्क्सवाद पढ पाता, न मुझे कोई रूचि होती। कवितई के सिलसिले में धीरे-धीरे उससे सम्पर्क हो गया।"[29] अत कहा जा सकता है कि वकालत और मार्क्सवाद ने उनके रचना कर्म को सँवारकर उसे सार्थक व सच्ची (या सही) पहचान दी।

ऐसे कृतज्ञ व ईमानदार-व्यक्तित्त्व के धनी कवि केदारनाथ अग्रवाल का जन्म कमासिन (जिला बॉदा) के एक ऐसे परिवार में हुआ था, जहॉ सम्पन्नता के बावजूद रहन-सहन, खान-पान व पहनावा-ओढावा आदि सभी कुछ साधारण ढग का था। उनके गॉव के अधिकांश परिवार गरीब थे। गरीबों को मुफ्त दवा देने वाले उनके पिता के मन मे इनके प्रति कोई भेदभाव नही था। इसीलिए बालक केदार को उनके गरीब बच्चों के साथ खेलने की मनाही न थी। वे उनके घर भी आते-जाते थे। अत सवेदना के स्तर पर वे बचपन से ही गरीबों की मर्मस्पर्शी व्यथा से अन्तरंग रूप में परिचित व प्रभावित रहे हैं। बचपन मे अपने गॉव कमासिन में देखे गये भूख के भयावह दृश्य को वे आज तक

नहीं भुला पाये है – " जब गॉव के भूखे लोग इनकी बाबा के गोदाम से पुराने मछुवे को पाकर कृत-कृत्य हो गये थे और बाबा की जय-जयकार करने लगे थे।"[30] इसी तरह रायबरेली मे देखा गया गरीबी व भूख का साक्षात् रूप अक्सर उनकी ऑखों के आगे तैर जाता है।[31] इस भयावह गरीबी व भूख का "उनके बाल-मन पर ऐसा अमिट प्रभाव पडा कि बाद को जब उनका कवि प्रकट हुआ तब यह दु ख दर्द और सघर्ष, हाडतोड मेहनत, अमीरी की ओढी हुई ठसक की तुलना मे गरीबी की सहजता, निर्मलता आदि उनकी कविता में हजार-हजार कठों में फूट पडी।"[32]

गरीबो से हिल मिल कर रहने वाले बालक केदार की शिक्षा की शुरूआत कमासीन के ग्रामीण माहौल में ही एक सामान्य पाठशाला से होती है, जहॉ वह साधारण विद्यार्थी की भॉति "काठ की पाटी को कालिख से रगते, घुट्टे से घोटकर चमकाते, बोरके की गीली खडिया से, सेंठे की कलम से लिखते, ऊबने पर धूल में गोल दायरा बनाकर उसमें मक्खी मारकर रखते, धूप सरक जाने का इन्तजार करते और छुट्टी होने पर 'आठ पॉंच तेरा भइ छुट्टी की बेरा' चिल्लाते, पाटी बोरका बस्ता लटकाये शकल को कालिख से कलूटी बनाये घर भाग जाते।"[33] कमासिन मे कक्षा तीन तक पढ़ने के बाद उनके पिता आगे पढने के लिए उन्हें रायबरेली भेज देते हैं। माता पिता से दूर रहने पर उन्हें अपने सभी कार्य अपने हाथों से करने की आदत पड गयी थी जो आज तक नही छूटी। रायबरेली में कक्षा छह तक पढने के बाद अपने पिता के साथ रहते हुए क्रमश कटनी और जबलपुर से उन्होने कक्षा सात व आठ पास किया। उसके बाद सन् १९२७ में केदार जी अपने पिता के साथ इलाहाबाद आ गये[34] और फिर वही रहकर बी० ए० तक पढाई की। तत्पश्चात् १९३८ में कानपुर से "लॉ" की डिग्री लेकर बॉदा लौटे और वही वकालत करते हुए स्थायी रूप में रहने लगे। कवि केदारनाथ अग्रवाल ने ये विभिन्न शैक्षिक डिग्रियॉ

अवश्य प्राप्त की पर उनकी इस तरह की ऱटन्तु विद्या में कभी रूचि न रहीं । उन्हीं के शब्दो में "मुझे याद नहीं होता था । किताबों से रूचि नहीं थी – कोर्स बुक से ।"[35]

उनके पिता श्री हनुमान प्रसाद कला-प्रेमी व्यक्ति थे । साहित्य व सगीत में उनकी विशेष रूचि थी । कवि केदार के शब्दो मे- "ये बडे बुद्धिमान और इनकी स्मरण शक्ति बहुत अच्छी थी । घर में रहकर हमारे पिता ने सस्कृत पढी । फारसी भी जानते थे। कविता लिखते थे ।"[36] ऐसे पिता की सन्तान केदार जी को बचपन से साहित्यिक वातावरण मिला। पिता के साथ जब वह कटनी में रहकर पढाई कर रहे थे, तो वहॉ का साहित्यिक माहौल केदार जी को कविता की ओर प्रवृत करने में सहायक बना। जबलपुर मे होने वाली साहित्य-चर्चाओं व समस्या पूर्ति सम्बन्धी गोष्ठियों में केदार जी अपने पिता के साथ अवश्य जाते थे, जिससे उनका साहित्य के प्रति रूझान स्पष्ट होता है। पिता के सान्निध्य से धीरे-धीरे उनका काव्य के प्रति लगाव बढता गया और वे इसके प्रति अधिक सक्रिय होते गये।

इलाहाबाद के साहित्यिक समाज ने केदार जी को कविता के प्रति गम्भीर बनाया। वहॉ "रसाल जी द्वारा स्थापित 'रसिक-मंड़ल' में कवित्त-सवैया और समस्या-पूर्ति वाले ब्रजभाषा के कवि आते थे। केदार जी इन गोष्ठियों के असर से ब्रजभाषा की ओर झुके। ..... सरस्वती के माध्यम से यहॉ खडी-बोली काव्य से भी केदार जी का परिचय स्थापित हुआ।"[37] पर ब्रजभाषा के परिवेश के कारण केदार जी ने भी प्रारम्भ में कवित्त सवैया ही लिखे, जो 'सेवा' व कालेज मैगजीन में छपे भी।[38]

इन्टर में पढ़ते हुए अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" के "प्रिय प्रवास" व सुमित्रानन्दन पन्त जी के "पल्लव" कविता संग्रह से विशेष रूप से प्रभावित केदार जी धीरे-धीरे खडी बोली की ओर प्रवृत हुए। इसी समय उन्होने पहली बार पन्त व निराला जी को देखा। निराला जी का प्रथम दर्शन उन्हें आकृष्ट न कर सका, पर बाद की मुलाकातों

मे निराला ने उन पर अपनी अमिट छाप छोडी। निराला जी के यहॉ ही उनका डा० राम-विलास शर्मा से परिचय हुआ। जिनके सान्निध्य ने ही उन्हे मार्क्स के चिन्तन से अवगत कराया। बी० ए० करते हुए उनका नरेन्द्र शर्मा व शमशेर जी से परिचय हुआ। ये सभी कवि उस समय नये रचनाकारो मे गिने जाते थे। इसी समय केदारजी ने 'बालेन्दु' नाम से गीत लिखे, जो "माधुरी" पत्रिका व कभी-कभी "सरस्वती" मे छपे भी थे।[39]

कानपुर से "ला" करते हुए केदार जी मजदूरों के जीवन से निकट से परिचित हुए। यहीं रहते हुए बालकृष्ण बलदुआ जी के प्रगतिशील विचारों ने उन्हे अत्यधिक प्रभावित किया। इनके बीच हुई साहित्यिक बहसो ने केदार जी को तत्कालीन यथार्थ की ओर गहराई से सोचने पर विवश किया। उन्हीं के शब्दों में "कानपुर का विशेष प्रभाव पडा। वहॉ के मजदूर वर्ग का जीवन देख-सुन और समझ सका। राजनीति भी कुछ कुछ आन्दोलित करने लगी . . . ..। वकील होते-होते तक मैं मार्क्सवाद के जीवन-दर्शन से अपनी मानसिकता बनाने लगा।"[40]इससे पूर्व वे भाववादी संस्कारो से युक्त थे, वे ऐसी ही कविता लिखते थे। उन्हीं के शब्दों में-"पहले मेरे संस्कार भाववादी थे। दुनिया अपने अस्तित्व मे मायावी लगती थी। वह मोहती थी। .... .उसी मोह से मेरी मानसिकता बनती थी। मेरा इन्द्रिय-बोध मुझे उसी ओर ले जाता था । मैं भाववादी कविताऍ लिखता था।"[41]आम आदमी के जीवन जीने के संघर्ष को निकट से देखने व समझने के बाद धीरे-धीरे कवि की मनस्थिति में परिवर्तन हुआ और वे यह सोचने पर विवश हुए कि आखिर इस स्थिति का जिम्मेदार कौन है ? उनका ध्यान सर्वप्रथम तत्कालीन व्यवस्था पर गया, जहाँ "लोकतन्त्र" (जनता का शासन) के नाम पर लोगों का शोषण किया जा रहा था। मार्क्सवाद के जीवन-दर्शन से अपनी मानसिकता बनाने वाले कवि केदार को ऐसे वर्ग-विभाजिल समाज की जीवन पद्धति अरूचिकर लगने लगी तथा श्रम व समाजवाद के

सिद्धान्त प्रिय लगने लगे।[42] सच्चे लोकतन्त्र की कामना करने वाले कवि केदार व्यवस्था के बारे मे अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते है कि "ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, जो समता, न्यायप्रियता और समान अवसर देने की क्षमता रखती हो और आदमी को इसी ससार मे द्वन्द्व से मुक्त करने के लिए प्रतिबद्ध हो। तभी सच्चा लोकतन्त्र होगा।"[43] उनके अनुसार इस प्रकार से सच्चे लोकतन्त्र की स्थापना होने से मानवीय धरातल पर सभी मनुष्य एक दूसरे को प्रेम की दृष्टि से देखेंगे, क्षेत्रीयता व प्रान्तीयता मनुष्यों के बीच अभेद्य-दुर्ग बनकर नहीं खड़े होंगे, पूँजीवाद का सर्प अनायास ही शोषितो को नहीं डस सकेगा और न्यायालय में अन्याय का ताडव नहीं हो सकेगा।[44] ऐसे शोषण विहीन, समतामूलक समाज की कामना करने वाले कवि केदार अपनी रचनाओ मे ऐसे ही समाज की रचना में प्रयासरत दिखाई पडते है। उनका यह प्रयास उनकी कविताओं में कहीं पूंजीवादी व्यवस्था पर व्यग्य पूर्ण प्रहार के रूप में देखा जा सकता है, (क्योंकि यही पूँजीवादी व्यवस्था सामाजिक असमानता का मूल-कारण है) व कहीं शोषितों, पीडितों व गरीबों के पक्ष में उनके अधिकार व न्याय की लडाई के रूप में देखा जा सकता है।

कवि केदारनाथ अग्रवाल का दृष्टिकोण रचना के प्रति अत्यन्त व्यापक है। कवि और काव्य असख्य हैं, किन्तु कवि की सम्पूर्ण कृतियॉ काव्यत्व को प्राप्त नहीं होती। उनकी दृष्टि में वही काव्य काव्य है जो मनुष्य को विवेकशील बनाये, उसके कृत्रिम चरित्र का उजागर कर, उसमें व्याप्त कलुषता को समाप्त कर उसके बाहर व भीतर के कार्य और चिन्तन को समान ज्योति प्रदान कर सके। सत्-असत् का वैज्ञानिक दृष्टि से परीक्षण तथा समग्र जीवन का दर्पण बनकर उपस्थित होने वाला साहित्य ही एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से जोड़कर समाज को विखराव की मानसिकता से दूर कर सकता है। जैसा कि उन्होनें स्वय कहा "आदमी ऐसा कृतित्व दो, जो उसे नेक आदमी बनाये- उसको उसका

असली चेहरा दिखाये . . और हो सके तो उसके भीतर बाहर को जीवन्त, जागरूक और ज्योतित करे।"[45]

कवि केदारनाथ अग्रवाल कविता को केवल कला-प्रदर्शन नहीं मानते। उनकी दृष्टि मे मात्र कलात्मकता के लिए किया गया सृजन समाज व राष्ट्र को वह सन्देश नही दे पायेगा, जिसे पाकर पाठक के हृदय का अन्धकार विचलित हो जाय और वह निजत्व को पहचान कर समाज के मौलिक निर्माण मे सहायक बन सके। यद्यपि कविता की कलात्मकता भावुक के मन का रजन करने मे समर्थ होती है,पर मात्र मनोरजकता ही कविता की आत्मा नही, वरन् उसमे पाठक की दृष्टि को नूतन दीपदान देकर उसे अवसाद, अज्ञान व अंधकार से मुक्त करने व सच्चे मित्र की भॉति पग-पग पर साथ देने का भाव भी होना चाहिए। उन्हीं के शब्दों में- "कविता जहॉ पहुॅचे वहॉ दृष्टि का दीपदान दे- आलोक और ऑच से अवसाद, अधकार, अज्ञान का नाश करे और सच्चे-समर्थ मित्र और बधु अथवा सहकर्मी की तरह पग-पग पर साथ दे।"[46]अन्यत्र वे कहते है कि कविता मात्र विचारो का प्रचार नही करती। वह मनुष्य की बनाई एक ऐसी सृष्टि है जिसमे सौन्दर्य बोध व अर्थवत्ता दोनों जरूरी है ताकि वह दूसरों के लिए हितकारी हो सके।

कवि केदारनाथ अग्रवाल वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री व समाजशास्त्री के समकक्ष ही कवि का स्थान निर्धारित करते हुए कहते है कि जिस तरह से ये विशेषज्ञ समाज मे समस्याओं का समाधान अपने ढग से अपने कार्यक्षेत्र मे रहकर ढूढते है उसी तरह कवि भी। उनके अनुसार जो कवि ऐसा नहीं करते और आत्म चिन्तन में ही लीन रहते है, वह अपने को समाज से कटा हुआ व अजनबी महसूस करते हैं।[47] शब्दों के इन्द्रजाल के माध्यम से श्रम व भुलावे मे डुबाये रखने वाली कविता, अतीन्द्रिय लोक की सैर कराने वाली कविता मौलिक भले ही लगे, पर वह आत्मीय-प्रवंचना के अलावा और

कुछ नहीं दे सकती।[48] कवि केदारनाथ अग्रवाल भारतीय जीवन दर्शन के मोक्ष पक्ष से वितृष्ण है। उनके अनुसार जो मुक्तिकामी व्यक्ति ससार से विरक्त रहकर परमपद प्राप्त करने के लिए साधना करता रहता है वह इस संसार के द्वन्द्वमय प्राणियो को सघर्ष करने की प्रेरणा नहीं दे सकता, क्योकि वह द्वन्द्व अर्थात् सुख दु:खों को लोगों की नियति मानकर उसको सहन करने का उपदेश देता है। वह स्वय तो महापुरूष कहलाने लगता है जबकि ससार के अन्य प्राणी निरन्तर वही वही दु ख द्वन्द्व झेलते हुए तडपते व टूटते रहते है।[49] इसलिए कवि केदार इस मोक्षगामी जीवन-दर्शन को शोषित-पीड़ित जनों की दृष्टि से अनुपयुक्त मानते हुए वैज्ञानिक जीवन-दर्शन 'ऐतिहासिक द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' से अपनी जीवन-दृष्टि का विकास करने की बात कहते है, जो व्यक्ति को यथास्थिति में न रखकर कष्ट के मूल कारणो की खोज कर उससे मुक्ति के उपाय बताता है। उनके अनुसार 'ऐतिहासिक द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' पढने से ही उनकी आँखे खुली, जिससे वे यह जान सके कि मानव जीवन का लक्ष्य क्या होना चाहिए।[50] इस वैज्ञानिक जीवन दर्शन से उत्पन्न समझ ने ही उनकी कविताओं को शोषित-पीड़ित जनता के दु ख दर्द से सदैव जोडे रखा।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कवि केदारनाथ अग्रवाल के अनुसार कविता का उद्देश्य न तो कलात्मक-प्रदर्शन मात्र है, न उपदेश व विचारों का प्रचार करना और न ही किसी अलौकिक जगत की सैर कराना वरन् उनकी दृष्टि में वही कविता श्रेयश्कर है जो मनुष्य के आत्मतत्व को विकसित कर एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से जोड़ने में सहयोग कर सके, उसे वंचना के पक से निकालकर स्वस्थ-जीवन जीने की प्रेरणा दे सके, नूतन समाज की स्थापना करने की क्षमता का विकास कर सके, जन-जन के लिए ऐसा निर्मल दर्पण बन सके जिसमें वह अपने कृत्रिम रूप को देखकर उससे मुक्त होने के लिए

विवेक दृष्टि प्राप्त कर सके और इन सभी सामाजिक दायित्वो का वहन करते हुए वह सामाजिक जीवन मे सुरूचिपूर्ण सौन्दर्य स्थापित कर सके।[51]

कवि को पूरा विश्वास है कि उनकी कविता पढी जाने पर लोगो की मानसिकता को बदलकर स्वस्थ समाज के निर्माण मे अवश्य सहायक बनेगी। इस कार्य में देर हो सकती है क्योकि जब तक जनता अनपढ रहेगी, तब तक कवि का उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सकता है।[52]

कवि त्रिलोचन शास्त्री के सृजनशील व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक मुख्य प्रेरक तत्व तथा उनकी काव्य-विषयक दृष्टि-

कवि त्रिलोचन का जन्म जिला सुल्तानपुर (अवधाचल) के अन्तर्गत आने वाले गॉव कटधरापट्टी चिरानी पट्टी में हुआ था। बचपन में ही मजबूरी-वश उन्हें अपना गाँव छोड़ना पडा, पर उनका मन उसे आज भी नहीं छोड सका क्योंकि रक्त-सम्बन्ध इतनी आसानी से छुडाये नहीं छूटते। गॉव को याद करते हुए वे कहते है "जहॉ धूल उडती हो, कोई रूख भी कहीं/नहीं दिखाई पडता हो वह स्थान तुम्हारा।"[53]

आज भी उनकी कविताओं मे अवधांचल की मिट्टी की यादें अपनी समूची महक के साथ नवीन आभा बिखेरती हुई दिखलाई पड़ती है।[54] कवि त्रिलोचन सिर्फ ग्रामीण जन-जीवन के मस्ती भरे सौन्दर्य का ही बखान नहीं करते, वरन् वहॉ व्याप्त भुखमरी व पिछडेपन की यादे भी उनकी कवि-संवेदना को प्रभावित करती हैं और वे कह उठते है कि- "उस जनपद का कवि हूॅ जो भूखा-दूखा है/ नगा है, अनजान है/ . . .... .कब सूखा उसके जीवन का सोता, इतिहास ही बता सकता है।"[55] इन अभावों व पिछड़ेपन ने कभी उन्हें अत्यन्त खीझ से भर यह कहने को मजबूर किया था कि "अगर जन्म लेने में मै लाचार न होता/ मुझे चिरानी पट्टी से कुछ प्यार न होता।"[56] लेकिन बाद में उन्होनें स्वीकार किया कि उनके मन में पहले जो असन्तोष था अपने गाँव को लेकर, वह अब

नहीं है।[57] शायद इसकी वजह यह है कि कर्म मे आस्था रखने वाले कवि को यह विश्वास है कि वह कभी न कभी अपने श्रम के बल से अपने गॉव को इस विकट-यथार्थ से उबार लेगा।

ऐसे गॉव में रहने वाले कवि त्रिलोचन का अपना जीवन भी अत्यन्त गरीबी में व्यतीत हुआ, जिसे कवि ने स्वय अनेक सॉनेटो के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। सॉनेट मे उनके ये आत्म-प्रसग स्मृतियो के रूप हैं, जो बचपन से लेकर युवा-मन की विविध अनुभूतियो को सजोये हुए हैं। दर व दर की ठोकरें खाने के बाद भी कर्म से विमुख न होने वाले कवि त्रिलोचन को कभी भूखे रहकर भी वक्त काटना पडा है।[58] जीविकोपार्जन के लिए उन्होने कभी रिक्शा भी चलाया है।[59] सुखद आश्चर्य तो तब होता है जब उनकी यह पीडा पराजय की नहीं, वरन् आस्था व विश्वास की मजबूत डोर के सहारे उन्हें जीवन-पथ पर सक्रिय रखती है। वे इस बात को स्वीकार करते है आघातों व उत्पातों ने उनके जीवन को उर्वर बनाकर उसे विकसित करने में सहयोग किया।[60] इन आघातों से उत्पन्न पीडा ने ही उन्हें जन-जन के दु.खों को समझने की दृष्टि दी, जिससे उनके जीवनानुभव जन-जन के जीवनानुभवों से इतने घुल मिल गये कि उनकी आत्म-परक कविताएँ भी जनपरक लगती हैं। सच तो यह है कि अपने दुःखों से अधिक उन्हे दूसरो के दु खों ने विचलित किया, तभी तो वे यह कह सके- "दु ख से दबे हुए मानव आ आ, मैं ले लूँ / तेरा सब दु·ख, तू होकर सिर ताने / आसमान में, इस दुनियॉ को अपनी माने ।"[61]

दूसरों के दु खों को स्वय ओढ लेने वाले कवि त्रिलोचन को ऑसू बहाने वाले लोग पसन्द नहीं । वे कहते हैं- "यह भी कोई तुक है- कहीं फूल मुरझाया / और आपकी ऑखे भर आयी X X X / कोई पूछे- ऑसू गिरा-गिराकर पाया । क्या आपने, मिला भी कुछ दम और दिलासा / कहीं किसी को ।"[62] वे चाहते हैं कि अपने दु·खों पर

ऑसू गिराने की बजाय ऑसू के मूल-कारणों की खोज कर उसे समाप्त करने के निमित्त जन-जन को कर्मठ हो जाना चाहिए।

बचपन से ही जीवन की विषमताओं को देखने व भोगने वाले कवि त्रिलोचन ने अपनी किशोरावस्था व युवावस्था में अनेक सघर्षों को झेलते हुए किसी तरह एम ए पूर्वार्द्ध (अंग्रेजी) तक की शिक्षा प्राप्त की। पर्याप्त शिक्षा प्राप्त इस नौजवान को नौकरियॉ तो मिली, मगर कोई भी स्थायी नहीं थी। आजीविका के लिए वे कभी 'आज', 'जनवार्ता', 'समाज', 'प्रदीप', 'चित्ररेखा', 'हस' आदि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं से जुडे,[63] तो कभी विभिन्न कोशो के निर्माण में सहायक हुए।[64] स्कूल में अध्यापन-कार्य भी किया[65] तथा ट्यूशन भी पढाया।[66] १६८० ई० मे जब उनके काव्य-सग्रह "ताप के ताये हुए दिन" पर "साहित्य अकादमी" पुरस्कार मिला,[67] तब कहीं जाकर वे हिन्दी-साहित्य जगत् में अपनी अलग पहचान बना सके। इसके बाद भी उनकी नौकरियॉ बदलती रही, पर सम्मान के साथ नये-नये पदों पर उनकी नियुक्तियॉ की गयी।[68] इन कार्यो को करते हुए उनका अभावपूर्ण जीवन भले ही इतिहास का विषय बन चुका हो, क्योंकि अब उनकी आर्थिक-स्थिति बेहतर है मगर मन से आज भी वे अपने-आप को दु.खी पाते हैं। इसका कारण यह है कि अपने को पीडित-जनों के दु.ख से कभी अलग न कर सके।

कवि त्रिलोचन अपने को उन्हीं लोगों के बीच का व्यक्ति समझते हैं, जो दिखावटी जिन्दगी से दूर रहते हैं। अपने संकोची-स्वभाव, विश्वसनीय-आचरण व सादगीपूर्ण (पर अस्त-व्यस्त) रहन-सहन से भारतीय किसान-जीवन को साकार करता यह कवि अपने इस रूप के कारण शर्म महसूस नहीं करता। उन्हें तो अपने इस रूप व ऐसे ही लोगों के बीच रहने से आनन्दानुभूति होती है। तथाकथित आधुनिकों को सम्बोधित अपने एक सॉनेट में उन्होनें स्वयं अपने इस रूप की पुष्टि की- "मेरे गदे/कपडों से तुमको नफरत है। तो फिर बन्दे/बडे बनो तुम, मुझको अपनी दुनिया में रस/मिलता है, तुम गाड़ी-घोड़ो

का सुख लूटो।"[69] आज भी उनसे मिलने वाले उनके सरल स्वभाव से अत्यधिक प्रभावित होते है। महावीर अग्रवाल अपने एक लेख में उनके साथ गुजारे हुए क्षणों को याद करते हुए उनके स्वभाव की आत्मीयता व सहजता से अत्यन्त प्रभावित हो कहते है-"(पान की) दुकान वाले से बाते करने का त्रिलोचन जी का सहज व आत्मीय अदाज देखकर मैं मुग्ध हो गया। ठेलेवाले से उन्हे बतियाते हुए देखकर कोई सोच भी नहीं सकता कि समकालीन हिन्दी कविता ससार के चार महारथियो मे से एक त्रिलोचन शास्त्री यही है।"[70] विद्वता व गम्भीरता के बावजूद जन-जन से आत्मीय सम्बन्ध बना लेने वाले इस व्यक्तित्व के समकक्ष दूसरा कोई नहीं है। जेठ की कडकडाती धूप मे नगे पैर चलने वाला[71] क्या कवि त्रिलोचन के अलावा और कोई हो सकता है

कवि त्रिलोचन का स्वावलम्बी-व्यक्तित्व सिर्फ अपने कर्म पर अडिग आस्था व विश्वास का सम्बल लेकर अपनी मंजिल तय करता हुआ आगे बढता गया। कठिन से कठिन दौर में भी उन्होनें किसी के सहारे को स्वीकार नहीं किया। अपनी ओर सहानुभूति से उठते हुए हाथो को रोकते हुए अपने एक सॉनेट में वे कहते हैं- "नहीं चाहिए, नहीं चाहिए मुझे सहारा/मेरे हाथों में पैरों मे इतना बल है,/स्वयं खोज लूँगा किस-किस डाली मे फल है/उसे बॉट दूँगा जो नंगा, भूखा, हारा/दुर्बल दिखलायी देगा।"[72] कर्म पर अटूट विश्वास रखने वाले इस कवि का मानना है कि खून-पसीना एक करने से कुछ न कुछ तो मिलेगा ही। अतः व्यक्ति को हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। बार-बार उभर कर आने उनका वाला यह कर्मठ-व्यक्तित्व उनकी कविताओं की परिणति निराशान्धकार में नहीं होने देता।

कवि त्रिलोचन अपनी अन्तर्रात्मा की आवाज को ही अपनी कविताओं में व्यक्त करते हैं। इस सन्दर्भ में उनका कहना है कि "किसी विचारधारा का समर्थन करने के लिए अगर आप कविता लिखें तो याद रखियें आप कवि कम हैं, उस विचारधारा के

अनुवर्ती है, भले ही वह विचारधारा आपकी बुद्धि को स्वीकार्य हो गयी हो। इसीलिए जब लोगो ने अपने को प्रतिबद्ध कहना शुरू किया तो मैने कहा कि प्रतिबद्धता जो है मेरे वे विचार है जो मेरे अन्दर है, उनके लिए किसी घोषणा की जरूरत नही है।"[73] कविता मे किसी विचारधारा का अनुसरण न करने वाले कवि त्रिलोचन का पूँजीपतियो व आम जनता के प्रति जो दृष्टिकोण है वह उन्हें साम्यावादी विचारधारा से स्वत. जोडता है। वे माओ की प्रशसा करते हुए उन्हें सच्चा जन-नायक कहते है क्योकि उनके ईमानदारीपूर्ण प्रयासो के कारण ही चीन की जनता का जीवन जीने-योग्य बन सका।[74]

विचारो से साम्यवादी मगर आचरण से विपरीत कार्य कर परस्पर विरोधी व्यक्तित्व के धनी व्यक्ति उनकी दृष्टि मे तुच्छ है, जो साम्यवाद के पथ को गदा करते हैं।[75] उनके अनुसार "अच्छे विचारों से/अच्छाई नहीं आती/अच्छे आचार ही/अच्छाई लाते हैं।"[76] उनकी कथनी व करनी में कोई भेद नहीं है और ऐसे ही लोगों को वे पसन्द करते हैं। आज गॉधी की प्रशसा करने वाले तो लाखों लोग मिल जाते है, मगर उनके कार्यो को आगे बढाने वाला कोई ईमानदार नहीं दिखाई पडता। कवि त्रिलोचन ऐसे लोगों का असली चेहरा उनके सामने रखते हुए कहते है "गाँधी के आदमी आदमी वे कैसे थे/ ... .वे वैसे थे, कहते हुए समय खोते हैं। अपना और दूसरों का, विधवाओं जैसे .।"[77]

माओ व महात्मा गॉधी की प्रशंसा करने वाले कवि त्रिलोचन को हिन्दी-साहित्य -जगत के दो महारथियों - महाकवि तुलसीदास व महाकवि निराला ने विशेष रूप से प्रभावित किया। बचपन से ही पिता के मुख से 'रामचरितमानस का पाठ सुनने वाले बालक त्रिलोचन पर तुलसी की रचनाओं का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्हें अपना काव्य-गुरू मान बैठे। उन्हीं के शब्दों में "उनकी कविताएँ बिना उनकी उपस्थिति के मेरे मन पर इस कदर छाई कि मेरा काव्य गुरू अगर कोई है तो अनुपस्थित तुलसीदास है।"[78] अपनी कविता में भी उन्होंने स्वीकार किया कि मेरी सजग चेतना में तुलसी रमे हुए हैं।[79] इसी

तरह महाकवि निराला के प्रभाव को भी वे स्वीकार करते है।[80] निराला आज भी प्रासगिक बने हुए है। उनके अनुसार इसका कारण उनकी कविताओ मे व्याप्त वह ताजगी है जो उन्हे श्रमरत-मानव के साथ आत्मीयता पूर्ण सम्बन्ध बनाने से मिली। उन्ही के शब्दो मे "(वह) श्रम करने वाले, तीर्थयात्री, नगे-पैर चलने वाले- इन लोगो के साथ जमीन पर बैठकर बात करते थे तो ऐसा आदमी निरन्तर ताजा होता जाएगा। निराला मे आखिरी समय तक ताजगी है। यही ताजगी अगर बनी रहे तो आप कवि रह सकते है।"[81]

सवेदना के स्तर पर तुलसी व निराला से प्रभावित कवि त्रिलोचन की कविताएँ मात्र कलात्मक सृजन नहीं, वरन् जीवन से जुडी है। जीवन से उनका यह जुडाव उन्हें इसी जगत् के यथार्थ से जोडे रखता है। अलौकिक जगत् की बातवे नहीं करते। उनकी दृष्टि मे वही कवि और कविता महत्वपूर्ण है जो शोषित-पीडितजनो को आकृष्ट कर सके। अपने एक सानेट मे वे स्पष्ट रूप से कहते है कि "उनके लिए नहीं लिखता मै, जो पढ़-सुनकर/कहेगे कि यह लोकोत्तर रचना आई है" और न ही उनके लिए जो "अपनी देख अवज्ञा/कहेंगे कि यह कूडा है, बिलकुल कूडा है/नही अगाध ज्ञान के जल में कवि बूडा है।" आगे की पंक्तियों में वे कहते है कि अपनी कविताओ में "इन्हें नहीं मै उन्हे बुलाता हूँ। जो घूम रहे हैं व्याकुल प्यासे प्यासे।" सॉनेट की अन्तिम दो पक्तियों में कवि त्रिलोचन अपने मन्तव्य को और स्पष्ट करते हुए कहते है कि " मेरे स्वर मन में सोए विश्वास जगाएँ/सुस्ताए है जो पग उनको राह लगाए।"[82] उनकी लेखनी से निकले हुए शब्द जन-जन में आशा व विश्वास का संचार करने के साथ ही जरूरत पडने पर सघर्ष के लिए भी तैयार करते हैं। जब कर्म के द्वारा व्यक्ति अपने अधिकारों को न प्राप्त कर पा रहा हो तो कवि के अनुसार उसे संघर्ष के लिए भी तैयार रहना चाहिए। वे कहते है-"दु.ख अभाव अवसाद अभी है तो होने दो,/ अरूण सूर्य को आ-आकर प्रकाश बोने दो/ कभी न कभी लहर के ऊपर कमल खिलेगा... ..।"[83]

वे देश को विदेशी शासन से मुक्त देखकर चैन की सॉस नहीं लेते, वरन् स्वतन्त्र-भारत मे शोषकों से आक्रान्त जन-जन की मुक्ति के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे है। उनका देश-प्रेम महज दिखावा नहीं वरन् सच्चे अर्थो मे जन-जन की खुशहाली से जुडा है। उनके अनुसार यह तभी सम्भव हो सकता है जब समाज पर विसगतियों व विषमताओ की जमी हुइ गर्द को पूरी तरह झाड न दिया जाय।[84] यह कार्य वही कवि कर सकता है जिसके मन मे व्यवस्था के प्रति 'असन्तोष' हो। कवि त्रिलोचन यह मानते है कि "महत्वपूर्ण रचनाओ का निर्माण असन्तोष के कारण होता है। और यह असन्तोष सामाजिक मानदण्ड और जीवन की विषमताओं के कारण पैदा होता है।"[85] ऐसे "रचनाकार समाज में उठने वाली हर आवाज को सुनते है और अपनी रचनाओं मे सतुलन सहित शब्द-बद्ध करते है। ये लोग नर-नारी संबंध, जातिगत स्थिति, आर्थिक द्वन्द्व आदि का अनुभव के आधार पर निरूपण करते हैं। निरूपण की यह पद्धति बहुधा पुराने आदर्शो से भिन्न हो जाती है।"[86] अत. परम्परा के पक्षधरों द्वारा इनका विरोध शुरू हो जाता है। कवि त्रिलोचन के अनुसार ऐसे रचनाकारों में यदि 'सामाजिक सत्य के प्रति आग्रह और अपनी रचना के प्रति आत्म-विश्वास हो' तो वह इन अनन्त विरोधों से आसानी से उबर सकता है।[87] इस अर्थ में स्वयं उनकी कविताएँ सार्थक भूमिका का निर्वाह करती हैं।

निष्कर्षत कहा जा सकता कि कवि त्रिलोचन का सम्पूर्ण व्यक्तित्व उनकी कविताओं में सतत् प्रवाहित है। वे अत्यन्त ईमानदारी के साथ यह स्वीकार करते है कि अगर मैंने पीडितों का जीवन न जिया होता तो शायद मेरी कविताओं में जन-जन की पीडा का यह स्वर न आ पाता।[88] उनके इस अभावपूर्ण जीवन ने उनकी काव्य-दृष्टि को सार्थक बनाया और उनसे यह कहलवाया कि "धन की उतनी नही मुझे जन की परवा

है। जितनी ।"[89] वे अपनी कविताओं मे इसी जन की देख-रेख मे सर्वत्र सलग्न दिखाई पडते है।

धूमिल के सृजनशील व्यक्तित्व व काव्य दृष्टि पर पारिवारिक व पारिवेशिक प्रभाव-

सन् १९६० के बाद की हिन्दी कविता में धूमिल सर्वाधिक चर्चित कवि रहे हैं। इसका मुख्य कारण है- उनका काव्यगत रचनात्मक सघर्ष और उस सघर्ष की प्रक्रिया में आम-आदमी की सवेदनात्मक अभिव्यक्ति। कविता में आदमियत के लिए निरन्तर सघर्षरत कवि धूमिल अपनी पारिवारिक जिन्दगी में भी सदैव सघर्ष से साक्षात्कार करते रहे। परिवार ही उनकी वह पाठशाला है , जहॉ से उन्होनें अधिकारों के लिए निरन्तर सघर्ष की शिक्षा प्राप्त की।

सुदामा प्रसाद पाण्डेय के पारिवारिक नाम से अभिहित 'धूमिल' का जन्म वाराणसी जनपद के अर्न्तगत आने वाले गॉव 'खेवली' में हुआ। उनका पारिवारिक जीवन सदैव आर्थिक तंगी से ग्रस्त रहा। संयुक्त परिवार में सबसे बड़े बेटे[90] होने के कारण उन पर पारिवारिक जिम्मेदारियाँ बहुत थी। उन्होंने इन जिम्मेदारियों से कभी मुॅह नहीं मोडा। जीविका की तलाश में ही वे गॉव को छोडकर शहर आये। घर की चाहरदीवारी से बाहर आने पर धूमिल को जो कटु अनुभव प्राप्त हुए, उसने उनके मन को हिलाकर रख दिया। नौकरी की तलाश में वे कलकत्ता गये, जहाँ उन्हें काफी भटकने के बाद अपने गॉव के व्यक्ति की सहायता से लोहा ढोने का काम मिला। कुछ समय बाद उन्हे अपने सहपाठी की मदद से एक व्यापारिक संस्थान में 'पासिंग अफसर' की नौकरी मिल गयी। अस्वस्थ होने के कारण डेढ़ वर्ष बाद ही उन्हे यह नौकरी छोड़नी पड़ी। तदुपरांत उन्होनें १९५२ मे बनारस से विद्युत में डिप्लोमा प्राप्त किया। उसी वर्ष 'विद्युत अनुदेशक' के पद पर उनकी नियुक्ति हुई।[91] कुछ समय बाद पदोन्नति भी मिली। पर यह काम भी उन्हें खुशी

न दे सका। अपने जीवन के अन्तिम समय.में वे अपनी नौकरी से लम्बी छुट्टी पर चले गये। कारण था- उनका सगठन बनाकर अपने विभाग के अधिकारियो के भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करना व इससे रूष्ट होकर अधिकारियो द्वारा उनका स्थानान्तरण करवाना। यह अन्तिम स्थानान्तरण उनके जीवन का भी स्थानान्तरण बन गया। 'ब्रेन ट्यूमर' की बीमारी ने १० फरवरी १६७५ को उन्हे हमारे बीच से उठा लिया।[92]

जीविका के लिए इन विभिन्न कार्यो को करते हुए उन्हे 'व्यवस्था की बदनीयती' का गहरा अहसास हुआ, जिसने उन्हें अत्यन्त बैचेन कर दिया। यही बेचैनी उनकी कविताओ मे उन्हें व्यवस्था के विरूद्ध कारगर कारवाई के लिए मजबूर करती है।

धूमिल अपनी कविताओ के द्वारा इस विरोध को किस हद तक कारगर बना सके, कहना मुश्किल है, पर यह सच है कि पारिवारिक व बाह्य पारिस्थितिक सघर्ष ने इन सवेदनशील कवि व्यक्तित्व को जो रूप दिया वह उनके कृतित्व में सतत् मुखर है। यह सघर्षरत चेतना जीवन-पर्यन्त उनके साथ रही, तभी तो वह ब्रेन-ट्यूमर की मर्मांतक पीड़ा को सह सके ।

धूमिल सदैव अपने परिवेश के प्रति जागरूक रहे हैं। बाह्य परिवेश ने धूमिल को सदैव निराश किया। लेकिन वे इस निराशा अन्धकार के बीच भी रोशनी की तलाश के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे। धूमिल हर उस व्यक्ति के साथ थे, जो अन्धकार के बीच प्रकाश को खोजने में सलग्न था। उन्होनें भली-भॉति यह जान लिया था कि कोरी प्रतिक्रिया से कुछ होने वाला नहीं, वरन् इन विसगतियों व विषमताओं को दूर करने के लिए संघर्ष की जरूरत है। वे अपनी कविताओं के द्वारा ऐसा जनमत तैयार करना चाहते थे जो संघर्ष या क्रान्ति के द्वारा व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन ला सके। यह काम जनता के भरपूर सहयोग के बिना असम्भव था। अत· कवि धूमिल जनता का आह्वान कर उनमें अटूट विश्वास का संचार करते हैं।[93]

धूमिल की इस सघर्ष-प्रियता ने उन्हें सदैव रचनात्मकना से जोडे रखा। गॉव मे या शहर मे रहकर नौकरी करते हुए सदैव उनकी दृष्टि अपने आस पास के सन्दर्भो पर गहरी नजर रखती थी। "धूमिल का परिवेश उसे कोच रहा था, उसकी राजनीतिक समझ उसे विवश कर रही थी कि जन-जीवन के पक्ष मे वह उनका विरोध करे, जो उसका शोषण कर रहे थे और शाब्दिक कुहासे मे अपनी क्रूर हरकतो को छिपाने मे सफल हो रहे है।"[94]

प्राय धूमिल पर यह आरोप लगाया जाता है कि उनकी कविता निजी जिन्दगी के गहरे अभावो से उद्भूत है। यह सच है कि कवि का निजी पारिवारिक जीवन उसके कवि मन को प्रभावित करता है लेकिन कवि की यह निजता भी अन्तत· समाज की ही देन है। आज हमारा निजी पारिवारिक जीवन जैसा भी है क्या उसके निर्माण मे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से समाज का योगदान नही ? तो यह कवि का नितान्त निजी जीवन कैसे हो सकता है ? रही बात किसी भी सामाजिक या परिवेशिक सोच से कवि मे वैयक्तिक लगाव की तो "सिद्धान्त या व्यवहारत· भी, किसी सोच या समझ से जब तक वैयक्तिक लगाव नहीं होता, उसकी अनुभूति में वह हिस्सेदारी नहीं आ पाती जो सवेदनात्मक अभिव्यक्ति के लिए जरूरी है। हिस्सेदारी आ भी जाय तो उसमे वह गहराई नही आ पाती जो निजी दशा के योग से आती है।"[95]

कवि का निजी पारिवारिक जीवन परिवेश से जुडने के बाद ही कवि की सवेदना बनकर अभिव्यक्ति का विषय बनता है। अत परोक्ष रूप में ही सही, कवि धूमिल का वैयक्तिक जीवन व बाह्य परिवेश मिलकर ही काव्य-यात्रा का उत्स बिन्दु बनते हैं।

धूमिल के समय मे कविता विभिन्न मुखौटो के कारण अपना वास्तविक रूप जो कविता को सार्थकता प्रदान करता है, खोती जा रही थी। वह अकेलेपन अजनबीपन, निराशा, कुंठा, मृत्युबोध जैसी विभिन्न व्याधियों से ग्रस्त होती जा रही थी जहॉ व्यक्ति के

अह के विस्फोट के अलावा कुछ और नहीं सुनाई पडता था। इस आत्मरति ग्रस्त माहौल मे धूमिल ने कविता को समसामायिक हालातो से सघर्ष करते हुए एक नयी रचनात्मक ऊर्जा प्रदान की। कवि होने के नाते वे अपनी जिम्मेदारियो को भली-भॉति जानते थे। कविता के सामाजिक पक्ष के प्रति वे सदैव सजग रहे। कलात्मक खुरदुरेपन मे भी वे सार्थक कविता के पक्षधर थे। वे कविता मे ऐसे कलात्मक सौन्दर्यशास्त्र के खिलाफ थे, जो जीवन की वास्तविकताओ से कटा हुआ हो।

जीवन यथार्थ के प्रति गहरा लगाव रखने वाले कवि धूमिल को 'प्रतिबद्ध कवि' कहा गया, जिसे वह अनुचित नहीं मानते। उन्होनें अपनी काव्य विषयक प्रतिबद्धता को कुछेक कविताओ मे स्वीकार किया, पर उसे ठीक से न समझने वाले आलोचकों द्वारा कहा जाता है कि धूमिल जीवन-मूल्यो को सीमित दृष्टि से देखते है।

साहित्य समीक्षा मे प्रतिबद्धता से सम्बन्धित बहस जीवन मूल्यों पर ही आकर टिकती है जो किसी भी विधा के लिए उपयुक्त है। समकालीन विसगतियों से जूझते हुए कवि धूमिल अपनी कविताओं के जरिए हस्तक्षेप के पक्षधर है । हस्तक्षेप की यह प्रतिबद्धता परिवेश की महज प्रतिक्रिया नही है। जीवन मूल्यों को स्थिर मानने वाले आलोचक ही धूमिल को प्रतिक्रियावादी मानते है। गतिशील जीवन मूल्यों के नट कसने पर धूमिल की कविता की असलियत खुलने लगती है। परम्परागत मूल्यों को परिस्थिति-सापेक्ष न होने पर भी ढोते रखना उनकी फितरत के अनुरूप नही है। ऐसे जड मूल्यों पर तीखे प्रहार उनकी काव्यगत मूल्यवत्ता को गहराई से रूपायित करते है। अतः धूमिल परिवेश के प्रति प्रतिबद्ध होते हुए भी जीवन मूल्यों से विरत नहीं है। "समकालीन परिवेश मे रचनाकारों का यथार्थ के प्रति गहरा लगाव उन्हें जीवन मूल्यों से सर्वथा विरत नहीं करता, बल्कि यथार्थ की वास्तविक सगति में जीवन मूल्यों को पुनर्विश्लेषित एव संश्लेषित कर उनकी पुनर्प्रतिष्ठा के लिए प्रेरणा स्त्रोत बनता है।"[36]

कवि धूमिल का काव्यगत मूल उद्देश्य आम आदमी की पीडा को सुषुप्तावस्था मे न पहुँचाकर उन्हे सचेष्ट करना है ताकि वह अपने को सक्रिय रखते हुए अपने ऊपर होने वाले हर जुल्म के खिलाफ आवाज उठा सके। कवि धूमिल यथार्थ को नये रूप मे देखने -समझने की दृष्टि देते है, जीवन मूल्यो को साकार रूप लेते हुए देखना चाहते है न कि जडवत् जीवन मूल्यों को ढोते रहने में विश्वास करते है।

साठोत्तरी कविता के लिए यह कहा जाता है कि वह परिवेश केदबाव से आक्रान्त है। अत परिवेश की महज प्रतिक्रिया होना काव्यात्मकता के उपयुक्त नही। इससे कार्य की सर्जनशीलता क्षरित हुई। साठोत्तरी कविता के बहुचर्चित कवि धूमिल के सन्दर्भ मे ही ये बाते अधिक कहीं गयी है। धूमिल अपनी कविताओ में परिवेश के प्रति तीखी प्रतिक्रियाए व्यक्त करते है। पर ये प्रतिक्रियाए किसी भी तरह उन्हें काव्यगत मूल उद्देश्य से विरत नही करती । उनकी इन प्रतिक्रियाओं की मोटी परत के नीचे मानवीय सवेदना का गहरा स्त्रोत प्रवाहित होता है। इस मानवीय सरोकार को न पकड पाने वाला आलोचक ही उनकी कविता को मात्र पारिवेशिक प्रतिक्रिया समझता है। धूमिल ने अपनी कविताओं में समय सापेक्ष यथार्थ को अत्यन्त गहराई मे जाकर पकडा। वे परिवेश के प्रति सदैव सजग रहे है। "धूमिल की कविता आजादी के बाद होश सम्भालने वाले एक सवेदनशील नौजवान की अपने देश और समाज और उसमें आदमी की विसगतिपूर्ण हालत को समझने पहचानने की कोशिश जाहिर करती है।"[37]

किसी भी रचनाकार के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह अपनी रचना-प्रकिया सम्बन्धी मतो को स्पष्ट करें, पर हिन्दी में रचनाकार और समीक्षक दोनो की भूमिका एक ही व्यक्ति द्वारा निभाये जाने की पुरानी परम्परा है। रीतिकालीन कवि, आचार्य व आधुनिक कालीन कवि, नाटककार व कहानीकारों द्वारा

काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र कहानी विधा की चर्चा सामान्य बात है।

छायावादी कवियो द्वारा अपनी कविताओ की लम्बी-लम्बी समीक्षाये उल्लेखनीय है। इसी परम्परा से जुडते हुए कवि धूमिल ने भी अपनी कविताओं से सम्बन्धित वक्तव्य दिये है। उनके वक्तव्य[98] उनकी कविताओ को समझने मे सहायक सिद्ध होते है तथा कविता की शक्ति व सीमाओ का ज्ञान कराते है। कवि कर्म की सार्थकता व उपादेयता पर सदैव उनकी दृष्टि रही है।

धूमिल कविता रचते समय अपने वक्तव्यो द्वारा शास्त्र पर एक नयी दृष्टि से विचार करते है। उन्हे मालूम था कि उनकी कविता परम्परागत प्रतिमानो के आधार पर कसने पर खरी नहीं उतरेगी। धूमिल कविता से एक महत्वपूर्ण दायित्व की मॉग करते है और अपनी कविताओं द्वारा उस मॉग को पूरा करते है। अत उनका कथ्य कविता की समझ से जुडा हुआ है।

कविता का दायित्व कवि की इन पक्तियों में-

(1) " कविता हत्या नहीं करती

.... .. .खून की रपट के कानूनी

मसलो पर पडताल करती है

ताकि न्याय कायम हो।"[99]

(2) " कविता विनाश (मृत्यु) के विरूद्ध सतत संघर्ष का नाम है।

'कविता मारती नही

जान बचाने की कोशिश में

पहल करती है।"[100]

'कवि' शीर्षक कविता में धूमिल कहते है कि उनकी कविता उस आम आदमी को जागृत करने में सहायक है जो अपने खिलाफ होने वाले हर कार्य को जानते हुए भी साहस की कमी से प्रतिरोध नहीं कर पाती।[101]

उनके अनुसार कविता ऐसी भाषिक अभिव्यक्ति होनी चाहिए जो इन्सान को इन्सानियत का पाठ पढा सके –

> ''कविता
>
> भाषा में
>
> आदमी होने की तमीज है।''[102]

उनके अनुसार कविता वैचारिक स्तर पर क्रान्ति का माहौल पैदा करती है –

> ''कविता शब्दों पर शान चढ़ाने का काम .... करती है।''[103]

कविता सिर्फ कला नहीं है –

> ''कविता सिर्फ शब्दों की विसात नहीं
>
> वाणी की आँख है।''[104]

धूमिल की कविता को उसकी रचनात्मक–प्रक्रिया की राह से गुजरकर ही भली–भाँति समझा जा सकता है। साहित्य के प्रति उनकी आसक्ति बचपन से ही थी। प्रारम्भ (१९५७–५८ से ६३ तक गीतों की दुनिया उन्हें प्रिय थी) में वे गीत लिखा करते थे। इन गीतों को लिखने का कारण वह स्वयं बताते हुए कहते हैं – ''प्रारम्भ में किशोर मित्रों के बीच विशिष्ट होने की तीव्र इच्छा ने, स्कूलों में पुरस्कारों के सम्मोहन ने, परिवार के लोगों में अपने प्रति उत्पन्न हुए गर्व ने अक्सर मुझसे लिखवाया है। तब मैं चीजों के प्रति नहीं, अपने पद्यों के प्रति सचेष्ट था।''[105] पर समसामयिक जीवन की कटुता ने उनके गीतों को व्यंग्य युक्त कविता में बदल दिया। विभिन्न संघर्षमयी परिस्थितियों में उनके कवि रूप का विकास हुआ। वे मनोरंजन या समय काटने या फिर रोजी–रोटी के लिए, कविता नहीं लिखते थे वरन् शोषित वर्ग के हित में वैचारिक क्रान्ति का निर्माण करने के निमित्त कविता की सायास रचना करते थे। ''धूमिल की वास्तविक शक्ति कविता को उपयोगी और सार्थक बनाने में व्यतीत होती है। वे कविता का मूल्य बढ़ाने के लिए सदैव परेशान रहे। जीवन की तमाम छोटी–बड़ी घटनाओं से प्रेरणा लेते रहे और उनके माध्यम से कविता

को बुनते रहे।"[106] उनका कविता बुनने का तरीका काफी अलग था "वह पहले किसी कविता के विषय को लेकर कई दिन औरो से बहस करता और खुद भी सोचता रहता। उस विषय पर जो भी सूझता, उसमे से जो लिखने योग्य होता उसे लिख लेता और फिर उसे तरतीब देकर कविता की रचना कर डालता था।"[107] वे कविता को जिन्दगी की जरूरतो के अनुरूप शब्दो में ढालना चाहते थे। जिस समय नये कवि कविता के स्वायत्त ससार की वकालत करते हुए कविता विधा की सलामती के लिए चिन्तित दिखाई पडते थे उस समय धूमिल का यह कहना था-

"कविता में जाने से पहले/मै आपसे ही पूछता हूँ/
जब इससे न चोली बन सकती है। न चोंगा,
तब आपे कहो-/इस ससुरी कविता को
जंगल से जनता तक/ढोने से क्या होगा ?"[108]

वे कविता को ऐसी उपलब्धि मानते थे जो सीधे लोक कल्याण से जुडी हो।

गजानन माधव व मुक्तिबोध के सृजनशील व्यक्तित्व व काव्य दृष्टि पर पारिवारिक व पारिवेशिक प्रभाव-

गजानन माधव 'मुक्तिबोध' एक ऐसे व्यक्तित्व का नाम है जो अपने जीवन में विभिन्न आघातों को झेलते हुए ही रचनाकार की प्रतिभा से समृद्ध हुए। इस संघर्ष की शुरूआत उनके पारिवारिक जीवन से होती है, जिनके लिए वे सामान्य आवश्यक वस्तुएँ भी सहजता से न जुटा सके। इसी धरातल पर वे पीडित-शोषित जन-समुदाय से जुडते है। उनकी आत्मा का प्रतिरूप यह पीडित जन सर्वत्र उनकी कविताओं में दिखाई पडता है। अभावों से उत्पन्न पीडा कवि को दुखी अवश्य करती है,[109] पर इन अभावों ने उन्हें कभी पथ-भ्रष्ट नहीं किया। विभिन्न प्रकार की ठोकरे खाने के बाद भी उन्होंने सच्चा व ईमानदार मनुष्य बने रहना ही उचित समझा। औरों की भाँति अगर वे भी गलत रास्ते

के द्वारा अपनी व पारिवारिक आवश्यकताओ की पूर्ति मे जुटे होते, तो शायद शान-शौकत से जीवन व्यतीत कर सकते थे, पर यह उनके अन्दर के सच्चे इसान को कत्तई मजूर नही था। मुक्तिबोध जीवन-सघर्ष मे कभी-कभी टूटते है, निराश होते है, पर उस श्रमशील गर्भवती नारी की आत्मा जो—"सब अभावो को सहकर कष्टो को लातमार निराशाएँ ठुकराकर/किसी ध्रुव-लक्ष्य पर/खिचती सी जाती है/"[110]- उनमे अभावो से लडने की शक्ति पैदा करती है, और वे कह उठते है- "जीवित रह सकता हूँ मै भी तो वैसे ही"।[111]

मुक्तिबोध के स्वभाव मे उनके थानेदार व बाद मे इन्स्पेक्टर हुए पिता की झलक मिलती है। उनके पिता "पूजापाठी, न्यायनिष्ठ, मगर बहुत दबग और निर्भीक, ड्यूटी के कठोरता से पाबन्द राजभक्त। खासी धाक। रिश्वत नहीं ली, न पैसा जमा किया। फाकेमस्ती के जीवन मे कुछ यही आन, मूक-हठ सी, हम गजानन मुक्तिबोध के व्यक्तित्व में भी देखते है।"[112] उनके पिता उन्हे वकील बनाना चाहते थे, ताकि वह "बडे-बडे मुकदमे हाथ में ले, खूब कमाये और सामाजिक प्रतिष्ठा मे उनसे भी ऊपर उठे।"[113] मगर "वह कमाना चाहता था ज्ञान-धन नहीं, खोज रहा था- सम्मानों की रूढियाँ नहीं, नयी दृष्टि और अनुभव नये युग के अनुभव और काव्य की विलक्षण अनुभूतियाँ ।"[114]

उन्हें अपने इन्स्पेक्टर पिता से आर्थिक-सम्पन्नता तो नही मिली, पर अर्थाभाव भी न रहा था। पिता की सरकारी नौकरी से निवृति के पश्चात् उनके गृहस्थ जीवन में छायी आर्थिक विपन्नता ने उन्हे जीवन-पर्यन्त न छोडा। ऐसा नही है कि उन्होनें अपने प्रयास में कोई कोताही बरती हो, पर स्वभावगत सच्चाई व खरेपन के कारण वे सफल न हो सके।

जीविकोपार्जन की तलाश में जुटे मुक्तिबोध ने १६३८ मे इन्दौर से बी० ए० करने के बाद उज्जैन के मार्डन स्कूल मे अध्यापन-कार्य किया। १६४० में 'शारदा शिक्षा सदन',

शुजालपुर मे अध्यापन-कार्य के दौरान उन्होंने वहॉ रहकर जो कुछ भी अनुभव प्राप्त किया, उसका उनकी रचनात्मकता पर व्यापक प्रभाव रहा। इस शिक्षा-सदन में होने वाले विद्वतापूर्ण भाषणों व बहसों ने उनके चिन्तक व आलोचक को नयी दृष्टि दी। यों तो उन्होंने दॉस्तायवस्की, फ्लाबेअर, गोर्की, वर्ग सॉ, रसेल, मार्क्स, रवीन्द्रनाथ, गॉधी[115] आदि को भली-भॉति पढा था पर इन साहित्यिक बहसों में उन्हें मार्क्स की दृष्टि को समझने का मौका मिला। तारसप्तक के वक्तव्य में शुजालपुर में बिताये गये १६४२ के दिनों में वे कहते हैं "यहॉ लगभग एक साल में मैंने पाँच साल का पुराना जड़त्व निकालने की सफल-असफल कोशिश की। इस उद्योग के लिए प्रेरणा, विवेक और शान्ति मैंने एक ऐसी जगह पायी, जिसे पहले मैं विरोधी शक्ति मानता था। .... क्रमशः मेरा झुकाव मार्क्सवाद की ओर हुआ अधिक वैज्ञानिक अधिक मूर्त और अधिक तेजस्वी दृष्टिकोण मुझे प्राप्त हुआ।"[116]

कवि जीवन के आरम्भिक दिनों में मधुर स्मृतियों को संजायें गीत लिखा करते थे - वह परस्पर की मुदृल पहचान जैसे/अतल गर्भा भव्य धरती हृदय के निजकूल पर/ मृदु स्पर्श कर पहिचान करती, गूढ़तम उस विशद/दीर्घच्छाय श्यामलकाय बरगद वृक्ष की, जिसके तले आश्रित अनेकों प्राण, जिसके मूल पृथ्वी के हृदय में टहल आये।"[117]

लेकिन जीवन की कटु वास्तविकताओं ने उन्हें गीत लिखने से रोका। वे स्वयं एक कविता में कहते हैं -

'ये अकेले गीत/दब चुकी जो मर चुकी है आत्मा/खत्म जो हो ही गयी आंकाक्षा/व्यक्ति में व्यक्तित्व के खण्डहर/गान कर उठते उसी के गीत/ये अकेले गीत, स्वर-लय हीन गीत/मौन से बेचैन, लोचन-हीन गीत।"[118]

कवि के पूर्व के काव्य-व्यक्तित्व के खण्डहर बनने व जीवन वास्तविकताओं के

साक्षात्कार से उत्पन्न नये व्यक्तित्व के निर्माण मे मार्क्सवादी दृष्टि का महत्वपूर्ण योगदान है। "शारदा शिक्षा सदन" शुजालपुर की यह देन जीवन-पर्यन्त उनके साथ रही, जो उनकी कविताओ मे शोषित-पीडित जन की सवेदना के रूप मे देखी जा सकती है। सन् १६४२ के आन्दोलन मे शारदा शिक्षा सदन का बन्द होना मुक्तिबोध के लिए कष्टदायी साबित हुआ। क्योकि उसके बाद से उनकी पारिवारिक दायित्व पूर्ति को लेकर परेशानियो का लम्बा सिलसिला शुरू होता है जो उनकी मृत्यु तक चलता रहता है।

साहित्यिक अभिरूचि रखने वाले मुक्तिबोध ने पुन उज्जैन जाकर वहॉ 'मध्यभारत प्रगतिशील लेखक संघ' की बुनियाद डाली व १६४४ के अन्त मे इन्दौर में फासिस्ट विरोधी लेखक कॉन्फ्रेन्स का आयोजन किया, जिसकी अध्यक्षता महापडित राहुल सास्कृत्यायन ने की। सन् १६४५ से वे उज्जैन से बनारस गये, जहॉ त्रिलोचन शास्त्री के साथ 'हस' के सम्पादन में हाथ बटाने से लेकर डिस्पैचर तक का कार्य किया, पर वहॉ भी जम न सके। सन् १६४६-४७ मे जबलपुर जाकर उन्होनें अध्यापन-कार्य किया, साथ ही दैनिक पत्र "जयहिन्द" मे भी कार्य करते रहे।[119] जबलपुर की आबोहवा भी उन्हे बॉध न सकी, और वे नागपुर चले गये। यहॉ उन्होनें अत्यधिक आर्थिक अभावों को झेला। नागपुर का जीवन उनकी श्रेष्ठ मानी जाने वाली कविताओ को प्रेरणा स्त्रोत भी बना। नागपुर रेडियो में उन्होंने कुछ दिनों तक समाचार विभाग मे सम्पादक की नौकरी की। भोपाल तबादला होने पर किसी कारण वश न जा सके, अत· नौकरी से हाथ धोना पडा। नागपुर से निकलने वाले सनसनी खेज साप्ताहिक "नया खून" ये उन्होने कॉलम लिखे। यह पत्र भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करने व मजदूरों का पक्षधर होने के कारण लोगों की नजरो मे चढ़ा हुआ था। एस्प्रेस मिल के मजदूरो पर गोली चलते वक्त वे रिर्पोटर की हैसियत से घटनास्थल पर मौजूद थे। वहॉ खेली गयी खूनी-होली के वे प्रत्यक्षदर्शी थे, जिसकी अभिव्यक्ति उनकी "अन्धेरे में" कविता में हुई है।[120]

आर्थिक अभावो से मुक्ति के लिए सतत् प्रयासरत मुक्तिबोध ने अपने हितैषियो के कहने पर १६५४ ई० मे एम० ए० किया। तत्पश्चात् उन्हे राजनाद गॉव मे अध्यापन कार्य करने को मिल गया, जिससे उनकी आर्थिक-स्थिति कुछ सुधरी। मगर यह सुख देखने के लिए वे अधिक दिन तक जीवित न रह सके। मौत ने समय से पहले ही उन्हे धर दबोचा। अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व तारसप्तक के द्वितीय सस्करण के अपने वक्तव्य मे उन्होने कहा- "पिछले बीस वर्षों मे न मालूम कितनी बाते घटित हुई। वे सबके सामने है। मेरी अपनी जिन्दगी जिन तग-गलियो मे चक्कर काटती रही, उसे देखते हुए यही मानना पडता है कि साधारण श्रेणी मे रहने वाले हम लोगो का अस्तित्व-संघर्ष के प्रयासो में समाप्त होना है।"[121] कवि मुक्ति बोध का यह कथन उनके अपने जीवन की कुछ महत्वूपर्ण घटनाओ पर प्रकाश डालता है जिसे समझने से उनकी कविताओ मे व्याप्त सघर्ष की मुखर अभिव्यक्ति को भली-भाति समझा जा सकता है।

अस्तित्व-सघर्ष के प्रयासो मे ही समाप्त होने वाले मुक्तिबोध के इस वैयक्तिक जीवन ने उनमे उस सर्जक-व्यक्तित्व का निर्माण किया, जिसमे समाज व्यापकतर रूप मे समाहित है। उन्होंने स्वयं कहा- "जीवन और परिवेश की विषमता की यह स्थिति आभ्यन्तर में भी दु स्थिति उत्पन्न करती है, यह एक दारूण सत्य है। मै कहूँ कि यह मेरा अपना भी सत्य है। . . .किन्तु यह भी एक तथ्य है कि इस आत्मग्रसता के बावजूद और शायद उसको साथ लिए-लिए मेरा आत्म-संवर्द्धन समाज के व्यापकतर छोर छूने लगा।"[122] मुक्तिबोध की इस आत्म-स्वीकृति में, जिसमें उन्होंने आत्मग्रस्तता के साथ ही समाज के लिए व्यापकतर होने की बात स्वीकारी, उनके अपने व्यक्तित्व की सहज परिणति का सत्य छिपा हुआ है। अत स्पष्ट है उनकी कविताओं में व्यक्त उनका आत्मसंघर्ष उन्हें कहीं भी समाज-विमुख नहीं करता, वरन् सामाजिक-बोध की गहनता व व्यापकता का हृदय-सवेद्य रूपाकन करता है।

'स्व' का विस्तार कर सामाजिक जीवन के साथ गहन सम्पृक्ति के माध्यम से ही जन-जन के भीतर अपनी पहुँच का एहसास किया जा सकता है। उनका आत्मसघर्ष लोकपक्ष के साथ इस तरह मिला हुआ है कि उस पर सदेह भरी दृष्टि डालना उचित नही है। उन्होंने कहा भी है कि " . . जिस मन की अन्तर्मुखता जन-मन की भावनाओं मे भीगी हुई है, उसके क्षोभो और द्रोहो से सबल हुई है, पीडित मानवता का सर्वज्ञ वह हृदय जनता से छिटकर 'व्यक्ति-स्वातन्त्र्य' और 'अह' क काफे हाउस मे योरोपीय और भारतीय सस्कृति की गप्प नहीं लगा सकता।"[123] मुक्तिबोध का यह कथन जहॉ एक ओर उनकी जन-सवेद्य दृष्टि को स्पष्ट करता है तो वही दूसरी ओर व्यक्ति के स्वतन्त्र अस्तित्व (अहवादी व्यक्ति) की हिमायत नहीं करता। वे एक ऐसे समाज के पक्षधर थे जहॉ "किसी को भी किसी का व्यक्ति-स्वातन्त्र्य खरीदने का अधिकार न हो, न बेचने का। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को रहन न रखा जाय, न कोई किसी को रहन रखने दे, किन्तु जो व्यक्ति स्वातन्त्र्य समाजवाद और जनतन्त्र के समन्वय मे बाधक हो या इन दोनो में से किसी एक का भी उत्सर्ग करने के लिए उत्सुक हो, उस व्यक्ति-स्वाातन्त्र्य को पूरा समाज सार्वजनिक रूप से निन्दिति और तिरस्कृत करे।"[124] व्यक्ति की स्वतन्त्रता को वे उसी हद तक जरूरी समझते थें, जहॉ वह दूसरो के लिए पीड़ादायी न हो। कहने का तात्पर्य यह है कि वे अहम्केन्द्रित व्यक्ति स्वातन्त्र्य के विरोधी थे। 'व्यक्ति की मुक्ति' के सन्दर्भ में उनका मानना था कि जब तक समाज में अन्याय है, विषमता है, तब तक उनका कवि व्यक्ति की मुक्ति की बात नहीं कर सकता-

"कभी अकेले मे मुक्ति न मिलती
यदि वह है तो सब के ही साथ है।"[125]

निजी सवेदनात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करने वाली कविता उनकी दृष्टि मे समाज के लिए अनुपयुक्त थी। उनकी सृजनात्मकता मूलत. शोषित, उत्पीडित व दलित व्यक्तियों के व्यापक

सामाजिक हितो के प्रति प्रतिबद्ध रही है। इन उत्पीडित जनो की समस्याओ को दूर करने के लिए अगर वर्ग-सघर्ष या क्रान्ति का भी सहारा लेना पडे तो वह मुक्तिबोध के अनुसार अनुचित नहीं। पीडित जन के प्रति उनकी यह सवेदनशील दृष्टि ही उन्हे मार्क्सवादी विचारधारा की ओर ले गयी, जो ऐसे जनो के पक्षधर है। विज्ञान व प्रौद्योगिकी के बढते प्रभाव के कारण होने वाले व्यापक परिवर्तनो के देखते हुए मुक्तिबोध कभी मार्क्सवादी विचारधारा को सिद्धान्तवत् न अपना सके वल्कि उन्होने उसे अपने विवेक व तर्क के बल पर भली-भॉति परख कर उसके जीवन्त-तत्वों को ही ग्रहण किया। दूसरे शब्दो मे कहे तो, उन्होंने विश्वदृष्टि के धरातल पर मार्क्सवाद को नया रूप दिया, जो पूजीवादी-यान्त्रिक सभ्यता से उत्पन्न परिवर्तनो को देखते हुए जरूरी था।

कला को रहस्यात्मक-जगत् की वस्तु न मानने वाले मुक्तिबोध मार्क्सवादी साहित्यकारो के इस विचार से सहमत थे कि कला का अध्ययन व विश्लेषण विश्व-चेतस हुए बिना या बाह्य-जगत् की विविधता को जाने बिना नहीं हो सकता । क्योंकि उनके अनुसार बाह्य-जगत का आभ्यन्तरीकरण ही कविता या कला के रूप में अभिव्यक्ति पाता है ।[126] दूसरे शब्दों मे कहे तो बाह्य-जगत् में जो हम देखते सुनते है, जिन घटनाओं से प्रभावित या क्षुब्ध होते हैं, वही आन्तरिक अनुभव मे ढलकर संवेदनात्मक रूप मे कविता में उपस्थित होता है। अत कहा जा सकता है कि कविता में समझने व उसका सही विश्लेषण करने मे बाह्य जगत् का ज्ञान सहायक बनता है।

मुक्तिबोध जिस समय काव्य रचना कर रहे थे, उस समय का समाज कैसा था, उन्हीं के शब्दों में - "समाज भयानक रूप से विषमता ग्रस्त हो गया है। चारो ओर नैतिक ह्रास के दृश्य दिखाई दे रहे हैं। शोषण और उत्पीडन पहले से बहुत बढ गया है। नोच, खसोट, अवसरवाद, भ्रष्टाचार का बाजार गर्म है। कल के मसीहा आज उत्पीडक हो उठे है।"[127] इसका परिणाम यह हुआ कि "...सर्वत्र क्षोभ, कष्ट, अन्याय और उत्पीडन के

दृश्य दिखाई दे रहे है। समाज के भीतर के विभिन्न वर्गो की खाइयॉ और भी चौडी हो गयी है। यहॉ तक कि मध्यवर्ग मे भी श्रेणियॉ पैदा होकर अपनी परस्पर दूरी खतरनाक तरीके से गहरी और चौडी कर रही है । जनपद स्कूल के शिक्षक और यूनिवर्सिटी प्रोफेसर के बीच, गरीब जनता और खादीधारी नेता के बीच, क्लर्क और अफसर के बीच दूरियॉ और खाइया मुँह फाडे खडी है- किसान-मजदूर और पूजीपति-जमींदार के बीच की दूरियो का तो क्या कहना ।"[128]

ऐसे पतनशील समाज मे एक कवि की क्या भूमिका होनी चाहिए, इस बात को लेकर वे बेहद सजग थे। उन्होने अपने विविध लेखो मे कई स्थानो पर समसामयिक समाज को देखते हुए कवि के दायित्व से सम्बन्धित महत्वपूर्ण बाते कहीं है। उन्हीं के अनुसार - "आज ऐसे कवि चरित्र की आवश्यकता है, जो मानवीय वास्तविकता का बौद्धिक और हार्दिक आकलन करते हुए सामान्य जनो के गुणो और उनके सघर्षो से प्रेरणा और प्रकाश ग्रहण करे, तथा उसे और अधिक निखारकर कलात्मक रूप मे उन्ही की चीज को उन्हें लौटा दे। अपने युग की विवक-चेतना को मूर्तिमान करने का यह कार्य जितना गभीर और कठिन है उतना ही प्रेरणाप्रद है ।"[129] कवि मुक्बिोध अन्तत कविता से चाहते क्या है ? स्वय उन्ही के शब्दो मे, उनके निज-प्रयोजन इस प्रकार है-

"घर में, परिवार मे, समाज मे मनुष्य को मानवोचित जीवन प्राप्त हो। आर्थिक तुला के आधार पर घर में, परिवार में, समाज मे मनुष्यो के मूल्यो को न आका जाय।

आर्थिक उत्पीडन और शोषण-मूलक यह जो भयानक पूँजीवादी समाज व्यवस्था है, वह हमेशा के लिए समाप्त हो। और उत्पादन और श्रम के समस्त माध्यमो तथा साधनो पर पूरे समाज का अधिकार हो।"[130] अपनी कविताओ मे वे ऐसे ही समाज के सृजन मे प्रयासरत रहे है। इस पूँजीवाद के चगुल मे फंसी गरीब, दलित जनता की मुक्ति अगर क्रान्ति के द्वारा सम्भव है तो मुक्तिबोध के अनुसार "कला को अपने औजार उठा लेना

चाहिए, शायद बारूद भी जरूरी है, जिससे कि चट्टाने तोडी जा सके और युग के उन स्पन्दनशील सप्राण भाव निर्झरो को मुक्त किया जा सके, कि जो उन चट्टानो के नीचे दबे हुए है।"[131] उत्पीडित जन की मुक्ति हेतु प्रतिबद्ध कवि ने कविता को जरूरत पडने पर हथियार के रूप मे इस्तेमाल करने मे सकोच न करने का कहा, क्योकि तत्कालीन विषम परिस्थितियो मे अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने वालो के प्रति सक्रिय सहानुभूति कवि के महत्वपूर्ण दायित्वो मे से एक है। उनके अनुसार जब लेखक अपनी समझ को जीवन-जगत् के विविध अनुभवो से समृद्ध करेगा तभी सामाजिक वास्तविकता को भली-भॉति समझ कर समाज के उन व्यक्तियो के हित कुछ कर सकेगा, जो शोाषित व पीड़ित है। लेखक की प्रतिबद्धता को वे अनुचित नहीं मानते। उनका कहना है कि परिवेश से कटकर लेखक नही रह सकता। जब आम-आदमी उत्पीडन का शिकार हो रहा तो इस स्थिति मे शोषण करने वाली शक्तियो से सचेत हो उत्पीडित जनता के प्रति 'सक्रिय' सहानुभूति अनुचित नहीं, वरन् परम आवश्यक है। "साधारण मनुष्य सल्तनत नहीं चाहता। मनुष्य की स्वाभाविक गरिमा के अनुरोधो के अनुसार वह जीवन चाहता है और उस जीवन की आवश्यकताए पूरी जो जाने की स्थिति चाहता है।"[132] उनके अनुसार जहॉ व्यक्ति जीवन की मूलभूत आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु तड़प रहा हो, वहॉ उनकी ओर ध्यान न देकर कविता मे उस काव्य सौन्दर्य या कलात्मकता की चर्चा करना जो हमें तत्कालीन हासग्रस्त व्यवस्था से दूर किसी भऽजनोचित्त सौन्दर्याभिरूचि" या रहस्यमय लोक मे सौदर्य के दर्शन कराता है, कहॉ तक उपयुक्त है। इन तथाकथित सौन्दर्यवादियो को "जहॉ भी ऐसा प्रतीत हुआ कि अन्य की जीवन-दृष्टि उत्पीड़ित मानवता पक्ष ले रही है, वही नाक-भौ सिकोडे जाने के चिह्न दिखाई दिये।"[133] ऐसा साहित्य उनकी दृष्टि से सौन्दर्य उत्पन्न नहीं करता। आगे वे कहते है - "ये सौन्दर्यवादी लोग यह भूल गये कि बजर काले-स्याह पहाड मे भी एक अजीब वीरान

भव्यता होती है ।"[134] इन सौन्दर्यवादी लेखको के लिए कवि का कहना है कि उन्हे "अपनी सौन्दर्याभिरूचि के सेन्सर्स जरा ढीले करने होगे, विषय-सकलन को स्वानुभूत विवेक के विश्व-चेतस हाथो मे सौपना होगा ।"[135] वे यह भी कहते है कि ऐसा नहीं है कि वे तत्कालीन विषम परिस्थितियो से प्रभावित ही नही होते। "आज की विषम सभ्यता के भयानक दृश्यो से उनका भी चित्त क्षुब्ध हो जाता है। फिर भी वे इन सब बातो के चित्रण की ओर ध्यान नहीं देते ।"[136] इसका कारण उनकी दृष्टि मे यह है कि उनकी मूल्य भावना या विवेकक्षीण है। और ऐसा इसलिए है क्योकि "वे उच्च-मध्यवर्गीय, सम्पन्न, विलायती सस्कारो से युक्त सौन्दर्याभिरूचि के चक्कर मे है।"[137] मानवता के भविष्य-निर्माण के सघर्ष से स्वयं को जोडने वाले मुक्तिबोध कवियो मे विश्वदृष्टि का विकास आवश्यक मानते है। यह विश्वदृष्टि ही उनमे आभ्यन्तर आत्मिक शक्ति उत्पन्न कर उनके मनोबल को बढायेगी ताकि वे अपनी पीडा ग्रस्त अगतिकता को दूर कर विश्व मानवता के साथ एकाकार हो सके।[138]

मुक्तिबोध यथार्थ -जगत् की वास्तविकता को फैटेसी के माध्यम से अभिव्यक्ति देते है। यह उनकी अभिव्यक्ति की अपनी शैली है, जो उन्हे अन्य कवियो से अलग करती है। अपनी इसी शैली के कारण यथार्थ का प्रत्यक्ष रूप से सामना न करने के कारण उन पर पाठक को अलग तिलस्म की दुनिया की सैर कराने के आरोप लगे। जो व्यक्ति जीवन-पर्यन्त अभावो से जूझता रहा हो, वह फैंटेसी का सहारा लेकर तिलस्मी आकाश में कैसे विचरण कर सकता है ? मुक्तिबोध तत्कालीन भीषण यथार्थ से गहराई से जुडे रहे है जिसे वह फैंटेसी की शैली में आकर्षक ढग से अभिव्यक्त करते है जो कविता को प्रभावी बनाने के लिए उन्हे उपयुक्त लगी।

कल्पना शक्ति वास्तविक ससार से ही अनुभूति या वस्तु का चयन करती है। अत कल्पना का यथार्थ से सम्बन्ध है। सृजन प्रक्रिया के दौरान किसी भी विषय को सबसे

पहले तो हमे कल्पना मे ही साकार करना पडता है, क्योकि इसके बिना अभिव्यक्ति सम्भव नहीं। अत यथार्थ चित्रण के लिए भी कल्पना का सहारा तो लेना ही पडता है। अत कहा जा सकता है कि कल्पना के बिना कला सम्भव ही नहीं। कल्पना की अधिकता कवि की अपनी विशेष शैली हो सकती है, जो मुक्ति-बोध मे दिखलाई पडती है। उनकी यह कल्पना अवास्तविक या अलौकिक ससार से घटनाओ का चयन कर वास्तविक जीवन यथार्थ को मूर्त करती है , न कि किसी काल्पनिक लोक मे विचरण कराती है।

मुक्तिबोध युग-बोध को अभिव्यक्ति देने के लिए अचानक ही फैटेसी की ओर उन्मुख नहीं हुए वरन् इसकी पृष्ठभूमि उस समय ही बननी शुरू हो गयी जब वे अपने एक सहपाठी या मित्र शान्ताराम, जो रात मे गश्त लगाता था-के साथ रात के सन्नाटे से उत्पन्न रहस्यमय वातावरण मे घूमते थे। अग्रेजी शासन के दौरान दिन-प्रतिदिन होने वाले सामती-आतक व अत्याचारो से उत्पन्न रोमाच ने भी उन के मन मे गहरी पैठ की। पत्रकार जीवन व "उत्तरवर्ती जीवन मे पढे गये जासूसी उपन्यासो व साइस फिक्शन" ने उनकी कविताओ को फन्तासीय ताने बाने मे बुनने मे सहायता की। अवचेतन व स्वप्नपरक विम्बो की सृष्टि मे एडलर व युंग आदि विद्वानो की रचनाओ का भी योगदान है, जिसे उन्होंने भली-भॉति पढा था।[139]

यहाँ यह प्रश्न उठना भी स्वाभाविक है कि कवि मुक्तिबोध फैटेसी की शैली मे अपनी बात क्यो कहते हैं। इस सन्दर्भ मे उन्होने स्वय कहा कि "बहुत बार यह दुनिया जैसी दिखलाई पडती है, वैसी नहीं होती। उसके दिखलाई पडने वाले रूप और असली रूप में स्तब्ध कर देने वाला अन्तर्विरोध होता है। तथ्य यथार्थ को छिपा लेते है। ऐसी स्थिति मे फैटेसी के जरिये ही उसके असली रूप को दिखलाया जा सकता है।"[140] उनकी फैंटेसी निरूद्देश्य नहीं है। वे कहते है- " फैटेसी के भीतर वह मर्म- जिसमें एक उद्देश्य है, एक पीड़ा है, और एक दिशा है-अनेक जीवनानुभवो से समर्पित, सवर्धित और

पुष्ट होकर प्रकट होना चाहता है।"[141] कहा जा सकता है कि उन्होने विषम सामाजिक परिस्थितियो से पीडित-व्यक्ति के कष्टो से जन-जन को गहराई से सवेदित कराने के लिए फैंटेसी जैसी आकर्षक शैली का सहारा लिया, न कि तत्कालीन यथार्थ से पलायन के लिए। कवि तो खोजी दृष्टि को लेकर साहस के साथ लालटेन के प्रकाश मे दिखाई पडने वाले पथ मे आगे बढता जाता है। आगे उसे क्या-क्या मिलेगा, किन-किन घटनाओ से वह साक्षात्कार करेगा। यह सब उसे नहीं मालूम। बस वह आगे बढता जाता है रास्ते मिलते जाते है और कवि उनमे से अपने पथ का अपने सवेदनात्मक उद्देश्यो के अनुरूप चुनाव करता जाता है। कवि का सवेदनात्मक उद्देश्य यह है कि इस पृथ्वी पर सभी मानव सुखी, सुन्दर व शोषणमुक्त हो-

"समस्या एक-

मेरे सभ्य नगरो और ग्रामो मे

सभी मानव

सुखी, सुन्दर, व शोषण मुक्त

कब होंगे"[142]

परन्तु क्रूर शोषकों ने पीडितो के लिए दिन में भी एक ऐसे अँधेरे का सृजन किया है जिसमें दलित, पीडित और शोषित मानव जगत की गलियो मे फटेहाल प्रतिपल घूमता रहता है।[143]

कवि रघुवीर सहाय के सृजनशील व्यक्तित्व मे सहायक मुख्य बिन्दु व उनका काव्य विषयक दृष्टिकोण -

छोटी-मोटी जमींदारी वाले घराने में जन्म लेने वाले रघुवीर सहाय जीवन-पर्यन्त पीडितों के लिए कविता के माध्यम से सघर्ष करते रहे हैं । अपने साहित्य के अध्यापक पिता की साहित्यिक अभिरूचि को विरासत के रूप मे प्राप्त कर इन्होने उसे नये रूप में

प्रस्तुत किया । इनके पितामह श्री लक्ष्मी सहाय यद्यपि पुलिस सेवा मे थे किन्तु सेवा निवृत्ति के पश्चात् वे आर्य समाज के विचारो को फैलाते रहे तथा नि शुल्क चिकित्सा के माध्यम से समाज सेवा का कार्य भी करते रहे ।[144] अपने पितामह और पिता के समाज सुधारक विचारो को रघुवीर सहाय ने अपनी रचनाओ के नूतन शिल्प से सॅवारा और सजाया है । सत्रह साल की अवस्था मे ही जिसकी कविता प्रकाश मे आ गयी हो और अठारहवे साल की अवस्था मे जिसकी कविता यह कहे कि- बोल कि तू कितना मानव बन पाया अब तक/प्रवासी सौर जगत का ? लौट रहा घर, हारा मॉदा थका [145] –वह कवि निश्चय ही मानवता–वादी कवित्व के बीज को द्योतित कर रहा है । प्रकृति के प्रारम्भ की अनजाने कहानी सुनाने वाले रघुवीर सहाय विश्व से निर्मोही होकर तथा विश्व की शुभकामना के लिए युग युगो का बटोही बनकर निर्माण पथ पर चलते रहे ।[146]

भारत को आजादी मिलने के कुछ माह पूर्व ही कवि रघुवीर सहाय ने लिखना आरम्भ किया। उस समय उनके लिखने का उद्देश्य उन्ही के शब्दो में- "एक बहुत बडा क्षितिज हो सकता है, जिसमे वह उद्देश्य फैला हुआ हो, केवल सुन्दर स्वर, छन्द, शब्द को पहचानना, उन्हीं को फिर से सृजित करना, यह भी एक उद्देश्य का हिस्सा था। कुछ ऐसी बाते है जो न्यायोचित और सत्य लगती है, उनको कहना भी उद्देश्य था। इस प्रकार उद्देश्य की एक पूरी परिधि हो सकती है।"[147] अन्त मे अपने उद्देश्यो को समग्रत स्पष्ट करते हुए वे कहते है कि "इस प्रकार भाषा तथा एक सामाजिक सत्य के लिए आग्रह और फिर वह आशा जो चारो तरफ व्याप्त थी- ये तीन चीजे, कह सकते है कि लिखने को प्रेरित करती थी।"[148] वस्तुत लेखन-कार्य तीनो तत्वो का समुदित रूप होता है। ये तीनों मिलकर एक कारण बनते है। इसमे प्रमुखता सामाजिक चेतना की है। क्योंकि सामाजिक स्वरूप ही कविता को सार्थक आयाम देता है।

आजादी के एक दिन पूर्व हुआ देश का विभाजन, तत्पश्चात् दगे व गाधी की

हत्या- आदि घटनाएँ कवि के अन्तर्मन को दु खी करती है, पर आजादी मिलने से प्राप्त 'उल्लास व आशा' मे कवि तत्कालीन राजनीतिक व सामाजिक समस्याओ से बहुत ही सतही स्तर पर जुड पाता है क्योकि उसे विश्वास है कि धीरे-धीरे ही परिस्थितियाँ अनुकूल होगी। "नया वर्ष" शीर्षक कविता जो उन्होने आजादी के छह माह बीतने के बाद लिखी थी, उसमे स्पष्ट कहा कि यह समय देश हित मे और भी अच्छा हो सकता था, पर कवि निराश नहीं है। उनकी यह कविता आजादी के पूर्व देखे गये स्वप्नो को साकार करने के लिए जन-जन मे आशा, स्फूर्ति व उत्साह का सचार करती है- "नव आशा की स्फूर्ति चरण मे/नव निश्चय की नई शक्ति, नव रक्त रगो मे/दुहरा ले जी तोड परिश्रम की फिर शपथें।[149]

परन्तु सारे 'सपनो' के 'दर्पण' को चूर-चूर होते व 'आशा की बल्लरी' पर वज्राघात होते देख कवि के दृष्टिकोण मे बदलाव आया और वे सामाजिक यथार्थ के प्रति अधिक से अधिक जागरूक होते गये। लेखक जब अपने दायित्व बोध को समझने लगता है, तब उसका दृष्टिकोण व्यापक होने लगता है। वह 'ईमानदारी' से जब प्रेम करने लगता है, तब वह जन-सामान्य से सच्चे अर्थो मे प्यार करते लगता है। सच्चे कवि की कविता न बिकती है, न दूसरे के आदेशो के अनुसार कान पकड कर उठक-बैठक करती है, क्योंकि उसके लिए भाषा दूसरे की उधार ली हुई वस्तु नहीं रहती है-"बहुत दिन हुए तब मैने कहा था लिखूँगा नहीं। किसी के आदेश से/आज भी कहता हुँ। किन्तु आज पहले से कुछ और अधिक बार/बिना कहे रहता हूँ/क्योकि आज भाषा ही मेरी एक मुश्किल ही नही रही/एक मुश्किल है जनता।"[150]

जन सामान्य से जिनका रिश्ता ईमानदारी का हो जाता है वह कवि न रोमाण्टिक परम्परा की धारा मे बहता है न बाहरी मूर्तियो को तोडने के लिए दिखावटी प्रयास करता है। वह तो जनता से हार्दिक लगाव की रक्षा के लिए अपनी कविता की सृष्टि की मूर्तियों

को बार-बार तोडता और बनाता रहता है।[151] इसके मूल मे बस कवि की यही भावना रहती है कि उसका जनता के प्रति प्रेम वास्तविक धरातल पर बना रहे न कि प्रदर्शन मात्र हो।

जनता से ईमानदार सम्बन्ध बनाने वाले रघुवीर सहाय किसी भी दल से प्रतिबद्ध नहीं थे, फिर भी मार्क्सवाद पर उनकी आस्था थी जैसा कि उन्होने स्वय कहा- " कोशिश तो यही रही है कि सामाजिक यथार्थ के प्रति अधिक से अधिक जागरूक रहा जाए और वैज्ञानिक तरीके से समाज को समझा जाय। शमशेर बहादुर का यह कहना मुझे बराबर याद रहेगा कि जिन्दगी मे तीन चीजो की बडी जरूरत है आक्सीजन, मार्क्सवाद और वह शक्ल, जो हम जनता मे देखते है।"[152] मार्क्सवाद को अपरिहार्य मानने के बावजूद कविता के सन्दर्भ मे उनका कहना है कि "मगर मार्क्सवाद को कविता पर गिलाफ की तरह चढाया नहीं जा सकता।"[153] वस्तुत मार्क्सवाद उनकी रगो मे खून की भॉति समाहित था न कि दलीय प्रतिबद्धता मे बॅधकर बाहर से थोपा हुआ। उन्होने अपनी सामाजिक समझ को बढाने मे अपने मार्क्सवादी मित्रो के प्रभाव को स्वीकार करते हुए कहा कि "उन अभिज्ञान ने एक मौलिक मानवीय शक्ति दी है, जो आज तक मेरे काम आ रही है।"[154] इस मार्क्सवादी सामाजिक समझ ने ही उन्हे लोहिया के चिन्तन की ओर आकृष्ट किया। जिनसे वे अत्यन्त प्रभावित थे। वे स्वय इस बात को स्वीकार करते हुए कहते है कि "मार्क्सवाद का अनुभव यदि मैने प्रारम्भ मे न पाया होता तो शायद लोहिया भी मेरे लिए अन्य समकालीन साहित्यिको की भॉति सिर्फ एक विचारहीन पूजा की वस्तु बन जाते।"[155] लोहिया की विचारधारा ने रघुवीर सहाय को उस सामाजिक सच्चाई को जानने का अवसर दिया जिसके माध्यम से वे भारतीय समाज में व्याप्त मिथ्याचार, पाखण्डवाद, धोखाधडी, मक्कारी, बनावटी जीवन को ध्वस्त करने वाले विचारो को विस्तृत आयाम दे सके । वस्तुत लोहिया की विचारधारा ने उनके लेखन को इतना प्रभावित नहीं किया

जितना उनके समझने के यन्त्र को ।[156]

सामाजिक विचारधाराओ के अन्न जल से पलने वाले रघुवीर सहाय ने कभी भी राजनीतिज्ञो के कुशासन से समझौता नहीं किया क्योकि राजनेता लोग अपनी नीतिविहीन भ्रष्टाचारिता के द्वारा नहरो और कुओ की खुदाई का पैसा स्वय खा जाते है और अकाल मे मरते हुए मनुष्य को समझाते है कि वे ही उन्हे अन्न दे सकते है। वे लोग अपनी दास-वृत्ति नीतियो के कारण देश की शक्ति बढाने मे असमर्थ रहते हुए भी लोकतन्त्रीय बहुमत के सहारे लोकप्रिय शासक बने रहकर नैतिक-मूल्यो का उपहास करते हुए भौतिक सुखो की मदिरा मे आकठ डूबे रहते है।[157]

रघुवीर सहाय लेनिन के इस कथन "ससद एक गपशप की दुकान मात्र है जिसमे बातचीत तथा बहस के जरिए आम आदमी को बेवकूफ बनाया जाता है।"[158] को अपनी कविता में चित्रित करते हुए इस देश के भ्रष्ट नेताओ के काले-कारनामो को व्यग्य के माध्यम से अभिव्यक्त करते है—ससद एक मन्दिर है जहॉ किसी को द्रोही कहा नही जा सकता/ . दस मन्त्री बेइमान और कोई अपराध सिद्ध नही/काल रोग का फल है अकाल अनावष्टि का/यह भारत एक महागद्दा है प्रेम का।"[159]

राजनीतिक कारणों से प्रभावित होकर रघुवीर सहाय ने अपने हृदय के भाव को कविता के रूप में अभिव्यक्त किया है। सवेदनशील कवि राजनीति के पाखण्डवादी अत्याचारों से कभी सॉठ-गॉठ नही कर सकता है। रघुवीर सहाय राजनीति के उथल-पुथल में और उससे पैदा होने वाले रास्ते के विकास मे बढ-चढकर अपनी लेखनी के माध्यम से हिस्सा लेते है, किन्तु किसी को वे यह अधिकार नही देते कि कोई उनके काम की कैफियत मॉगे।[160] समाज के प्रति उत्तरदायी कवि कभी भी राजनीतिक उथल-पुथल और उसके शोषण को अपनी बेवस ऑखो से देखता नही रह सकता। वह अपनी कविता के माध्यम से उनके अत्याचारों पर रोक लगाने के लिए यथासम्भव प्रयास करता रहता

है। वे कवि जो "कविता के लिए कविता" मे डूबे रहकर राजनीतिक हिस्सेदारी से अपने को मुक्त रखते है वे कवि भले हो सकते है किन्तु राष्ट्र और समाज की दृष्टि से नगण्य होते है। लेखक के लिए राजनीति से अलग रहना हर हालत मे बेमानी और बेईमानी है। परन्तु राजनीतिक पार्टी का गुलाम हो जाना सिर्फ उसी हालत मे बेईमानी है जब कवि यह हरकत समाज के नाम पर करते है।[161]

कवि रघुवीर सहाय राजनीति व रचनाकार के धर्म को अच्छी तरह समझते है। वे अपनी लेखनी को राजनैतिक बन्दिनी बनाना कभी नही चाहते।[162] शासक सदा बाध्य करता है कि कवि उसके साथ काम करे किन्तु कविता अकेले ही काम करना चाहती है। किसी की आज्ञा को वह स्वीकार नही करती- "वे हमेशा बाध्य करते है/ कि हम दूसरे के साथ काम करे/ जबकि कविता अकेले ही काम करने का तकाजा करती है।"[163] लेखक अन्याय के विरूद्ध कलम लेकर बैठा हुआ लिखता रहता है, वह दूसरो के शब्दो को नहीं लिखता है वरन् शब्दो को खोजता रहता है क्योकि लेखक स्वच्छन्द है।[164]

रघुवीर सहाय इस सच को सदा स्वीकार करते है कि राजनीति एक अच्छे और सही अर्थ में एक रचनात्मक कर्म के रूप मे अनिवार्य है और होना चाहिए।[165] वास्तविक लेखक वही है जो सामाजिक, राजनैतिक एव धार्मिक दादागिरी के खिलाफ अपनी लेखनी उठाकर शोषित, दलित-पीडित दीन-हीन कृषक व मजदूरो के उत्थान के लिए अपनी आवाज को बुलन्द करता है। 'एक अधेड भारतीय आत्मा' कविता मे कवि ने जिस निर्भीकता से देश के स्वरूप को प्रस्तुत किया है वह कवि-कर्म का उदात्त रूप है। रघुवीर सहाय की राजनीतिक दृष्टि के सार को सुरेश शर्मा के शब्दो मे कहा जा सकता है- " रघुवीर सहाय एक सही विचारधारा के साथ कवि के जुडाव को तो अनिवार्य मानते हैं लेकिन उस विचारधारा से नियन्त्रित दल के साथ अपना रिश्ता बराबर का रखना चाहते हैं। दल का आदेश या एक खास समय मे दल की दृष्टि से ही यथार्थ को नहीं देखना

चाहते, बल्कि दल किसी स्थिति के सन्दर्भ मे जो दृष्टि बनाता है, वह बनाने मे भी अपनी भूमिका निभाना चाहते है।"[166]

'भारतीय लोकतन्त्र' विश्व का सबसे बडा लोकतन्त्र है किन्तु इस लोकतत्रात्मक व्यवस्था मे राजतन्त्र के सारे दोष समाहित है। रघुवीर सहाय महसूस करते है कि इस लोकतन्त्र मे मानवीय सवेदनाएँ मर गयी है।[167] इस लोकतन्त्र मे जनता के हितैषी कहे जाने वाले नेता-गण जनता के रक्त से अपने मौजमस्ती भरे जीवन को सींचते रहते है। इनका विरोध करने वाले भी अवसर आने पर उन्हीं जैसा आचरण करने लगते है। लेखक और कवि भी शासन को तो नहीं बदल पाते किन्तु वे अपने को ही बदलकर गर्वान्वित होते है।[168] ऐसी स्थिति में रघुवीर सहाय जैसे कवि अपने साहित्यिक हथियारो के माध्यम से हर मोर्चे पर सभी अत्याचारी सेनाओ से लडते रहते है। यही लडने की इच्छा और दूसरे इन्सान के लिए जिन्दा रहने की कामना ही उनसे सवदेनशील साहित्य का सृजन कराती है।[169]

रघुवीर सहाय अपने कायर मन को वराबर टूटने की प्रेरणा देते है।[170] कायरता से मुक्त मन ही समाज को सही रास्ता दिखा सकता है। "आत्म हत्या के विरूद्ध" कविता संग्रह रघुवीर सहाय के राजनैतिक व अराजनैतिक जीवन की सही तस्वीर को प्रस्तुत करता है। इस सग्रह में इनकी राजनैतिक चेतना निष्पक्ष चिन्तन के निर्मल स्वरूप को प्रस्तुत करती है।

वे तथाकथित श्रेष्ठ माने जाने वाले लोगो के साथ नहीं हो सकते (श्रेष्ठ लोगों मुझे माफ करो/ मैं तुम्हारे साथ आ नही सकता)[171] क्योकि वे असहाय लोगो के दु खो को सहते रहते है (खुश और असहाय/उनके बीच में रहता हूँ/उनका दु ख. .)[172]।आज समाज की जैसी स्थिति है, वैसी कभी नहीं रही है। बौद्धिक वर्ग जिनके मन में शासन से नफरत है- वह तटस्थ है। एक बौद्धिक वर्ग वह भी है जो शासन का गुणोगान करता हुआ,

अपनी तौद को मोटी करता हुआ साहित्यिक होने का मिथ्या दम्भ भरता है। वस्तुत आज देश मे सामूहिक कायरता ने अपना स्थान विस्तृत कर लिया है। इसलिए शासन मे भ्रष्टाचरण बढता जा रहा है। लोगो का झुण्ड प्रतिदिन थोडा थोडा मरता हुआ अपने मे ही लीन शहरी सभ्यता की ओर बढता जा रहा है- (रोज-रोज थोडा-थोडा मरते हुए लोगो का झुण्ड/तिल-तिल खिसकता है शहर की तरफ)।[173] रघुवीर सहाय भीड की नि सगता या कायरता को देखकर दु खी हो जाते है। उनकी सूक्ष्म-दृष्टि ने जब देखा कि लोकतन्त्र एक मजाक बनकर रह गया है और हर व्यक्ति एक दूसरे से नफरत कर रहा है तब उनकी लेखनी इस दु खद सत्य का सवेदनापूर्ण चित्रण किये बिना न रह सकी।[174]

इस निरर्थक होती लोकतन्त्रीय व्यवस्था के बीच कवि रघुवीर सहाय अपने को न्याय व समानता के पक्ष मे खडा करते है।[175] वह क्रान्ति का पुजारी व मसीहा बनना नही चाहते, न ही आत्मपीडक भाव मे लिप्त होकर लोगो से सहानुभूति चाहते है क्योकि उनकी दृष्टि से ये रास्ते उसे अपने कर्तव्य से विमुख करने वाले है। वे अपनी कविता को 'समता की लडाई लडने का कारगर माध्यम' बनाना चाहते है।

तत्कालीन परिवेश मे व्यक्ति के स्तर का निरन्तर गिरते जाना व मानवीय मूल्यो का दिखावटी रूप कवि रघुवीर सहाय की मूल-चिन्ता है। आज मनुष्य इस्तेमाल की वस्तु बनता जा रहा है। सर्वत्र बनावटी रागात्मकता दिखाई दे रही है, जिससे आत्मिक पतन होता जा रहा है। वे अपनी कविता के माध्यम से सच्चे रागात्मक सम्बन्धो की स्थापना करना चाहते है, भले ही इसके लिये सघर्ष को आधार बनाना पडे। इस सन्दर्भ वे कहते है कि " कवि का हर समय सार्थक अभिज्ञान यही है कि सघर्ष का आधार नए मानवीय रिश्ते की खोज होना चाहिए और यह खोज जारी न रहने पर वे परिणाम निकल सकते है, जिनको आज हम देख रहे है- इतिहास व परम्परा की विकृति के द्वारा एक बनावटी इतिहास का निर्माण और आने वाली पीढी की प्रायोजित अशिक्षा।"[176] सच्चे रागात्मक

सम्बन्धो की खोज व स्थापना के लिए कवि का यह दायित्व है कि वह परम्परा से प्राप्त मानव-मूल्यो को सँजोकर रखे ताकि नयी पीढी उससे कुछ ग्रहण कर सके।

'कवि के दायित्व' के प्रति रघुवीर सहाय सदैव सजग रहे है। 'लखनऊ लेखक सघ' के परिपत्र मे उन्होने लेखक के दायित्व से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण बाते कही है। उनके शब्दो मे "सामाजिक विकास मे समाज के अन्य सचेत अगो की भॉति लेखक का भी दायित्व होता है आज हमारे समाज मे त्रास व कुठा का वातावरण है और सास्कृतिक क्षेत्रो मे महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे है। ऐसी स्थिति मे लेखको का कर्त्तव्य है कि वे पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ जन-चेतना के स्वस्थ विकास का प्रयत्न करे।"[177] युद्ध, शोषण, भय व आतक- ये तत्व उनकी दृष्टि मे जन-चेतना के विकास मे बाधक बनते है। अत इन्हें उत्पन्न करने वाली शक्तियो का विरोध करना लेखक के महत्वपूर्ण दायित्वों मे से एक है।[178] 'सामाजिक वास्तविकता' को कलात्मक सृजन का मूल स्त्रोत[179] मानने वाले रघुवीर सहाय का मानना है कि कोई भी रचना 'विनाश के विरूद्ध' होती है।[180] अत कहा जा सकता है कि रघुवीर सहाय अपने रचनाकर्म के द्वारा "विनाश के विरूद्ध आवश्यक कार्यवाही ही करते है।" यह कार्य उनकी रचना को सार्थकता प्रदान करता है।

रघुवीर सहाय किसी भी तरह की प्रतिबद्धता से मुक्त हो व्यापक ससार के दृश्यो को अपनी कविता के दर्पण मे प्रतिबिम्बित करते है। उनकी दृष्टि मे कविता मे प्रतिबद्धता अहवाद को जन्म देती है, चाहे वह आम-आदमी के प्रति ही प्रतिबद्ध क्यो न हो। कवियों पर अहवादी होने के आरोप लगाये जाने पर प्रतिक्रिया स्वरूप 'लोग भूल गये है" कविता-सग्रह की भूमिका मे उन्होने कहा कि "वास्तव मे अह खुले आम जन-साधारण के बारे मे लिखने का अहकार करने वाले कवियो में भी हो सकता है, यह आज ही प्रकट होकर दिख रहा है।"[181] उन्होंने जनवादी कवियों की श्रेणी मे अपने को खडाकर एक ही पक्ष की कविता नहीं लिखी वरन् जीवन के विविध भावों व विषयो (प्रेम, करूणा, ईश्वर,

स्त्री समस्या, हिन्दी भाषा) को लेकर कविताएँ लिखी है। "लेखक स्वच्छन्द है"[182] की बात करने वाला कवि कभी भी प्रतिबद्ध होकर सृजन नहीं कर सकता।

अपने पिता से 'अनाहत जिजीविषा'(तुमने जो दी है अनाहत जिजीविषा)[183] प्राप्त करने वाले रघुवीर सहाय की जो लेखनी "आत्महत्या के विरूद्ध" उठी, वह आजीवन विनाश के विरूद्ध व न्याय व समानता के पक्ष मे सर्जना के क्षणो को रेखाकित करती रही है। वे अपनी लेखनी को विनाशकारी शक्तियो के विरूद्ध ब्रज बनाकर प्रस्तुत करते है। उन्हे इसमे कितनी सफलता मिली, यह महत्वपूर्ण नही है, वरन् उनका प्रयास किस हद तक है, वह श्लाध्य है। उन्होने ठीक ही कहा है- "जिस तरह रचनात्मकता और आजादी एक ही मानवीय आकाक्षा के पर्याय है उसी तरह समता की लडाई और कविता भी एक ही मानव के उत्कर्ष के पर्याय है।[184]

रघुवीर सहाय "कविता के नक्शे मे एक चाल"[185] चलने वाले कवि नहीं हैं वरन् घुटनो के छिलने से प्राप्त सत्य का चित्रण करने वाले कवि है। वे जन सामान्य की पीडा को अपनी कविता के ओठो से पीने के लिए सदैव तत्पर रहे है[186] तथा सामाजिक-सास्कृतिक व राजनीतिक पतन से मुक्ति के उपाय को अपनी कविताओ के माध्यम से ढूढते हुए लोहिया के खोजी व्यक्तित्व को साकार रूप देते है।

गिरिजा कुमार माथुर के सृजनशील व्यक्तित्व व काव्य-दृष्टि पर पारिवारिक व पारिवेशिक प्रभाव-

मध्यप्रदेश के अशोक नगर मे २२ अगस्त १६१६[187] को जब गिरिजा कुमार माथुर ने इस वसुन्धरा का स्पर्श किया तब किसी ने यह अनुमान नहीं किया होगा कि यह व्यक्ति स्वातन्त्र्योत्तर भारत मे हिन्दी साहित्य जगत् का सशक्त हस्ताक्षर सिद्ध होगा। किसी भी व्यक्ति के निर्माण में पारिवारिक परिवेश का वहुत महत्व होता है। अध्ययनशील पिता के पुस्तकालय में सदग्रन्थों का उत्तम सग्रह होने के कारण बालक गिरिजा कुमार माथुर भी

पिता के समान अध्ययन मे रूचि लेने लगे। बारह वर्ष की अवस्था तक रामनरेश त्रिपाठी द्वारा सम्पादित "कविता कौमुदी" के अतिरिक्त अनेक कवियो का इन्होने अध्ययन कर लिया था।[188] इस अध्ययन ने इनके कोमल मन मे कविता का बीज बोया, जो आगे चलकर पल्लवित व पुष्पित ही नही हुआ वरन् अपने अद्वितीय सौरभ से सबका मन मोहने मे समर्थ हुआ। चौबीस घटे अपने अध्यापक पिता की छाया मे रहने के कारण इन्हे पिता के स्नेह के साथ-साथ ज्ञान भी मिलता रहा। अग्रेजी मे मिडिल की शिक्षा-समाप्ति के पश्चात् अपनी बहन के यहॉ झासी मे जाकर इन्होने हाईस्कूल व इन्टरमीडिएट की शिक्षा पूरी की।[189] यहीं पर इन्हे साहित्यिक वातावरण मिला। आयेदिन होने वाले कवि-सम्मेलनो मे ब्रजभाषा के माधुर्य से प्रभावित होकर इनकी कवित्व शक्ति ब्रजभाषा मे कवित्त व सवैये के रूप मे प्रस्पुटिन होने लगी, लेकिन सम्पूर्ण विश्व को आकर्षित कर लेने वाली छायावादी कविताओ ने गिरिजा कुमार माथुर को अपने रूप-माधुर्य से आकर्षित कर इनकी लेखनी को खडी-बोली मे कविता लिखने को बाध्य कर दिया।[190] पन्त के "पल्लव" की स्निग्धता, जयशकर प्रसाद के 'ऑसू' की धारा, महादेवी की रचनाओं की वेदना तथा मॉ का रूग्णावस्था से द्रवित इनकी कविताओ में छायावादी ढग की वेदना को अभिव्यक्ति मिली लेकिन इनका यह रागात्मक लेखन अल्पकालिक रहा क्योकि यथार्थवादी चिन्तक कल्पनाओ के उद्यान की सुषमा मे अपने को बहुत दिनों तक विस्मृत नहीं कर सकता है। निराला की रचनाएँ - 'बादलराग' व 'जागो फिर एक बार' यदि किसी भावुक के स्वप्न-जाल को ध्वस नहीं कर सकती है तो वह पाषाण-हृदय ही हो सकता है। गिरिजा कुमार माथुर की नींद को निराला, माखनलाल चतुर्वेदी आदि की क्रान्तिकारी रचनाओ ने इस प्रकार तोडा कि वे स्वप्न लोक से जागकर उठ खडे हुए और शुभ कर्म करने के लिए कभी सोने का नाम न लेते हुए उपनिषद[191] के बताए हुए मार्ग-खडग-धार पर चलते गये। यही मार्ग उनके जीवन का ध्येय बन गया और वे यथार्थ

जगत् के अन्तस्तल मे प्रवेश कर अपनी रचनाओ को नया रूप प्रदान करने लगे।

इस बीच वे १६३६ मे बी० ए० करने के लिए ग्वालियर के विक्टोरिया कालेज गये, जहाँ इन्होने अग्रेजी, हिन्दी-साहित्य तथा इतिहास का गहरा अध्ययन किया। १६३८ मे अग्रेजी मे एम० ए० करने के लिए इन्होने लखनऊ विश्वविद्यालय मे प्रवेश लिया। यहीं पर इनका परिचय अग्रेजी मे पी-एच० डी० कर रहे रामविलास शर्मा ने निराला जी से करवाया। यह सम्पर्क शनै शनै घनिष्ठ रूप मे परिवर्तित हो गया।[192]

सन् १६३६ मे 'प्रगतिशील लेखक सघ' की स्थापना ने साहित्य जगत् को एक नयी दिशा प्रदान की। प्रेमचन्द का 'गोदान', पन्त जी का काव्य-सग्रह 'युगान्त', निराला की 'राम की शक्ति पूजा' व 'हस' तथा 'रूपाभ' पत्रिकाओ ने इस नये मच को ऐसी शक्ति प्रदान की, जिसके कारण विविध आयामी प्रगतिशील लेखन का सशक्त रूप आरम्भ हो गया।

इसी समय गिरिजाकुमार माथुर का पहला सग्रह 'मजीर' प्रकाशित हुआ। इस सग्रह में तीन स्वर है- (१) छायावादी करूणा एव वेदना के स्वर से सम्पृक्त कुछ कल्पनाशील गीत (२) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे जीवन-यापन करने व इतिहास के प्रति लगााव होने के कारण इतिहास की गाथाओ मे मिलने वाले शौर्य तथा त्याग को अभिव्यक्त करने वाली कविताएँ (३) विफल प्रेम से उत्पन्न अपार दु:ख व वेदना की गूँज से परिपूर्ण हृदयस्पर्शी कविताएँ। 'मजीर' सग्रह की कविताएँ वस्तुत आत्माभिव्यक्ति की कविताएँ है। कवि माथुर इस प्रकार की कविताओ से मुक्ति के लिए स्वय प्रयत्नशील थे क्योंकि वे जन-जन की वेदनाओ को अपनी कविताओ मे सवेदना पूर्ण अभिव्यक्ति देना चाहते थे। शीघ्रतिशीघ्र फासिज्म शक्ति के विनाशक युद्ध की घटनाओं ने उन्हें यथार्थ के अरण्य में प्रवेश करा दिया, जिसके कारण उनकी रचनाओ मे परिवर्तित मनो-सामाजिक चेतना का स्वर फूट पडा।[193]

कविता स्वय प्रस्फुटित होती है लेकिन इसके स्वरूप को तत्कालीन परिस्थितियॉ ही अभिव्यक्त करती है। गिरिजा कुमार माथुर की कवित्व शक्ति को निराला की ओजपूर्ण कविताओ ने, जिसमे महाकाव्यात्मक सौन्दर्य के साथ-साथ यथार्थवादी स्वर जन-जन मे शक्ति और ऊर्जा का सचार करता था- नया रूप प्रदान किया।

इस यथार्थ चिन्तन के समुद्र मे डूबकर रत्नो को ढूढने की प्रेरणा उन्हे अकस्मात् नहीं मिली थी। वस्तुत गिरिजा कुमार माथुर की परवरिश जिस अशोक नगर मे हुयी थी वह उनके जन्म के समय मध्यभारत का एक पिछडा देहाती क्षेत्र था। पिछडेपन के कारण वहॉ की दुनियॉ उन्हे एक धुँधलके से भरी रात्रि की भॉति दिखाई पडती थी।[194] वहॉ के प्राकृतिक सौन्दर्य- मालवा के अरूणिम पठार, विध्याचल की ऐतिहासिक पहाडियॉ, काली मिट्‌टी वाले सॉवले खेत, ताल, विटप, खजूरो के झुरमुटो से आच्छादित भूमि तथा अल्हड नदियो की मनमोहनी क्रीडाये आदि ने बालक माथुर के हृदय को कवित्व शक्ति के माधुर्य से भर दिया था। वहॉ के पिछडे जीवन की विषमताओ ने उन्हे यथार्थोन्मुखी बना दिया।

उस बस्ती की घोर अशिक्षा तथा उससे सहज जन्म लेने वाली रूढियो, अन्धविश्वासो, रोगो के आक्रमण, सेठ-साहूकार मे अमानवीय-व्यवहार और अनेक प्रकार की सामाजिक कुरीतियों ने इन्हे कल्पना जगत् से निकालकर सत्यान्वेषी बनाया। इनके इस चिन्तन में आनुवशिकता का भी बहुत बडा योगदान था। उनके पिता बाबू देवीचरण उर्दू, हिन्दी व अंग्रेजी के ज्ञाता होने के साथ-साथ इतिहास और प्राचीन श्रेष्ठ धार्मिक ग्रन्थो के कुशल अध्येता थे। वे अध्यापक ही नही वरन् कवित्त, सवैया, दोहे आदि छन्दो मे सुन्दर कविता भी लिखते थे, जो सग्रह के रूप मे प्रकाशित भी हुआ।[195] इनकी मॉ भी विदुषी अध्यापिका थीं जिन्हे हिन्दी, सस्कृत, उर्दू और अग्रेजी भाषा का अच्छा ज्ञान था। ऐसे माता-पिता के एकलौते पुत्र गिरिजा की पारिवारिक पृष्ठभूमि सदैव इनकी ज्ञान-वृद्धि मे

सहायक बनी। इसी के परिणाम स्वरूप इन्होने अपने जीवन मे सर्वदा यथार्थ को पहचानने तथा आदर्श को अपनाने का सफल प्रयास किया।

गिरिजा कुमार माथुर ने अपने परिवार और ग्रामीण जीवन के सरल और स्नेहिल प्रीति की प्राप्ति के विषय मे स्वय कहा है "इकलौता होने के कारण सारे परिवार और बस्ती के लोग के लाड-चाव, प्यार-दुलार का केन्द्र था। जो अपार प्रीति मुझे मिली, उसकी प्रतिमूर्ति मै बनता चला गया। फलस्वरूप सहृदयता, आत्मीयता, घनिष्टता, कोमलता, मिठास, जिज्ञासा, अनायास यह मेरे व्यक्तित्व और स्वभाव के केन्द्र बने।" [196]

मॉ का दुलारा होने के कारण गिरिजाकुमार माथुर को बचपन से अपनी मॉ से 'अलिफ लैला', देवकीनन्दन खत्री के तिलस्मी उपन्यासो की कहानियॉ और अनेक कथाएँ सुनने को मिलती रही। मॉ से ही इन्होने लाला भगवानदीन की 'वीरपञ्चरत्न' की ऐतिहासिक रचनाएँ सुनी, जिसके परिणास्वरूप ये ऐतिहासिक तथ्य को जानने के लिए सर्वदा गम्भीर रहे। यद्यपि अपने मामा से इन्हे सगीत का लालित्य प्राप्त हुआ था किन्तु उनकी मॉ के तमाम दैहिक कष्ट, विषम-परिस्थितियो से किये गये सघर्ष ने इनके मन मे एक प्रकार की निर्लिप्तता, निस्सङ्गता, सकल्पशीलता सहनशीलता और तितीक्षा को जन्म दिया जो आगे चलकर इनकी कविताओ के माध्यम से जन-जन के जीवन की सच्ची कहानी बनकर अभिव्यक्त हुई। [197]

जीवनगत विभिन्न प्रकार की परिस्थितियो के कारण इनकी कविताओं के कोमल तन्तु से भी आग की ज्वाला निकलती है तभी तो प्रभाकर श्रोत्रिय ने कहा है- "अपनी कोमलता और अभिजात्य के बावजूद माथुर जी मे जुझारूपन था। यह उनके व्यक्तित्व में भी दिखता है और रचना मे भी इसमें स्फुल्लिङ्ग है।" [198] वस्तुत कविता की सार्थकता तभी सिद्ध होती है जब कवि अपने अनुभव की समस्त निधियों के बॉटता हुआ जन-सामान्य के नैराश्य को दूर करने के लिए प्रयासरत होता है।

आजीविका की तलाश ने भी उनकी कवित्व-शक्ति को यथार्थोन्मुखी बनाने मे विशेष योगदान किया। जीविका की खोज मे जब वे दिल्ली गये तब उनका सताप चरमोत्कर्ष पर था, क्योकि इसे प्राप्त करने के लिए उन्हे अनेक की सच्चाई से रूबरू होना पडा। प्रयत्नशील व्यक्ति की सहायता सौभाग्य करता ही है। एक कवि गोष्ठी के माध्यम से वे रेडियो के सम्पर्क मे आये और वे वहॉ अपनी शिक्षा-दीक्षा, कण्ठ-स्वर, भाषा का ज्ञान, सगीत, नाटक आदि का सुन्दर ज्ञान रखने के कारण अपना प्रोग्राम देने लग गये।इस प्रकार के कठिन सघर्ष ने अन्तत १६४३ मे उन्हे आकाशवाणी मे नौकरी दिला दी[199] किन्तु उनके दु खो की इतिश्री नहीं हुई थी। इन दिनो के कठोर व कटु अनुभवो ने "नाश और निर्माण" जैसे सार्थक काव्य का सृजन करने की प्रेरणा दी। इस सग्रह मे उनकी जिन्दगी की कठोर वास्तविकता की टकराहट की मर्मस्पर्शी वह गूँज है, जो सहज रूप मे जन-जन के हृदय मे सवेदना उत्पन्न करती है।

इन्हीं सकटकालीन दिनो मे उन्होने मार्क्सवाद का गहन अध्ययन किया। उन्होने इसके विषय मे स्वय कहा है- "मार्क्सवाद के अध्ययन से मेरी ऑखे खुल गयी, मुझे स्पष्ट हुआ कि राजनीति की समझ के बिना यथार्थ की पहचान नहीं हो सकती है। सत्ता का स्वरूप, राजनीति, समाज का आर्थिक आधार, ठोस यथार्थ, वर्ग चेतना, इतिहास की द्वन्द्वात्मक प्रकिया, दमन और शोषण से मानवीय समता और स्वाधीनता का नया रास्ता मार्क्सवाद ने खोल दिया था। सामाजिक परिवर्तन के लिए मनुष्य समर्थ है यह नई दिशा थी जिसकी मुझे पहचान नहीं थी। लेकिन मेरी प्रेरणा-भूमि मे लोक-जागरण की पुरानी क्रान्तिकारी परम्परा भी थी, जिसमे सामान्य जन की गरिमा और मुक्ति की अनन्य प्रतिष्ठा की गयी थी।"[200]

मार्क्सवाद ने कवि गिरिजा कुमार माथुर मे स्फूर्तिदायक प्रेरणा का सचार किया। उन्होंने मार्क्सवाद के माध्यम से सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा द्वन्द्वात्मक आधार पर

इतिहास के विकास और परिवर्तन के सिद्धान्तो का अध्ययन किया व अपनी मानवीय सवेदनाओ के आधार पर उसे ग्रहण किया न कि महज सिद्धान्त रूप मे। इस प्रकार उनके द्वारा प्राप्त की गयी नयी जीवन-दृष्टि उनकी कविताओ मे नूतन मुक्ति के द्वार खोलती हुई उद्‌भासित होती है। वस्ततु मार्क्सवाद के सिद्धान्त ने कवि कर्म को प्रभावित किया है। इसके परिणामस्वरूप उनकी रचनाओ ने गॉव व देहात की जनपदीय चेतना को आधुनिकता, अतरिक्ष युगीन वैज्ञानिकता तथा नूतन-सृष्टि-कला के रगो से रग दिया है।[201]

उन्होने मार्क्सवाद के विचारो को अपने अनुभव से नये रूप मे प्रस्तुत करते हुए प्रगतिशील कविता के विषय मे स्वय कहा है-" मानवीय सवेदना और सास्कृतिक परम्परा को अलग करके कविता या प्रगतिशील कविता को नहीं देखा जा सकता है। कवि का दल या पक्ष पूरी सामान्य जनता होती है और कवि का लक्ष्य सत्य की पक्षधरता है। कविता मानवीय सवेदना का कलात्मक दस्तावेज होती है किन्तु इस द्वन्द्वात्मक वैचारिक टकराहट ने आधुनिक कविता को सृमद्ध किया, क्योकि दोनो ही विरोधी दृष्टिकोण से कविता के मूल प्रश्नों की भरपूर व्याख्या सामने आ सकी है।"[202]

सन् १९५० से लेकर १९५६ तक गिरिजाकुमार माथुर न्यूयार्क, हालैण्ड आदि देशों में सूचनाधिकारी से रूप मे रहे। १९५६ मे आकाशवाणी प्रतिनिधि-मण्डल में रूस, चेकोस्लोवाकिया की यात्रा की व स्वीटजरलैण्ड मे प्रवास किया।[203] विदेश भ्रमण के दौरान वे पूँजीवाद व मार्क्सवाद को नजदीक से देख सके। इन दिनो के यात्रिक अनुभवो ने उनके दृष्टिकोण को और यथार्थवादी बना दिया।

यथार्थ जीवन के प्रत्येक कोण को ठीक-ठीक समझने वाले गिरिजाकुमार माथुर राजनैतिक विडम्बना से उत्पन्न विषमताओं पर प्रहार करते हुए शोषित-पीडित जनो को नये समाज की सरचना के लिए उत्साहित करते है। कविता की यथार्थता कलात्मक प्रदर्शन में नहीं है वरन् मर्मभेदी कथ्यों से सृजन में है- इस तथ्य को स्वीकारते हुए उन्होंने

अपनी कविताओ के शब्द और अर्थ की साधना मे जन-चेतना, गॉव-देहात के अभिप्राय, सास्कृतिक परम्परा, प्रकृति सौन्दर्य, प्रेम, सामाजिक वास्तविकता, राजनीतिक इतिहास, आधुनिकता समय-काल आदि के सूक्ष्म अनुभव को मूर्तिमान किया।[204]

गिरिजा कुमार माथुर ने ग्रामीण धरातल से जुडे होने के कारण जन-सामान्य के जीवन को अपनी ऑखो और अनुभव से पहचाना तथा गॉव-जनपद से लेकर आधुनिकता और वैज्ञानिकता के बीच एक व्यापक विश्व दृष्टि विकसित करने का प्रयास किया।[205]

किसी भी काल का सजग कवि अपने देश की राजनीतिक परिस्थितियो से विमुख होकर सार्वजनीन साहित्य सृजन नहीं कर सकता है। राजनैतिक प्रभाव कविता को प्राय पंगु बनाने का प्रयास करता है। गिरिजा कुमार माथुर की कविताएँ न राजनीति से प्रभावित हैं न राजनीति से असम्पृक्त। राजनीतिक कसौटी न कविता की व्याख्या है, न राजनीतिक लक्ष्यो की,प्राप्ति ही कविता की साधना है। परिवर्तनशील राजनैतिक मान्यताओ का लक्ष्य सत्ता अधिग्रहण रहता है जबकि कविता राजनीतिक यथार्थ के साथ-साथ मानवीय सवेदना, सास्कृतिक परम्परा के वृहत्तर जीवन-मूल्यो से सबन्धित होती है। कविता किसी देश-काल की सीमा से आबद्ध नहीं होती है।[206]

वस्तुत साहित्य के दर्पण मे राजनीति भले ही प्रतिबिम्बित हो, किन्तु साहित्य कभी भी राजनीति का अनुयायी बनकर कालजयी नहीं हो सकता है। राजनैतिक पाखण्ड मे मानवीय-संवेदनाओ की सतही व्याख्या की जाती है। उनके कृत्रिम सिद्धान्तों का मूल-मत्र सत्ता अधिग्रहण है किन्तु साहित्य राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक अन्तर्विरोधों के बीच अपना अस्तित्व बनाते हुए तथा मानवीय पक्षों के शाश्वत-मूल्यों को सशक्त रूप में प्रस्तुत करते हुए कवि और साहित्य की अस्मिता को सुरक्षित रखता है। लोक-जीवन की सवेदनाओ से अलग होकर न राजनीति जन-कल्याणकारी हो सकती है

न अर्थनीति ही और न साहित्य । इसलिए समकालीन साहित्य ने लोक-सवेदनाओं के पक्ष को प्रस्तुत करते हुए अन्याय व शोषण का विरोध किया।

गिरिजा कुमार माथुर ने साहित्य की भूमिका को स्पष्ट करते हुए कहा है- "जब साहित्य की भूमिका असाधारण मानवीय मूल्यो की है, तब वह किसी एक प्रवृति या पक्ष विशेष तक सीमित होकर या उसमे समाकर नहीं रह सकता। उसके लिए सभी प्रवृत्तियो और पक्षो के वे तत्त्व ग्राह्य होते है जिसका रास्ता मानवीयता, सामाजिक न्याय और जीवन भविष्य की आस्था से होकर जाता है ।"[207]

वस्तुत जब कवि मानवीय मूल्यो- श्रद्धा, निष्ठा, आस्था, विनयशीलता, शील, प्रेम, जीवन-सम्मान, सामाजिक न्याय, अन्त करण की नैतिक स्वतन्त्रता को अपनी कविता का विषय बनाता है, तब उसका राजनीतिक चिन्तन मानवीय धरातल पर जन-जन के लिए वरदान बन जाता है। कविता की यही नैतिकता कवि को राजनीतिक दलदल में फॅसने से उबार लेती है। कवि गिरिजा कुमार माथुर की लोक-सवेदना राजनीतिक चकाचौंध से मूर्च्छित नहीं हुई वरन् राजनीति के घिनौनेपन को दूर कर नयी दिशा प्रदान करने हेतु सघर्ष करती रही। साहित्येतर दबावो मे आकर कवि यदि स्वानुभव-साक्ष्य विहीन सत्य को स्वीकार करता है तो उसकी कविता मरी हुई पद्यात्मक रूप मात्र होती है। गिरिजा माथुर ने गैर ईमानदारी से कभी समझौता नहीं किया, वरन् साहित्येतर दबावों के सिर पर पैर रखकर मनुष्य को उसकी समस्त सामर्थ्य और विशेषताओ के सन्दर्भ में ही पहचानने का यत्न किया है।[208]

गिरिजा कुमार माथुर ने कभी भी प्रतिबद्ध कवि के रूप में अपनी कविता को एक साँचे में नहीं ढाला वरन् उनकी कविता उनके द्वारा साक्षात्कार-कृत सत्य को रेखाकित करती है। उनका यह कथन "श्रेष्ठ साहित्य पक्षधर नही होता, वह विभिन्न और प्रत्यक्षत विरोधी दिखने वाले पक्ष या प्रवृत्तियों का समन्वय करता चलता है। आधारभूत मूल्यो और

तत्त्वो को समेटकर उसमे सतुलन स्थापित करता है।"[209] यह प्रमाणित करता है कि उनकी कविता न पक्षधर है न प्रतिबद्ध। जब कविता पक्षधर हो जाती है तो कवि की प्रतिभा दृष्टि और कलात्मक क्षमता सतुलन खोकर अपनी सार्थकता खो देती है। वस्तुत कविता की सार्थकता आत्माभिव्यक्ति मे भी नही है। उसकी सार्थकता तो सम्पूर्ण ससार के जन-जन के जीवन मे सतुलन स्थापित करने मे है। जब कविता प्रतिबद्ध हो जाती है तब वह राजनीतिक या कलात्मकता की अनुकृति मात्र रहती है। कवि जब स्वय अनुभव का दृष्टा होता है तभी दूसरे के सतुलित सिद्धान्त या उद्भासित सत्य को सत्य मानता है और इस वास्तविकता को ऐसा कलात्मक आयाम देता है जो साधारण जनो के भी जीवन को सबके सामने प्रस्तुत कर प्रत्यक्षत या अप्रत्यक्षत समाज मे होने वाले अन्याय, शोषण का विरोध करता है।

आधुनिकता एव प्राचीनता मात्र का चित्रण करना भी एक प्रकार की प्रतिबद्धता है। गिरिजा कुमार माथुर दोनो भूमिकाओ से पृथक हटकर दोनो को सन्तुलित कर अपनी कविताओं को मर्मस्पर्शी बना सके। उन्होने स्वय कहा है- "कवि कर्म की सार्थकता इसी में है कि उसकी रचना मे कथ्य की मौलिकता, अनुभूति का ताप और अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता कितनी है, भले ही कविता नयी हो या पुरानी। और आधुनिकता इसी तथ्य पर निर्भर करती है कि कृतिकार में निरन्तर वर्तमान की सास्कृतिक संवेदना कितनी है और मूल्यगत भविष्य के रूपाकारो की वह किस मात्रा में पूर्वाभिव्यञ्जना कर सका है।"[210]

गिरिजा कुमार माथुर की रचना 'साक्षी रहे वर्तमान' प्रशासन तन्त्र और नौकरशाही से कवि की होने वाली टकराहट की मर्मस्पर्शी गूज है।[211] इसलिए यह रचना अपना भोगा हुआ यथार्थ है। गिरिजा कुमार माथुर की रचनाओ मे परम्परा के सांस्कृतिक मूल्यों का उत्स है। इन्होंने आधुनिकतम् जीवन मूल्यों को जन-परम्परा से जोड़कर उसके अनुकूल ढाल कर ही स्वीकार किया है । इनकी वैज्ञानिक दृष्टि ने भी कविता को प्रभावित

किया है। जीवन की समग्रता मे गॉव, जनपद से लेकर आधुनिकता और वैज्ञानिकता के बीच एक उन्होने व्यापक विश्व-दृष्टि विकसित की। गिरिजा कुमार माथुर सचमुच व्यापक दृष्टिकोण वाले कवि है। उनकी सृजनशीलता उनकी जिन्दगी की अनुभूतियो को कविता का रूप देती है। वे यह स्वीकार करते है कि "आम आदमी की जिन्दगी मे दु ख है, अभाव है, सघर्ष है, सताप है। वह मेहनत करता है लेकिन उसकी जिन्दगी इतनी रूखी-सूखी नहीं है कि वह हर वक्त अपने दु ख और मजबूरी का रोना रोता रहे। उसके जीवन मे दूसरे भी रग है ममता भी है, प्रेम, उष्मा, उत्सव, उल्लास भी है। कवि इन सब को देखता है। वह सिर्फ दु ख-विडम्बना, सत्रास आदि को ही बार-बार दुहराकर मनुष्य के सकल्प को पस्त नहीं करता है। भरोसा, सामर्थ्य और विश्वास का स्वर भी फूकता है। आम आदमी की जिन्दगी के दोनो ही पक्षो मे भरपूर साझीदारी करता है।"[212]

विश्व दृष्टि रखने वाला कवि जीवन की विविध विषमताओं का चित्रण करके अपनी कविता को कालजयिनी बना देता है। कविता को जीवन के आलोक की वाणी मानने वाले गिरिजाकुमार माथुर मनुष्य की कालजयी आलोक यात्रा के प्रति अपनी कविता को समर्पित करते हैं।[213] गिरिजा कुमार माथुर अपनी कविता में आम-आदमी की सवेदनाओ को ही अभिव्यक्त नहीं करते वरन् इनकी कविता प्रकृति के सौन्दर्य पर होने वाले प्रहारों से पीडित होकर दूरगामिनी आह भरती हुई दिखाई पडती है। आधुनिक युग की प्रकृति के प्रति की गयी क्रूरता ने इनके मन को आहत किया है। इसलिए प्रकृति के कण-कण की व्यथा इनकी कविता को हठात जन्म देती है। प्रकृति के ऊपर किये गये क्रूरतम आघात उन्हें अत्यन्त व्यथित कर देते है इसलिए वे जन-सामान्य की व्यथा से जितना व्यथित होते है उतना ही प्रकृति को मनुष्यों से दी जाने वाली पीडा से बेचैन हो जाते हैं।[214] कवि में इस प्रकार के विचारों के जन्म का श्रेय उनके 'ग्राम्य जीवन' को है जिसकी मिट्टी में खेलकर ये बडे हुए है और उसकी गध की अनुभूति से आजीवन प्रमुदित होते रहे हैं। ग्रामीण

जीवन मे होने वाले उत्सव की स्वाभाविकता मे वे इतना रम गये थे कि उनकी स्मृतियो मे बराबर डूबे रहते थे । दशहरे के आस-पास मकानो की कच्ची मिट्टी से मरम्मत करना, शरद पूनो पर कासे की चमकदार थालियो मे खीर भरकर चॉदनी रात मे रख देना, करवॉ-चौथ पर स्त्रियो के द्वारा चावल और हल्दी पीसकर ऐपन बनाकर दीवाल पर करवा लगाना तथा देवी का चित्र बनाना, फिर दीपावली को उत्साहपूर्वक मनाना आदि तमाम उत्सव प्रक्रियाये आजीवन इनके रोम-रोम मे बसी रही ।[215]

गिरिजा कुमार माथुर समकालीन कवियो के साथ रहते हुए भी उनसे पृथक अस्तित्व बनाये हुये सचमुच स्वामी कार्तिकेय की भॉति समकालीन कवियो के सेना-नायक हैं । उन्हें सभ्यता के ऊपरी ताम-झाम से घृणा है। उनकी दृष्टि मे सुविधा से परिपूर्ण भडकीला आकार वस्तुत मनुष्य को अन्दर से खोखला बना देता है । इस बाह्याडम्बर से पूर्ण सभ्यतम प्रतीत होने वाले आकार मे मानवीय सवेदना, भावना, मानवीय मूल्यो का कोई महत्व नहीं है । इन मूल्यो के अभाव ने ही आज मानव को निर्मम, क्रूर, कुटिल, शोषक और विश्वासघाती बना दिया है । यदि औद्योगिक क्रान्ति से होने वाली समृद्धि आदमी को अशान्त, बेचैन और प्रतिक्षण व्याकुल बनाकर उसकी शक्ति, मैत्री व विश्वास और भावनात्मक लगाव को छीन लेती है तो यह केवल दानवीय सुख-समृद्धि है जो कवि को किसी भी रूप मे स्वीकार्य नहीं है । उनकी ऑखो मे अतीत का सघर्षपूर्ण जीवन बराबर झॉका करता था जिसकी छाया मे उन्हे मानवीय-मूल्यो का सुखद और शान्तिप्रद हृदयस्पर्शी रूप प्राप्त होता है ।

वस्तुत. गिरिजा कुमार माथुर अपने समय के कवियो मे ऐसे सशक्त हस्ताक्षर है जिनकी रचनाओं के मानवीय-मूल्यों के प्रति किया जाने वाला सघर्ष, आज के भौतिकवाद के लिए एक ऐसी चुनौती है जिसे स्वीकार कर ही मार्क्सवाद की अवधारणा को चिरस्थायी बनाया जा सकता है ।

इस प्रकार हम कह सकते है कि गिरिजा कुमार माथुर ने अपने पैत्रिक दाय और ग्रामीण जीवन के तमाम सुख-दु ख के झझावतो को मानवीय मूल्यो से जोडकर एक नया रूप प्रदान किया है । उनकी कवित्व-शक्ति को उनके पिता ने जिस रूप में जगाया था उसके उत्स को उन्होने मार्क्सवाद के अध्ययन से नया रूप प्रदान किया है । ये राजनीति के सेवक नहीं थे, वरन् मानवीय-मूल्यो की स्थापना के लिए प्रशासन व नौकरशाही से राततृ युद्ध करते रहे । इनकी अप्रतिबद्धता ने ही इनकी कविताओ को विश्व रूप प्रदान किया है ।

अज्ञेय के सृजनशील व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक मुख्य प्रेरक तत्व तथा उनकी काव्य विषयक दृष्टि -

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' के सृजनशील व्यक्तित्व का निर्माण जिन तत्वों के योग से हुआ, उसमे पिता व उनके मित्रो द्वारा प्राप्त सस्कार व सहयोग, उनका यायावरी जीवन, उनकी अध्ययन व चिन्तनशील प्रवृत्ति, पत्रकारिता से प्राप्त अनुभव व क्रान्तिकारी जीवन का महत्वपूर्ण स्थान है ।

अपने पुरातत्त्वज्ञ पिता के साथ रहने के कारण अज्ञेय का बचपन व युवावस्था काल अलग-अलग प्रान्तों मे बीता । जिसका प्रभाव उनके बाद के यायावरी जीवन पर स्पष्ट देखा जा सकता है । परम्पराप्रेमी पिता की छत्रछाया मे ही उनकी शिक्षा संस्कृत-अध्ययन से शुरू हुई । उन्होंने अग्रेजी, हिन्दी व बगला भाषा का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त किया । पिता के पुस्तकालय की अनेक प्रसिद्ध अग्रेजी रचनाओं व हिन्दी के प्राचीन प्रसिद्ध रचनाकारों तथा इतिहास सम्बन्धी कृतियों के अध्ययन ने प्रारम्भ से ही उनके ज्ञान को समृद्ध किया ।

बगला साहित्यकारों की राष्ट्रीयता की भावना व जालियॉवाला बाग हत्याकाण्ड ने अंग्रेजी साम्राज्य के प्रति उनके मन में विद्रोह के भाव जागृत किये । लाहौर से बी० एस०

सी० करते हुए वे "हिन्दुस्तानी सोसलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी" नामक क्रान्तिकारी दल के सम्पर्क मे आये[216] व धीरे-धीरे सम्बन्ध घनिष्ट होने पर वे उसमे (शामिल) भर्ती हुए । विभिन्न क्रान्तिकारी कार्यो के दौरान वे १६२६ से १६३६ तक कई बार लाहौर, अमृतसर, दिल्ली, डलहौजी आदि की जेलो मे रहे । एकान्तवास की इस लम्बी अवधि मे उन्होने अध्ययन मे रूचि होने के कारण छायावाद, मनोविज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र व कानून की किताबे पढी । सतत् अध्यवसाय व पारिवेशिक प्रभाव से उत्पन्न अन्तर्मंथन ने इस दौरान उनसे "चिन्ता" (कवि० स०), विपथगा (क० स०) की अधिकाश कहानियॉं, शेखर; एक जीवनी (उपन्यास) आदि रचनाओ का सृजन कराया ।[217] इसी बीच उन्हे मॉं सहित कुछेक प्रियजनो का वियोग सहना पडा, जिसने उनके जीवन के एकाकीपन को और बढा दिया ।

जेल-यात्रा के कारण वे अपना अध्ययन पूरा न कर सके । अब शुरू हुई नौकरी की तलाश । प्रारम्भ मे उन्होने एक वर्ष "सैनिक" नामक पत्र के सम्पादक-मण्डल मे कार्य किया । तत्पश्चात् किसान आन्दोलन (मेरठ) से जुडे । इसी दौरान वे हिन्दी के अनेक प्रसिद्धि प्राप्त लेखको- चन्द्रगुप्त विद्यालकार, हरिकृष्ण प्रेमी, राम विलास शर्मा, प्रकाशचन्द गुप्त, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे व नेमिचन्द्र जैन आदि से परिचित हुए । इन साहित्यकारों के निकट सम्पर्क ने उनकी राजनीतिक दृष्टि मे परिवर्तन किया। परिणाम स्वरूप गाधी के प्रति उनकी श्रद्धा अधिक हो गयी ।[218] बनारसी दास चतुर्वेदी के आग्रह पर उन्होंने कलकत्ता में "विशाल भारत" के सम्पादक मण्डल मे रहकर कार्य किया। कलकत्ता जैसे महानगर की यान्त्रिक जिन्दगी ने जहॉं एक ओर नागरिक जीवन की हृदय शून्यता से उनका परिचय कराया, वहीं दूसरी ओर सुधीन्द्र दत्त, बुद्धदेव बसु, हजारी प्रसाद द्विवेदी, बलराज साहनी व पुलिनसेन जैसे विद्वानो से परिचय उनके लिए लाभकारी सिद्ध हुआ । इन दौरान उन्होंने स्वानुभव के द्वारा पत्रकारिता के आदर्श व व्यावहारिक पक्ष के बीच के अन्तर को पहचाना । कलकत्ता के विविध अनुभवो ने उन्हें जीवन-यथार्थ का बोध अत्यत

निकट से करवाया ।[219]

कुछ दिनो तक उन्होने 'आल इण्डिया रेडियो' मे नौकरी की । १६४१ के आसपास मेरठ मे हेमवती जी के सहयोग से "हिन्दी साहित्य परिषद" की स्थापना की,[220] जिसका उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण मे महत्त्वपूर्ण योगदान है । इन विभिन्न कार्यो को करते हुए भी देश की राजनीति से वे अपने को अलग न रख सके । १६४२ के आन्दोलन को अनुपयोगी मानकर उन्होने उसी साल दिल्ली मे एक 'अखिल भारतीय फासिस्ट-विरोधी सम्मेलन' का आयोजन किया । यह सम्मेलन आपसी एकता कायम न रख सका, उसमे दलबन्दी होने लगी और अज्ञेय अपने फासिस्ट विरोध के बावजूद देश की सुरक्षा की दृष्टि से युद्ध को अनिवार्य मानकर १६४३ मे सेना मे भर्ती तो हो गये पर शीघ्र ही युद्ध के यथार्थ से ऊबकर १६४६ मे सेना से मुक्त हुए ।[221]

१६४६ मे गुरूदासपुर मे पिता का देहान्त हो गया । उनके पिता उन्हें संस्कृति के वाहक के रूप मे देखना चाहते थे । इस बात को उन्होने सदैव याद रखा । पिता की मृत्यु के बाद वे गम्भीर रूप से साहित्य सृजन मे जुटे । उन्होने 'हिन्दी साहित्य परिषद' (मेरठ) से पुन जुडकर उसे साहित्य की नयी धारा का केन्द्र बनाया । शीघ्र ही इलाहाबाद आकर वहॉ से (मार्च १६४७) "प्रतीक" नामक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। अनेक नये लेखक "प्रतीक" के माध्यम से उभरे । प्रसिद्ध होते हुए भी उनकी पत्रिका "प्रतीक" को अनेक आर्थिक कठिनाइयो का सामना करना पडा । "प्रतीक" के लिए अज्ञेय ने रेडियों मे नौकरी की, पर इन प्रयत्नो के बाद भी प्रतीक १६५२ तक ही प्रकाशित हुई ।[222] इस दौरान (१६४७ से १६५०) उनकी "हरी घास पर क्षण भर" व "शरणार्थी" प्रकाशित हुई । "प्रतीक" बन्द होने के बाद दो-तीन वर्ष तक वे यायावरी में लगे रहे । भारत के विविध कला क्षेत्रो के भ्रमण ने अज्ञेय के संस्कृति के प्रति स्नेह को बढ़ाया । दक्षिण की रमणीय प्रकृति ने भी इन्हे आकृष्ट किया । इस दौरान उनकी

"बाबरा अहेरी", "नदी के द्वीप" (उप०), "दूसरा सप्तक", "अरे यायावर रहेगा याद", "जयदोल" आदि कृतियो का प्रकाशन हुआ ।[223]

अब शुरू होता है उनकी विदेश यात्राओ का सिलसिला, जो करीब २०-२५ वर्षों तक चला । इस दौरान उनमे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन दिखा । वो यह कि विभिन्न देशो की सस्कृतियो से भली-भॉति परिचित अज्ञेय ने अपनी सस्कृति को सूक्ष्मता से ग्रहण किया व काव्य रचना के दौरान उसे सजोया । यूनेस्को के निमन्त्रण पर अप्रैल १६५५ मे वे पहली बार पश्चिम यूरोप गये । पश्चिम यूरोप की इस यात्रा से प्राप्त अनुभव उनकी "इन्द्रधनुष रौंदे हुए थे", "अपने अपने अजनबी" (उपन्यास) "एक बूँद सहसा उछली", रचनाओं का प्रेरणा स्रोत बना ।[224] एक वर्ष बाद उन्होने जापान व फिलीपीन की यात्रा की । जापान मे वे अनेक प्रतिष्ठित साहित्यकारो से मिले । 'जापान की तकनीकी प्रगति ने जापानियों को परम्परा से विच्छिन्न नहीं किया'- इस बात से वे बेहद प्रभावित हुए थे ।[225]

फिलीपीन में उन्होंने सास्कृतिक अस्मिता की प्रतीक राष्ट्रीय भाषा तगालोग की उपेक्षा को देखते हुए वहॉ के बुद्धिजीवियो को तगालोग आन्दोलन शुरू करने की प्रेरणा दी ताकि देश की सास्कृतिक धरोहर की मूल पूँजी को बचाया जा सके ।

१६५८ से १६६० तक भारत मे ही कुछ महत्वपूर्ण व्याख्यान दिये, जिनमे उनकी वैचारिक गम्भीरता व बौद्धिक प्रखरता के दर्शन होते है । अप्रैल १६६० मे वे पुन यूनेस्को के निमन्त्रण पर यूरोप गये । जहॉ उन्होंने मसीही सस्कृति के आध्यात्मिक पहलू का ज्ञान प्राप्त किया । सितम्बर १६६१ मे अमेरिका (कैलीफोर्निया) भारतीय सस्कृति व साहित्य के अध्यापक बनकर गये । वहॉ वे २-३ वर्ष तक रहे, पर अमेरिका की आधुनिक सभ्यता उन्हें तनिक भी प्रभावित न कर सकी । अमेरिका के एकान्त ने उनके आन्तरिक अनुभवो को मॉजकर उन्हे पूर्णत भारतीय बनाया । भारतीय सस्कृति की महत्ता उनकी दृष्टि मे बढी ।[226]

"प्रतीक" के बाद फरवरी १९६५ मे उन्होने 'दिनमान' नामक साप्ताहिक का सम्पादन किया । कुछ ही समय पूर्व दिल का दौरा पडने से उन्हे विश्राम की आवश्यकता थी । अत परिवार के लोगो द्वारा मना करने पर भी वचनबद्ध होने के कारण उन्होने यह कार्य किया । 'दिनमान' का सम्पादन स्वीकार करने का एक महत्वपूर्ण कारण यह था कि अज्ञेय स्वातन्त्र्योत्तर भारत मे अपनी राष्ट्रीय प्रतिबद्धता का निर्वाह करने के लिए यह जरूरी समझने लगे कि गैर पेशेवर राजनैतिक मत का सामने आना आवश्यक हो गया है। पेशेवर राजनीतिज्ञो के हाथ मे देश को सौप चुपचाप बैठ जाना जनतन्त्र के लिए वाछनीय नहीं ।[227] उनके सम्पादन के दौरान यह पत्रिका राष्ट्रीय विचारधारा की वाहक बनी, व देश विदेश मे काफी ख्याति प्राप्त की । देश के प्रति अपने सजग दायित्व को निबाहते हुए किसी कारणवश वे शीघ्र ही (एक-डेढ वर्षोपरान्त) दिनमान से अलग हो गये ।

उनकी पूर्वी यूरोप व अन्य देशो की यात्रा साहित्यिक आदान-प्रदान की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रही । इसी सिलसिले मे उन्होने यूगोस्लाविया की यात्रा की, जहॉ सर्वियायी भाषा मे उनकी (अज्ञेय की) कविताओ का अनुवाद कर एक सग्रह प्रकाशित हुआ । आस्ट्रेलिया में सेमिनार मे भाग लिया । कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले में दो बार व्याख्यान दिये व प्राचीन भारतीय कविता के अंग्रेजी रूपान्तर का पूर्वारब्ध कार्य पूर्ण किया । वे हालैड, जर्मनी, फ्रास, इग्लैण्ड, स्विटरलैण्ड, इटली, ग्रीस भी गये । १९७६ में जर्मनी के हाइडल विश्वविद्यालय में व्याख्यान दिया । वहॉ उनकी कविताओ का जर्मन मे अनुवाद हुआ ।[228]

विदेश यात्रा के बीच-बीच मे वे भारत भ्रमण भी करते रहे । १९७३-७४ मे वे कुमायूं व दक्षिण भारत के कला क्षेत्रों के पुन दर्शन हेतु गये।[229] वहॉ के सहज प्राकृतिक सौन्दर्य पर उन्होंने अनेक कविताएँ लिखी । प्रकृति की सुषमा का आनन्द लेते वक्त भी भारत में होने वाले ह्रासोन्मुख राजनैतिक परिवर्तनो, सामाजिक असमानता व मूल्यहीनता

पर उनका मन उद्धेलित होता रहा। जीवन के अन्तिम दिनों तक वे गम्भीर रूप से साहित्यिक सृजन से जुडे रहे।

कवि अज्ञेय के जीवन के इन महत्वपूर्ण घटकों के बीच ही उनका सृजनशील-व्यक्तित्व कविताओं के रूप में आकार पाता रहा। अपने पुरातत्वज्ञ पिता से विरासत में प्राप्त शोध की प्रवृत्ति ने उन्हें गहन अध्ययन से सदैव जोडे रखा। पिता के साथ विविध- प्रान्तों का भ्रमण करते हुए उन्हें हर जगह विद्वान व्यक्तियों का सान्निध्य प्राप्त होता रहा, जिससे उनकी प्रतिभा को सही दिशा मिलती गयी, जो उनकी सृजनशीलता के निर्माण में सहायक हुयी। क्रान्तिकारी जीवन के दौरान जेलों के एकान्तवास से कवि अज्ञेय को बहुत कुछ पढने व समझने को मिला, जो भीड़ के बीच शायद प्राप्त न हो पाता। जेल के जीवन और वहाँ किये गये अध्ययन से प्राप्त अनुभवों ने उनसे अनेक रचनाएँ करवायीं। विभिन्न पत्रिकाओं के सम्पादक-मण्डल में काम करते हुए व पत्र-पत्रिकाओं व कृतियों का सम्पादन करते हुए उन्होंने जो अनुभव की पूँजी प्राप्त की, उसने उनकी सृजनात्मक प्रतिभा को विस्तार दिया यह कभी न चुकने वाली अनुभव की पूँजी जीवन-पर्यन्त उनके साथ रही और उनकी कृतियों को कुछ नये जीवन-संदर्भों से जोड़ती रही।

किसान आन्दोलन से जुड़ने पर कवि अज्ञेय को सामान्य जन के बहुत करीब रहने व उन्हें समझने का अधिकाधिक मौका मिला। किसानों के साथ रहकर, उनके साथ काम कर उन्होंने किसानों की समस्याओं व ग्रामीण संस्कृति को नजदीक से देखा था।[230] उनका यह प्रत्यक्ष अनुभव उनकी कविताओं में कहीं ग्रामीण सुषमा के रूप में व कहीं ग्रामीण परिवेश में कठिनाई से जीवन व्यतीत करने वाले किसान की संवेदना के रूप में दिखाई पड़ता है। १६६५ से १६६८ तक 'दिनमान' से जुड़े रहने पर उन्होंने बिहार के सूखाग्रस्त इलाकों के[231] अनेक मर्मस्पर्शी चित्र अपनी पत्रिका के द्वारा पढे-लिखे, सभ्य कहे जाने वाले लोगों तक पहुँचाये, ताकि नियति के इस कठोरतम् दृश्य को देखकर उनकी सोयी संवेदना जागृत होकर पीड़ितों के हित में कुछ कर सके।

अध्ययन व अध्यापन के निमित्त देश-देशान्तरों का भ्रमण करते हुए कवि अज्ञेय अनेक विद्वानों से निकट से परिचित हुए। इस भ्रमणशील जीवन ने उनकी ज्ञान व अनुभव की पूँजी को और अधिक समृद्ध किया। उनकी प्रत्येक विदेश यात्रा भारतीयता की उनकी समझ को बढाने में सहायक हुई। अज्ञेय की कविताएँ भारतीयता की मालती लता के सुरभित पुष्प है। उनकी कविताओं में दिखाई पडने वाला उनका व्यक्तित्व भारतीयता से ओत-प्रात है। भारत को एक 'सांस्कृतिक इकाई' मानने वाले अज्ञेय अपने को उसका अटूट अंग मानते हैं। वे सूक्ष्म तल पर संस्कृति की सुरक्षा के लिए ही जड़वादी रूढियों व परम्पराओं का खण्डन करते हैं। जीवन्त व गतिशील सांस्कृतिक मूल्यों से उन्होंने अपने को जोडे रखा और अपने साहित्यिक व्यक्तित्व को अभारतीय नहीं होने दिया। पश्चिमी विचारधाराओं से प्रभावित होते हुए भी उनका रचनाशील मनस् भारतीय सांस्कृतिक गरिमा से सदैव उद्भासित रहा है। उनके यायावरी डगों ने उन्हें विविध संस्कृतियों को जानने व उससे अपने चिन्तन व संस्कारों को परिष्कृत करने का सुखद अवसर प्रदान किया, जो उनकी कविताओं में अनुस्यूत है।

कवि अज्ञेय के काव्य पर अनेक आक्षेय लगाये गये हैं। उन पर लगाये गये प्रत्येक आक्षेप के मूल में यही बात महत्वपूर्ण रूप से उभर कर सामने आती है कि अज्ञेय 'व्यक्तिवादी' हैं, 'अहंवादी' हैं, इसलिए सिर्फ अपने बारे में ही सोचते हैं। उनका समाज से कोई सरोकार नहीं है। अत्यधिक सम्पन्न होने के कारण सामान्य जन की गरीबी से उनका कोई वास्ता नहीं पड़ा। अतः उनकी संवेदना की परिधि में सामान्य जन की पीड़ा, उनका संघर्ष नहीं दिखाई पडता। अज्ञेय के साहित्य में प्रवेश कर, उनके व्यक्तिगत आग्रहों से परिचित होने पर यह स्पष्ट होता है कि अज्ञेय ईमानदार कवि होने के कारण अपने ऊपर लगाये गये आरोपों को लेकर अत्यन्त सजग है। उन्होंने अपने वक्तव्यों व अनेक कविताओं के द्वारा इन आरापों का खण्डन किया है। 'आत्मनेपद' में वे अपने

"व्यक्ति" को स्पष्ट करते हुए कहते है- "व्यक्ति का अपने प्रति भी उत्तरदायित्व मानता हूँ, समाज के प्रति भी । पर मै अपने प्रति उत्तरदायित्व को प्राथमिक मानता हूँ और समाज के प्रति उत्तरदायित्व को उसी से उत्पन्न ।"[232]

यह कथन यह प्रमाणित नहीं करता है कि अज्ञेय समाज को नकार रहे है । उनका यह मानना है कि कोई भी कलाकृति अपने आप मे आत्म-तोष भी है लेकिन सिर्फ आत्मतोष के लिए ही लिखना रचनाकार को व्यक्तिवादी बना देता है । जब रचना पाठक वर्ग से जुडती है तो लोक कल्याण की भावना ही उसमे प्रमुख हो जाती है । अत रचनाकार के सन्दर्भ मे कृति का उद्देश्य आत्मतुष्टि भले ही हो, पर समाज के सन्दर्भ मे उसका एक मात्र उद्देश्य है लोक-हित । उन्होने स्वय कहा है -

"भावनाएँ तभी फलती है जबकि उनसे लोक के कल्याण का अंकुर कहीं फूटे ।"[233]

प्राचीन काल से लेकर अब तक की काव्य परम्परा मे हर कवि की वैयक्तिकता भी सुरक्षित रही है और उनका समाज बोध भी जागरूक रहा है । अज्ञेय ने स्वयं कहा है कि मैं स्वान्त सुखाय नहीं लिखता ।[234] पूर्ववर्ती कवियो की भॉति समाज सुख के लिए वे लिखते हैं । सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना से उन्होने कभी अपने को अलग नहीं रखा । अज्ञेय तो वह सेतु बनना चाहते है, जो मानव से मानव का हाथ मिलने से बनता है -

"मैं सेतु हूँ .
वह सेतु,
जो मानव से मानव का हाथ मिलने से बनता है ।"[235]

अज्ञेय के लिए 'व्यक्ति की स्वतन्त्रता' महत्वपूर्ण स्थान रखती है । यह एक जन्मजात प्रवृत्ति है जिससे हटकर व्यक्ति सोच नहीं सकता । अत इस स्वतन्त्रता को नकारना सहज नहीं है । अज्ञेय को व्यक्ति से बहुत सारी अपेक्षायें हैं । उनकी अनेक

कविताओं में व्यक्ति-कर्त्तव्य के संकेत हैं। ''यह द्वीप अकेला''[236] कविता में कवि अकेलेपन में अपने को असहाय नहीं पाता। वह गर्व व स्नेह से भरा हुआ है तथा प्रसन्न भी है, लेकिन यह भी चाहता है कि अगर उसकी आवश्यकता समाज को है, समूह को है तो उसे जरूर अपने आपको समाज के लिए समर्पित कर देना चाहिए। अज्ञेय समाज को तो महत्व देते ही हैं पर व्यक्ति की उपेक्षा करके नहीं। कवि एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहता है जहाँ हर व्यक्ति का अलग-अलग महत्व होते हुए भी उनमें समाज-हित में अपने को उत्सर्ग करने की भावना भी प्रबल रूप में हो। उनके यहाँ 'व्यक्ति' और 'समाज' दोनों का अलग-अलग महत्व है और दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

उनकी 'नदी के द्वीप'[237] कविता व्यक्ति और समाज या व्यष्टि और समष्टि के सम्बन्धों को और अधिक स्पष्ट कर दोनों की अलग-अलग अस्मिता की पहचान कराती है। उनके अनुसार नदी, जो समाज या समष्टि की प्रतीक है, उसने ही द्वीप अर्थात् व्यक्ति की उत्पत्ति की है। अतः वह तो माँ है। नदी को माँ का रूप देकर उन्होंने समष्टि या समाज को महत्व प्रदान किया है। और द्वीप तो उस पुत्र की भाँति है जो अपनी अलग पहचान तो बनाता है, लेकिन जब कभी माँ को उसकी आवश्यकता महसूस होती है तो वह उसके लिए रेत होकर सर्वस्व समर्पण के लिए तैयार रहता है। अतः कहा जा सकता है कि कवि अज्ञेय के व्यक्ति के बट-बीज में समष्टि का विटप समाया हुआ है।

कवि अज्ञेय के अहं को लेकर उनकी अत्यधिक आलोचना हुई। आलोचकों का कहना है कि वे अपने अहं या व्यक्ति के आगे किसी को कुछ समझते हीं नहीं। प्रायः देखा गया है कि ज्यादा मेल-मिलाप न बढ़ाने व मौन रहने वाले व्यक्ति पर अहंवादी होने का आरोप मढ़ दिया जाता है। अज्ञेय से मिलने के इच्छुक व्यक्ति उनके इस स्वभाव से

खीझ उठते थे । उनका मौन रहना उन्हे अपना अपमान लगता था । अत आरोपो की झडी लगा दी जाती थी ।[238] कवि अज्ञेय सबसे पहले तो कवि या कलाकार को अह से मुक्ति की सलाह देते है, क्योकि उससे मुक्ति पाये बिना वे अपने कर्त्तव्यो का भली-भॉति निर्वाह नहीं कर सकते । वे स्वय कविता को अह के विलयन का माध्यम मानते है, जैसा कि उन्होने कहा है- "आज का कवि तो कविता को वरन् व्यक्तित्व को, व्यक्ति के अह की प्रखरतम अभिव्यक्ति और उस अह को पुष्ट करने वाली रचना मानता है । मै कहूँ कि इस चरम कोटि का आधुनिक कवि मै नही हूँ, अधिक से अधिक उस श्रेणी का हूँ जो कविता को अह के विलयन का साधन मानते है ।"[239]

उनकी कुछ कविताओ के प्रारम्भ मे अह भले ही दिखाई पडता हो, पर कविता का अन्त अह के विसर्जन के साथ होता है । उनकी "दोपावली का एक दीप" कविता प्रारम्भ में तो कवि के अह को व्यक्त करती है पर अन्त मे अह का नामो-निशान नहीं, उसका विसर्जन अवसाद भावना मे होता है ।[240]

व्यक्ति की स्वतन्त्रता के पक्षधर कवि अज्ञेय स्वय पर अहवादी होने का आरोप लगने पर कहते है -

अह ! अन्तर्गुहा वासी स्वरति !

क्या मैं चीन्हता कोई न दूजी राह ?

जानता क्या नहीं निज में बद्ध होकर है नहीं निर्वाह ?[241]

इसी कविता में आगे वे कहते है कि इस बात को मै भली-भॉति जानता हूँ कि मेरी जैसी असख्य लीको से युगो की प्रशस्त राह बनती है ।

कवि अपने 'व्यक्ति' को सार्थक तभी मानता है जब वह अपने अह को समवाय के हित में विसर्जित कर दे । उनकी "असाध्य वीणा नामक लम्बी कविता अह के विसर्जन की पराकाष्ठा को स्पष्ट ही द्योतित करती है, जहॉ कवि वीणा के बजने में तनिक

भी श्रेय स्वय नहीं लेता -

"श्रेय नहीं कुछ मेरा ।

मै तो डूब गया था स्वय शून्य मै -

वीणा के माध्यम से अपने को मैने

सब कुछ को सौप दिया था - [242]

अपनी 'बावरा अहेरी'[243] कविता मे कवि अपने मन-विवर मे दुबकी कलौस को भी किसी से छिपाना नहीं चाहता । वह सूर्य से प्रार्थना करता है कि वह अपनी प्रकाश-किरणो से उसके अन्तर्मन को भी प्रकाशित कर दे । कवि की यह आत्मस्वीकृति उनके अहवादी होने के आरोप को झूठा साबित करती है । क्योकि अभिमानी व्यक्ति को दूसरे मे कमियॉ तो दिखाई पडती है पर अपने अन्दर का कलुष उसे कभी नजर नहीं आता ।

अभिजात्य कुल व सम्पन्न परिवार मे पले-पढे अज्ञेय पर यह आरोप भी लगाया जाता है कि गरीबी उन्होने कभी देखी नहीं, अत उनकी व्यथा को वे क्या जाने ? सम्पन्न परिवार में पैदा होने का तात्पर्य यह तो नहीं कि उस व्यक्ति मे गरीबों के प्रति सवेदना ही न हो । फिर अज्ञेय तो हर वह काम अपने हाथो से कर लेते थे, जो गरीबो की जीविका के साधन है । उन्हीं के शब्दो मे- "मै कपडे सी लेता हूँ, जूते गॉठ लेता हूँ, फर्नीचर जोड लेता हूँ, मिठाई-पकवान बना लेता हूँ, जिल्दबन्दी कर लेता हूँ । पखे, साइकिल, मोटर, बिजली के छोटे-मोटे यन्त्र इनकी सफाई और थोडी बहुत मरम्मत कर लेता हूँ । विलायती ढग से बाल काट सकता हूँ, चाभियॉ खो जाए तो ताले खोल दे सकता हूँ, सूत कात लेता हूँ, मिट्टी के खिलौने बना लेता हूँ, काठ के ठप्पे खोदकर कपडे छाप लेता हूँ, सॉचे तैयार कर मूर्तियॉ बना लेता हूँ, घर की पुताई कर लेता हूँ, सीमेंट के गमले बना लेता हूँ । फूलों और तरकारी की खेती कर लेता हूँ । फावडा

कुल्हाडी, गैती चला लेता हूॅ । और इन सबमे केवल शौक रखता हूॅ, ऐसा नहीं है । अधिकाश मे से किसी भी सहारे आजीविका कमा ले सकता हूॅ ।"[244] ये सब कार्य गरीब किन्तु कुशल हस्तशिल्पियो के निकट सम्पर्क मे आये बिना नहीं सीखे जा सकते। उनके द्वारा किये जाने वाले ये कार्य कुशल हस्तशिल्पी अज्ञेय के व्यक्तित्व का वह पहलू है जो उन पर लगाये गये अभिजात्य मे आकठ डूबे रहने के आरोप को स्वत मिटा देता है । सम्पन्नता तो उन्हे विरासत मे मिली, जिसे उन्होने कठिन परिश्रम से बनाये रखा । वे निरन्तर परिग्रह जोडते हुए भी उससे अनासक्त रहे ।[245]

वस्तुत कहा जा सकता है कि इन सभी कवियो की कविताए एक नयी जीवन-दृष्टि लेकर उपस्थित हुई । ये कविताएॅ औपनिषदिक शाश्वत मूल्यो के स्थान पर जीवन्त मानवीय मूल्यो की चेतना, सामाजिक बोध, समसामयिक दायित्व तथा उपेक्षितो के जीवन की समस्याओ को निर्भीक स्वरो मे अभिव्यक्त करती हैं ।

इन कवियो की जीवन दृष्टि को मार्क्सवाद ने बहुत अधिक प्रभावित किया है । मुक्तिबोध तो एक 'फैटेसी' युग का निर्माण कर शोषित समाज के लिए स्वर्ग का द्वार खोल देते है । इन सभी कवियो ने पूॅजीवादी शोषण व यथास्थिति वाद का तीव्रतम विरोध किया है । इनकी रचनाएॅ सामाजिक बुराइयो- जातिवाद छूआ-छूत, वर्णभेद, सम्प्रदायवाद, अन्ध विश्वास, पाखण्ड आदि का विरोध कर ऐसे शोषक विहीन नूतन समाज की रचना का सकल्प लेकर चलती है जिसमे सभी को अपना भौतिक अधिकार प्राप्त करने का समान अवसर मिल सके । इन कवियो को भी देश के असख्य जनो की भॉति यह आशा थी कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त अपने देश की शासन-व्यवस्था सदियो से उपेक्षित, शोषित और दलित जनो का कल्याण करेगी किन्तु शासन की दुर्व्यवस्था ने इन्हें अत्यधिक निराश किया । इसलिए उन्होंने इनके विरूद्ध अपनी लेखनी को ज्वलन्त रूप प्रदान किया। इन्होंने अपनी लेखनी को कभी न गिरवी रखा, न उसे बेचा ही । मुक्तिबोध,

नागार्जुन, धूमिल त्रिलोचन आदि कवि जीवन पर्यन्त आग मे जलते रहे किन्तु कभी भी शासन से समझौता नहीं किया तथा अपनी लेखनी को आम आदमी के कल्याण के लिए ही समर्पित किया ।

इन कवियो ने उधार लिए हुए अनुभव को अपनी कविताओ मे स्थान नहीं दिया वरन् स्वय के भोगे हुए अनुभव तथा प्रत्यक्ष किये गये जीवन के सत्यासत्य चित्रो को अपनी अपनी कविताओ मे अभिव्यक्त किया । यही कारण है कि इनकी रचनाए काल-विजयिनी बनी हुई है । इन्होने अन्याय और दासता की पोषक और समर्थक शक्तियो को चुनौती देकर मानवीय रिश्तो को दृढता से जोडने का प्रयास ही नहीं किया है, वरन् अधिकारो के लिए सघर्ष करने वाली शोषित शक्ति को अपराजेय शक्ति प्रदान की है, क्योकि इन कवियो ने कभी अपने जीवन मे परिस्थितियो से न हार मानी है, न उससे झुककर समझौता किया है । यही शक्ति ही इनकी कविताओ की आत्मशक्ति बन गयी है जिसके बल पर ये मानवीय सम्बन्धो को दृढतम बनाने के लिए सघर्ष करते रहते है । जन्मजात न्याय पाने का अधिकार और समता के आकाश मे साँस लेने की इच्छा शक्ति को क्रूर शक्ति भले ही कुछ काल के लिए दबाती रही हो, किन्तु कवियो की लेखनी इनके विरूद्ध सघर्ष कर राख मे दबी हुई चिनगारी की भॉति उस मानवीय इच्छा शक्ति को जगाती हुई सघर्ष करने के लिए प्रेरणा देती रहती है । इसी सघर्ष की धारा को अविच्छिन्न शक्ति प्रदान करने के लिए ही इन कवियो की लेखनी ने कविता को जन्म दिया ।

तृतीय अध्याय : सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) "जनवादी समझ और साहित्य" – राम नारायण शुक्ल, पृ0 50 ।

(2) "बाबा नागार्जुन" – सम्पादक नरेन्द्र कोहली, पृ0 11–12 ।

(3) "बाबा नागार्जुन" – सम्पादक नरेन्द्र कोहली, पृ0 12 ।

(4) "आजकल" जून 1996, पृ0 20, सम्पा0 प्रताप सिह बिष्ट ।

(5) "मेरे साक्षात्कार", नागार्जुन, पृ0 127 ।

(6) "आजकल", जून 1996, पृ0 20, सम्पा0 प्रताप सिह बिष्ट ।

(7) "बाबा नागार्जुन" – सम्पादक नरेन्द्र कोहली, पृ0 39 ।

(8) "आजकल", सितम्बर 1969, पृ0 20, सम्पा0 केशव गोपाल निगम ।

(9) "मेरे साक्षात्कार", नागार्जुन, पृ0 89 ।

(10) "नागार्जुन की काव्य–यात्रा" – डा0 रतन, पृ0 2 ।

(11) द्र0 वही, पृ0 2।

(12) "मेरे साक्षात्कार", नागार्जुन, पृ0 20 ।

(13) "नागार्जुन की काव्य–यात्रा" – डा0 रतन, पृ0 2–3 ।

(14) "नागार्जुन का रचना ससार" – विजय बहादुर सिंह, पृ0 118 ।

(15) "कैसे लिखूँ शान्ति पर कविता/अमन् चैन को कैसे मैं कडियो मे बॉधू ।" – नागार्जुन: चुनी हुई रचनाएँ – 2, सम्पा0 शोभाकान्त, पृ॰84–85 ।

(16) "मेरे साक्षात्कार", नागार्जुन, पृ0 92 ।

(17) नागार्जुनः चुनी हुई रचनाएँ – 2, सम्पा0 शोभाकान्त ।

(18) "मेरे साक्षात्कार", नागार्जुन, सम्पा0 शोभाकान्त, पृ0 132 ।

(19) ''मेरे साक्षात्कार'', नागार्जुन, पृ0 92 ।

(20) ''मेरे साक्षात्कार'', नागार्जुन, पृ0 15 ।

(21) ''मेरे साक्षात्कार'', नागार्जुन, पृ0 21 ।

(22) ''मेरे साक्षात्कार'', नागार्जुन, पृ0 21 ।

(23) ''मेरे साक्षात्कार'', नागार्जुन, पृ0 59 ।

(24) ''मेरे साक्षात्कार'', नागार्जुन, पृ0 60 ।

(25) ''मेरे साक्षात्कार'', नागार्जुन, पृ0103 ।

(26) ''मेरे साक्षात्कार'', नागार्जुन, पृ0 7 ।

(27) साक्षात्कार' (पत्रिका), जून 1992, सम्पादक प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ0 12 ।

(28) साक्षात्कार' (पत्रिका), जून 1992, सम्पादक प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ0 6 ।

(29) साक्षात्कार' (पत्रिका), जून 1992, सम्पादक प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ0 12 ।

(30) ''केदारनाथ अग्रवाल'' – सम्पादक – अजय तिवारी पृ0 226 ।

(31) ''केदारनाथ अग्रवाल'' – सम्पादक – अजय तिवारी पृ0 228 ।

(32) ''केदारनाथ अग्रवाल'' – सम्पादक – अजय तिवारी पृ0 226 ।

(33) ''केदारनाथ अग्रवाल'' – सम्पादक – अजय तिवारी पृ0 225 ।

(34) ''केदारनाथ अग्रवाल'' – सम्पादक – अजय तिवारी पृ0 230 ।

(35) साक्षात्कार' (पत्रिका), जून 1992, सम्पादक प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ0 10 ।

(36) साक्षात्कार' (पत्रिका), जून 1992, सम्पादक प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ0 11 ।

(37) ''केदारनाथ अग्रवाल'' – सम्पादक – अजय तिवारी पृ0 230 ।

(38) ''केदारनाथ अग्रवाल'' – सम्पादक – अजय तिवारी पृ0 230 ।

(39) ''केदारनाथ अग्रवाल'' – सम्पादक – अजय तिवारी पृ0 231 ।

(40) ''अपूर्वा'' (कविता सग्रह) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 15, (भूमिका) ।

(41) ''अपूर्वा'' (कविता सग्रह) – केदारनाथ अग्रवाल, (भूमिका) पृ0 13–14।

(42) ''अपूर्वा'' (कविता सग्रह) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 15 (भूमिका) ।

(43) ''आत्मगध'' (कविता सग्रह) केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 3 (भूमिका) ।

(44) ''आत्मगध'' (कविता सग्रह) केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 3–4 (भूमिका) ।

(45) ''अपूर्वा'' (कविता सग्रह) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 12 (भूमिका) ।

(46) ''अपूर्वा'' (कविता सग्रह) – केदारनाथ अग्रवाल पृ0 12, (भूमिका) ।

(47) ''आग का आईना'' (कविता सग्रह) – केदारनाथ अग्रवाल पृ0 4, (भूमिका) ।

(48) ''अपूर्वा'' (कविता सग्रह) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 12 (भूमिका) ।

(49) ''आत्मगध'' (कविता सग्रह) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 3 (भूमिका) ।

(50) साक्षात्कार' (पत्रिका), जून 1992, सम्पादक प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ0 10 ।

(51) ''बोले बोल अबोल'' (कविता सग्रह) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 11, (भूमिका) ।

(52) साक्षात्कार' (पत्रिका), जून 1992, पृ0 14, सम्पादक प्रभाकर श्रोत्रिय, ।

(53) ''अनकहनी भी कुछ कहनी है'' (क0स0) त्रिलोचन पृ0 25 ।

(54) ''बैठ धूप मे हरी मटर की घुॅघनी खाना,

जाडे का आनन्द यही है रस गन्ने का

x x x x x

नये – नये स्वप्नो की सुधि, जानी अनजानी ।''

''शब्द जहॉ सकिय है' – नन्द किशोर नवल, पृ0 78 पर उद्घृत ।

(55) द्रृ0 वही पृ0 76 – 77

(56) ''अनकहनी भी कुछ कहनी है'' (कविता संग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 77 ।

(57) ''पहला असतोष जो कुछ भी रहा सहा था । आज नही है ।''

''अनकहनी भी कुछ कहनी है'' (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 77 ।

(58) ''अभावो का ही घर था   मिला खा लिया, नही निराहारो ही पर था ।''

''शब्द जहॉ सक्रिय है'' – नन्द किशोर नवल, पृ0 77 पर उद्घृत ।

(59) ''त्रिलोचन के बारे मे'' – सम्पादक गोविन्द प्रसाद (लेख – शिव प्रसाद सिह का) पृ0 100) ।

(60) ''उर्वर होता है, जीवन भी आघातो से

विकसित होता है, बढता है उत्पातो से ।''

''अनकहनी भी कुछ कहनी है'' (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 14 ।

(61) दृ0 ''शब्द जहॉ सक्रिय है'' – नन्द किशोर नवल, पृ0 52 ।

(62) दृ0 वही, पृ0 52 ।

(63) ''फूल नाम है एक'' (कविता सग्रह) – त्रिलोचन – (भूमिका से) ।

(64) ''त्रिलोचन के बारे मे'' – सम्पादक गोविन्द प्रसाद, पृ0 56 (डॉ0 राम विलोस शर्मा का लेख) पर उद्घृत ।

(65) साक्षात्कार (पत्रिका), जुलाई–अगस्त 1989, सम्पादक मनोहर वर्मा ।

(66) साक्षात्कार (पत्रिका), जुलाई–अगस्त 1989, सम्पादक मनोहर वर्मा ।

(67) ''त्रिलोचन के बारे मे'' – सम्पादक गोविन्द प्रसाद (कवर पृष्ठ से) ।

(68) ''त्रिलोचन के बारे मे'' – सम्पादक गोविन्द प्रसाद (कवर पृष्ठ से) ।

(69) ''उस जनपद का कवि हूँ'' (कविता सग्रह) – त्रिलोचन ।

(70) ''वर्तमान साहित्य'' (पत्रिका), अगस्त 1992, सम्पादक – से0रा0 यात्री, विभूति नारायण राय, पृ0 29 ।

(71) ''वर्तमान साहित्य'' (पत्रिका), अगस्त 1992, सम्पादक – से0रा0 यात्री, विभूति नारायण राय, पृ0 30 ।

(72) ''फूल नाम है एक'' (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 41 ।

(73) ''त्रिलोचन के बारे मे'' – सम्पादक गोविन्द प्रसाद, पृ0 243–44 ।

(74) ''माओ, तुम जन नायक हो, तुमने जनता का / जीवन जीने योग्य किया है, चीन जाग कर / अपने पैरो आज खडा है ।''

''शब्द'' (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ 36 ।

(75) ''साम्यवाद के पथ पर लीद किया करते है

मानवता का पोस्टर देखा, लगे रेकने ।''

''फूल नाम है एक'' (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 21 ।

(76) ''चैती'' (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 30 ।

(77) ''शब्द'' (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 37 ।

(78) आजकल (पत्रिका), अगस्त 1995, सम्पादक प्रताप सिह विष्ट, पृ0 47 ।

(79) ''मेरी सजग चेतना मे तुम रमे हुए हो''

'आजकल' (पत्रिका), अगस्त 1995, पृ0 47, सम्पादक प्रताप सिह विष्ट ।

(80) वर्तमान साहित्य (पत्रिका), सितम्बर 1992 ।

(81) ''त्रिलोचन के बारे मे'' – सम्पादक गोविन्द प्रसाद, पृ0 243।

(82) ''अनकहनी भी कुछ कहनी है'' (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 94 ।

(83) ''उस जनपद का कवि हूँ'' (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 162 ।

(84) ''जो जमा हुआ है गर्दा

सामाजिक जीवन समाज पर वह झड जाए / सहज प्रसन्न रूप हो सबका ।'' ''उस जनपद का कवि हूँ'' (कविता सग्रह) – त्रिलोचन।

(85) ''काव्य और अर्थ बोध'' – सम्पादक डा0 अवधेश प्रधान, पृ0 56, (लेख – रचनात्मक और सामाजिक दायित्व – त्रिलोचन)।

(86) ''काव्य और अर्थ बोध'' – सम्पादक डा0 अवधेश प्रधान, पृ0 56, (लेख – रचनात्मक और सामाजिक दायित्व – त्रिलोचन)।

(87) ''काव्य और अर्थ बोध'' – सम्पादक डा0 अवधेश प्रधान, पृ0 56, (लेख – रचनात्मक और सामाजिक दायित्व – त्रिलोचन)।

(88) ''अगर न पीडा होती तो भी क्या मै गाता ।

यदि गाता तो क्या उसमे ऐसा स्वर आता ।''

''अनकहनी भी कुछ कहनी है'' (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 12 ।

(89) ''अनकहनी भी कुछ कहनी है'' (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 17 ।

(90) ''धूमिल और उसका काव्य सघर्ष'' – डॉ ब्रम्हदेव मिश्र, पृ0 11 ।

(91) द्र0 वही, पृ0 12 ।

(92) ''कटघरे का कवि धूमिल'' – डा0 ग0तु0 अष्टेकर, पृ0 19–20 ।

(93) '' हर हाथ मे । गीली मिट्टी की तरह हॉ–हॉ मत करो ।

तनो! । अकडो । अमर बेलि की तरह मत जियो । जड पकडो ।

बदलो – अपने – आप को बदलो ।''

'' ससद से सडक तक '' (क0स0) – धूमिल, पृ0 48 ।

(94) द्र0 धूमिल और उसका काव्य सघर्ष – डॉ ब्रम्हदेव मिश्र, पृ0 109 ।

(95) द्र0 वही, पृ0 106 ।

(96) द्र0 वही, पृ0 106 ।

(97) क्रान्तिदर्शी कवि धूमिल – डॉ0 वी0 कृष्ण, पृ0 126 ।

(98) "कविता– /

शब्दो की अदालत मे । मुजरिम के कठघरे मे खडे

वेकसूर आदमी का । हलफनामा है ।

X X X X X

कविता / भाषा मे / आदमी होने की तमीज है ।"

ससद मे सडक तक – धूमिल, पृ0 85 ।

(99) "कटघरे का कवि धूमिल" – डा0 ग0तु0 अष्टेकर, पृ0 48 ।

(100) "कल सुनना मुझे" (क0स0) – धूमिल, पृ0 60 ।

(101) "कविता मे / एक डरा हुआ विन्दु है /

आप उसे छुओ / वह कुनमुनाए गा /

आप उसे कोचो / वह उठ खडा होगा"। ससद मे सडक तक – धूमिल, पृ0 62–63।

(102) दृ0 वही, पृ0 85 ।

(103) दृ0 वही, पृ0 39 ।

(104) दृ0 धूमिल और उसका काव्य सघर्ष – डॉ ब्रम्हदेव मिश्र, पृ0 85।

(105) नया प्रतीक (फरवरी, 1978) पृ0 2–3।

(106) "समकालीन कविता और धूमिल" – डॉ0 मजुल उपाध्याय पृ0 49 ।

(107) "कटघरे का कवि धूमिल" – डा0 ग0 तु0 अष्टेकर, पृ0 44 ।

(108) " संसद मे सडक तक" – धूमिल, पृ0 62 ।

(109) सुबह से तो शाम तक . । काम की तलाश मे इस गुजरे हुए दिन की

निरर्थता की आग मे / जलाता धुँआता हुआ / जिन्दगी की दुनिया को कोसता ।"

चॉद का मुँह टेढा है (क0स0) – मुक्तिबोध, पृ0 94–95 (शीर्षक – 'मुझे याद आते है')

(110) दृ0 वही, पृ0 98 ।

(111) दृ0 वही, पृ0 वही ।

(112) चॉद का मुँह टेढा है (क0स0) – मुक्तिबोध (भूमिका) पृ0 12 ।

(113) दृ0 वही, पृ0 12 ।

(114) दृ0 वही, पृ0 12 ।

(115) दृ0 वही, पृ0 13 ।

(116) "तारसप्तक"–सम्पा0 अज्ञेय, पृ0 22 ।

(117) "तारसप्तक"–सम्पा0 अज्ञेय, पृ0 25 ।

(118) वही "व्यक्तित्व और खण्डहर" शीर्षक, पृ0 42 ।

(119) आत्मसघर्ष की कविता और मुक्तिबोध – डॉ0 हसराज त्रिपाठी, पृ0 14 ।

(120) चॉद का मुँह टेढा है (क0स0) – मुक्तिबोध (भूमिका) पृ0 15, 16, 17 ।

(121) "तारसप्तक"–सम्पा0 अज्ञेय, पृ0 44 ।

(122) दृ0 वही, पृ0 45 ।

(123) "नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र" – मुक्तिबोध, पृ0 76 ।

(124) "नयी कविता का आत्म सघर्ष तथा अन्य निबन्ध" – मुक्तिबोध, पृ0 114–115 ।

(125) दृ0 'चॉद का मुँह टेढा है' (क0स0) – मुक्तिबोध ('चम्बल की घाटी मे'–शीर्षक) पृ0 253

(126) "नयी कविता का आत्म सघर्ष तथा अन्य निबन्ध" – मुक्तिबोध, पृ0 8 ।

(127) दृ0 वही, पृ0 14 ।

(128) दृ0 वही, पृ0 14 ।

(129) द्र0 वही, पृ0 29 ।

(130) दृ0 वही, पृ0 114 ।

(131) दृ0 वही, पृ0 20 ।

(132) दृ0 वही, पृ0 44 ।

(133) दृ0 वही, पृ0 15 ।

(134) दृ0 वही, पृ0 15 ।

(135) दृ0 वही, पृ0 18 ।

(136) दृ0 वही, पृ0 17—18 ।

(137) दृ0 वही, पृ0 18 ।

(138) दृ0 वही, पृ0 31।

(139) ''चॉद का मुँह टेढा है''(क0स0) — मुक्तिबोध, पृ0 12 और 14 ।

(140) ''मुक्तिबोध: ज्ञान और सवेदना'' — नन्द किशोर नवल, पृ0 375 ।

(141) दृ0 वही, पृ0 380 ।

(142) ''चॉद का मुँह टेढा है— मुक्तिबोध, (शीर्षक — चकमक की चिगारियॉ), पृ0 169 ।

(143) " पर, वह जगत की गलियो मे घूमता है प्रतिपल

वह फटेहाल रूप ।"

''चॉद का मुँह टेढा है''— मुक्तिबोध (अधेरे मे' शीर्षक) — पृ0 298 ।

(144) ''रघुवीर सहाय का कविकर्म''—सुरेश शर्मा, पृ0 159 ।

(145) दृ0 वही, पृ0 158 ।

(146) ''चल पडा निर्माण—पथ पर युग—युगो का मै बटोही'' वही, पृ0 155 ।

(147) ''यथार्थ यथास्थिति नही'' — रघुवीर सहाय, सम्पा0 सुरेश शर्मा, पृ0 138 ।

(148) दृ0 वही, पृ0 138 ।

(149) ''रघुवीर सहाय का कविकर्म'' — सुरेश शर्मा, पृ0 158 ।

(150) आत्महत्या के विरूद्ध – रघुवीर सहाय, पृ0 15 ।

(151) ''अपनी एक मूर्ति बनाता हूँ और ढहाता हूँ'', वही, पृ0 32 ।

(152) ''रघुवीर सहाय का कविकर्म'' – सुरेश शर्मा, पृ0 10 ।

(153) दृ0 वही, पृ0 10 ।

(154) दृ0 वही, पृ0 145 ।

(155) दृ0 वही, पृ0 145 ।

(156) दृ0 वही, पृ0 145 ।

(157) दृ0 आलोचना (त्रैमासिक) अप्रैल–जून 1967 ।

(158) ''रघुवीर सहाय का कविकर्म'' – सुरेश शर्मा, पृ0 80 ।

(159) दृ0 ''आत्महत्या के विरूद्ध'' – रघुवीर सहाय, पृ0 28 – 29 ।

(160) दृ0 आलोचना (त्रैमासिक) अप्रैल–जून 1967 ।

(161) ''रघुवीर सहाय का कविकर्म'' – सुरेश शर्मा, पृ0 70 पर उद्घृत ।

(162) '' बहुत दिन हुए तब मैने कहा था लिखूँगा नही / किसी के आदेश से ''
''आत्महत्या के विरूद्ध'' – रघुवीर सहाय, पृ0 15 ।

(163) लोग भूल गये है – रघुवीर सहाय, पृ0 53 ।

(164) ''कलम लिए बैठा है / शब्दो की खोज मे / लेखक स्वच्छन्द है ।'' ''लोग भूल गये है''(क0स0)– रघुवीर सहाय, पृ0 101 ।

(165) ''रघुवीर सहाय का कविकर्म'' – सुरेश शर्मा, पृ0 80 ।

(166) दृ0 वही, पृ0 71 ।

(167) ''हम उपन्यास मे बात मानव का करेगे । और कभी बता नहीं पायेंगे /
सूखी टॉगे घसीटकर खम्भे के पास मे आकर बैठे हुए / लडके के सामने
पड़े हुए तसले का अर्थ।'' ''लोग भूल गये है'' – रघुवीर सहाय, पृ0 47 ।

(168) ''शासन को बदलने के बदले अपने को / बदलने लगे ।'' ''आत्महत्या के विरूद्ध'' – रघुवीर सहाय, पृ0 16 ।

(169) ''ऊबे अँधेरे मे / खडे हुए बाहर निकलने से पहले बन्द होते हुए / कमरे मे / एक बार / भीड मे / जानबूझ / कर चीख / ना होगा / जिन्दा रहने के लिए

यह मेरे हाथ की छटपटाहट सही / यह कि मै घोर उजाले मे

खोजता हूँ / आग ।'' ''आत्महत्या के विरूद्ध'' – रघुवीर सहाय, पृ0 27 ।

(170) ''मेरे अन्दर का एक कायर टूटेगा टूट / मेरे मन टूट एक बार सही तरह / अच्छी तरह टूट मत झूठमूठ ऊब मत रूठ । ''आत्महत्या के विरूद्ध'' – रघुवीर सहाय, पृ0 85 ।

(171) ''आत्महत्या के विरूद्ध'' – रघुवीर सहाय, पृ0 31 ।

(172) दृ0 वही, पृ0 33 ।

(173) दृ0 वही, पृ0 22 ।

(174) कुछ पते कुछ चिट्ठियॉ – रघुवीर सहायक, पृ0 54 ।

(175) दृ0 वही, (निवेदन) ।

(176) दृ0 वही, (निवेदन) ।

(177) ''रघुवीर सहाय का कविकर्म'' – सुरेश शर्मा, पृ0 10 ।

(178) दृ0 वही, पृ0 10 ।

(179) दृ0 वही, पृ0 10 ।

(180) दृ0 वही, पृ0 143 ।

(181) दृ0 ''लोग भूल गये है।'' – रघुवीर सहाय ('निवेदन' से) ।

(182) दृ0 ''लोग भूल गये हैं।'' – रघुवीर सहाय, पृ0 101 ।

(183) ''तुमने दी अनाहत जिजीविषा / उसे क्या करे ?''

कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ – रघुवीर सहाय (समर्पण' से) ।

(184) द्र0 वही, ('निवेदन' से) ।

(185) द्र0 वही, पृ0 45 ।

(186) '' मै पूछ रहा हूँ, इसीलिए यह बार–बार /

वह दर्द कहाँ मर गया रोज जो होता था / जिससे वह एकाकी भी तडपा करता

था/ वह बल, कविता ने पाठक से क्यो छीन लिया है?'' द्र0 वही, पृ0 13 ।

(187) द्र0 ''अन्तराल'' – गिरिजा कुमार माथुर, सम्पादक डॉ0 गोपालदत्त सारस्वत, पृ0 23 ।

(188) ''मुझे और अभी कहना है'' – गिरिजा कुमार माथुर, भूमिका – पृ0 16 ।

(189) द्र0 वही, पृ0 16 ।

(190) द्र0 वही, पृ0 16–17 ।

(191) ''उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत /

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्ग पथस्तत्कवयो वदन्ति ।''

(कठोपनिषद् 1/3/14)

(192) ''मुझे और अभी कहना है'' – गिरिजा कुमार माथुर (भूमिका), पृ0 19 ।

(193) द्र0 वही, पृ0 24–25 ।

(194) द्र0 वही, पृ0 7 ।

(195) द्र0 वही, पृ0 8 ।

(196) द्र0 वही, पृ0 10–11 ।

(197) द्र0 वही, पृ0 12 ।

(198) साक्षात्कार (पत्रिका), नवम्बर – जनवरी 1994, पृ0 7 ।

(199) दृ0 ''मुझे और अभी कहना है'' – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 24 ।

(200) दृ0 वही, पृ0 26 ।

(201) दृ0 वही, पृ0 26 ।

(202) दृ0 वही, पृ0 36 ।

(203) दृ0 तारसप्तक – सम्पा0 अज्ञेय, पृ0 168 ।

(204) दृ0 ''मुझे और अभी कहना है'' – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 30 ।

(205) दृ0 वही, पृ0 37 ।

(206) दृ0 वही, पृ0 36 ।

(207) ''धूप के धान'' (क0स0) – गिरिजा कुमार माथुर – निवेदन – पृ0 1 ।

(208) ''तारसप्तक'' – सम्पा0 अज्ञेय, पुनश्च – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 162 ।

(209) ''धूप के धान'' (क0स0) – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 8–9 ।

(210) ''तारसप्तक'' – सम्पा0 अज्ञेय, (गिरजा कुमार माथुर का वक्तव्य) ,पृ0 167 ।

(211) ''मुझे और अभी कहना है'' – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 28 ।

(212) दृ0 वही, पृ0 40 ।

(213) दृ0 वही, पृ0 40 ।

(214) ''खूनी मशाल / है नष्ट कर रहा / नगर, ग्राम, घर, द्वार /

भूमि बन को कराल। ''

''मुझे और अभी कहना है'' – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 348 ।

(215) दृ0 वही, पृ0 13 ।

(216) ''अज्ञेय–काव्य में प्रागबिम्ब और मिथक – सी0एस0राजन, पृ0 99 ।

(217) दृ0 वही, पृ0 102 ।

(218) दृ0 वही, पृ0 101 ।

(219) दृ0 वही, पृ0 101–102 ।

(220) दृ0 वही, पृ0 102 ।

(221) दृ0 वही, पृ0 103 ।

(222) दृ0 वही, पृ0 103–104 ।

(223) दृ0 वही, पृ0 104–105 ।

(224) दृ0 वही, पृ0 108 ।

(225) दृ0 वही, पृ0 106 ।

(226) दृ0 वही, पृ0 107–108 ।

(227) "अज्ञेय आज के लोकप्रिय कवि", सम्पादक विद्या निवास मिश्र, पृ0 26 ।

(228) "अज्ञेय काव्य मे प्रागबिम्ब और मिथक" – सी0एस0 राजन, पृ0 115 ।

(229) दृ0 वही, पृ0 114 ।

(230) "अज्ञेय सृजन और सन्दर्भ " – सम्पादन डॉ0 सावित्री मिश्र, पृ0 14 ।

(231) दृ0 वही, पृ0 5 । और "अज्ञेय काव्य मे प्रागबिम्ब और मिथक" – सी0एस0 राजन पृ0 109 ।

(232) आत्मनेपद – अज्ञेय, पृ0 204 ।

(233) सदानीरा–1, (अज्ञेय की सम्पूर्ण कविताओ का सकलन), पृ0 234 ।

(234) दृ0 तारसप्तक – अज्ञेय (वक्तव्य), पृ0 222 ।

(235) सदानीरा–1, अज्ञेय, पृ0 272 ।

(236) सदानीरा–1, अज्ञेय,पृ0 261 ।

(237) सदानीरा–1, अज्ञेय,पृ0 241 ।

(238) ''अज्ञेय, सृजन और सन्दर्भ '' – सम्पादन डॉ0 सावित्री मिश्र, पृ0 102 ।

(239) ''हिन्दी कविता का वैयक्तिक परिप्रेक्ष्य'' – राम कमल राय, पृ0 45 ।

(240) ''दीपक हूँ, मस्तक पर मेरे / अग्निशिखा है नाच रही /

बुझी ज्योति मेरे जीवन की / शव से उठने लगा धुऑ।'' ''भग्नदूत'' –

(क0स0) की दूसरी कविता (सदानीरा–1, अज्ञेय)

(241) सदानीरा–1, अज्ञेय,पृ0 212 ।

(242) दृ0 ''ऑगन के पार द्वार'' – (क0स0) अज्ञेय, पृ0 87 ।

(243) सदानीरा–1, अज्ञेय,पृ0 254 ।

(244) ''आत्मने पद'' – अज्ञेय, पृ0 173–174 ।

(245) ''अज्ञेय आज के लोकप्रिय कवि'', सम्पा0 विद्या निवास मिश्र, पृ0 4 ।

चतुर्थ अध्याय

स्वातन्त्र्योत्तर कवियो की काव्य–वस्तु मे लोक–सवेदना के विविध रूप – (नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन शास्त्री, सुदामा पाण्डेय 'धूमिल', गजानन माधव 'मुक्तिबोध', रघुवीर सहाय, गिरिजा कुमार माथुर व अज्ञेय की कविताओ के सन्दर्भ मे)[पृ0स0 155 - 256]

(क) शोषित–पीडित जन–सामान्य के पक्षधर।

(ख) पूँजीवादी राजनीतिक सत्ता का विरोध।

(ग) समसामयिक–यथार्थ का हृदय–सवेद्य रूप (साम्प्रदायिकता, जातिवाद, रूढि व अन्धविश्वास आदि का विरोध)।

(घ) प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण मे गॉव की मिट्टी के प्रति सहज लगाव – ग्रामीण जन–जीवन मे व्याप्त रीति–रिवाज, विश्वास, आचार–व्यवहार सम्बन्धी परम्पराओ आदि का सहज भावुकतापूर्ण रूप।

लोकहित के भाव का प्रतिपादन करने वाला साहित्य नूतन सर्जना के बीज से प्रस्फुटित होकर अनवरत विकासात्मक स्वरूप को प्राप्त होता रहता है। वैदिक साहित्य से प्रारम्भ होकर आज तक साहित्य के विकास की यात्रा अनन्त की ओर चल रही है। प्रत्येक प्राणी के समान प्रत्येक कवि अद्वितीय है किन्तु इनमे भी कुछ-कुछ समान-धर्मी होते है । 'शब्द ब्रहम है' की स्थापना का मूल बिन्दु शब्द की व्यापकता, अनन्तता और अनश्वरता है। इसकी साधना मे प्रत्येक कवि अपना सम्पूर्ण जीवन लगा देता है। जिसकी जैसी साधना होती है, उसे उसी प्रकार का फल प्राप्त होता है। इस साधना के मूल मे कवि की लोक-मगल-कामना का विशेष महत्व है। स्वान्त सुखाय का परम तत्व लोक मगल-कामना की परिणति मे अन्तर्निहित है। "सुरसरि सम सब कर हित होई" की भावना लोक मगल की स्थापना है । लोकहित सम्पादित करने वाला साहित्य देश काल की सीमा का उल्लघन कर अपना प्रभाव सर्वत्र फैलाता रहता है।

देश को स्वतन्त्रता प्राप्ति एक वरदान था, लोगो ने सोचा था कि भारत माता की तार-तार हुई साडी रेशमी बन जायेगी, उसकी जलती हुई पेट की अग्नि बुझ कर एक नया सृजन करेगी, उसके अंग स्वर्णाभूषणो से अलकृत हो जायेगे, उसके केश-पाश में हीरे-मोतियों की माला सुशोभित होगी। उसके शुष्क कपोलो की कालिमा लालिमा में एवं आखो की अश्रुधारा सुन्दर प्रभातीय शोभा में परिणत हो जायेगी और उसकी अस्मिता विश्व में वन्दनीय हो जायेगी। पर हुआ इसके विपरीत । जिनके हाथ मे सत्ता आयी उन्होने देश की दशा और दिशा को और ही विकृत कर दिया । सरकारी नीतियॉ ओस के समान चमकीली रहीं। सरकार की कथनी और करनी मे अन्तर ही नहीं रहा वरन् वैपरीत्य रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि देश का आम-आदमी आज भी बडे-बडे नगरों के फुट-पार्थों पर अपनी जिन्दगी की रोटी सेकता हुआ जाडे की रात मे भी उसी पर सोता है और अपने जीवन को मौत के मुँह में स्वय झोंकने के लिए विवश रहता है।

सरकारी नीतियाँ उन्हीं लोगों के जीवन को स्वर्णिम बनाती रहती हैं, जिनके हाथ में किसी प्रकार एक बार भी शासन-प्रशासन तन्त्र आ जाता है। औद्योगिक क्रान्ति से लगता है कि देश ने बहुत विकास किया है किन्तु आम-आदमी का जीवन आज भी पशुओं से बदतर है। आम-आदमी झुण्डो मे प्रतिदिन शहर के किसी नुक्कड़ पर आठ-दस घंटे के लिए बिकने को तैयार रहता है, किन्तु उन्हें कोई पूछता नहीं है। गाँवों से लोग नगर की ओर पेट की आग बुझाने के लिए भागे आ रहे हैं पर यहाँ उसकी आग में मिलता क्या है - बस पेट्रोल। गाँव में जो सम्पन्न खेतिहर हैं वे ही मनुष्य हैं - शेष सब पशुवत् हैं, जिन्हें अपने मालिको की अनुमति के अनुसार साँस लेना पड़ता है। सरकार केवल कागजी नीतियाँ बनाकर इतिश्री कर लेती है। सम्पन्न और सम्पन्न होते जा रहे हैं और दीन-दलित और दलित। इन सबके मूल में सरकारी नीतियाँ ही दोषी हैं क्योंकि भ्रष्ट मस्तिष्क से उपजी हुई नीतियाँ भ्रष्टाचार को बढ़ावा देती है। सर्वत्र भ्रष्टाचार का नग्न ताण्डव हो रहा है। कवि-लेखक, बुद्धिजीवी भी या तो इसी भ्रष्टाचार के कीचड में चलते हुए अपनी पूजा करवा रहे हैं या यथास्थितिवाद को स्वीकार कर साँस ले रहे हैं। कुछ ही कवियों ने यथास्थितिवाद के साम्राज्य को ध्वस्त करने के लिए अपनी लेखनी उठायी, इसीलिए इनकी रचनाओं में क्रान्ति की आग है। इनकी रचनाएँ कुछ सीमा तक आम-आदमी की जिन्दगी के यथार्थ-चित्र को उपस्थित कर सरकारी तन्त्र की पोल खोलकर लोगों को नयी चेतना प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त भाग्यवाद और ईश्वरवाद के द्वारा फैलायी गयी अकर्मण्यता, अत्याचार को चुपचाप सह लेने की बाध्यता को दूर कर अपने हाथ अपने विकास करने की शक्ति को देती हुई अन्याय और पाखण्डवाद को धूल-धूसरित करने का नव्य उत्साह प्रदान करती हैं। इन कवियों ने जातिवाद, सम्प्रदायवाद और धार्मिक-आडम्बरवाद का विरोध कर आम-आदमी को जीवन के प्रति विश्वास, मानव के प्रति प्रेम-भावना तथा ऊँची आकांक्षाओं को मूर्त रूप प्रदान करने की नूतन ज्योति प्रदान की।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त हिन्दी साहित्य मे एक अद्‌भुत आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ। स्वातन्त्रयोत्तर कवियो की सशक्त लेखनी ने स्पष्ट शब्दो मे शासन व्यवस्था पर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि यह प्रहार युगो से चला आ रहा है किन्तु उसमे वह धार नहीं है जैसी कि समकालीन कवियो मे। यह इसलिए है कि इनकी रचनाएँ इनके हृदय की वेदना की मर्मभेदिनी ध्वनि है। इस ध्वनि मे केवल चिल्लाहट या खोखली झकार नहीं है वरन् आम-आदमी की असहनीय पीडा की सहारक ध्वनि है, जिसे कविता का स्वर प्राप्त हुआ है। कवियो ने इस पीडा का परप्रत्यक्षीकरण के आधार पर चित्रण नहीं किया है वरन् स्वानुभूत सत्य को कविता की भाषा में उकेरा है। इसे अभिव्यक्त करने के लिए इन कवियो ने नयी शैली की सर्जना की है। नूतनता सृष्टि है, चेतना है, और विकास-प्रक्रिया है, यथास्थितिवाद जडता है। जडता को तोडना इन कवियो का लक्ष्य है। यह जडता आम-आदमी की है, शोषितो, दलितो और सताये हुए सामान्य जनो की है, क्योकि वह यथास्थिति को स्वीकार कर नारकीय जीवन जीने के लिए बाध्य कर दिया जाता है अथवा अपनी नियति मान कर सघर्षशीलता को तिलाजलि देकर अहल्या की जडता को अपनी जिन्दगी की सॉस मान लेता है। मार्क्सवाद से प्रभावित समकालीन कवियो की चेतना ने जिन्दगी से हारे हुए, शोषको से शोषित तथा भाग्य और धर्म के नाम पर अधे कुएँ मे ढकेले गये आम-आदमी के जीवन के अंधकार को दूर करने मे सक्षम अक्षय ज्योति प्रदान करने के लिए अपनी लेखनी को फौलादी रूप दिया।

स्वातन्त्रयोत्तर कवियों मे नागार्जुन, धूमिल, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल तथा गिरिजा कुमार माथुर की कविताओं मे आम-आदमी के जीवन की यथार्थता चित्रित है। इन कवियों ने इसी प्रकार के जीवन को जिया है, इसलिए इन्हें जिस पीड़ा की अनुभूति हुई है उसकी सजीव अभिव्यक्ति उनकी कविताओ में दिखाई पड़ती है। रघुवीर सहाय भी

आम-आदमी के विषम जीवन को सुखद बनाने की वकालत करते रहते है किन्तु इनकी रचनाओ की जटिलता रचना को आम-आदमी से नहीं जोड पाती है। मुक्ति बोध की कविताए ऐसे विम्बो का सृजन करती है, जो उनकी जीवन-व्यथा से जुडकर रचना को अधिक सवेदनशील रूप प्रदान करती है। आम-आदमी की भॉति जीविका को चलाने वाले, स्वय अनेक कार्यो को कर लेने वाले अज्ञेय अपनी कुछ कविताओ के माध्यम से लोक का अत्यन्त प्रभावी चित्रण कर लोक के प्रति अपनी सवेदना व्यक्त करते है। वस्तुत सभी कवियो ने अपने-अपने ढग से अपनी कविताओ के माध्यम से लोक के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की है ।

नागार्जुन की कविता में लोक संवेदना:-

जो वीज जिस मिट्टी से अकुरित होकर पल्लवित, पुष्पित और फलित होता है, उसमे उस मिट्टी का सौरभ समाहित होता है । नागार्जुन लोक-जीवन की धूलि से उत्पन्न होने वाले अकेले ऐसे कवि है, जिनकी रचनाओ मे जन-सामान्य की दलित आत्मा का दिव्य प्रकाश है, जिसका साक्षात्कार विरले होकर पाते है। पीडा के बीज से उत्पन्न होने वाली इनकी रचना-लता के प्रत्येक भाग में मानवीय सवेदना का लोकोत्तर रस प्रवाहित होता रहता है, जो सवेदनशील जन को अमृत, किन्तु शोषको को विष प्रतीत होता है। नागार्जुन की कविता खेत-खलिहान, कल-कारखानो मे काम करने वाले किसान-मजदूर के पसीने की गध से उपजी है जो सहृदय को अपने में डुबो देती है। भोग-बिलास से परिपूर्ण कृत्रिम जीवन से कोसों दूर रहने वाले नागार्जुन को पद्म-पाद नहीं दिखाई देते है, वरन् श्रमशील मजदूर के "खुरदुरे पैर" का सौन्दर्य दिखाई देता है- जो उनकी ऑखो में सदा-सदा के लिए धँस जाता है-- "देर तक टकराये/उस दिन इन ऑखों से वे पैर/ भूल नहीं पाऊँगा फटी बिवाइयाँ/खुब गयी दुधिया निगाहों में/धॅस गयी कुसुम-कोमल मन में ।"[1]

जिस कवि को "नाकहीन मुखडा प्रिय है"[2] वह 'जयति नखरजनी'[3] से कैसे प्रेम कर सकेगा। नागार्जुन की कविता केवल वर्णन मात्र नहीं है, वरन् उनका अपना भोगा हुआ जीवन कविता के प्रत्येक शब्दो मे अभिव्यक्त होता है। उनके मन, वाणी और कर्म मे एकरूपता है। वे उनसे प्रेम करते है, जिनसे सामन्तवादी पूँजीवाद घृणा करता है। कुछ आलोचक नागार्जुन को राजनीतिक कवि कहते है। यह सच है कि उनकी कविता मे राजनीति पर चर्चा बहुत है, लेकिन उनकी कविता राजनीति नहीं करती, वरन् राजनीति के कुकृत्यो का पर्दाफास करती है। नागार्जुन जैसा कवि ही काग्रेसी सत्ताधारियो की पूँजीपतियो से साठ-गॉठ की जमकर आलोचना कर सकता है। स्वतन्त्रता से पूर्व की सामन्तवादी व्यवस्था काग्रेसी शासन से तो ठीक ही थी क्योकि उसका चरित्र इतना दोहरेपन या दिखावटीपन से भरा हुआ नहीं था, जितना की स्वतन्त्र भारत की प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के तथाकथित कर्णधारो का, जो गरीबो-दलितो के कल्याण के नाम पर उनका ही शोषण करते रहते है । तभी तो "महल आबाद होते जा रहे है और झोपडी उजाड।"[4]

नागार्जुन की कविता "सिके हुए भुट्टे" श्रमिक के प्रति उनके अगाध प्रेम को व्यक्त करती है। जेल के पिछवाडे कैदी द्वारा उगाये गये भुट्टे को खाकर अत्यन्त प्रसन्न होने वाला कवि दूसरों के लिए श्रम करने वालों के प्रति अपना हार्दिक स्नेह दर्शाता है।[5] कुली-मजदूर के साथ ट्राम मे बैठने वाले- (आकर ट्राम के अन्दर पिछले डब्बे मे/बैठ गये इधर-उधर तुम से सटकर)[6]- नागार्जुन दलितो-शोषितो के हित के लिए ही अपनी लेखनी से आग बरसाते रहे हैं। नागार्जुन जैसा यात्री ही देख सकता है कि दूसरो का पेट भरने वाला दीन-दलित शोषितजन सदैव खाली प्लेट, खाली हाथ और खाली पेट के साथ जीता रहता है।[7] करमी की पत्तियो को खाकर जीने वालो (क्योकि करमी की पत्तियॉ अभी कुछ शेष थी),[8] आम की गुठलियो को खाकर जीने वालो- (आमो की गुठलियॉ चूरकर/भट्ठी की सोंधी मिट्टी में उस चूरन को सान सूनकर/खा लेते है लोग पेडों की छाल का तीमन

बनता है)[9] भूख की भट्ठी मे जलने वालो--(भूख, प्यास, ठिठुरन, तिरस्कार, ग्लानि, दुर्वचन, पिटाई, और प्रवचन/इस प्रकार गला था तुम्हारा बचपन)[10] से अगाध प्रेम करने वाले नागार्जुन जन सामान्य, जो घिसी-पिटी हुई झुलसी दूब है- के जीवन मे हरियाली देखना चाहते है।[11] उन्हे प्रतीक्षा है उस मुक्ति पर्व की जो दलितो के जीवन मे दीवाली व उनके ललाट की लाली लेकर आयेगा- "इनका मुक्ति पर्व कब होगा/कब होगी इनकी दीवाली ? चमकेगी इनके ललाट पर कब ताजे कुकुम की लाली ?"[12]

नागार्जुन खेत-मजदूर, भूमिदास, खदान-श्रमिक, फैक्ट्री-वर्कर-नौजवान, कैम्पस के छात्र आदि को अपना चुम्बन देने के लिए तैयार रहते हैं।[13] क्योकि ये ही लोग क्रान्ति के द्वारा जन सामान्य की पीडा को दूर करने मे सक्षम हो सकते है।

गगा की छिछली धारा मे यात्रियो के द्वारा फेके गये पैसो को ढूढते हुए वरूण के बेटो[14] (मल्लाहो के बच्चो) की इच्छाओ को मूर्त रूप देने वाले नागार्जुन 'देखना ओ गगा मैया' और 'नयी पौध' कविताओ मे अभावो मे पलते हुए बच्चो (नयी पौध) का अत्यन्त मार्मिक चित्र खींच कर हृदय को मथ डालते है।[15]

नागार्जुन पूँजीवादी-व्यवस्था के उद्दाम शत्रु कवि है। उनके अनुसार पूँजीवाद समाज का शोषण कर जन-सामान्य को असहाय और भूखा रहने पर विवश करता है। सत्ता के थूक को न चाटने वाले जन कवि (जन कवि हूँ क्यो चाटूँगा मै थूक तुम्हारी)[16] नागार्जुन 'छोटी मछली शहीद हो गयी' के माध्यम से पूँजीपति के क्रूर क्रिया-कलापो का वर्णन कर (ऊँघती आवाज आई मोती सिह की/आग होती तो मकबुलवा/अभी इस वक्त इसको भून के खा जाता)[17] छोटी मछली की भाँति शहीद होते पीडितों का सवेदना पूर्ण चित्रोकन करते है। लोकतान्त्रिक व्यवस्था में आम-आदमी की यह दशा शर्मनाक है। पूँजीपतियों ने लोकतन्त्र का होम कर दिया है।[18] अगर ऐसी बात न होती तो न 'गेहुँअन का पोआ' (साँप का बच्चा-पूँजीपति का जहरीला बेटा) मुँह से धुआ निकालते हुए गगा

के किनारे उमग का कुऑ खोदता[19] और न खादी मलमल से साठ-गॉठ करती ।[20] नागार्जुन स्पष्ट शब्दो मे कहते है।

"रामराज मे अब की रावण नगा होकर नाचा है।

सूरत सकल वही है भैय्या, बदला केवल ढॉचा है।

गॉधी जी की कसमे खा-खा, कौन किसे ठग सकता है

ठण्डा चूल्हा फूटी हाडी, नहीं कहीं कुछ पकता है ।"[21]

भारत का जनतन्त्र केवल मुखौटा मात्र है । इस शासन व्यवस्था मे गरीबो का शोषण और धनपतियो का पोषण होता है-"मुण्डमाल के लिए गरीबो पर निगाह है/ धनपतियो के लिए दया की खुली राह है/धन-पिचाश का लहू नहीं अच्छा लगता है/ हमको क्या हम (दलित दीन) तो यो पिसते आये है/माटी कल के पुर्जे है घिसते आये है/ धनपतियों की खुशियों में खुश तुम भी रहना ।"[22]

जनता के राम बने शासक के शासन मे सब कुछ विपरीत है। इस कलयुगी राम को न शबरी याद आती है न इसके बेर के स्वाद अच्छे लगते हैं ("शबरी न याद रही, भूले स्वाद बेर के")।[23] इनके शासन मे पूॅजीपति साहूकार विभीषण की भॉति लकापति बन बैठा है, कुबेर (पूॅजीपतियो) के बेटों को अभयदान प्राप्त है (बन गया साहूकार लकापति विभिषण/पा गये अभयदान शाबर कुबेर के) ।"[24]

भारत का जनतन्त्र बिट्रेन की (साम्राज्ञी) रानी की पालकी ढोये- यह नागार्जुन को सह्य नहीं है। उनकी सेवा के लिए गरीब जनता के रक्त को चूसने वाले धन-कुबेर उत्सुक होगे ही (दाए-बाए खडे हजारों आफिसरो से प्यार लो/धन कुबेर उत्सुक दिखेगे, उनसे जरा दुलार लो)।[25]

तथाकथित प्रजातान्त्रिक पूॅजीपति "टके की मुस्कान पर करोड़ों का खर्चा"[26] बडे शान-शौकत से करते हैं। वे चुटकियों मे लाखों का प्लान बनाते है।[27] प्रजातन्त्रिक देश की

कैसी विडम्बना है कि एक ही स्थान पर बाहर कुछ लोग जूठन चाट रहे है और भीतर लक्ष्मी के पुत्र चहकते हुए रसगुल्ले उडा रहे है।[28] यह है भारतीय लोकतन्त्र की विषम तस्वीर, जहॉ 'जनता का सेवक' कहा जाने वाला नेता दिखाने के लिए तो उजली खादी धारण करता है, पर अन्दर से विकट कसाई है।[29] देशी पूॅजीवाद जब विदेशी सामन्ती तत्वो से समझौता कर लेता है तब सामन्ती तत्वो का क्रूर जाल देशी पूॅजीवाद को फॉस लेता है, और उसके कसते हुए जाल मे देश छटपटाने लगता है, पर उससे मुक्ति सम्भव नहीं है। सम्भवत नागार्जुन की दूर-दृष्टि ने आज के बढते हुए पूॅजीवाद के विकराल रूप को देख लिया था, तभी तो वे कहते है--"गगा यमुना के कछार मे/आ आकर अण्डे देगी अब/दुनिया भर की जोंके/"[30] ये जोके बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ है, जो चारो तरफ से देश के दीन-जनो के तरल रक्त को बडे चाव से बिना रोक-टोक के पी रही है। इसीलिए पूॅजीवादी व्यवस्था के तलुओ की लाली बढती जा रही है--("पीकर लाखो का लहू चमकने वाली/ मैं धन-कुबेर के तलुओ की हू लाली)[31]

नागार्जुन की दृष्टि मे सरकारी नीतियॉ मात्र दिखावा है।"यह बदरग पहाडी गुफा सरीखा" शीर्षक वाली कविता मे इन्होने इन्दिरा गॉधी और भारतीय राजनीति पर तीखा प्रहार किया है।[32] अशोक के सिहो पर उल्लुओ की जमात, क्रान्ति कुमारी के चीर-हरण तथा नब्बे प्रतिशत लोगो के तकदीर-हरण को देखने वाले नागार्जुन का विश्वास है कि अन्न[33] ब्रहम की माया एक नूतन क्रान्ति कर नूतन विधान बनायेगी, नूतन यन्त्र रचेगी, नयी-नयी ऋचाओं को जन्म देगी, नया-नया मत्र रचकर चिन्तन को नवीन रूप प्रदान करेगी तथा युग की असह्य पीडा को दूर करेगी।[34] पूॅजीवादी शासन को चुनौती देते हुए नागार्जुन कहते हैं कि तुम्हारे क्रूर शासन से भले ही दलितो के चूल्हे रोते रहे किन्तु वे नदियॉ (दीन जनता) जिनके पानी (प्रतिष्ठा) में शासन आग लगता रहता है एक न एक दिन अवश्य बदला लेंगी--"हॉ पानी में आग लगाओ/नदियॉ बदला ले ही लेगीं।[35]

नागार्जुन साम्प्रदायिकता, जातिवाद, रूढि और अन्धविश्वासो का निरन्तर विरोध करते रहे है। इनकी दृष्टि मे छुआछूत, रूढियॉ, अन्धविश्वास आदि सामाजिक बुराइयॉ दीन-दलितो की प्रगति मे बाधक है।[36] 'तेरी खोपडी के अन्दर' शीर्षक कविता मे नागार्जुन कलीमुद्दीन- जो पेट की आग बुझाने के लिए प्रेम-प्रकाश बनकर रूद्राक्ष माला धारण कर रिक्सा चलाता है- से बेहद प्यार करते है । वे उसके घर जाकर चाय पीना चाहते है-- (मुझे उस नाले के करीब/ले चलना कभी/उस नाले के करीब/जहॉ कल्लू का कुनबा रहता है/मै उसकी बूढी दादी के पास/बीमार अब्बा जान के पास/बैठ कर चाय पी आऊॅगा कभी/कल्लू के नन्हे मुन्ने/मेरी दाढी के बाल/सहलाएॅगे और/)। लेकिन कट्टर हिन्दूवाद की आवाज इस एकता को विनष्ट करना चाहती है तभी तो वे कहते है-"कल्लू तेरा नाना लगता है न/खबरदार साले/तुमसे किसने कहा था/मेरठ आने को।[37]

नागार्जुन पतित बुद्धिजीवी जमात से घृणा करते हुए उसे आग मे जलाकर नष्ट कर देना चाहते है।[38] गरीब किसान, मजदूर और हरिजन के उद्धार[39] के लिए सतत प्रयत्नशील नागार्जुन शोषको को चुनौती देते हुए कहते हैं- "मशीनों पर और श्रम पर उपज के सब साधनो पर/ सर्वहारा स्वय अपना करेगा अधिकार स्थापित / दूहकर प्रात जोंकों को मिटा देगा धरा की प्यास/करेगा आरम्भ अपना स्वय ही इतिहास "।[40]

नागार्जुन को पूर्ण विश्वास है कि घिसी-पिटी झुलसी हुई दूबो (दलित मजदूर किसान और श्रमिको) में एक दिन अवश्य हरियाली आयेगी ।[41]

अछूतों के दास-जीवन से दु खी रहने वाले नागार्जुन नहीं चाहते है कि उन्हे पशुओं की भॉति उच्छिष्ट भोजन दिया जाय और बेचा जाय- "रहोगे क्या तुम सदा गुलाम? हमेशा खाओगे उच्छिष्ट?/बेचते रहेगें पशु की भॉति/अरे कब तक तुमको ये लोग।"[42]

नागार्जुन की कविता 'हरिजन गाथा' अछूतों पर किये जाने वाले अत्याचार का

जीवन्त उदाहरण है। तेरह हरिजन सुसज्जित चिता मे जिन्दा ही झोक दिये जाते है । यह देख उनका हृदय कराह उठता है। पीडा व आक्रोश का मिला-जुला रूप व्यक्त करने वाली यह कविता लोक-पीडा के विविध रूप का सवेदनामय चित्रण करती है।[43]

नागार्जुन ने धर्म के बाह्य आडम्बर को भलिभॉति देखा है। धर्माचार के अन्तस्तल मे पापाचार का नग्न-ताडव उनमे वितृष्णा पैदा करता है। मन्दिर, मस्जिद, मठ आदि को दुराचार के बाधाहीन स्थान बनते देख कवि कह उठता है- "चिदानन्द की रोचक मदिरा बॉट रहे हो/खूब रचा है चक्रव्यूह अध्यात्मवाद का । नियति नदी के गुह्य कवच से तुम्हारे चेला-चाटी। शान्ति पाठ करते फिरते है/खोल रहा है वाह बुद्धि-हत्या का बढिया केन्द्र।"[44] धर्म के ठेकेदार जो अपने को पूर्ण भगवान मानते है, नित्य पापाचार को करते रहते है, परन्तु समाज इनके कुकृत्यो की माया मे फॅसा हुआ इनकी पूजा करता है। नागार्जुन ऐसे धर्म के ठेकेदारो पर कटु व्यग्य करते है।[45] 'चौराहे के उस नुक्कड़ पर' शीर्षक कविता ढोगी और ठग साधुओ जो कॉटो पर सोकर लोगों से धर्म के नाम पर धन ऐठता रहता है के गिरगिटीय चरित्र को अभिव्यक्त करती है । (श्रद्धा का तिकडम से नाता / जय हे भिक्षुक जय हे दाता/पियो सन्त हुगली का पानी/पैसा सच है दुनिया फानी)।[46] 'कल्पना के पुत्र हे भगवान' शीर्षक कविता में कवि ने उन ढोगियो और धर्म के ठेकेदारों, जो कल्पना के भगवान की सर्जना कर निरन्तर समाज को अन्धकार की ओर ले जाते है और उनकी भावनाओ को कुठित कर उनको ठगते रहते है- पर अच्छा व्यंग्य किया है। वे कहते है कि हे भगवान! युगो से तुम्हारी उपासना हो रही है किन्तु आज तक तुम पिघले नही- "शख करता आ रहा था युगो से आक्रान्द। तुम न पिघले पड़ गयी आवाज उसकी मन्द/. अधेरे मे रहे लोग टटोल/ठोस हो या पोल ।"[47]

नागार्जुन ने कबीर की भॉति सत्य का साक्षात्कार किया है। इसीलिए इनकी कविता **'हाथ में लुकाठी लिए हुए'** आगे बढती रहती है। समता और समरसता का मात्र उपदेश

देने वाले साधु जनो के मन मे भेदभाव बना रहता है। वे धनी व्यक्ति का ही आतिथ्य ग्रहण करने मे गौरवान्वित होते है। ऐसे दिखावटी समतावाहक सन्तो को कवि धिक्कारते हुए कहता है- "हाय-हाय! साधुजन रखते है भेदभाव/सवर्ण अवर्ण मे/नर-नारी मे/प्रभु और दास मे/धिक-धिक शान्ति और समता के वाहक कहलाते है।"[48]

वस्तुत नागार्जुन दीन-दलितो के हृदय मे प्रविष्ट है। इसलिए उनकी कविताओ मे उनकी पीडा मार्मिक चित्र प्रस्तुत करती है। भूख को सबसे बडा धर्म और सबसे बडा देवता मानने वाले[49] नागार्जुन परम्पराओ और रूढ़ियो के खोखले मापदण्डों को तोडकर नूतन समाज की सर्जना करना चाहते है। इसीलिए वे "कल्पना के पुत्र हे भगवान" कविता मे कहते है-"खोलकर बन्धन मिटाकर नियति के आलेख/लिया मैने मुक्ति पथ को देख,नदी कर ली पार, उसके बाद/नाव को लेता चलूॅ क्यो पीठ पर मै लाद।"[50]

नागार्जुन भाग्य को पूॅजीवादी-व्यवस्था का ब्रह्मास्त्र मानकर उसे खण्ड-खण्ड कर देना चाहते है। 'लाल भवानी'[51] के माध्यम से क्रान्ति के 'अग्निबीज' बोने वाला कवि नागार्जुन 'आज मै बीज हूॅ'[52] के माध्यम से निर्भय होकर शोषण की बुनियादो को खोदने के लिए फिरकाबन्दी, जातिवाद के भूत को झाडने[53] के लिए तथा निविड विषमता को मिटाने के लिए नवयुवको के हाथ मे क्रान्ति की मशाल को अर्पित करते है- "लो मशाल अब घर-घर को आलोकित कर दो/तुम किशोर तुम तरूण ।" तरूणाई को वे हथियार सौपते हैं, जो मॅहगााई आदि बुराइयो के टैक को नष्ट कर दे ("क्षुधा-अशिक्षा-रोग-रूढि का पल्टन का जो कर डाले सहार/मॉग रही तरूणाई वो हथियार")[54] वे क्रान्ति द्वारा नये समाज की सर्जना करने वालों को अपना चुम्बन समर्पित करते है।[55]

सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक चेतना को नया रूप देने वाले नागार्जुन की कविता प्राकृतिक-सौन्दर्य के माध्यम से जन-सामान्य की सवेदनाओ को बड़ी कुशलता से अभिव्यक्त करती है। यद्यपि इनके प्राकृतिक-सौन्दर्य में एक अद्भुत बाह्य-रूप देखने को

मिलता है किन्तु उसकी आन्तरिक सवेदना जीवन की उस सच्चाई को द्योतित करती है, जिसे साधारण कवि सोच भी नहीं सकता है। नागार्जुन की कविता के पर्वत, नदी, विटप, धूप, चॉदनी, सूरज, खेत-खलिहान आदि प्राकृतिक रूप जीवन की विषम जटिलताओ को व्यञ्जित करते है। "बसन्त की अगवानी" कविता बसन्त के सौन्दर्य को बताती हुई (रग बिरगी-खिली-अधखिली/किसिम-किसिम की गन्धो वाली ये मजरियॉ/तरूण आम की डाल-डाल टहनी-टहनी पर/झूम रही/चूम रही-कुसुमाकर को)- यह अभिव्यक्त करती है कि जब क्रान्ति के द्वारा नया परिवर्तन होगा तब मञ्जरिया (दीन-दलित जनों की सासे) कुसुमाकर (जीवन के सुख) को चूम कर झूम उठेगी।[56] पकडी का विटप (दलित-शोषित जन) हरे-हरे पत्रो (सुख प्राप्ति की प्रसन्नता) से अपने को छिपा लेता है। उसके नगे बदन पर सुन्दर हरित वसन सुशोभित होने लगता है ।[57]

नागार्जुन की 'पीपल के पीले पत्ते' कविता पूँजीवादी-व्यवस्था की प्रतीक है। इसीलिए उसके पतन को अपनी ऑखो से देखकर वे प्रसन्न होते है- "आज गिरो कल गिरो कि परसो/तुम को तो अब गिरना ही है ।" इन पत्तो के गिरने पर उसमे निकलने वाले लाल-लाल लहलहाते पत्ते उन्हे सुन्दर लगते है। नागार्जुन के ये लाल-लाल पत्ते क्रान्ति के अङ्गारे हैं, जब इनका प्रादुर्भाव होता है तब रात भी सुनहली हो जाती है। चॉद की किरणे भी इनका अभिषेक करने लगती है।[58] इन पत्तो पर फिसलती हुई चॉदनी नालियों के भीगे हुए पेट (दीन-जनो) पर, बोतल के टुकडो पर (उपेक्षित जनो पर) ऑगन और दूबों पर नृत्य करती रहती है।[59] इसलिए कवि पीपल के पीले पत्ते (पूँजीवाद) से कहता है कि इन नये पत्तों (दीन, उपेक्षित-दलितो) को बढने का वरदान दो। तुम राह रोककर खडे मत होओ ।[60]

'नंगे तरू है नगी डालें' कविता प्राकृतिक वर्णन के माध्यम से दीन-दलित और शोषित जनों की व्यथा को अभिव्यक्त करती है। 'पतझर' पूँजीवादी व्यवस्था का क्रूर प्रहार

है जो उसे नगा रहने को मजबूर कर देता है। इसलिए कवि कहता है – ''अब भी तो पतझर थक जाये/इनका नगापन ढॅक जाए/हरियाली इन पर झुक जाये/नग्न-नृत्य अब भी रूक जाये।''[61]

'बादल को घिरते देखा है' शीर्षक कविता अत्यन्त प्रभावोत्पादक है। कवि ने बादल के सुन्दर रूप को बडी कुशलता से वर्णित किया है –

''मैंने तो भीषण जोडो मे/नभचुम्बी कैलाश शीर्ष पर/महादेव के झझानिल से/ गरज-गरज भिडते देखा है।''[62]

कवि का बादल भीषण जाडा, गगन-चुम्बी कैलाश-शिखर आदि की परवाह किये बिना ही झझानिल से गरज-गरज कर भिड रहा है। इनका बादल क्रान्तिकारी है। इसलिए मानसरोवर के स्वर्णिम कमलो (पूॅजीवादी व्यवस्था के ऐश्वर्य) पर बिना रोक-टोक के उनको ध्वस्त करने के लिए उन पर गिरता रहता है। कवि यह सम्भावना व्यक्त करता है कि पूॅजीवाद (ऐश्वर्य) की प्रतिरूप अलकापुरी और कुबेर आदि के गगन चुम्बी प्रसाद इसी बादल के बरसने से ध्वस्त हो गये हैं – ''कहॉ गया धनपति कुबेर वह/कहॉ गयी उसकी वह अलका कौन बताए वह छायामय/बरस पडा होगा न यहीं पर . ।[63]

नागार्जुन के बादल के पौरूष में शैत्य भाव अन्तर्निहित है शैत्य मानसरोवर के कमलों (पूॅंजीवाद) को विनष्ट करने में सक्षम है।[64] कवि का 'हेमन्ती बादल' बरफ का गोला बरसाता है।[65] इसीलिए इसकी आगवानी में न दादुर बोलता है, न कोयलें कूंक मारती है। चातक और मोर भी मौन रहते हैं।[66] नागार्जुन जैसा कवि ही 'जय हे कीचड़' के माध्यम से जीवन के सत्य को बडी बारीकी से अभिव्यक्त कर सकता है- ''टॉंगे गल जायेंगी/सरिता के कछार में/पंक ही पंक है/धॅसना ही पड़ेगा।''[67]

'रजनी गंधा' कवि नागार्जुन के जेल-जीवन की सजनी (सखि) है। वस्तुतः 'रजनीगंधा' दुःखी जीवन को सुरभित करने वाली कविता है। कवि की दृष्टि में यह

रजनीगधा अभिशापित देव सुता या परी है जो भू पर रजनीगधा बनकर उतरी है। यह दिन (सुखीजनो) को देखकर मौन हो जाती है और रात्रि (दु खीजनो) को देखकर उनके हृदय को आनन्दित करने के लिए अपने को निचोड डालती है। इसलिए कवि कामना करता है कि तुम रात की रानी रजनी गधा खिलती रहो।[68] कवि की 'नीम की दो टहनियाँ' सीखचो के पार देखती रहती है कि उसे कब शिशिर की दुपहरी की कपूरी धूप मिल पायेगी।[69] 'तना है बितान' कविता वर्षा के नादात्मक सौन्दर्य के साथ-साथ किसानो की प्रसन्नता को अभिव्यक्त करती है।[70] बादलों का घिराव कवि के मन को गुदगुदा देता है[71] और धरती के हृदय को धोने वाले बादल के जल से उत्पन्न होने वाला कीचड कवि को हरिचन्दन लगता है[72] क्योकि इसी पक से अमित बीज अकुरित होकर जीवन को प्राण देते रहते है।

नागार्जुन की कविताओ मे मिथिला का जीवन, वहाँ की मिट्टी की सोधी-सोधी गन्ध, वहाँ की अपनी अनूठी सस्कृति, आचार-विचार की सहज शैली, वहाँ की रीति-परम्पराएं आदि अद्भुत ढग से पिरोयी हुई है। गॉव की मिट्टी से जुडा हुआ कवि सुबह-सुबह गॉव के तालाब के दो फेरे लगाता है, नगे-पॉव, भीजी हुई दूबो पर चहल-कदमी करता है तथा अधसूखी पत्तियो का कौडा-तापते हुए आम के कच्चे पत्तो का जलता कड़ुआ कसैला सौरभ लेता है। इसके साथ-साथ गवॅई अलाव के घेरे में बैठने और बतियाने का सुख लेता है (सुबह-सुबह/गँवई अलाव के निकट/घेरे में बैठने बतियाने का सुख लूटा/सुबह-सुबह/आचलिक बोलियों का मिक्सचर/कानो को उनकी इन कटोरियों मे भरकर लौटा)।[73] पकी सुनहली फसलों की मुसकान देखना, धान कूटती हुई किशोरियों की कोकिल कण्ठी तान सुनना, मौलसिरी के ताजे टटके फूलो की सुरभि को भरकर सूँघना, गवॅई पगडण्डी की चन्दनवर्णी धूल का स्पर्श करना, जी भर गन्ना चूसना, तथा ताल-मखाना खाना,[74] लोक जीवन से जुडे हुए नागार्जुन जैसे कवि के लिए ही

सम्भव है। इस कविता मे कवि की गध, रूप, रस, शब्द और स्पर्शात्मक सवेदनाए अभिव्यक्त हुई। इन सवेदनाओ मे ग्रामीण जन-जीवन की मार्मिक कहानी अन्तर्भूत है।

लोक जीवन मे भाभी-देवर के बीच होने वाले हास-परिहास का चित्रण नागार्जुन ने बडी कुशलता से किया है। पुजारिन भाभी अपने देवर से कहती है कि तुम्हे छिनाल पुरवइया छेडती रहेगी। इकलौती बिटिया वाले बाप की भॉति बादल तुम पर झुका रहेगा।[75] प्रगतिशील कवि नागार्जुन लोक-परम्पराओ से मुक्त नहीं हो पाते है। अपनी पत्नी से दूर रहने पर सदैव उनका 'सिन्दूर तिलकित भाल' याद आता रहता है।[76] भारतीय पतिव्रता नारी के इस रूप को चित्रित करने मे कवि अत्यन्त सफल रहे है। राम के माध्यम से कवि एक पत्नी-व्रत का आदर्श स्थापित करते हुए कहते है-

"नहीं करेगा वह दूसरा विवाह/सदा रहेगा एक पत्नीव्रत शील/चरणो पर जो नाना दिग्देशीय/अर्पित होगे शत- शत सुन्दर फूल/अनाघ्रात अस्पष्ट सहज कमनीय/नहीं करेगा राघव उनका स्पर्श।"[77]

नागार्जुन ने एक ओर भारतीय परम्परा के उदात्त-रूपो गुरू-भक्ति, पुत्रोचित परिचर्या, पति-सुलभ प्रीति, मातृ-ममता आदि आदर्शो को उपस्थित कर उनमे अपनी आस्था व्यक्त की है-

"प्रतीक्षातुर नयनो के स्निग्ध-तरल प्रक्षेपण/शिष्योचित श्रद्धा-भक्ति/पुत्रोचित परिचर्या/पति सुलभ प्रीति/मातृ सुलभ ममता/पितृ सुलभ परिपोषण/चाहती आयी है सदा से धरती।"[78] (धरती)- वहीं दूसरी ओर 'जयति नखरजिनी', 'विज्ञान-सुन्दरी', 'प्लीज एक्सक्यूज मी' आदि के माध्यम से पश्चिमी सभ्यता का उपहास किया है। "छींक मार कर करो न असगुन" को स्वीकार करने वाले नागार्जुन के मन मे कहीं न कहीं कर्म-फल-भोग की बात छिपी है तभी वे कहते है- मै मिथिला को प्रणाम करके सुप्त सृष्टि को जगाने के लिए अन्यत्र जा रहा हूँ। मेरे वृद्ध पिता अपने कर्म-फल को भोगे--

"कर्मक फल भोगनु बूढ बाप,

हमरा सतति, हे हुनक पाप"।[79](अन्तिम प्रणाम)

नागार्जुन वस्तुत यात्री कवि है। किसी एक विचारधारा में उन्होने अपने को बॉधना नहीं चाहा। अपने विवेक को कभी बन्दी नहीं बनाया, अपनी प्रतिभा को कभी किसी मूल्य पर बेचा नहीं। वे एक ओर पतन की ओर ले जाने वाली धार्मिक रूढियो का विरोध करते रहे, तो दूसरी ओर परम्पराओ की अच्छाइयो के स्वीकार करने मे सकोच का परित्याग करते रहे।[80] भारतीयो की माता लक्ष्मी की निन्दा करने वाले[81] नागार्जुन की भिक्षुणी हीनयान-महायान के बधनो से मुक्ति प्राप्त कर सहजयान (मातृत्व-सुख) चाहती है। मानवीय आकाक्षाओ की लहलहाती लताओ पर करकापात करने वाले सघ के नियमो को तोडकर वह सहज मानवीय जीवन जीना चाहती है ।[82]

वस्तुत नागार्जुन मानवतावादी चितन के स्वनामधन्य कवि है। इनकी दृष्टि व्यापक है। इनके मन में दीन-दु खी दलित शोषित मजदूरो के प्रति असह्य पीडा है।[83] इनकी कविता इसी वेदना के हृदय से प्रस्फुटित हुई है। इनकी 'गुलाबी चूडियो' का वात्सल्य 'सिन्दूर तिलकित भाल' की रति की परिणति का फल है। अग्निबीज से उत्पन्न होने वाले तथा 'नगे तरू नगी डालो' के समान जीवन व्यतीत करने वाले, 'खुरदरे पैरो' से प्रेम करने नागार्जुन सच्चे अर्थों में लोक जीवन मे रमे हुए कवि है ।

केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं मे लोक-संवेदना-

साठ वर्ष की अवस्था मे "गॉव अब भी मुझे बुलाता है। रेडियो की तरह बज उठता हूॅ मैं/उसकी पुकार पर/लेकिन जा नहीं पाता/पेट में कैद हूॅ"[1]-- की उद्घोषणा करने वाले कवि केदारनाथ अग्रवाल गॉव की मिट्टी मे जन्म लेकर उसी की मैली, सोधी, रूखी और दुलारभरी सुगन्ध में पल-पोषकर बडे हुए हैं। शहर में वकालत के पेशे से जुड़े[2] केदारनाथ ने दुःख की नदी में आकण्ठ डूबकर, दु ख को पीते हुए आदमी के लिए

आदमी की तरह, आदमी के साथ जीना सीखा है।[3] जीवन-पर्यन्त देवदार की भॉति चरित्र पर खडे हुए दु खो को झेलकर भी आदमी को ढूढते रहे।[4] स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद उन्हे आशा थी कि हमारी शासन व्यवस्था शोषको के सिहासन को डिगाकर[5] आम जनता के अनादिकालीन दु खो को दूर करेगी। स्वतन्त्र भारत मे शोषण का अन्त हो जाने से आम आदमी, जिनका जीवन पशु से भी हेय है,[6] आदमी की भॉति स्वतत्रता की सॉस लेगे। किन्तु थैलीशाहो (पूजी पतियो या शासको) की बिल्ली (नौकरशाही) मजदूरो का खाना-दाना सब चोरी से खाती रही है। बेचारे मजदूर भूखे ही सोते रहे है। इतना ही नहीं, पूजीवादी शासन के कुत्ते (तथाकथित सेवक या गुण्डे) मजदूरो की बोटी-बोटी को खून बहाकर खाते रहे है और वह (मजदूर) तडपता रहा है। उसकी आह को केदारनाथ के अतिरिक्त कौन सुनने और देखने वाला है।[7] शाोषक के शोषण से देश की छाती को दरकते हुए देखने वाले कवि ने देश के खाद्य-मन्त्री को भुखमरी को जन्म देने के लिए शूल बोते हुए देखा है। इतना ही नहीं, क्रान्तिकारी लेखनी को जेल जाते हुए[8] देखकर शोषकों को ललकारते हुए कहा है-"झूठ तुम्हारा चल न सकेगा/ . सत्य हमारा वह सूरज है/ जो दिल से बाहर निकलेगा/ तेज उजाले (क्रान्ति) की ठोकर से झूठ तुम्हारा ढह बिखरेगा/ जनता के पैरो के नीचे/ वह जल्दी ही राख बनेगा/ फौजी वर्दी त्यागे रिजवे/रोता अपने हाथ मलेगा।"[9]

केदारनाथ अग्रवाल को दृढ विश्वास है- "जहॅ लग नेताराज है/तहॅ लग बटाधार/ पूजीपति की गोद में खेल रही सरकार।"[10] अग्रेजों की खून भरी दरी को बिछाकर छतरी ताने हुए नेता (आज के शासक) पसरकर बैठे हुए हैं। ये नेता कवि के शब्दो मे निम्नलिखित यथार्थ को उपस्थित करते हैं- "बेकारी दिनरात बढावे/पेटो पर जो गाज गिरावे/खेतों पर जो टैक्स लगावे/ .. .ऐसे बगुला को धिक्कार।"[11]

वस्तुत. केदारनाथ जैसा सवेदनशील कवि पूजीवादी व्यवस्था से अत्यन्त दु खी है।

उनके मन मे शोषित जनो के प्रति असीम प्यार है। 'पुतलीघर' शीर्षक कविता ने श्रमिकों के उस फटे-हाल शोषित जीवन को अभिव्यक्त किया है जिसने सबको जीवन का सर्वस्व दान देकर भी नौकर की भॉति अपने जीवन को सॅजो रखा है। ऐसे ही श्रमिको के प्रति इनकी वेदना शोषको को ललकारते हुए कहती है कि एक हथौडा वाला (क्रान्ति करने वाला) का जन्म और हो गया, वह हाथी से बलवान और सूरज सा इसान है, जो अधेरे को हरने मे सक्षम है। उसी से सबेरा होगा और वही कुशासन पर कयामत ढाह कर आम-जनता का कल्याण करने वाला है।[12] कवि का यह आक्रोश उनकी सवेदनशीलता को द्योतित करता है।

जिन किसानो और अपने रक्त की एक-एक बूॅद से भारत का निर्माण करने वाले श्रमिको की छाती पर बैठकर पूॅजीवादी व्यवस्था के पोषक, आज के शासक डायर की वर्दी पहनकर हिसा का नग्न ताण्डव कर रहे है, अग्रजी पिस्तौल चलाकर रक्त की नदी बहा रहे है, जिनकी ताना-शाही गोद में गगा-यमुना की धाराए तडप रही है,[13] जिनका- स्वधर्म हो गया है "वतन को बेचना/ऊपर की आमदनी का पैसा खाना/ज्यादा से ज्यादा नाजायज कमाना/तरह और तरतीब से पकड मे न आना,"[14] जिनका कानून अधा है, जो उसकी शरण मे जाता है उसी पर वह अत्याचार करता है- ऐसे अत्याचारियो की खाल उधेडने वाले केदारनाथ श्रमिको को बन्धन मुक्त करने के लिए चेतना और नूतन प्रेरणा देने में गौरव की अनुभूति करते है। वे किसानो की जिन्दगी, उनका खून, उनका कर्म बनकर उन्हें नये जीवन को जीने के लिए उत्साहित करते हैं।[15] उनके जैसा सजग कवि ही जानता है कि- "पूॅजीवादी जनतन्त्र के/व्यापक प्रचार और प्रसार मे/सामाजिक न्याय पाने की/पूरी प्रक्रिया जटिल है। आम-आदमी के लिए तो यह और भी/और भी/क्रूर और कुटिल है।"[16] अत· पूॅजीवादी व्यवस्था के पोषक शासको की रामराज्य लाने की प्रतिज्ञा झूठी है। जिस शासन में गरीबों की चमडी से बनी हुई अमीरों की ढोल अनवरत

बजती रहती है और शोषित-पीडित जनो की थाली अन्न के बिना सूनी है, उसके हाथ की सूखी रोटी भी छीन ली जा रही है,[17] वहाँ 'रामराज्य' की चर्चा भी छलावा है।

जिस शासन-व्यवस्था मे गरीबो का कौर छीना जा रहा हो, उसमे गरीबो को न्यायाधीशो से पैसे पर बिकने वाला न्याय कैसे मिल सकता है? न्याय का हस जैसा नीर-क्षीर विवेकत्व नष्ट हो चुका है। पूँजीवादी-व्यवस्था सच को झूठ और झूठ को सच बनाने में माहिर है।[18] इसीलिए प्रधानमत्री के जन्मदिन के अवसर पर चौबीस हरिजनो की हत्या हो जाना साधारण सी घटना है। जनतत्र की जनता की ऑखो से भले ही अश्रु की अजस्र धारा बह रही हो,[19] भले ही देश की देह रक्त रञ्जित हो रही हो, भले ही प्राणहर आदमियो के वेश मे जानलेवा जानवर छुट्टा घूम रहे हो और अपने मार-तन्त्र से सिपाही जनता को भले ही मिटा रही हो,[20] किन्तु- "रोशनी मे नहाए/लिबास मे लपलपाये/हजारों की सम्पत्ति हथियाये/ठहरे आदमी/ यथावत् ठहरे है-- इनकी महामाया के बडे मारू नखरे है"।[21] इस देश की यथास्थिति मे किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो रहा है। और ये शोषक नेता चॉदी सोने के जूते मे खीर पका रहे है।[22]

केदारनाथ ने १६४८ मे ही जिस अमेरिकी साम्राज्यवाद के खतरे के प्रति भारतीय जनता को सावधान किया था- "यहॉ हमारी जन्मभूमि पर यदि आयेगा डालर/ वह अपने साम्राज्यवाद के घोर नशे मे/भारतीय पूँजीपतियो से साठ-गॉठ कर/क्रय दिल्ली की राजनीति को कर लेगा"[23]-- वह आज ऑखो के सामने अपना नग्न नृत्य कर रहा है। उन्हें विश्वास है कि वियतनाम की भॉति ही डालर की हत्या कर दी जायेगी।[24] सन् १६५५ ई० की लिखी हुई कविता आज की शासन व्यवस्था का सही चित्र प्रस्तुत करती हुई- ऊपर काला भीतर काला/सरकारी शासन का पाला/काले हाथी सा मतवाला/करता है यह खूब घोटाला"[25] उसे समूल नष्ट करने के लिए बजते हुए क्रान्ति के बिगुल के स्वर को अति प्रसन्न मुद्रा में सुनती है।[26]

केदारनाथ ने अपने वकालत पेशा मे किसानो,दलितो एव श्रमिको के जीवन को अत्यन्त निकट से देखा है। शहर का जीवन जीते हुए भी इनकी आत्मा गॉव की मिट्टी मे ही बसती रही । इनकी ऑखे उन श्रमिको को, जो कॉखते-हॉफते और मिट्टी को ढोते हुए गदी आबादी के नाले को पाटता रहता है[27]तथा उन किसानो को--जो'पैनी कुर्सी खेत के भीतर/दूर कलेजे तक ले जाकर/जोत डालता है मिट्टी को[28] देखकर गीली हो जाती हैं । इसीलिए वे मुक्त कण्ठ से कहते है कि -"यह धरती है उस किसान की/जो बैलो के कधे पर बरसात घाम मे/जुआ भाग्य का रख देता है/ खून चाटती हुई वायु मे---जो मिट्टी के सग-साथ ही/तपकर/गलकर/जीकर/मरकर/खपा रहा है जीवन अपना/देख रहा है मिट्टी मे सोने का सपना ---अपने तन की खाद मिला/मिट्टी को जीवित रखता है ।"[29]

दिन भर कडी मेहनत कर अपनी हड्डी को पीसते हुए मजदूर रोटी के लिए कुत्तों से भी बदतर जिन्दगी जीने को बाध्य है -"रोटी के टुकडो को दॉत से काटते/भाजते है बरतन/नगी ही धरती पर सोते है/कॉखते हॉफते/रोज की बदबू में सडते है दुनियॉ की।"[30] श्रमजीवी पूजी के रूप मे अपने बेटे को 'टूटी खटिया', 'टूटी कुटिया', 'लोहे का तसला' और 'बहुतायत चिथडे' के अलावा कुछ भी नहीं दे पाता।[31] केदार की ऑखे- जोखू के बाजी हार जाने से दुःखी है, चन्दू को चना चबैना खाते देखकर गीली है, उसके फटे वस्त्र[32] को देखकर अन्यायियो पर क्रोधाग्नि बरसाती है व दीन दुःखी का कुनबा, जो जाडे में थर-थर कॉप रहा है-को देखकर अपनी सवेदना की अग्नि से उसे गर्म करने का प्रयास करती है । वस्तुत: कवि की लेखनी उस संवेदनशीलता की गहरी अनुभूति कराती है जिसकी गोद मे सम्पूर्ण दीन-दुखियो को समेट लेने की क्षमता है।

कवि यद्यपि देख रहा है कि शोषितो का दुःख दिन-प्रतिदिन बढता जा रहा है फिर

भी वह निराश नहीं है क्योकि वह जानता है कि उन दीन-दुखियो तथा श्रमिक किसानो का असन्तोष जब भडक उठेगा तब क्रान्ति-ध्वज फहरेगा।[33] उनकी दृष्टि मे जनता कभी नहीं मरती है सभी राष्ट्र मे शोषको की ही मृत्यु होती है । जब शोषित जनता को अपने व देश के दर्द की पहचान हो जायेगी तब वह शेर की भॉति झपट कर शोषको के सहित उसके जंगली जनतन्त्र और आदमी को मारने का चौमुखी षडयन्त्र नष्ट कर देगा।[34] इसीलिए वे 'मार हथौडा कर कर चोट' की बज्रमयी लेखनी से अत्याचारी के अत्याचार को ध्वस्त करने की प्रेरणा देते है।[35] शोषको के हृदय रूपी पत्थर-जिसकी न कोई ऑख है, न कान है, न पानी में तैरने की क्षमता है और हाथ-पॉव से जो विरक्त है- पर लोहा मारने की प्रेरणा देते है।[36] वे क्रान्तिकारियो से हार न मानकर जीने के लिए उत्साहित करते रहते है-"हार न मानो/और न हारो/जीना जानो/यह जीवन की आन हमारी शान है/और हमारे भुजबीरो की प्राण है "।[37]

कवि केदार यह स्वीकार करते हैं कि साधारण जनता की दुर्दशा का कारण स्वय जनता है जो धर्म, कुरीतियों, अधविश्वासों और नियति के चक्रव्यूह में फॅसकर उससे निकलने का प्रयास ही नहीं करती है । 'धर्म और नियति' जिसकी ऑखे बन गयी हो वह अपने सुनहले भाग्य के द्वार को अपने पौरूष से कैसे खोल सकता है । वे समाज की सड़ी गली व्यवस्थाओ, जिसका आधार एक आडम्बरपूर्ण भाग्य का छलावा है- से क्षुब्ध हैं। वे सभी को तोडकर कर्म करने की प्रेरणा देते है । वे यह मानते है कि भगवान के ढोंगी भक्त अधिक पाप करते हैं।[38] केदार मनुष्यता के कवि हैं । उनकी अभिलाषा मात्र मनुष्य बनने की है, देवत्व प्राप्त करना उन्हे प्रिय नहीं है। उनका कवि कर्म मनुष्य बनने और मनुष्य बनाने के लिए ही है।[39] उन्हे दुःख है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद शासकों के द्वारा जनता में धर्म निरपेक्ष, जनतांत्रिक एवं वैज्ञानिक मूल्यों के विकास का प्रयास नहीं किया गया । इसीलिए उन्होंने अपनी रचनाओं में बार-बार पारलौकिक मूल्यों के स्थान

पर तर्कसगत और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को स्थापित करते हुए इस लोक को और ईश्वर के स्थान पर मनुष्य को प्रतिष्ठित किया।[40] धर्मशाला, घाट, मन्दिर और मस्जिद आदि के निर्माण का सबसे बडा सत्य यह है कि ये सब श्रमजीवी की उस हड्डी पर टिके हुए है जिसे सभ्य-आदमी के समाज ने टेढी करके मोड दिया है ।[41]

भूखोद्धार के मन्त्रोच्चार को सुनने वाले[42] केदारनाथ अग्रवाल प्रत्येक वर्ष होने वाली रामलीला पर प्रहार करते हुए कहते है- "लीला के बाद/रामलीला के राम/जगली जनतन्त्र मे/रावण का रोल अदा करते है/दूसरो की सम्पदा हरते है।"[43] इसीलिए वे धर्म के पाखण्ड पर विश्वास नहीं करते है । वे धर्म और कर्मफल (भाग्य) पर विश्वास न कर अपनी उस कलम पर विश्वास करते है, जो जनता के स्वर को गाती रहती है।[44] धर्मान्ध जनता केवल पापकारी धर्मोत्सव को देखती हुई भीड मे अपने अस्तित्व को खोती जाती है और वह अपने हाथों से ही अपना विनाश करती है।[45] जिस जनतान्त्रिक देश मे अपकर्म के द्वारा ज्यादा से ज्यादा नाजायज कमाना ही अपना धर्म हो गया हो[46] उसके मन्दिरो में देवियों के दर्शन कैसे हो सकते है । इनके दर्शन दुकानो और नाचगानो में होते हैं- "मदिरों में नहीं/देवियो के दर्शन/दुकानो मे होते है/नाचगाने में होते है ।"[47]

कवि केदारनाथ अग्रवाल जाति प्रथा के हलाहल को स्वय पीकर निर्मल समाज की रचना करना चाहते हैं । प्राचीन काल से चली आने वाली दुर्वह सामाजिक बुराई जाति प्रथा समाज को ही नहीं वरन् देश के विकास को विनष्ट कर रही है । उन्हें केवल प्रेम था तो बस आदमी से । हरिजनों की हत्या पर दु:खी होने वाले केदारनाथ पुरातन सस्कारों की जकड़बन्दी से मुक्त समाज की स्थापना करना चाहते है । इसलिए वे समाज का पूर्ण बदलाव चाहते हैं- "बडे सक्रामक हैं/साम्पतिक सम्बन्धों के/पुरातन संस्कार/टूटते-टूटते भी नहीं टूट पा रही/शताब्दियों की जकड़बन्दी/सम्पूर्ण बदलाव के बिना/स्थापित नहीं हो सकता सार्थक नवीन ।"[48] उन्होंने बडी ही बारीकी से पुनर्जन्मवाद

और जाति प्रथा पर प्रहार करते हुए कहा है कि इस देश मे जिनका जन्म दो बार होता है वे द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य), एक बार जन्म लेने वाले शूद्रो जो शोषित और दलित है- पर अत्याचार करते रहते है।[49] इसलिए पुनर्जन्म व जातिवाद कोरी बकवास है । इस जातिवाद के पहाड को काटे बिना जनतन्त्र की सडक उस पर (शासक तक) नहीं जा सकती और न ही अपना अधिकार प्राप्त कर सकती है ।[50]

इसी प्रकार भारतवर्ष मे रहने वाले विभिन्न सम्प्रदाओ मे विशेषकर हिन्दू और मुसलमान के परस्पर के विद्वेष से वे अत्यन्त खिन्न रहते है । उनके द्वेष की अग्नि मे पेट्रोल डालने वाले आज के तथाकथित देशभक्त राजनेता है, जिन्हे सिहासन ने धृतराष्ट्र बना दिया है । केदारनाथ अपनी कविता "भारत मॉ का गीत" मे साम्प्रदायिकता के विरूद्ध प्रभावकारी आवाज उठाते हुए भारतमाता के स्वर मे कहते है कि हिन्दू और मुसलमान मे मेरा ही रक्त बहता है । इसीलिए जब तुम एक दूसरे का खून करते हो, तो मेरा ही खून बहता है ।[51]

कर्मवादी केदार अधविश्वासो पर भरोसा नहीं करते है । वे भगवान से वरदान प्राप्ति पर विश्वास न कर अपने बुद्धि-विवेक पर ही विश्वास करते हैं- "वर मागत भगवान से/काम न मति से लेत--- जनता विलयै बावरी/काम न आवे राम।"[52] 'यश अपयश विधि हाथ है'- के अन्धविश्वास पर प्रहार करते हुए कहते हैं कि इसी अनैतिक विश्वास ने सेठ महाजन और चोरो की वृद्धि कर दी है ।[53]

केदार की कविताए एक ओर भ्रष्ट शासन की विद्रूपताओं पर आग उगलती हुई सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पतन के कारणों का चित्र प्रस्तुत करती है तो दूसरी ओर ग्रामीण जीवन के उन्मुक्त वातावरण में सास लेती हुई ग्राम्य-प्रकृति-के-सहज रूप मे अपने को अन्तर्भूत करती हुई उसके विभिन्न रूपों की मार्मिक सवदनाओं के माध्यम से मानव हित के लिए-उन्मुक्त कण्ठ से गीत गाती हुई दिखाई देती है । ग्रामीण सस्कृति के

प्रत्येक रूप पर इनकी कविता कामिनी अपना सर्वस्व लुटा देती है । इनकी कविता अनार का फूल बनकर लहलहाना ही नहीं चाहती है वरन् क्रान्ति का अग्नि पुञ्ज बनकर अन्याय के शासन को ध्वस्त कर दलितो का उद्धार करना चाहती है -"मेरे भाई अनार/देता तुम्हारी तरह मै भी/लपट मारती कविताओ के फूल/क्रान्तिकारी फूल ।"[54]

केदार का प्रकृति-वर्णन मात्र वर्णन ही नहीं है, वरन् जीवन की गुह्यतम व्याख्या है । अनादिकाल से मानव-मन प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करता हुआ उसके विभिन्न रूपो का विभिन्न प्रकार से वर्णन करता हुआ चला आ रहा है, किन्तु उसे अपने बौद्धिक मापदण्ड से नाप नहीं पाता है, क्योंकि ये प्राकृतिक उपादान- वृक्ष आदि मानव के अग्रज तथा पृथ्वी के वशज है।[55] यह हाथ फल और फूल लेकर अपने अनुजों का मनुहार करते रहते हैं । पाषाण-खण्ड भी उन पर बैठी हुई चिडियो के द्वारा मधुर रस उडेलते हुए[56] पत्थर हृदयवाले मानव को सद्भाव का सदेश देते है । मानव के कुकृत्यों को देखकर उदास, सोयी हुई नदी के पानी के दर्पण को बादल का वस्त्र जब आच्छादित कर लेता है[57] तब केदार जैसा सवेदनशील कवि भी उसे नहीं जगा पाता है क्योकि दु खी व्यक्ति की पीडा को उद्वेलित करना अमानवीय व्यवहार है ।

कवि केदार प्राकृतिक सौन्दर्य में श्रामशील किसानो के अनुपम श्रम-सौन्दर्य का दर्शन करते हैं । उनका हरा ठिगना चना का पौधा गुलाबी फूल (क्रान्ति) का मुरैठा सिर पर बॉधे हुए सजधज कर सामाजिक परिवर्तन के लिए खड़ा है।[58] अगणित संख्या मे गेहूँ का पौधा लहराता हुआ क्रान्तिकारी लाल फौज के समान नुकीले भाले ताने खडा होकर अजेय तथा समर्पित सामूहिक शक्ति को द्योतित कर रहा है -

"लाखों की अगणित संख्या में/ऊँचा गेहूँ डटा खडा है/

ताकत से मुट्ठी बॉधे है/नोकीले भाले ताने हैं

हिम्मतवाली लाल फौज सा/ मर मिटने को झूम रहा है ।"[59]

वस्तुत केदारनाथ की दृष्टि मे प्रकृति एक जीवित समाज है, जिसका अनुपम सौन्दर्य, उदात्त साहसिक रूप तथा जीवन्त पथ-प्रदर्शन मानव के लिए प्रेरणा-स्त्रोत है । केदार की लेखनी के सस्पर्श से बुन्देलखण्ड का जीवन-सगीत, केन नदी का अविस्मरणीय कूल, श्रम की पूँजी को समेटे हुए खेतो की मेड, लहलहाते हुए धान के हरित खेत, गरीबो की जिन्दगी के समान सपाट मैदान, शोषितो की आशाओ के समान शीघ्र ही लुढक जाने वाले ओस-कण, सरकारी अनुदान के तुल्य बहने वाली फागुनी हवा, किसानो के कठोर श्रम के सरिस सूर्य का जीवनदायी रूप और चहकने वाले पक्षियो, किसानो, पथिको, श्रमिको और गृह-विहीन के आश्रयदाता वृक्ष आदि सचमुच प्राणवान हो उठे है । केदार को देश की धरती से असीम प्रेम है । अवध सीमान्त की धरित्री में उनके प्राण बसते है तभी वे कह उठते है-

"मर जाऊँगा तब भी तुमसे दूर नहीं मै हो पाऊँगा ।

मेरे देश तुम्हारी छाती की मिट्‌टी मै हो जाऊँगा ।"[60]

नीरस, हृदयहीन शहर मे रहते हुए भी उनका हृदय गॉव की स्नेहिल मिट्‌टी मे लोट-पोट करने के लिए व्याकुल रहता है । क्योकि व्यापारिक नगर से गॉव की प्रेममयी भूमि अधिक उपजाऊ है, जहॉ की धरती भीतर से आर्द्र और ऊपर से हरी साडियो में लिपटी सबका बिना भेद-भाव के स्वागत करती रहती है । वहॉ के वृक्ष, पक्षी सभी उन्मुक्त भाव से अपना हृदय खोलकर उसमे बैठने का अवसर प्रदान करते है । इसीलिए वे कह उठते है- "मन होता है-/उड जाऊॅ मै/पर फैलाए सारस के सग/जहॉ जुगल जोड़ी रहती है / हरे खेत में/सच्ची प्रेम कहानी सुन लूँ/चुप्पे-चुप्पे ।"[61]

केदार जी वायवीय प्रेम के जाल मे फॅसने वाले कवि नहीं है । उनका प्रेम इसी धरती पर उपजने वाला सुघड और स्वस्थ सवेदना के साथ प्रकृति से लेकर पत्नी और पुत्र-पुत्री नाती-नातिन तक को अपने विशाल स्नेहाकाश से ढाल लेने वाला प्रेम है ।

वत्सल प्रेम-कवितायें और प्रकृति के प्रति प्रणय भाव से सराबोर प्रेम गीतो को भी पिरोया गया है ताकि प्रेम का एक व्यापक ससार रूपायित हो सके।[62] केदार की प्रकृति उनकी अपनी पत्नी है जिसके अड्ग-अड्ग से प्रस्रवित होने वाले रस प्रवाह मे आजीवन डूब डूबकर जिस 'जमुल जल' का सृजन उन्होने किया है वह मानवीय प्रकृति का वह भव्यतम रूप है जो सदा एक सा दिखायी पडता है और जिसमे डूबकर मनुष्य सब कुछ लुटाकर केवल अपरिमित आनन्द को प्राप्त करता है ।[63]

अधेरे को दूर करने के लिए अपनी आत्मा के दीप जलाने वाले[64] कवि का 'जमुन जल तुम' काव्य सग्रह भारतीय परम्परा की एक महत्वपूर्ण लड़ी -"एक पत्नीव्रत धारण करना'- को परिपुष्ट करता है । किन्तु वे सभी पुरानी परम्पराओ को ऑख-मूॅदकर नहीं स्वीकार करते । "रोज सुबह निकल रहा- देश और काल को बदल रहा"[65]-का गान करने वाले केदार की दृष्टि मे पुरातन की बाहो मे नूतनता का आलोक नहीं बॅध सकता है -

"नूतन का आलोक/पुरातन की बाहो मे नहीं बॅधेगा ।"[66]

केदारनाथ अग्रवाल ने कभी भी तर्कहीन एव विचारहीन जीवन को नहीं जिया है। वे कभी द्वन्द्वमय जीवन को झेलते हुए परमसत्ता मे लीन होकर मोक्ष प्राप्त करने पर विश्वास नहीं करते है। ये यही चाहते है कि ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जो समता, न्याय-प्रियता और समान अवसर देने की क्षमता रखती हो और आदमी को इस द्वन्द्व से मुक्त करने के लिए प्रतिबद्ध हो । ऐसी ही आत्मोन्नति करने की सामाजिक स्थिति में न धर्म-अधर्म की ओर जा सकेगा, न रूढियॉ होगी, न रक्त-रजित संसार होगा। न सैन्यवाद होगा, न सहार कर सकेगा। न न्यायालय अन्याय कर सकेगा और न व्यवसायिकता पूॅजीवाद को अपनाये हुए जन-जीवन की उपेक्षा कर सकेगा।[67] कवि केदार जीर्ण-शीर्ण पुरातन के नाश और नवनिर्माण, जो सृष्टि का शाश्वत नियम है- पर विश्वास करते हैं। इन्हें मानवीय मूल्यों को उजागर करने वाले सत्य और सौन्दर्य, द्वन्द्व, समर-सग्राम पर विजय प्राप्त कर

निर्द्वन्द जीवन जीना[68] प्रिय था ।

वस्तुत केदार की कविता प्रकृति, सामाजिक यथार्थ, प्राकृतिक-परिवेश और सात्त्विक-प्रणय की त्रिगुणात्मिका शक्ति से समाविष्ट है । इन तीनो का सम्बन्ध शाश्वत सत्य के निरूपण मे ही विलसित है । इन तीनो तत्वो के सारगर्भित रूप को अभिव्यक्त करने वाले केदारनाथ की भाषा सरल और हृदय-सवेद्य है । इसीलिए साधारण पाठक को भी उनके द्वारा अभिव्यक्त लोक-सवेदना की गगा की धारा मे विमज्जित होने मे आनन्द की अनुभूति होती है । केदार की कविता का आम-आदमी घर के बाहर कठोर कैथ वृक्ष के नीचे सिर फोड फल की प्राप्ति के लिए तथा कचोटती जिन्दगी बिताने के लिए खडा रहता है।[69] चेतना की सृष्टि करने वाला चिरायु कवि- जो मर्त्य होकर भी अमर्त्य बना हुआ है- वरजोर महाकाल को चुनौती देता हुआ समय को साधते हुए जिन्दगी को बॉधता है, अपने नेत्र मे सूर्य की आभा का अंजन लगाता है, ब्याल जैसे काल को चेतना से नापता है और द्वन्द्व मे निर्द्वन्द्व रहकर जागता रहता है।[70] इसी प्रकार का कवि उपेक्षित किसान, शोषित मजदूर और दलित जनो के प्रति अपनी सवेदना को उडेल सकता है । उनकी कविताऍ उन्हे स्फूर्ति प्रदान करती है, जो नया जीवन जीने के लिए, निम्नगामिनी यथास्थिति की धारा को खेतो के विकास के लिए मोड़ने के लिए, अधे-बहरे शासको के अत्याचार को समाप्त करने के लिए तथा टक्कर खाते हुए भी टक्कर देते हुए, बूझ और अबूझ की सीमाओं को तोडने के लिए कटिबद्ध है- "किरकिराती रेत को भी उर्वरा मै कर रहा हूँ-- और श्रमजीवी अकुरो को/मैं उगाता जा रहा हूँ/-- जो मरेंगे किन्तु जीकर भी लड़ेगे/मैं उन्हे ऊपर उठाते जा रहा हूँ ।"[71]

गॉव की मिट्टी से पैदा होने वाला कवि मर जाने के उपरान्त भी उससे दूर न होकर उसी में मिल जाना चाहता है । यहीं उसकी लोक-संवेदना की परिणति है -

"मर जाऊँगा तब भी तुमसे दूर नहीं मैं हो पाऊँगा ।

मेरे देश, तुम्हारी छाती की मिट्टी मै हो जाऊँगा ।

मिट्टी की नमी से निकला मै ब्रह्मा होकर जाऊँगा ।

गेहूँ की मुट्ठी बॉधे मै खेतो-खेतो छा जाऊँगा ।"72

त्रिलोचन की कविताओं में लोक-संवेदना :-

आजीवन अभावो के प्रचण्ड अनल मे तपते रहने वाले तथा लोक-जीवन से अपनी ऊर्जा ग्रहण करने वाले[1] कवि त्रिलोचन की कविताओ मे लोक-सवेदनाओ की ऐसी सहजता है जो सहृदय को अपने रग मे रङ्गकर वास्तविक जीवन का दृश्य उपस्थित करती है । इस जगत् को नन्दनवन के रूप-("चिन्ताओ से ऊपर आकर जब भी जग को/मैं निहारता हूँ तो इसको नदनवन से/किसी अंश मे न्यून नहीं पाता हूँ")[2]- मे देखने वाले कवि के आसू दूसरो के दु ख मे तप्त होकर जब झरते है तब जीवन का पौधा हरा-भरा हो जाता है।[3] खेतो और कारखानों मे काम करने वाले शोषित किसान और श्रमिको के श्रम मे लहराती हुई जीवन-धारा को देखने वाले[4] त्रिलोचन चिलचिलाती धूप मे अपनी पत्नी के साथ खेतों को सींचते हुए किसान के[5] दु ख से द्रवित हो जाते है किन्तु अभावमय जीवन जीने वाले श्रमिक वर्ग का स्वाभिमान इन्हे आकर्षित करता रहता है।[6] तभी तो उस दीन-हीन, अकेली रहने वाली नवोढा और उसके पति की पीडा को उन्होने 'परदेशी के नाम पत्र' मे बहुत ही कुशलता पूर्वक अभिव्यक्त किया है- "तुम्हे गॉव की क्या याद नहीं आती है --/थोडा लिखा बहुत समझना/ x x x /सचमुच इधर तुम्हारी याद तो नहीं आयी/झूठ क्या कहूँ/पूरे दिन मशीन पर खटना/वासे पर आकर पड जाना और कमाई/का हिसाब जोडना, बराबर चित्त उचटना/इस उस पर मन दौडाना, फिर उठकर रोटी/करना, कभी नमक से कभी साग से खाना/आरर डाल नौकरी है । यह बिल्कुल खोटी/ है। इसका कुछ ठीक नहीं है आना जाना ।"[7]

दूसरों के दु:खों को न सह सकने वाले और दीन-दु खियों के लिए यथाशक्ति कुछ

कर देने के लिए उद्यत रहने वाले[8] कवि त्रिलोचन नित्य कुँआ खोदकर पानी पीने वाले मजदूर[9] भूखे, दुर्बल और हारे हुए लोगो को स्वय फल खोजकर बॉटने को तैयार रहते है।[10] साग बेचने वाली बुढिया के सम्पूर्ण दु ख[11] के गरल को शिव की भॉति पी लेने वाले त्रिलोचन सन् १९५३ के महाकुम्भ के मेले मे मरने वाले हजारो की लाशो- जिस पर चढकर मानव आता था (लाशों पर चढकर मानव आता है)[12] को देखकर फूट पडते है और असवेदनशील सरकारी-तन्त्र की भर्त्सना करते हुए- (लाशो की चर्चा थी, अथवा सन्नाटा था/राज्यपाल ने दावत दी थी, हा हा ही ही)[13]- दु खी होकर कह उठते हैं- "कब स्वतन्त्र होगी यह जनता टूटी हारी।"[14] वे सरकारी सहायता पर व्यंग्य करते हुए कहते है- "धनुष बाण लेकर/क्या करूँगा/रक्खो इनको/नाटक मे । वेशधारियो के काम आयेगे । जीवन इन खेतो से । आगे बढ आया है ।"[15]

त्रिलोचन पूँजीवादी शोषको के उस दृष्टिकोण से सहमत नहीं है जिसने प्राकृतिक सौन्दर्य को विनष्ट कर भयावह भौतिक-वाद का प्राणहीन आकर्षक महल खडा किया है- "जीवन मे अर्जन का मतलब पैसा ही है/पैसा ही जीवन के स्तर का मानदण्ड है । इसीलिए आराम हराम कहा जाता है/फूलो का बेलो का होना ऐसा ही है । जैसे शुक्र मंगल का नभोखण्ड है।[16] उनका विश्वास है कि मजदूर ही- जिसके श्रम पर पूँजीवादी सभ्यता टिकी हुई है- समुदायो मे सगठित होकर शोषण-मुक्त समाजवादी व्यवस्था का निर्माण करेंगे । मुट्ठी भर पूँजीवादी लोग पहले से अधिक मोटे होते जा रहे है । पूँजीवाद जिस डाल पर बैठता है उसी को काटता है । अतुलित धनराशि पर बैठे हुए सॉप के समान पूँजीपति अपने विष-बल का आतक फैलाते रहते है ।[17]

त्रिलोचन को विश्वास है कि मधुमक्खियो की भॉति जो मजदूर पूँजीपतियो के लिए (मधु) धन एकत्रित करते है वे ही पूँजीवाद को समाप्त करेगे।[18] शोषितों की पीडा से उपजे हुए त्रिलोचन के गीत[19] क्रान्ति के बीज बोते हुए समाज को नया रूप देना चाहते हैं

तथा पूँजीवादी व्यवस्था की परिधि को तोडकर नवल प्रभात का सदेश देते है- “बीज क्रान्ति के बोता हूँ मै, अक्षर दाने/है, घर बाहर जन समाज को नये सिरे से/रच देने की रूचि देता हूँ, घिरे-घिरे से/रहना असम्मान है जीवन का अनजाने/अगर घुटन हो प्राण छटपटाये तो घेरा/तोड फोड दो क्योकि हुआ नया सबेरा ।”[20]

त्रिलोचन दीन-दु खियो, दलितो तथा किसानो के कवि है । गडेरिये के गीत को सुनकर प्रसन्न होने वाले-(गीत गडेरियो के सुन-सुन कर दुहराऊँगा)[21] कवि त्रिलोचन की सॉस मजदूरों की सॉस है-(वे मजूर से राजा रानी/सुख-दु ख वाली दुनिया जानी/अपनी ही तो सॉस कहानी/अपनेपन की ही लहरो को दिखलाऊँगा),[22] चरवाहों का गीत ही उनका गीत है ।[23] अपने को मुट्ठी भर धूल मानने वाले-(मुट्ठी भर धूल आदमी है कुछ और नहीं है)[24] कवि त्रिलोचन को भिखारियो से प्रेम है ।[25] नगे पॉव घूमने वाले, लोटा डोर फॉसकर जल निकालकर पीने वाले तथा गदे कपडों में रहने वाले किसानो के जीवन के दर्पण में वे अपना ही प्रतिबिम्ब देखते है- “घमा गये थे हम/फिर नगे पॉव भी जले थे/मर गया पसीना जी भर बैठ गुडाए/लोटा-डोर फॉसकर जल काढा/पिया/-- ।”[26]

दूसरे के दु ख को अपना मानने वाले व नया समाज बनाने[27] की उद्घोषणा करने वाले त्रिलोचन की रचनाओ मे अनपढ चम्पा[28] जो पशुओ को चराती है-कवि की सवदेना का अग बनकर उन अशिक्षित कन्याओ का प्रतिनिधित्व करती है, जिसके जेहन में यह बात डाल दी गयी कि पढना लिखना अच्छी बात नहीं है । उनकी कविता का ‘भोरई केवट’[29] असहाय और निरूपाय दु खियो की कथा को कहता है जो पूँजीपति की माया से उत्पन्न है । ‘नगई महरा’ जो आजीवन जीवन की खॉची बिनता रहता है- अपने हाथों पर विश्वास रखता है- “कहता था दैव ने मुँह चीर दिया है । उसमे कुछ देवों को हाथ तो चलाना है ।”[30]

वस्तुत. त्रिलोचन की कविताओं में भारत की मूल आत्मा- भारत के दलित

किसान, दलित-मजदूर व समाज के उपेक्षित जन-समाये हुए है । मानव जीवन और मूल्यो के सघर्ष उनकी कविताओ को देदीप्यमान बनाते है । जन-जन के लिए मर्मान्तक पीडाओ की सॉस लेने वाले त्रिलोचन हारे-थके हुए लोगो को उत्साहित करते हुए कहते है- "यह दुनिया है, यहॉ कौन किसका है लगकर,/ जीना है तो यहॉ कुछ न कुछ होगा करना/भीड-भाड यह, जग है कहॉ, सूने मे जगकर/काम नहीं चलता, । उर्वर होता है जीवन भी आघातो से/विकसित होता है बढता है उत्पातो से ।"[31]

लूटे-सताये हुये आदमी की सहायता के लिए सतत खडे रहने वाले[32] त्रिलोचन वास्तव में अपने युग के, समाज के, जन-जीवन के मूर्तिमान अभिव्यक्तिमय व्यक्तित्व है,[33] जिनके हृदय मे दलित मजदूरो के प्रति असीमित पीड़ा निवास करती है ।

त्रिलोचन हिन्दी साहित्य के ऐसे कवि है, जिन्हे गॉव की धरती प्यारी है । इन्हे काशी इसलिए प्रिय है क्योकि वह गॉव जैसी है- "काशी मुझे गॉव सी लगती है, शहराती हवा यहॉ कम से कम है ।/रोज-रोज ताजा है कभी नहीं है बासी।"[34] वे ग्राम्य प्रकृति की विभिन्न प्रकार की क्रीडाओ मे अपने को विलीन कर देते हैं । त्रिलोचन ऐसी भूमि मे रहना चाहते हैं, जहॉ केवल धूल उडती हो, जहॉ छाया के लिए कोई विटप नहीं हो । ऐसे स्थान में रहकर वे हारे-भूले-भटके व्यक्ति की प्यास को दूर कर सहृदयता से दो बात कर, उसे रास्ता बताने के लिए व्याकुल रहते है।[35] इन्हें सरसो का फूल और ज्वार अधिक प्रिय है- (लहराया ज्वार मे। धरती से आसमान/एक रग/भिन्न रूप/ धरती से आसमान। सुन्दरता छायी है सरसो की फूल सी)[36] त्रिलोचन कृषक-जीवन की एक-एक क्रिया के चित्र खींचने वाले कुशल चित्रकार है क्योंकि इनके मन मे धरती की सुरभि समायी हुई है- तोड-तोड कर बाल खेत से खग उड-उडकर ।/चल देते हैं नीड-दिशा में। --/लवनी में हैं लीन । आज को भूले कल के। लिए सघ उद्योग कर रहे हैं यह फसल के ।"[37]

त्रिलोचन ग्राम्य प्रकृति के जब चित्र उपस्थित करते है तब यही प्रतीत होता है कि मानो प्रकृति अपने सम्पूर्ण उपादानो से किसान के साथ आनन्द ले रही है । बरसने वाले बादल और हवा की नोक-झोक किस किसान के लिए आनन्द का बीज नहीं होगा ? -"स्लेटी बादल आसमान को घेर घिरे है/कहीं जरा सा रध्र नहीं है । जब तक बूँदा-/बॉदी हो जाती है फैल-फैलकर मूँदा । बदली ने नभ नील को। उधर तिरे है/पेडो की पत्तियॉ नचाती हुई कहीं से । हवा इधर बहकी है, उधर हिली है साडी।"[38] कभी वे बादलो से हरे खेत को नहलाते है, तो कभी उनके मन की बयार उसे बहलाती है- (जिनको नहलाते हैं बादल । जिनको बहलाती है बयार, वे हरे खेत कैसे होंगे)[39] और कभी पश्चिम पवन बनकर गेहूॅ, जौ, मटर और सरसो से खेलती रहती है - (मन्द-मन्द पछुआ हवा बह रही । --- लहरे उपजाती हुई बह रही । हरे भरे पेड़ो के पत्तों से गेहूॅ, जौ, मटर और सरसों से खेलती हुई घर के द्वार पर) ।[40]

ग्राम्य-प्रकृति का रसास्वादन करने वाले त्रिलोचन की कविता मे प्रकृति मूर्तिमती होकर ग्राम्य धरती का अपने हाथो से श्रृगार करती है। बसत ऋतु के आम्र वृक्ष और कोकिला का यह सवाद- "गन्धोन्माद तुम्हारा औरो को व्याकुल कर/इधर-उधर भटकायेगा तुम खिले रहोगें,"[41] पवन के द्वारा नदियों से की गयी क्रीडा तथा यह मधुर आघात- ("मधु का धीर समीर अनेक सुगध सॅभाले । --- नदियो से कर केलि, लताओं को दुलार कर/वन में पहुॅचा और राग अभिराम निकाले), बौराये हुये आम (खडा आमडा बौर लिए निष्पन्न अकेला, कपिश, सुहाने कोटदार मे बौर सलोने), पीडितो को आश्रय देने वाले बासन्ती छायादार विटप (कितने दूरागत खग आये रूक गये/अपने अपने गान), धूप के द्वारा सर्वप्रथम पीपल का किया गया स्वागत- (धूप बहुत पहले जब आयी तो पीपल की। फुनगी पर आयी, टूसे टहनी टहनी), और भी प्रकृति वर्णन के विविध मनोहर रूप कठोर हृदय के व्यक्ति को भी आकर्षित करने मे सक्षम है ।

वस्तुत त्रिलोचन ग्राम्य-प्रकृति के सूक्ष्मदर्शी है । तभी तो उन्होने जीवन के रस के सूख जाने से झडने वाले पत्रो की वेदना सुनी है । इसीलिए वे सघन अधेरी रात मे प्रेमपूर्ण वार्ता करते है और वर्षा के दिनो मे किसानो को क्रियाशील होने की प्रेरणा देते रहते है- "हरा खेत लहरायेगा/हरी पताका फहरायेगा, छिपा हुआ बादल तब उसमें रूप बदलकर मुस्कायेगा ।"[42]

त्रिलोचन को अपनी मिट्टी की गध और अपनी सस्कृति से अगाध प्रेम है । उनकी दृष्टि में साम्यवाद के विदेशी और देशी लीद को ढोने वाले गधे- जो अपने को इन्द्र से भी अधिक तीव्र-गामी घोडा मानते है, भारतीय-सस्कृति की हरियाली को देखकर छैकने लगते है- "सस्कृति की हरियाली देखी लगे छेकने । अपनी दुलत्तियो के मद मे सदा चूर है।"[43] त्रिलोचन भारतीय सस्कृति के बीज-सहिष्णुता (सदाचार जिसके तन मन का/समाधान हो लोग भी सीखे रहना । अलग-अलग जो सदाचार है अपनेपन का भाव बढे),[44] अतिथि सेवा (उनके आने से अपनापन आ जाता है । जो भूला भूला रहता है उसे भुलाना / ठीक नहीं नि स्वधनी कोई कैसा हो । अपने घर आये तो उठकर आसन देना / ---),[45] दीन-दु खियो की सहायता के लिए सदा तत्पर रहना (लुटे सत्ता मे हुए आदमी जहॉ पडे हो/अच्छा हो जाग्रत जन उनके लिए खडे हो।),[46] लोभ, भय से मुक्त रहना (कहीं किसी के आगे भय से और लोभ से । विचलित नहीं हुए),[47] अहिसा आदि का पालन करते हुए निष्कलंक जीवन जीना (बुद्ध आदि के जिस भू ने पदचिह्न सजाये । सावधान उस पर चलता पर दाग बचाये।),[48] दुर्वह परिस्थितियो में भी मनुष्यता का परित्याग नहीं करना (कठिन परीक्षाऍ ले लेकर निज चिरन्तन/मुझे मनुष्य बना दो विजितन हो मेरा मन।),[49] कर्मवाद पर विश्वास रहते हुए निरन्तर सघर्ष करना (लडो बन्धु हैं, जैसे रघु इन्द्र से लडा था/क्रूर देव के सम्मुख मानव दृप्त खड़ा था), (खून पसीना एक करो फिर जो कुछ पाओ । लेकर जल्दी आओ और कभी मत हारो),[50] पिता के प्रति

श्रद्धा रखना (तुम महिमा-मडित मनुष्य थे---) ---आदि गुणो के पक्ष धर थे । त्रिलोचन प्रतिदिन "रामचरित मानस" का पाठ करते है। उनका पितृ श्राद्ध मे विश्वास है तथा सकट मोचन मे प्रतिदिन दर्शन करते है।[51]

उन्हे भारतीय चिन्तन पर विश्वास है। विष्णु ने तीन पग से तीनो लोको को नापा था। त्रिलोचन अपने चौदह चरण (पग) वाले सानेट से चौदह-भुवनों को यथाशक्ति नापते रहते है।[52] त्रिलोचन की छन्द-बद्ध कविताएँ यह सिद्ध करती है कि वे परम्पराओ को मानते है। उन्होने स्पष्ट कहा है कि तुलसी दास ही उनके काव्य गुरू है।[53]

त्रिलोचन भले ही किये गये कर्म-फलो को भोगने के सिद्धान्त को स्वीकार करते है। (सोच लो जो बीज बोओगे, तुम्हे, लुनना पडेगा),[54] परन्तु परम्परा को ढोने में विश्वास नहीं करते (बनी बनाई राह मुझे कब कहॉ सुहाई। गहन विपिन मे धॅसा, नहीं की राम दुहाई)[55] वे जीवन पथ की बाधाओ को स्वय दूर कर निडर होकर आगे बढते रहने का सदेश देते हैं --"झाड और झखाड उखाड काटकर अपने/पथ को किया प्रशस्त, चला रूक कर अलसाया/नहीं, तप गया फिर भी तरू की शीतल छाया/ताकी नहीं, न मुझको सुख शय्या के सपने।"[56]

वस्तुत· त्रिलोचन प्राचीन रीति रिवाजो को पूर्णरूप से स्वीकार करने वाले कवि नहीं हैं । एक कविता में विवाह की प्राचीन-परम्परा का वर्णन करते हुए कहते है- "चाल ढाल सभी पुरानी वही धारा । मध्ययुग के भाव वाही । ये नये युग से अपरिचित औं सशकित । ये गये सब दिन सताये । चल रहे प्राचीनता से लौ लगाये -- आज भी इनको पुरानी बात पहले रूप मे ही भा रही है।"[57] किन्तु दूसरी कविता मे वे कह उठते हैं- "बदल गया है काल कलेवर/बदल गयी जीवन की धारा । आज पुरानी रीति-नीतियॉ दे न सकेगी रंच सहारा/ऑख खोल मानव दृग मींचे/देख कहॉ तक तू आया है"।[58] वे पुरानी कुरीतियों को अस्वीकार करते हुए (रगीन मनोहर भूतकाल/उस पर अपना मन

डाल डाल । विह्वल होना तज देश-काला जीवन-विरोध, गति का विरोध)- नयी राह पर चलने का सदेश देते है- "बहुरग रूप गति, नई राह । रह सग-सग ले नवल रग । बढना सुन्दर है क्षण प्रतिक्षण ।"[59]

मानवतावादी त्रिलोचन आजीवन साम्प्रदायिकता का विरोध करते रहे । उनकी दृष्टि मे धर्म की कट्टरता, विध्वशकारिणी प्रवृत्ति, आम जनता को ही अपना शिकार बनाती है । और उसे फैलाने वाले मूक-दर्शक बने रहते है । शास्त्र और मानवता मे यदि विरोध है तो शास्त्र की क्या आवश्यकता है । मानवता ही मनुष्य की अमूल्य धरोहर होनी चाहिए जिसे सजोकर रखना हम सबका धर्म है । उनकी दृष्टि पृथ्वी के सम्पूर्ण मनुष्यो को अपना भाई मानती है- "वह मेरा भाई है जिसको तुम अलगाना/अपना धर्म समझ बैठे हो, मै न सुनूॅगा,/x x x/हिन्दू मुसलमान ईसाई अब ये सारे/नाम मिटेगे, सब मनुष्य होंगे तुम्हारे ।"[60]

त्रिलोचन विश्व मानव है । वे देश, जाति, वर्ण आदि के बन्धन को तोडकर सबको एक रचना के रूप में देखते हैं । वे एक भू पर विभिन्न कृतियों मे एक ही सरिता की धारा का दर्शन करते है- "देश के ये बध तोडो । जाति ये बंध तोडों / वर्ण-वर्ण खिल सुमन दल । रूचिर-रूचिर सुगध जोडो । रूप मे हो तेज सचय / तेज मे नवप्राण परिचय/सब चिराने एक रचना में वही है पास लाना ।"[61]

देश काल, शारीरिक सरचनाओ से मनुष्यता मे विभाजन रेखा खींचने वाले लोग अत्यन्त स्वार्थी है । सबकी भौतिक आवश्यकताएॅ एक है-

"गर्म गर्म वह रोटी जो/जो मुॅह मे जीवन बनती है भई रहा क्या/अन्तर उसमें/इस अभेद को नहीं सहा क्या/तुमने ।"[62]

त्रिलोचन की विश्वात्मक दृष्टि में सम्पूर्ण मनुष्य एक सुन्दर 'मानव का छौना' है -

"नाक दबी हो या उभरी हो माथा नीचा

हो या ऊँचा, कोई लम्बा हो या बौना

ऑखे तिरछी हो या फैली हो रगो में

काला, पीला, लाल, श्वेत जिससे भी सींचा

हो शरीर की - दुनिया मे मानव का छौना

कोई भाषा बोले अलग नहीं अगो मे ।"[63]

त्रिलोचन का जगत् अतीव सुन्दर है । धर्म और रूढियो तथा अन्धविश्वासों ने इसके सौन्दर्य को विकृत कर दिया है । धर्म पर आक्रमण करने वाले त्रिलोचन- (करता हूॅ आक्रमण धर्म के दृढ दुर्गो पर)[64] सन् १९५३ के महाकुम्भ मे मरने वाले लोगो के प्रति अति सवेदनशील है । वे जनसमूह की मृत्यु का कारण धर्म को ही मानते है- "धर्म न होता तो वह दुनिया कैसी होती । पुण्य न होता तो प्रवृत्ति क्या ऐसी होती।"[65] मन्दिरो मे जाकर जड पत्थर को अन्तर्यामी मानकर पूजने वालो का उपहास करने वाले त्रिलोचन ने कल्पवासियों, जो जाडे मे ठिठुर-ठिठुर कर गगा-स्नान और जप करते रहते है- का भी मजाक उडाया है । उन्हे ज्योतिषियो से भी चिढ है क्योकि वे मिथ्या भविष्यवाणी कर भोली भाली जनता को भय और चिन्ता के अनल में झोकते रहते है।[66] त्रिलोचन वैताली की भॉति हस्त-रेखा पर नहीं, कर्म पर विश्वास करते है ।[67] व्यर्थ की पूजापाठ की अपेक्षा शिष्टता का निर्वाह करना ही जीवन का प्राणतत्व है- "भक्ति का वेद तो/चला जायेगा पुन रसातल कूल किनारा/नहीं मिलेगा रहने दो जो जैसा चाहे। अच्छा होगा किसी तरह शिष्टता निवाहे।[68] त्रिलोचन ने 'अनकहनी भी कुछ कहनी है' में धर्म के बाह्य-आडम्बर के परित्याग की प्रशसा की है और धर्म की बाह्य कट्टरता की व्याज स्तुति के माध्यम से निन्दा की है -

"धर्म कर्म हिन्दू का सब कुछ छोड दिया है

पुरखों की मर्यादाओं को तोड दिया है ।

चोटी और जनेऊ तज दी अब मनमाने

काम किया करते हो ---

जरा मुसलमान को देखो चाल चलावा

अपना नहीं छोडते रखते है दावा।"[69]

त्रिलोचन का बचपन ही अन्ध विश्वास के विरोध मे प्रारम्भ हुआ था । इनके घर मे पढाई नहीं सहती थी । जैसा कि उन्होने अपने एक सॉनेट मे बताया है- "पढना हमारे यहॉ नहीं सहता पर बात मेरी कौन यहॉ सुनता है । रानपरोसी कहते है लडका इन्हे भारी है, इसी राह खो रहे है --- पढते-लिखते ही तीन-चार जने मर गये"[70] किन्तु इस अन्ध विश्वास के सिर पर पैर रखकर त्रिलोचन ने अपनी पूरी पढ़ाई की । ताप-प्रहार सभी कुछ सहते हुए त्रिलोचन पूर्व-परम्पराओ पर आश्रित रहने वाले कवि नहीं है । इनकी दृष्टि मे पुरातन विचार वह बरगद की छाया है जहॉ कोई नवीन वृक्ष नहीं बढ पाता है ।[71]

इन तथ्यों से सिद्ध होता है कि त्रिलोचन सम्प्रदाय नस्लवाद, जातिवाद, अन्धविश्वास आदि पतनोन्मुख व्यवस्था के विरोधी हैं किन्तु उनकी प्रगतिशीलता मे न भौतिक चकाचौंध है न आत्मसमर्पण की भावना । वे सच्चे रूप मे ऋषियो के मानवतावाद के पुजारी हैं । वे बाह्य और आन्तरिक रूप मे पूर्ण मानवीय कवि है, जो अपनी कविताओं में घोषणाएँ करने की जगह रूढियो-बेडियो और जर्जर परम्पराओ के विरोध मे खडे रहते है।[72] वस्तुत त्रिलोचन की रचनाओं मे शास्त्रीयता और लोकाकारिता का द्वन्द्व नहीं है वरन् एक दूसरे की परिपुष्टता समाहित है।[73] कवि त्रिलोचन को इस भौतिक ससार से प्यार है परन्तु विलासिता के लिए मूल्यों की हत्या उन्हें कभी प्रिय नहीं रही है- "मैं विलास का/प्रेमी कभी नहीं था । जब देखा तब केवल जीवन देखा/ धूल और मिट्टी से आया था रक्त के कणो मे यह सम्बन्ध समाया था ।"

त्रिलोचन की कविता जब 'जीवन रस' और 'जीवनमणि' पाने की व्यग्र ललक मे ऊँचाई को छूने के लिए हाथ बढाती है तो उनका कवित्व आकाश की ओर नहीं वरन् धरती की ओर मुडता है । ऐसे क्षणो मे महान होने के लिए आकाश की ओर ताकना शायद शास्त्र की ओर बढना है और धरती की ओर ललक-पुलक से देखना लोक की ओर झुकना है । धरती से आकाश की ऊँचाई का अहसास करा देना कम बूते की बात नहीं है ।74

धूमिल के काव्य में लोक-संवेदना :-

प्रगतिशील सामाजिक सरोकार के साथ कवि धूमिल हिन्दी कविता के क्षेत्र मे प्रवेश करते हैं । उनकी काव्यगत अन्तर्वस्तु व शिल्पगत बुनावट की सादगी उन्हे अन्य कवियो से अलग व्यक्तित्व प्रदान करती है । 'ससद से सडक तक' व 'कल सुनना मुझे' दोनो काव्य-सग्रहों की कविताओ मे अमानवीय व्यवस्था के प्रति उनका आक्रोश-पूर्ण व्यग्य मुखर है । इस आक्रोश पूर्ण व्यग्य के मूल मे शोषित-उत्पीडित मानवता की मुक्ति की कामना प्रबल रूप मे दिखाई पडती है ।

साठोत्तरी कवि धूमिल की कविताओ मे राजनीतिक चेतना की सशक्त व सार्थक अभिव्यक्ति हुई है । सरकारी नीतियो की विडम्बनाओ को ढोती व कराहती जनता तथा 'जनतन्त्र', जिसके मूल स्वरूप को सत्ताधारी पार्टियो ने अपने लाभ की खातिर बदलकर रख दिया है, कवि धूमिल की कविता के मूल स्वर है ।

वे बुर्जुआ व्यवस्था को कायम रखने वाली हर व्यवस्था के खिलाफ कटिबद्ध दिखाई पडते हैं । आजादी के १५-२० साल बाद भी पग-पग पर अमानवीय व्यवस्था का जाल, जो आम आदमी को फँसाता जा रहा था, उनके मन को बेहद आहत करता है । वे इन पूँजीवादी व्यवस्था में मानवीय मूल्यों की दुर्दशा पर आँसू बहाने की अपेक्षा सक्रिय होकर क्रान्ति के लिए तैयार होने की बात करते है । 'स्वस्थ समाज का निर्माण ही

मानवीय मूल्यो की पुनर्स्थापना मे सहायक हो सकता है ।' अत इसके लिए समाज से भ्रष्टाचार, धोखाधडी, चापलूसी, सत्ता-लोलुपता आदि कलुषित नीतियो को मिटाकर स्वस्थ आदर्शो की स्थापना के लिए गम्भीर प्रयास की महती आवश्यकता थी । सत्तासीन नेताओ के सहयोग के बिना स्वस्थ समाज का निर्माण असम्भव तो नही कठिन अवश्य था, पर तत्कालीन नेतागण भ्रष्टाचार मुक्ति के अपने प्रयासो मे कत्तई ईमानदार नहीं थे । ऐसे भ्रष्ट राजनीतिज्ञों की सत्ता-लोलुपता, भाई-भतीजावाद, जातिगत व भाषागत सकुचित-मनोवृत्ति पर कवि धूमिल ने खुलकर कटु प्रहार किये है । राजनीतिज्ञो की निरर्थक नारेबाजी, उनके दोगलेपन से उपजी उनकी चरित्र-हीनता, सत्ता को बरकरार रखने के लिए की गयी उनकी दुरभिसंधियॉ, वोट मॉगते समय जनता से किये गये उनके वायदे, पर निर्वाचित होने पर उसी जनता के प्रति विमुखता- आदि का पर्दाफाश करते हुए उनके तीखे व्यंग्य अत्यन्त सजगता के साथ परदे के पीछे की उनकी तस्वीर आम जनता के समक्ष पेश करते है ।[1]

आज जब देश के सामने रोटी, कपड़ा और मकान जैसी जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने की ज़रूरत है, हमारे नेता कुर्सी व सत्ता के खेल मे लगे हैं, जो सुविधाजनक किन्तु सिद्धान्त-हीन समझौते कराती है । हमारी राजनीति केवल नाम के लिए गाँधी के आदर्शो पर टिकी हुई है । गॉधी ने समाज के चिर-उपेक्षितो का उद्धार किया । वे श्रम व श्रमजीवी की महत्ता को समझते हुए समाज मे उनके महत्वपूर्ण स्थान के पक्षधर थे, पर आज उनका नाम लेकर जो कुछ किया जा रहा है, वह अक्षम्य है । कवि धूमिल गाँधी के नाम पर देश चलाने वालो का असली चेहरा दिखाते हुए कहते है-

"उस मुहावरे को समझ गया हूँ

जो आजादी और गाँधी के नाम पर चल रहा है

जिससे न भूख मिटी है, न मौसम

बदल रहा है ।"[2]

कवि धूमिल की कविता दुनियॉ के सबसे बडे प्रजातान्त्रिक देश की सच्चाइयो को हमारे सामने रखती है । जो जनतन्त्र जनता के लिए, जनता के द्वारा ही निर्मित है, उसमें जनता का क्या मूल्य है? स्पष्ट शब्दो मे हमारे सामने खोलकर रखती है । आजादी के तुरन्त बाद तेलगाना के क्रान्तिकारी आन्दोलन को दबाया गया । यह बात भारतीय जनतन्त्र के भविष्य को आरम्भ मे ही स्पष्ट करती है । यहॉ तो 'जनतन्त्र' शब्द मात्र दिखावा रह गया है । उसकी मूल आत्मा का तो अन्त हो चुका है । कवि के शब्दों मे-

हवा मे एक चमकदार गोल शब्द
फेक दिया है- 'जनतन्त्र'
जिसकी रोज सैकडो बार हत्या होती है
और हर बार
वह भेड़ियों की जुबान पर जिन्दा है ।"[3]

जिस लोकतन्त्र की बुनियाद पर हमारा देश खडा है, वह तो अपने वास्तविक रूप में मजबूत था, आम आदमी के हित मे था, पर उस बुनियाद को दिनो-दिन खोखला करने वालों नेतागणों ने उसे व्यावहारिक रूप से निष्क्रिय कर दिया । समय के साथ-साथ लोकतन्त्र में मजबूती आने के विपरीत उसका खोखलापन बढता गया । कवि की जागरूक चेतना के लिए ये स्थितियॉ असहनीय थी । ऐसा नहीं था कि धूमिल को प्रजातन्त्र मे विश्वास नहीं था। 'स्वतन्त्रता' और 'समानता' तो उन्हे जी-जान से प्यारी थी, जो हमारे संविधान की मूल आत्मा है । उनका आक्रोश तो उन सुविधा-भोगियो पर है, जिन्होने प्रजातन्त्र के मूल सिद्धान्तों को ताख पर रखकर उसे मात्र मखौल बना दिया है ।

स्वतन्त्रता के बाद हुई प्रगति का लाभ हमारी ससद आम-आदमी तक नहीं पहुँचा सकी । मनुष्य की तीन मूलभूत आवश्यकताओ में कपड़ा और मकान की समस्या तो दूर,

रोटी की समस्या ही समाप्त नहीं हो पा रही है । पेट की समस्या से जूझने वाला भूखाआदमी देश की प्रगति मे क्या योगदान दे सकता है । उसके लिए तो रोटी से बडा तर्क हो ही नहीं सकता -

"आंज मै तुम्हे वह सत्य बतलाता हूँ
जिसके आगे हर सच्चाई
छोटी है । इस दुनिया मे
भूखे आदमी का सबसे बडा तर्क
रोटी है ।"[4]

कवि का यह सच्चाई-बोध सुनी सुनायी बातो पर आधारित नहीं है । उन्होने भूखे चेहरो को देखा नहीं है वरन् ऐसा लगता है स्वय उसका अनुभव किया है ।[5]

धूमिल ने अपने प्रश्नो के माध्यम से रोटी की समस्या पर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है । इस समस्या पर उन्होने संसद से अनेक प्रश्न किये, पर वे सभी प्रश्न अनुत्तरित ही रहे । 'कल सुनना मुझे' संग्रह की कविता 'रोटी और ससद' अत्यन्त प्रभावी ढग से रोटी से खिलवाड करने वाले व्यक्ति व उसे मूक स्वीकृति देने वाली ससद पर कटाक्ष करती है -

"एक आदमी/रोटी बेलता है/एक आदमी रोटी
खाता है/एक तीसरा आदमी भी है/जो न
रोटी बेलता है, न रोटी खाता है/वह सिर्फ,
रोटी से खेलता है/मै पूछता हूँ- यह तीसरा
कौन है?/मेरे देश की ससद मौन है ।"[6]

कहते हैं दूसरों के दुःख को देख-सुनकर मनुष्य अपना दुःख भूल जाता है । राजनीतिज्ञों को मूढ़ जनता के लिए पडोसियो की भुखमरी के किस्से व अखबार मे लिखे

सहानुभूति के कुछ शब्द ही उनके आक्रोश को शान्त करने का कारगर उपाय लगते हैं । कवि व्यग्य करता है-

"उन्होने सुरक्षित कर दिये है/तुम्हारे सन्तोष के लिए/

पडोसी देशो की/भुखमरी के किस्से/तुम्हारे

गुस्से के लिए/अखबार का/आठवॉ कालम ।" [7]

हमारे सविधान मे एक बहुत ही आकर्षक शब्द है- 'समाजवाद' । 'समाजवाद' के नाम पर आजादी के बाद से ही जन-साधारण को सब्जबाग दिखाये जा रहे है, पर जनता उनके इस छलावे को समझ नहीं पा रही है । समाजवाद के नाम पर फल-फूल रही नीतियो से पूँजीपतियो को तो लाभ ही लाभ है और निर्धनो का जीवन दिन-प्रतिदिन दूभर होता जा रहा है, क्योकि धूमिल के शब्दों में हमारे देश के समाजवाद का असली जामा माल गोदाम मे लटकी हुई उन बाल्टियों की तरह है जिस पर आग लिखा है और उसमे बालू और पानी भरा है ।[8]

उनकी लम्बी कविता 'पटकथा' उनके राजनीतिक-बोध को मुखर करने वाली महत्वपूर्ण रचना है । इसमें सन् १६४७ से लेकर कविता लिखे जाने तक के विभिन्न सकटों, आर्थिक व राजनीतिक विपन्नताओ, चुनावी दलदल के बीच फॅसी राजनीतिक चालों आदि की सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है । रचना के मूल में उन सवालों को उठाया गया है, जो जनता की फटेहाल स्थिति व तबाही से जुड़े हुए हैं । 'पटकथा' में उनका आक्रोश सिर्फ सत्तासीनों व पूँजीपतियो पर ही नहीं, उस व्यवस्था को ढोने वाले मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियो पर भी है ।[9]

कवि धूमिल की 'प्रौढशिक्षा' कविता अपने मूल उद्देश्य को लेकर अत्यन्त सजग है। वे हमारे समाज में व्याप्त भूख, वर्गीय-विषमता, आत्महीनता का मूल कारण अशिक्षा को मानते हैं । अशिक्षितों के प्रति कवि की आत्मीयता व उनके हित की कामना इस

कविता की हर पक्ति मे मुखर है । अशिक्षितो की अनेकानेक समस्याओ की जड अशिक्षा है- इस बात को ध्यान मे रखकर ही कवि ने अत्यन्त सजग भाषा मे अशिक्षा के कारण होने वाली मुश्किलो को स्पष्ट किया है । वह अपनी कविता के द्वारा शिक्षा की सजीवनी शक्ति का अनुभव हर शोषितो व उपेक्षितो को कराना चाहते है ।[10]

उनकी एक प्रसिद्ध कविता है 'मोचीराम', जो समाज मे उपेक्षित मोची के व्यवसाय को केन्द्र मे रखकर लिखी गयी है । अपनी इस कविता का आरम्भ कवि धूमिल सामाजिक समानता की भावना को केन्द्र मे रखकर करते है । उनकी दृष्टि मे आदमी एक जोडी जूता मात्र है।[11] उसके पास आने वाले दो विपरीत स्वभावी ग्राहक कवि की सवेदना को अलग-अलग ढग से प्रभावित करते है।एक गरीब है जिसके प्रति मोची की सहानुभूति है।उसके चकत्तीदार जूतो पर मोची अपनी ऑखे टॉक देना चाहता है।[12] यहॉ कवि स्वयं शोषित, दलित, अभावग्रस्त वर्ग के एक व्यक्ति के रूप मे दिखाई पड रहा है, जो दूसरो के दुख से दुखी है । दूसरा वह व्यक्ति है जो गरीबो पर अनायास रौब दिखाता है । ऐसे लोगो के लिए कवि का तर्क है- 'जैसा काम वैसा दाम' । बेवजह गरीबो को सताने वाले व्यक्ति के प्रति कवि के मन मे कोई सवेदना नहीं ।"[13]

आगे वे कहते है कि कोई भी पेशा जाति से बॅधा नहीं है और किसी भी भाषा पर किसी ज़ाति विशेष का अधिकार नहीं है।[14] अर्थ और भौतिक सुख-सुविधा-भोग मे तो तथाकथित छोटा वर्ग संभ्रांत वर्ग की बराबरी के अधिकार के लिए सघर्ष करता रहा है, परन्तु धूमिल का 'मोचीराम' सम्भवत पहला व्यक्ति है जो अनुभूति और अभिव्यक्ति की प्रतीक भाषा पर सभी का समान अधिकार होने का विश्वास प्रकट करता है।[15]

धर्म व जाति के आधार पर बनी व्यवस्था की अमानवीयता की बढ़ती बाहों ने सबको दबोच लिया है, वह हर एक को दूसरों से अलग करने मे जुटी है। ऐसे मे सच्चा लोकतन्त्र भला कैसे जीवित रह सकता है क्योकि जातिगत भेदभाव के रहने से 'समानता'

की स्थापना हो ही नहीं सकती । कवि धूमिल ऐसे समाज मे रहते हुए भी धर्म व जातिगत मामलों से पूरी तरह मुक्त थे । उनके अनुज कन्हैया के शब्दो मे – "वे धर्म के ढोग में विश्वास नहीं करते थे । चोटी तथा जनेऊ धारण करना वे पसन्द नहीं करते थे। हर बात में स्वतन्त्र बुद्धि का इस्तेमाल करते थे । छुआछूत को वे नहीं मानते थे । मुसलमानों के घर का खाना खाने के लिए ईद के दिन घर पर खाना नहीं खाते थे । ईसाइयों के घर भी खाना खाने के लिए वे नहीं हिचकते थे। चमार व ब्राह्मण उनके लिए बराबर थे, बल्कि ईमानदार और मेहनतकश उनके लिए बेइमान तथा दूसरो की कमाई पर जीने वाले ब्राह्मण से कई लाख गुना अच्छा था ।"[16]

कवि धूमिल की कविताओ मे पारिवारिक जीवन की आधारशिला 'नारी' के विविध रूप दिखाई पडते है । माँ, पत्नी, जरायम पेशा औरत, प्रेमिका, लडकी, पडोसन आदि इन रूपों में दिखाई देने वाली नारी के विषय में उनकी सोच न पारम्परिक है और न प्रगतिशील । नारी के विषय[17] मे उनके प्रयोगो को देखने से यही ज्ञात होता है कि नारी के प्रति उनकी कोई उदात्त धारणा भी स्पष्ट नहीं होती । कवि के मध्यवर्गीय सस्कार उसे परम्पराओं को तोड़ने में असमर्थ बनाते है । विवाह व घर गृहस्थी के बारे मे कोई आधुनिक दृष्टि उनकी कविताओ मे नहीं मिलती । उन्हे नारी का यह रूप अनुचित नहीं लगता –

> चौके में खोयी हुयी औरत के हाथ/कुछ भी नहीं
> देखते । वे केवल रोटी बेलते है और बेलते रहते है ।"[18]

मध्यवर्गीय संस्कारो से बधा कवि धूमिल अपनी पत्नी व बच्चे के प्रति लापरवाह नहीं । वह ऐसे कार्य को कोई महत्ता नहीं देता, जिससे उसके परिवार का जीना मुश्किल हो जाय। उनकी यह आत्म-स्वीकृति इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है –

> वह धूमिल नहीं – .

एक डरा हुआ हिन्दू है/उसके बीबी है/

बच्चे है/घर है/अपने हिस्से

का देश/ईश्वर की दी हुई गरीबी/

(यह बीबी का तुक नहीं)

और सही शब्द चुनने का डर है ।[19]

तत्कालीन राजनीति पर कटु प्रहार करने वाला कवि धूमिल गृहस्थी व अपने बारे मे बडी सीधी व सपाट बात कहता है । पारिवारिक दायित्व का अच्छी तरह निर्वाह न कर पाने से उत्पन्न आत्म-विक्षोभ इन पक्तियो मे देखा जा सकता है –

"पत्नी का उदास व पीला चेहरा

मुझे आदत सा आँकता है

उसकी फटी हुई साडी से झाकती हुई पीठ पर

X X X X

मैं झेंपता हूँ ।

और धूमिल होने से बचता हूँ

यानै बाहर का 'दुर-दुर'

और भीतर का 'बिल-बिल होने से

बचने लगता है ।"[20]

कवि को यह बात बेहद कचोटती है कि समान उम्र होने पर भी एक औरत का मुँह झुर्रियों से भरा है, वहीं दूसरी औरत के मुॅह पर प्रेमिका के मुॅह सा लोच है ।[21] आर्थिक असमानता ही इसके मूल में है जिसे कवि मिटाना चाहता है । जहॉ सामाजिक विषमता व आर्थिक अभावो की बात आती है वहॉ वे नारी के अभावग्रस्त जीवन के प्रति संवेदनशील दिखाई पड़ते हैं ।

नारी का त्यागमय रूप भी उन्हे आकृष्ट करता है। देश की स्वाधीनता की रक्षा के लिए आत्मोत्सर्ग करने वाली कुमारी रोशनआरा पर लिखी गयी उनकी कविता "आतिश के अनार सी वह लडकी-"[२२] देशभक्त नारी के प्रति कवि की श्रद्धाञ्जलि है। नारी के प्रति उन्होने कई सदर्भो मे "अशिष्ट"[२३] बातें कही है पर नारी का हर वह रूप, जो मर्यादाओं से बॅधा है, उनकी दृष्टि मे श्रेष्ठ है। कवि का नारी के प्रति दूषित दृष्टिकोण नहीं रहा है। अपने कर्मों के अनुरूप ही नारी अबला-सबला व कलकिनी, दुराचारिणी कहलाती है। धूमिल जीवन के हर क्षेत्र से विकृतियो को उखाड फेकना चाहते थे। अत उन्होंने नारी के इस कुरूप पक्ष को ही विशेषतया उजागर किया है। "प्रहार उन्होने हमेशा कुत्सित और अस्वीकार्य पर ही किया है, सुन्दर व स्वीकार्य पर नहीं, जो मूलत एक विद्रोही व्यक्तित्व के कवि के लिए सर्वथा स्वाभाविक है।"[२४]

आजादी के बाद नगर और उससे जुडी समस्याओ को ही ज्यादा तरजीह दी गयी। गाँव की स्थिति मे कोई खास अन्तर न आया। फलत साहित्य के क्षेत्र मे नगर-बोध से जुडी हुई कविताऍ अधिक दिखाई पडती है। ग्राम्य बोध से जुडी हुई जो कविताऍ लिखी गयी उनमे किशोर भावात्मकता ही विशेष रूप से दिखाई पडती है। अधिकॉश कवियों का प्रारम्भिक जीवन गॉव मे व्यतीत हुआ था। अत गॉव से उनका भावनात्मक लगाव स्वाभाविक था, संघर्ष का साक्षात्कार तो उन्होने नगर मे किया। गॉव से सम्बन्धित उनकी कविताओं में ग्रामीण जीवन व प्रकृति की सहज झाकियॉ ही अधिक मिलती हैं। ग्रामीण जीवन की समस्याऍ एक सीमा तक होते हुए भी उनमे वह गहराई नहीं दिखती जो ग्राम्य जीवन के अन्तसंघर्ष को वाणी दे सके। पर "धूमिल इस स्तर से हटकर गाँव के संघर्षों में गहराई से पैठता है और अपने अनुभव को वाणी देता है। उसका अहसास शहर को गॉव की ओर झुकाने की कारगर कोशिश में हैं। इस अहसास का उद्भव आकस्मिक ही नहीं हुआ। इसके पीछे धूमिल का व्यक्तिगत अनुभव ग्राम-जीवन के गहरे लगाव से एकीकृत होकर अभिव्यक्त हुआ है।"[२५]

कवि धूमिल स्वय सक्रिय रूप से किसानी से जुडे रहे है । उन्होने अपने हाथो बजर भूमि को उपजाऊ बनाया था । उनकी वेशभूषा, बातचीत के ढग मे किसानी की झलक थी । आर्थिक अभावों के कारण मजबूरीवश उन्हे शहर जाना पडा । शहर मे रहते हुए भी वे किसानी जीवन को पल भर के लिए भी नहीं भुला पाते । उनकी कविता का आम-आदमी किसान ही है जो रोजी रोटी की तलाश मे कभी शहर गया जरूर, पर न तो वह शहर की गहमा-गहमी व आधुनिकता को अपना सका और न अपनी किसानी को भूल सका । धूमिल की दृष्टि में किसान ही सम्पूर्ण भारतीय जीवन की आधारशिला है और उसे छोड कविता करने से काव्य के साथ कतई ईमानदारी नहीं बरती जा सकती ।

कवि धूमिल गॉव व किसान की आत्मा से जुडकर वहॉ के लोगो की जिन्दगी व उनकी समस्याओ से साक्षात्कार करते है । उन्हे ग्रामीण जीवन मे इतनी ज्यादा विषमताए दिखाई पडती है कि गॉव के मनमोहक रूप की ओर उनकी दृष्टि ही नहीं जा पाती । गॉव में व्याप्त भुखमरी, सूखा, जमीन-जायदाद के झगडे, जमींदारो-साहूकारो की निर्दयता, कडी मेहनत के बाद भी अभावो मे जीते किसान, उस पर भी पुलिस द्वारा किये जाने वाले अत्याचार, नेताओं की साजिश आदि विषमताये व विडम्बनाये धूमिल की कविताओ के माध्यम से अभिव्यक्ति पाकर गॉव की कठोर वास्तविकता से आम आदमी का परिचय कराकर उनमें मार्मिक संवेदना व आक्रोश पैदा करती है ।[26]

'किस्सा जनतन्त्र', 'हरित-क्रान्ति', 'खेवली', 'मुक्ति का रास्ता', 'ताजा खबर' आदि अनेक कविताओं में कवि धूमिल गॉव की असलियत को अपना सम्प्रेष्य बनाते है । समस्याओं को लेकर वे जागरूक तो हैं, पर कभी-कभी गॉव के लिए बहुत कुछ न कर पाने से उत्पन्न विवशता उन्हे बैचेन करती है । वहॉ फैली सकीर्णता, रूढ़िवादिता, अन्धविश्वास से वे बेहद क्षुब्ध थे । 'अशिक्षा' ही इन बुराइयो व कुरीतियो के लिए जिम्मेदार है, इस बात को वे अच्छी तरह जानते थे । उनकी 'प्रौढ शिक्षा' कविता

अनपढो मे शिक्षा के प्रति लगाव उत्पन्न करने के निमित्त ही लिखी गयी है ।[27]

शहर की अपेक्षा गॉव मे परम्परागत मूल्यो के प्रति अभी भी आस्था दिखाई पडती है । वे उन जड-मूल्यो को भी नहीं छोडना चाहते, जिनसे उनका अपना अहित होता है। अकाल को नियति की इच्छा जानकर चुपचाप झेलने वालो पर कवि व्यग्य करता है -

लोग बिलबिला रहे है/पत्ते और छाल/खा रहे है/

मर रहे है, दान कर रहे है/जलसो जुलूसो मे

भीड की पूरी ईमानदारी से हिस्सा ले रहे है और

अकाल को सोहर की तरह गा रहे है/

झुलसे हुए चेहरो पर कोई चेतावनी नहीं है ।[28]

गॉव मे व्याप्त अन्ध धार्मिक-श्रद्धा लोगो को उनके अधिकारो से विमुख करती है। 'गॉव मे कीर्तन' कविता मे कवि गॉव वालो के इन कृत्यो को लेकर दुखी है । गॉव मे फैली गन्दगी कवि के मन मे वहॉ के लोगो के प्रति खीझ पैदा करती है । उनकी 'गॉव' शीर्षक कविता वहॉ का यथार्थ रूप प्रस्तुत करती है।[29] गॉवो मे व्याप्त दोषो से ही वे केवल परिचित नहीं, वरन् गॉव मे धीरे-धीरे आ रही नवीन-चेतना का आभास उन्हे है । तभी तो उन्हे कल पर विश्वास है -

"कल सुनना मुझे/जब दूध के पौधे झर रहे हो

सफेद फूल/नि शब्द पीते हुए बच्चे की जुबान

पर/और रोटी खायी जा रही हो/चौके में/

गोस्त के साथ/जब। खटकर (कमाकर) खाने

की खुशी/परिवार और भाई चारे मे/ बदल

रही हो—कल सुनना मुझे ।

आज मैं लड़ रहा हूँ।"[30]

मुक्तिबोध की कविताओं मे लोक-संवेदना :-

मुक्तिबोध हिन्दी साहित्य के ऐसे अद्वितीय कवि है, जिनकी कविताए लिखी नहीं गयी है, वरन् स्वय प्रवाहित है । स्वय प्रवहण-शीलता सवेदनाओ की अभिव्यक्ति का दूसरा नाम है । कविता अकृतक होती है, स्वत बहती है और अपनी धारा मे सहृदय को भी अनन्त की ओर बहा ले जाती है । सामन्ती साम्राज्यवादियो की दुर्नीति से श्रमिक वर्ग को मुक्ति दिलाना ही मुक्तिबोध का अपना बोध है । लोक-व्यथा से पीडित मुक्तिबोध रहस्यमय विराट पुरूष के अवतार की कल्पना नहीं करते है वरन् क्रान्ति-पुरूष के जन्म ले लेने की कल्पना करते है । यही क्रान्ति-पुरूष शोषितो के कष्ट को दूर करने मे सक्षम हो सकता है -

"उस कोमल-कोष के पराग-स्तर/पर खडा हुआ/सहसा होता है प्रकट एक/
वह शक्ति पुरूष/जो दोनो हाथो से आसमान थामता हुआ आता है ।"[1]

शोषितो की असहनीय व्यथा से पीडित मुक्तिबोध समन्वयवादी दृष्टिकोण को एक छलावा मानते है । सामन्तवादियों के सहार से ही शोषितो के जीवन का अन्धकार प्रभात का रूप धारण कर सकेगा-

"बिना सहार के सर्जन असम्भव है/समन्वय झूठ है/
जब सूर्य फूटेंगे/वे उनके केन्द्र टूटेंगे/.. . उनके
नाश में तुम योग दो ।"[2]

वे शोषण मुक्त समाज की कल्पना ही नहीं करते है वरन् इसी समाज मे जीना चाहते हैं । मुक्तिबोध दीन-हीन के स्वरो मे यही कहते रहे कि "मै खुद मर मर कर जिया/अंधेरे कोने में एकान्त।"[3] असहाय और निर्बल जनो के जीवन मे सदा अधेरे का साम्राज्य रहता है, जिसके एक कोने में वह मर-मर कर जीता रहता है ।

तथाकथित सभ्य-समाज मे एक बहुत बडा वर्ग- जिसे हम मेहनतकश कहते हैं,

जो सभ्य समाज को जीवन प्रदान करते है और जो उनके चेहरे को अपने खून से सींचकर गुलाब जैसा लाल बनाते है- वे स्वय अधूरी और सतही जिन्दगी के गर्म रास्तो पर चलते रहते है । उनके पैरो के नीचे आग रहती है । वे न ठीक से खडे रह सकते है, न चल सकते है ।

मुक्तिबोध शोषित की व्यथा से इतने पीडित है कि वे कह उठते है कि इनकी व्यथा रूपी कील मेरे पॉव मे धॅसकर प्राणो के भीतर घुसी हुई है । इससे मन शून्य हो गया है । व्रणाहत पैर को लेकर वे दर्द से गर्म छत पर छटपटा रहे है लेकिन उनकी व्यथा को दूर करने मे अपने को असमर्थ पाते है ।[4]

मुक्तिबोध जब व्यष्टि-व्यथा को समष्टि का रूप देते है, तो ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी आत्मा व्यष्टिमूल मे नहीं, वरन् समष्टि की मार्मिक व्यथा के समुद्र मे डूबकर समस्याओं के समाधान के लिए स्वय प्रकाश स्वरूप किसी ऐसे रत्न को ढूँढती रहती है जो व्यथित के लिए वरदान बन सके ।

मुक्तिबोध का हिन्दुस्तान एक ऐसा दीन व्यक्ति है जिसके शरीर के मॉस को शोषितों ने खा डाला है । वह सूखी हुई अस्थियो के सहारे हिलता हुआ चलता है । उसे तन ढँकने को वस्त्र प्राप्त नहीं होता है । वह रास्ते पर बिखरे हुए चावल के दानो को लपककर बीनता रहता है-

"सूखी हुई जॉघो की लम्बी-लम्बी अस्थियॉ
हिलाता हुआ चलता है
लॅगोटी धारी यह दुबला मेरा हिन्दुस्तान
रास्ते पर बिखरे हुए
चावल के दानों को बीनता है लपककर ।
मेरा सॉवला इकहरा हिन्दुस्तान ।"[5]

इस कविता मे 'लपककर' शब्द दीन, भूखे व्यक्ति की क्षुधा की तीव्रता को अभिव्यक्त करता है। वह रास्ते पर पडे हुए धूल-धूसरित चावल के दानो को लपककर इसलिए उठाता है कि उसे कोई दूसरा न उठा ले ।

मुक्तिबोध सभ्य समाज को 'बीमार समाज' कहकर गर्भपात जैसे कुकृत्यो पर अत्यन्त सवेदनशील हो जाते हैं[6] वे नारी के शोषण को अत्यन्त मर्मस्पर्शी रूप मे चित्रित करते है । ममतामयी मॉ झरने के तट पर अपने नवजात शिशु को समाज के भय से छोड जाती है किन्तु मुक्तिबोध की सवेदना सहसा जग कर ॲधियारे, सुनसान स्थान से उस अनुभव-बालक को अपनी गोदी मे उठा लेती है और अति प्रसन्न होकर उसे अपने घर ले आती है।[7] कवि अपनी खिडकी से डूबते हुए चॉद को देखना चाहता है। इसके डूबने पर ही शोषित, दलित दीन-हीन जन की रक्षा हो सकेगी । सभ्य समाज के द्वारा शोषित नारी के तन-मन दोनो वाष्प बन कर कुहरे का रूप धारण कर लेते हैं ।[8] सामन्तवादी घराने की जागीरदार बूढी सास जैसे विद्रोहिणी विधवा बहू की पीटी गयी पीठ पर बैठकर गर्म-गर्म लोहे की शलाका से पीठ को दागती है, उसी प्रकार जन-जन की व्यथाओं की आग ने मुक्तिबोध के हृदय को दाग दिया है ।[9]

मुक्तिबोध- "गुँथे तुमसे बिंधे तुमसे" शीर्षक कविता के द्वारा शोषित जनो से अपने आत्मिक सम्बन्ध को अभिव्यक्त करते है । जलधि, पर्वत तथा हजारो मील की दूरी शोषितों के प्रति कवि की संवेदना के कोमल ततु को किसी प्रकार नहीं तोड सकती है क्योंकि वे सवेदनाऍ शब्द मात्र नहीं है वरन् वे मुक्तिबोध के मस्तिष्क-कोष और हृदय के रूधिर-कोषों में एकाकार हो गयी हैं ।[10]

सृष्टि के प्रारम्भ से शोषित दीन जनो के उद्धार की बात कही जा रही है, किन्तु उनके उद्धार के स्थान पर उनका संहार ही हो रहा है । स्वतन्त्र भारत में अमीर व गरीब की बीच की दूरियॉ बढी ही हैं । मुक्तिबोध का हृदय गरीबों, शोषितों और दलितों

के लिए है । ये अपने काव्य के माध्यम से अपने हृदय के व्रण रूप शोषितो का उद्धार चाहते है । ये हरिजन बस्ती की गलियो मे पेड पर लटकी हुई कुहासे के भूतो की सावली चुनरी देखते है । उस चुनरी मे टेढे मुँह वाले चॉद (शोषक पूँजीपति) की कजी ऑखे और गजा सिर अटका हुआ है जो हरिजनो को भयाक्रान्त कर रहा है ।[11]

मुक्तिबोध गरीब, फटेहाल, भूखे किन्तु मुस्कराते चेहरो के बीच जोर से ठहाका लगाकर उनमे घुल-मिल जाने वाले कवि है।[12] मुक्तिबोध भक्त-प्रहलाद[13] की भॉति अकेले की मुक्ति नहीं चाहते है, वरन् वह सबके (दीन-दु खी आदि) साथ ही मुक्ति चाहते है- “याद रखो/कभी अकेले मे मुक्ति न मिलती/यदि वह है तो सबके साथ है।[14] ‘गुथे तुमसे विधे तुमसे’ शीर्षक कविता यह अभिव्यक्त करती है कि मुक्तिबोध मजदूर-शोषितो की आत्मा है । वे उन्हीं के साथ जल-रूप द्युति-निष्कर्ष को पीना चाहते है।[15] यह द्युति-निष्कर्ष क्रान्ति का प्रकाश है जो मध्यम वर्ग के लोगो से प्राप्त नहीं हो सकता है वरन् शोषित मजदूरो से ही हो सकता है । “इसी बैलगाडी को” शीर्षक कविता मे मुक्तिबोध किसान की बैलगाडी को स्वय हॉकते हुए किसान के दु ख-दर्द को अपना दु ख समझते हैं।[16] मुक्तिबोध जैसा विश्व का कौन कवि होगा जो भूखी-मुख-छवियो, रास्ते के कागज खाती गाए, घूरे पर अन्न बीनती गरीब मॉऍ और गन्दे कराह को मॉजते हुए बालक के चेहरे को देखकर मुँह तक गये कौर को फेक देगा, भूखे लेटकर फटे कण्ठ से रूदन करेगा और तडित बनकर बालको के हाथ से मैले बर्तनो को छीनकर स्वय मॉजने लगेगा। सभ्यता के अधेरे भयानक कारागार को तोडने की शक्ति रखने वाला कवि अपने रगो (गरीब शोषित मजदूरो) को खोजता हुआ कहता है कि हरिया-तूता, आक, धतूरा (काले मजदूर, उपेक्षित, शोषित, दलित जन) ही काम आयेगे । श्री हीन दीन के साथ ही कवि अपना जीवन बिताना चाहता है, उनके बिना उसके लिए आसमान बंजर रहेगा और सारी जमीन उजडी होगी ।[17]

"भाग गयी जीव" कविता के माध्यम से मुक्तिबोध झोपडी के जीवन को स्वीकार करते है, जहॉ उन्हे ठण्डे प्याऊ पर स्नेहिल जल मिलता है जिसमे हृदय और प्राण का अनमोल माधुर्य मिला होता है।[18] 'समय के मारे हुए' जन मुक्तिबोध के ही प्रिय हो सकते है, किसी अन्य के नहीं-[19] "जिन्दगी का रास्ता" शीर्षक कविता मे गरीव रामू के रूप मे लोक की सवेदनाओ मे डूब जाने वाला कवि गरीबिन मॉ के द्वारा बेचे हुए तथा क्रेता के द्वारा मार खाकर काम करते हुए पॉच वर्ष के बालक को देखकर दु ख के समुद्र मे विमज्जित हो जाता है। उस फटेहाल बालक को न ममताभरी पुचकार मिली, न पढने का अवसर ही प्राप्त हुआ।[20] रामू रूप लोकजन दिनरात काम करता रहता है पर किसी को उस पर करूणा नहीं आती।[21] 'मुक्तिकामी पैरो के मोच की चीख' कविता मे मुक्तिबोध की सवेदना लोक जीवनकी रक्षा के लिए व जानवरो (पूॅजीपतियो) के विनाश हेतु अपनी अस्थियो के अस्त्र बन जाने पर अपने को सफल मानती है ।[22]

मुक्तिबोध पूॅजीवाद के घोर विरोधी हैं । 'मेरे लोग' कविता मे वे पूॅजीवाद के विरोध में कहते हैं-"यह साफ गहरा दूधिया करता/व चूने की सफेदी मे चिलकते से सभी कपड़े निकालूॅगा"।[23] 'चॉद का मुॅह टेढ़ा है' कविता मे कवि का चॉद पूॅजीवादी व्यवस्था या पूॅजीवाद का प्रतीक है । यह चॉद टेढ़े मुॅह वाला है । इससे अमृत की अभिलाषा करना अपने को वञ्चना के दलदल मे फॅसाना है । यह तो दलितो पर सर्वदा विष उगलता रहता है-

"नगर के बीचो-बीच

आधी रात- ॲधेरे की काली स्याह-

x x x x

चाँद का मुँह टेढ़ा है

x x x x

धरती पर चुपचाप जहरीली छि थू है ।"[24]

कवि की दृष्टि मे चॉदनी आवारा मछुओ या शोहदो के समान है, जो पेडो के नीचे बैठकर मछलियो को फॅसाती रहती है । यह चॉदनी पूॅजीपति के लिए भले ही सुधा हो, किन्तु कवि की दृष्टि मे वह चोर और उचक्का ही है।[25] इस कविता मे कवि ने पूॅजीवाद की क्रूरता का मार्मिक चित्रण किया है । गाधी और तिलक के पुतले पर बैठे हुए घुग्घू (उल्लू) आपस मे बात कर रहे है । गाधी के पुतले पर बैठा हुआ उल्लू कहता है– " .. मसान मे/मैने भी सिध्दि की/देखो मूठ मार दी/मनुष्य पर इस तरह -- /तिलक के पुतले पर बैठे हुए घुग्घू ने/देखा कि भयानक लाल मूठ/x x x x/देख उसने कहा कि वाह वाह/x x x x/रात्रि की अधियारी सचाइयॉ घोरके/मनुष्यो के मारने के खूब है ये टोटके "।[26]

उल्लू लक्ष्मी का वाहन होने से पूॅजीवाद का प्रतीक है । पूजीपति उल्लू की भॉति दिन मे अधा होता है, वह रात्रि मे ही देखता है । अहिसा के प्रतीक गॉधी के पुतले पर बैठकर उल्लू का 'मूठ मारना' यह सिद्ध करता है कि गॉधी का 'अहिसावादी सिद्धान्त' एक अर्थहीन पुतला मात्र है । उसके सिर पर बैठकर पूॅजीपति हिसा का नग्न ताण्डव करता रहता है ।

ये पूॅजीपति दीन-दुखियो की फूस की झोपडियो को अपनी एक फूॅक से उडा देते हैं। पसीने की बूदो से बनाये गये उनके घर क्षण भर मे जमींदोज हो जाते है । उनकी जिन्दगी झुलसी हुई पुरानी रूई के टुकड़ो सी हो गयी है जो किसी काम मे नहीं आ सकती । शोषकों के अत्याचारों ने गोद के शिशुओ को टोकरी मे जडीभूत कर दिया है।[27] मुक्तिबोध की दृष्टि में शोषितों की जिन्दगी खण्डहर बन गयी है लेकिन उनके हृदय मे शक्तिशाली विचारों की लहलहाती तुलसी आज भी खड़ी है।[28] मुक्तिबोध देख रहे हैं कि

पूँजीवादी शक्तियाँ शासन के चाकू से विद्रोहिणी लोक-बुद्धि की त्रिकालदर्शी ऑख को काटकर निकालने का प्रयास कर रही है किन्तु उनमे इतना उत्साह भर गया है कि उनके प्रयास को वे निष्फल करने के लिए ललकार रहे है।[29] कवि को पूँजीवाद के गगन की कालिमा से मुक्ति की सुबह का इन्तजार है-"सुबह होगी कब और/मुश्किल होगी दूर कब/समय का कण-कण/गगन की कालिमा से/बूँद-बूँद चू रहा/तडित उजाला बन "।[30]

ग्रामीण जन के प्रति सवेदनशील मुक्तिबोध को ग्राम्य-धरती सदैव आकर्षित करती रही है । इसीलिए उनकी कविता ग्राम्य-धरती के हृदय पर जलते हुए कण्डे की लाल आग से जन्म लेती है, जिसकी ऑच पर गरीब किसान अपनी टिक्कड (बट्टी) सेकते है। इस टिक्कड से निकलने वाली सुगन्ध ईमान की भाप बनकर आत्मा मे फैलती रहती है ।[31] कवि अपनी क्रान्ति को ग्राम्य जीवन की बैलगाडी के रूप मे प्रस्तुत करता है । इनकी क्रान्ति की बैलगाडी ऊँचाई पर जाना चाहती है किन्तु-"पहाडी ढलान की/अधेरी ऊँचाई मे/प्रभीषण एक मोड पर/बैल जब बिचक गये/झाडी मे जा फॅसी/गाडी यह हमारी/व हम खड्ड में जा गिरे/"[32]-इनकी गाडी के खींचने वाले जब ऊँचाई पर चढने मे असमर्थ हो जाते है तब इनकी गाडी गड्ढे मे गिर जाती है और गाडी हाकने वाले क्रान्ति नेता के ललाट पर सूजन की छोटी सी टेकडी निकल आती है किन्तु वह हार नहीं मानता है । इस दुख की घडी मे उसके अग हवाओ से खेलते रहते है । वह चॉद, तारे, आसमान को सहचर मानकर आगे बढ़ता रहता है ।

'ओ चीन के किसानों' कविता ग्राम्य-माटी की महक से आपूरित है । सूरज की किरणें जब गेहूँ का रूप धारण कर लेती है तब किरणो मे गेहुँआपन आ जाता है । तब आकाश का धरा पर पूर्णत समापन हो जाता है।[33] इस कविता का मूल कथ्य यह है कि जब तक पूँजीवाद रूपी आकाश धरती पुत्रो की आत्मा मे मिलकर धरती पुत्र नहीं बनेगा तब तक सुख शाति की प्राप्ति असम्भव है । मुक्तिबोध पहाड को केवल प्रकृति का

उपादान ही नहीं मानते है वरन् इसे सुखी (हृदयहीन), कठोर (निर्दय) और नगी (बर्बर-क्रूर) पूंजीवादी व्यवस्था के रूप मे देखते है। इन्द्र ने भी इनके पर काटे थे । इसलिए वे भी इसे इतिहास के समुद्र मे फेकने के लिए मजदूर नेता को उत्साहित करते है ।[34]

मुक्तिबोध ने चन्द्रमा को पूँजीवाद का प्रतीक माना है किन्तु एक स्थल पर चन्द्रमा लोक' का प्रतीक है जिसे राहु-केतु रूपी पूँजीवाद ग्रस रहा है । इसीलिए लोक रूपी शशी को ग्रसने में मग्न सौ राहु-केतु रूपी पूँजीवाद को वे नष्ट कर देना चाहते है।[35] फासिज्म और पूँजीवाद के विरोध मे लिखी गयी 'अधेरे मे' शीर्षक कविता प्राकृतिक ॲधेरे के क्रूरतम स्वरूप को अभिव्यक्त करती हुई सर्वहारा वर्ग को एकता के सूत्र मे बाध कर मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी वर्ग की जड़ता को तोड़ने का प्रयास करती है।[36] मुक्तिबोध की सध्या उदासी का रग लेकर उतरती हुई पर्वतों के पास जाती है।[37] ग्रामीणो के घर-घर मे लहलहाता हुआ तुलसी बन भी मुक्तिबोध के लिए प्राकृतिक वरदान नहीं है वरन् वह जन क्रान्ति है जो शोषितो के घर-घर में लहलहा रही है, 'परन्तु वह मारी-मारी फिर रही है।[38] मालव निर्झर की झर-झर कंचन रेखा' कविता में कवि ने प्रकृति के विभिन्न चित्रो का जो रूप प्रस्तुत किया है वह अपने आप मे अद्वितीय है । उगता हुआ अरूणिम सूर्य, तालाब, कुएँ अथवा झील का वर्णन मानवीय सवेदना की वह परिणति है, जहॉ मानवता के वास्तविक रूप का दर्शन होता है।[39] मुक्तिबोध ने 'सूरज के वशधर' कविता मे जहॉ एक ओर ग्राम्य जीवन और प्रकृति के कोमल भावो के सुन्दर सामजस्य को प्रस्तुत किया है। वहीं दूसरी ओर उनके हृदय की जनक्रान्ति ज्वालामुखी सा विस्फोट करती रहती है

" मन की रातरानी महक उठती है अकस्मात्/बस्ती मे झिलमिलाते दिये लग गये हैं/कि जिनके प्रकाश में/शायद कुछ विद्यार्थी कुछ पढ़ रहे हैं । .... सुनहली कॉंपती सी सिर्फ एक लहर रह जाती है/कि जिसे क्रान्ति कहते है/कि कहते है जन क्रान्ति "।[40]

जीवन चिन्तन से लेकर काव्य चिन्तन तक मार्क्सवादी दर्शन के प्रभाव मे रहने वाले मुक्तिबोध रूढिवादी भारतीय सास्कृतिक-परम्पराओ, विश्वासो, मान्यताओ और रीति रिवाजो के प्रति अनास्थावान् रहे है । वे भारतीय दर्शन के 'निष्कामवाद' का प्रबलतम विरोध करते है । उनकी दृष्टि मे निष्काम कर्मवाद का दर्शन मानवीय सभ्यता के चेहरे पर गुलाबी पाउडर के नीचे छिपे चेचक के बडे-बडे दाग की भॉति है ।[41]

मुक्तिबोध को भारतीय सस्कृति के सुवासित वस्त्रो के अन्दर की देह वासी (सडी हुई) नग्न और बर्बर प्रतीत होती है । इतना ही नहीं, वह सवेदनाहीन होने के कारण सूखी हुई है, मानसिक रोग से ग्रस्त है तथा पञ्जर ही पञ्जर है । यह सस्कृति एक तिलस्मी चक्रव्यूह का निर्माण करती है, जो सभ्यता के नियमो से संचालित होती है । भारतीय सस्कृति की चक्की मे बंधी हुई उस गर्भवती नारी को देखकर मुक्तिबोध का हृदय द्रवित हो जाता है जो वजनदार घडों से पानी भरती रहती है, कपडो को जोर-जोर से पटककर धोती रहती है और घर के काम करके पुत्रो के लिए मजदूरी भी करती है ।[42]

मुक्तिबोध मानवशक्ति व जनक्रान्ति को ही महत्तम शक्ति, विराट्शक्ति मानते है– "हवा मे लहराती सुनहली ज्वाला एक / रेंगती सी मेरे पास / धीरे-धीरे आती हुई। आसमान छूती हुई व धरती पर चलती हुई/बिखराकर नीले स्फुलिग समूह/वह बनती है अकस्मात विराट मनुष्य-रूप -- मुझमे समा गयी कि/उसमे समा गया मैं/सुनहली कॉपती सी सिर्फ एक लहर रह जाती है / कि जिसे क्रान्ति कहते है "।[43]

'इस नगरी' कविता में कवि ने आदर्शो की खूब खिल्ली उडायी है।[44] "एक प्रदीर्घ कविता का प्रस्ताविक" कविता मे मुक्तिबोध मार्मिक पीड़ा के साथ कहते है कि- क्रान्तिकारी अपना सब कुछ न्यौछावर कर- "अपने तन-मन की दृढता के पत्थर-/ईटों से, प्राणों के लोहे के गाडर से/हृदय-रक्त-मस्तिष्क-रक्त/के गारे चूने से, खाई पर भव्य बनाया/अति विशाल मजबूत एक पुल"[45]-तब अन्याय का अन्त होगा ।

'एक अरूप शून्य के प्रति' कविता के माध्यम से मुक्तिबोध ने ईश्वर की सत्ता का विचित्र उपहास किया है । वह कहते है कि 'मुझे बिल्कुल तेरी जरूरत नहीं है।[46] उन्हे भारतीय-संस्कृति और विचार के प्रत्येक सूर्य के भीतर काले धब्बे ही दिखाई देते है । इन धब्बो के विवरतल मे से गिद्धो का समूह (अत्याचारीगण) निकलकर पृथ्वी तल के साधारण जनो की ऑख और उनके क्रान्तिकारी विचारो को नष्ट करने का प्रयास करते रहते हैं ।[47]

मुक्तिबोध आम-आदमी को जड बना देने वाली रूढियो व रीतियो को तोड़ने के लिए ही मानो अवतरित हुए थे । उनकी दृष्टि मे इस पृथ्वी पर दो ही प्रकार के लोग रहते हैं एक शोषक वर्ग और दूसरा शोषित । वे धार्मिक और आध्यात्मिक अन्धविश्वासो से मुक्त थे । वे जानते थे कि शासक वर्ग आध्यात्मिक और धार्मिक अन्ध-विश्वासो के अमृत घूँट पिलाकर भौतिकवादी विरोध की चेतना को छल से कुचल देना चाहता है। वे कहते है -"इतने मे दसवीं मञ्जिल की सफेद छत पर से/शिम्पैजी/आता है सामने/हाथ मे एक बडा पपीता है/दूसरे मे पुस्तक है गीता है/पढता है जोर से/सब लोग तमाशा देखते है शोर/सुनते हैं, जगत थरथराता है -- क्योकि आध्यात्मिक चोगे सब/अकादमी कुर्सी पर सुशोभित है ।"[48] उन्होने इन पक्तियो मे यह बताया है कि धर्म और अध्यात्म पूँजीवादी व्यवस्था के ऐसे अस्त्र हैं जिनके द्वारा शोषितो की क्रान्तिकारी शक्ति को दबाया जा सकता है । इसलिए वे इन मान्यताओ के विरोधी रहे है ।

धार्मिक मान्यताएँ सम्प्रदाय को जन्म देती है । भारत मे विभिन्न धर्मो को मानने वाले लोग हैं, अत यहॉ विविध सम्प्रदाय है । ये सम्प्रदाय धर्म के नाम पर लोगो की एकजुट होने की मनोवृति पर प्रहार करते है । भारत की अनपढ व कम पढी लिखी जनता तथाकथित सम्प्रदायवादियो की दुर्नीति को न भॉप सकने के कारण शीघ्र ही धर्म के रूढ़िगत बन्धनों में फँसकर अपनी प्रगति के मार्ग को अवरूद्ध कर देती है । इसी कारण

मुक्तिबोध इन धार्मिक सम्प्रदायो के प्रबल विरोधी रहे है । उनका मानना है कि धर्म-सम्प्रदाय किसी न किसी रूप मे आम जनता का शोषण करते रहते है । वे 'ओ काव्यात्मक कविधर' कविता मे उस ब्रह्मदेव का- जो (निज अङ्कशायिनी दुहिता-पत्नी सरस्वती/या विवेक घी)[49] स्वय अदृश्य रहकर विवेक घी के द्वारा धनी को धनी व निर्धन को और निर्धन बनाता रहता है- उपहास करते है "एक अरूप शून्य के प्रति" कविता मे उन्होने धर्म और दर्शन के द्वारा दिखाये जाने वाले उस आत्म के प्रकाश को खण्डित किया है जिसके माध्यम से उसके पुरोधा एक सम्प्रदाय खडा कर एक-दूसरे को अपमानित करते हुए समाज मे घृणा-द्वेष को जन्म देते है- "देखो तो-/प्रतिपल तुम्हारा नाम जपती हुई/लार टपकाती हुई आत्मा की कुतिया/स्वार्थ सफलता के पहाडी ढाल पर/चढती है हॉफती/आत्मा की कुतिया/राह का हर कुत्ता जिसे छेडता है, छेकता/लेकिन तुम खूब तो/सूनेपन के द्रोह मे ॲधियारी डूब हो ।"[50]

वस्तुत· मुक्तिबोध धर्म-सम्प्रदाय व जातिगत रूढियो से पूर्णतया मुक्त थे । वे "लठधारी बूढे से पटेल बाबा/ऊॅचे से किसान दादा/वे दाढीधारी देहाती मुसलमान चाचा और बोझ उठाये/मॉए बहन बेटियॉ" सबको सलाम करते थे और "ऑसुओ से तर होकर प्यार के" सबसे गीला-गीला मीठा आर्शीवाद चाहते थे।[51] कवि को काल-मूर्ति क्रान्ति शक्ति से युक्त वह लुहार ही प्रिय है जो पूॅजीवाद पर अपने प्रचण्ड हथौडे से चोट कर रहा है । उसकी भव्य देह में ये विराट क्रान्ति-पुरूष का दर्शन करते है ।[52]

मुक्तिबोध भली-भॉति जानते है कि समाज के दु ख-दैन्य-कष्ट को मात्र दया-माया-ममता से नहीं, वरन् वैज्ञानिक-सामाजिक उपायो से दूर किया जा सकता है। आध्यात्मिक धरातल पर भी उन्हे मिटाया नहीं जा सकता । "व्यक्तिवाद, दार्शनिक क्षेत्र मे आत्मा को प्रधानता देकर भाववादी तरीके से ससार की ओर देखता तथा उसकी व्याख्या करता है । इसीलिए वह ·किसी भी मूलभूत सामाजिक समस्या का सदा-सर्वदा के लिए

निराकरण नहीं कर पाता।"[53] ऐसी भौतिकवादी विश्व-दृष्टि रखने वाला कवि धर्म व आध्यात्म के बन्धन मे कैसे बॅध सकता है ।

वस्तुत मुक्तिबोध को मिली भौतिकवादी विश्व-दृष्टि ने उनमे विवेक की वह अग्नि प्रज्वलित की, जो उन्हे समाजवाद, मानववाद की स्थापना के लिए सतत् प्रयत्नशील रखती है । उन्होने जीवनानुभव और जीवन-चिन्तन के समुद्र मे डूबकर इस विश्वदृष्टि रूप अद्वितीय रत्न को ढूढा था ।

साधारण श्रमशील लोगो के बीच अपने जीवन को व्यतीत करने वाले मुक्तिबोध के हृदय मे विश्व का दलित समूह समाया है । इसीलिए वे सर्वदा अपने हृदय के द्वार को खटखटाते हुए निश्चयात्मक सकल्प करते रहते है ।[54]

रघुवीर सहाय की कविताओ में लोक संवेदना :-

सन् १६४७ मे कवि 'बच्चन' की वेदनापूर्ण कविताओ से प्रभावित होकर[1] काव्य रचना की ओर प्रवृत्त होने वाले कवि रघुवीर सहाय की प्रारम्भिक कविताओ मे प्रकृति-प्रेम व पीडा के स्वर प्रमुख रूप से दिखाई पडते है । स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त कवि को यह आशा थी कि देश की स्थिति मे कुछ सुधार होगा[2] और शताब्दियो से शोषित कृषकों, मजदूरों और मेहनतकशो की दयनीय दशा मे अभूतपूर्व परिवर्तन होगा लेकिन स्वतन्त्र भारत की कल्पनातीत आडम्बरशीलता, मिथ्यावादिता, सर्पग्रासी स्वार्थ लिप्सा, सहानुभूति हीनता और सामाजिक कार्यो के प्रति उदासीनता ने कवि को इतना मर्माहत किया है कि इन विद्रूपताओ को अभिव्यक्त करने के लिए इनकी लेखनी मे सवेदनशीलता अपने आप प्रस्फुटित हो गयी । रघुवीर सहाय की ऑखो के सामने स्वतन्त्र भारत के बीस वर्ष बीत गये किन्तु मनुष्य की लालसा तिल-तिलकर मिटती चली गयी **(-"बीस बरस बीत गये/लालसा मनुष्य की तिल-तिल कर मिट गयी ।")**[3] **सर्वत्र मक्कारी** व आडम्बरपूर्ण जीवन दिखाई पड़ रहा है-("बाध मे दरार/पाखण्ड वक्तव्य मे/घरतौल

न्याय मे/मिलावट दवाई में/नीति मे टोटका/अहङ्कार भाषण मे/ सघ रहे सघ रहे उसने कहा/भारत का/चाहे हर भारतीय हर भारतीय का गुलाम रहे)[4]

शासको के अन्याय से संपीडित सामान्य व्यक्ति के प्रति रघुवीर सहाय अत्यन्त सवेदनशील रहे है। पाखण्ड जन्य अनैतिक कार्यो को देखकर कवि 'आत्महत्या के विरूद्ध' मे मारे गये अनाथ लडके के विषय मे कह उठता है- "एक शब्द कहीं नहीं कि वह लडका कौन था/क्या उसकी बहने थीं/क्या उसने रक्खे थे टीन के बक्से मे अपने अजूबे/वह कौन कौन से पकवान/खाता था/एक शब्द कहीं नही एक वह शब्द जो वह खोज/रहा था जब वह मारा गया।"[5]

रघुवीर सहाय एक-एक दृश्य को बहुत बारीकी से देखकर उसे अपनी कविता के शब्दो मे बॉधते हैं । फटेहाल जीवन जीने वाला बूढा मिस्त्री और उसका बीस-वर्षीय पुत्र नरेन यह जानकर भी कि पेच की चूडिया मरी हुई है, फिर भी उसे किसी मजबूरी मे कस रहे है।[6] इस कसावट में एक ओर शासन पर प्रहार है और दूसरी ओर दुर्बल मनुष्य के मेहनती हाथो की विवशता है । रघुवीर सहाय विकृत व्यवस्थाओ से पीडित उस असहाय मरीज का अत्यन्त सवेदनापूर्ण चित्रण करते है, जिसका तीमारदार उसे अस्पताल में छोडकर घर नहीं जा सकता क्योकि उसका अता-पता बताने वाला भी कोई न मिल सकेगा (अस्पताल मे मरीज को छोडकर आ नहीं सकता है तीमारदार/दूसरे दिन कौन बतायेगा कि वह कहॉ गया/)[7] रघुवीर सहाय की दृष्टि मे उन मजदूरो की पीडा समायी हुई है जो नेताओ के लिए कुर्सी ढोते है किन्तु उन्हीं के द्वारा अपमानित व निष्काषित होकर एक कोने मे बैठे हुए अपमान के विष को निगलते रहते है-"निष्काषित होते हुए मैंने उसे देखा था/जयपुर अधिवेशन जब समेटा जा रहा था/जो मजूर लगे हुए थे कुर्सी ढोने में/उन्होंने देखा एक कोने में बैठा है/अजय अपमानित/वह उसे छोड़ गये/कुर्सी को/सन्नाटा छा गया "।[8]

रघुवीर सहाय उन असाधारण कवियों में है जिनकी लेखनी के गागर से सवेदना की सागर-लहरियॉ निकलती हुई अभिमानी आकाश को चूर-चूर कर देना चाहती है । असहाय स्त्री को अपने बच्चे को गोद में लेकर पूँजीवादी व्यवस्था की चलती हुई क्रूर बस मे घिसटते हुए चढते देखकर कवि अपने को भी उसके साथ घिसटता हुआ पाता है। (वच्चा गोद मे लिए/चलती बस मे/चढती स्त्री/और मुझमे कुछ दूर तक घिसटता जाता हुआ/)।[9] अकाल के दुर्दिन मे बाप कटोरे के पेदे मे पडे हुए भात को गोद मे लेकर बैठा है और बच्चा फर्श पर पडा है । भूख ने उसकी ममता को ब्रज बना दिया है-(कटोरे के पेदे मे भात/गोद मे लेकर बैठा बाप/फर्श पर रखकर अपना पुत्र/खा रहा है उसको चुपचाप)।[10] 'कैमरे मे बंद अपाहिज'[11] शीर्षक कविता में रघुवीर सहाय एक अपाहिज के साथ दिखायी गयी 'दिखावटी सहानुभूति' से अति दु खी है । 'आजादी' शीर्षक कविता मे कवि अत्यन्त प्रभावी शब्दो मे देश मे बढती मूल्यहीनता की स्थिति पर कटु प्रहार करते हुए कहता है- "देश मे बर्बरता/हत्याये चीथडे खून और मैल आज भारतीय सस्कृति के मूल्य है/और दया करते है लोग यह जानकर कि कष्ट अनिवार्य है/दया के पात्र को ।"[12]

लोकतान्त्रिक देश की इस स्थिति से दु खी रघुवीर सहाय की कविताऍ पूँजीवाद के विरोध में खडी होकर नये समाज के सृजन के लिए तत्पर रहती है । कवि ऐसे सेठ को 'श्रद्धाञ्जलि' देने के लिए तैयार है जो हक मॉगने वालो की बात न सुनकर अपने सॉसो की परीक्षा से अपने भाग्य को गढता रहता है- "जब कोई अपना हक मॉगने जाता था/सेठ जी -- नथुनों की सॉस को/उँगली पर जॉचने लगते थे।"[13] ऐसे पूँजीवादी सत्ताधारियों की विद्रूपता व खोखले वक्तव्य को व्यंग्यपूर्ण शैली में अभिव्यक्त करते हुए वे कहते है- "महासघ का मोटा अध्यक्ष/धरा हुआ गद्दी पर खुजलाता है उपस्थ/सर नहीं/हर सवाल का उत्तर देने से पेश्तर/बीस बडे अखबारों के प्रतिनिधि पूँछे पच्चीस बार/क्या हुआ समाजवाद/कहे महासंघपति पचीस बार हम करेंगे विचार/ऑख मारकर

पचीस बार वह, हँसे वह, पचीस बार/हँसे बीस अखबार।"[14] पूँजीवाद अपने ससार की सरचना के लिए सामूहिक हत्या करके भी बचा रह जाता है । उसकी समाज मे पहचान बनी रहती है । पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध करने वाला जब पहचाना जाता है तब मार दिया जाता है।[15] पूँजीवाद शोषित जनो के बचपन और उसके अधेडपन को अपने क्रूर हाथो से नष्ट कर देता है- "और आज जो बचपन मे उस गुलामी मे पिसते है/जिसमे पिसते थे हम इस शोषक सभ्यता मे शासक पक्ष मे/मिल जाने के पहले/उनसे हम कहते है देखो हमको देखो हम पर विश्वास करो/हमने भी बचपन मे दु ख उठाये है ।"[16]

रघुवीर सहाय की कविता मे दीन-दु.खियो, शोषितो और उपेक्षितो के प्रति मिलने वाली संवेदना उनके आम-आदमी के जीवन मे प्रविष्ट होने की सूचना देती है । ताकतवर आदमी कमजोर को ढूँढकर अपना स्वार्थ सिद्ध करता रहता है । उसकी हिसा राजाश्रित और क्षमादान प्राप्त होती है, तभी वह खुलकर अन्याय करता रहता है - "ताकतवर लोग खोजते है कमजोर को/एक तरफ अस्पताल, झोपड़ी हजार वर्ष से वचित जाति वर्ग, लाश, लुटे लोग/ढहे घर दुआर जिसको वे आश्रय दे और/दूसरी तरफ चित्रकार जो अपने खून से/कागज पर उनकी तस्वीर ऑके/जन के मन भय भरे ।"[17]

पूँजीवादी व्यवस्था का साम्राज्य सर्वत्र व्याप्त है । रघुवीर सहाय "पहले आप" शीर्षक कविता के माध्यम से यह व्यक्त कर रहे हैं कि 'पहले आप' की संस्कृति गरीबो को अपना हक छोड़ देने के लिए विकसित की गयी है । डाक्टर, जिसकी दृष्टि मे सभी रोगी समान हैं, के यहॉ पहले सम्पन्न व्यक्ति ही प्रवेश करते है, गरीब मरीज खडे-खड़े डरता रहता है- "देख लो गरीब मरीज खड़े डरता है कि कुछ सजे-धजे लोग/डागदर के कमरे में पहले से घुस गये ।"[18]

'भीड़ में मैकू और मैं' कविता के माध्यम से उन्होंने एक ओर पूँजीवादी व्यवस्था का वैभवशाली चित्र खींचा है, तो दूसरी ओर अकाल में मरने वाले सामान्य जनों की

भीख मॉग रहा है।[23] इस कविता मे कवि ने किसानो के प्रति अपनी सवेदना को अभिव्यक्त करते हुए शोषको के प्रति घृणा को व्यञ्जित किया है । किसानो के प्रति अपनी सवेदना को बडे ही मार्मिक शब्दो मे व्यक्त करते हुए उन्होने कहा– "शहर की निगाह मे गॉव के लोग 'दूसरे' है– एक वस्तु है, लोग नहीं और बहुत है तो सरकारी अनुदान के पात्र और सास्कृतिक कौतूहल के विषय है -- ।" गॉवो से भरे भारत जैसे देश मे औद्योगिक सस्कृति का अधकचरा विकास हो और वह मानसिक जडता की भारतीय परम्परा से गठबन्धन कर ले तो रचनात्मक सवेदना की बहुत बडी क्षति कर सकता है।[24] रघुवीर सहाय यह स्वीकार करते है कि गॉव से जुडा व्यक्ति ही सब मनुष्यो को एक समान समझ सकता है । वस्तुत. गॉवो मे जो प्रेम और शान्ति का वातावरण है वह शहरो मे नहीं है ।[25]

खेत की मेड पर खड़े होकर दूर-दूर तक फैली रेत को देखने वाले[26] रघुवीर सहाय यह नहीं स्वीकार करते कि ग्रामीण कृषक या मजदूर एक अलग जन्तु है और शहर का एक अलग जन्तु है, गॉव मे रहने वाला छोटे दिमाग का, सङ्कीर्ण बुद्धि का और शेष ससार से मतलब न रखकर केवल अपनी खेती से मतलब रखने वाला है ।[27] वस्तुत किसान के पास इतना समय नहीं है कि उसका दुरूपयोग करे । वह दिन-रात खून-पसीना एक करके अपने खेतो मे ही लगा रहता है । उसके लिए दिन-रात, सर्दी, वर्षा और धूप का कोई महत्व नहीं है ।

रघुवीर सहाय की सूक्ष्मदर्शिनी दृष्टि ने ग्रामीण किसानो की सही तस्वीर पेश करते हुए कहा है कि गॉवो का आम आदमी भय के वातावरण मे सॉस लेता है । सरकार के नजदीक रहने वाले ग्रामीण प्रसन्न है । गॉव के लोग प्रत्येक स्थिति मे- चाहे वे जीवित रहें या मुर्दा हो जाएं, इंसान की गरिमा की रक्षा के लिए संघर्ष करने की क्षमता रखते हैं। उनमे आर्थिक और सामाजिक भाईचारे की समझ रहती है । रघुवीर सहाय ने

नारायनपुर और पारसवीघा मे ग्रामीणो के साथ किये गये सरकारी जुल्म की समीक्षा[28] कर आम ग्रामीण जनता के प्रति अपनी सवेदना को अभिव्यक्त किया है । सहाय जी ने अपनी ऑखो से देखा कि ताकतवर धरती को निचोडकर अपनी सम्पत्ति बढाते रहते है। वे सघन खेती करने वाले किसानो- जो अपने चारो ओर गरीबी और हिसा फैलाते है, की उन्नति के साथ-साथ उन गरीब किसानो के- जिनके पास भूमि कम है, सिचांई की व्यवस्था नहीं है- हित के लिए चिन्तित रहते है।[29] वे ऐसे दिखावटी करूणामय मन को धिक्कारते है जो मानवीय-प्रदर्शन के नाम पर एक नयी क्रूरता को उत्पन्न करता रहता है - (क्योंकि आज ताकतवर/धरती निचोडकर दौलत बढायेगे/और इसे इस तरह बॉटेगे कि हर समय/उनको गरीबी की जगहे मिलती रहे) ।[30]

गरीबों के प्रति हार्दिक सवेदना व्यक्त करने वाले रघुवीर सहाय प्राकृतिक उपादानो के प्रति भी सवेदनशील रहे है । चिडियो के चहकने को अनेक कवियो ने अपने-अपने ढंग से चित्रित किया है किन्तु रघुवीर सहाय की लेखनी की विशेषता है कि वह चिड़ियो के चिल्लाने को जीवन से जोड़कर जीवन की यथार्थता की अनुभूति कराती है- "दो चिडियॉ यहॉ जब दिन चढ़ जाता है/रोज-रोज छज्जे पर वमचख मचाती है क्योकि वे तिलौरी है, कर्कश आवाज है --- मैने तो एक नया अनुभव पहचाना है । कुछ सच्चा लगता चिड़ियों का चिल्लाना है।"[31] अन्य कवियो से भिन्न संध्या के वर्णन मे कवि ने सक्षेप मे एक युवती की दर्दभरी कहानी को जो अभिव्यक्ति दी है वह अन्यत्र अदर्शनीय है- "कस्बे मे दिन ढले/युवती के चेहरे पर/लालटेन की आभा/अब और कोहरे में/खोया हुआ ऑगन/करती है पर उसे रोशनी लिए युवती।"[32] आम आदमी के जीवन को जीने वाली नारी का यौवन, जिन्दगी की घुटन और कोहरे मे अपने ही ऑगन मे खो गया है लेकिन जिजीविषा उसे उत्साहित करती है किसी प्रकार ऑगन को पार करने के लिए ।

रघुवीर सहाय ने 'प्रभाती', 'बसन्त', 'पहला पानी' आदि कविताओ मे प्रकृति के सहज एव जीवन्त चित्रो को उकेरा है । वस्तुत कवि के लिए प्रकृति शरण स्थली न होकर सहभागी है जो आलम्बन और उद्दीपन से ऊपर उठकर मनुष्य और प्रकृति को बड़े ही कलात्मक ढग से जोडती है । प्रकृति और जीवन का सश्लेष उनकी 'पानी के सस्करण', 'धूप',[33] 'आज फिर शुरू हुआ जीवन' आदि कविताओ मे बहुत ही सुन्दर ढग से प्रस्तुत किया गया है ।

रघुवीर सहाय अद्वितीय परम्परावादी कवि है । इनकी दृष्टि मे "परम्परा का अर्थ परम्परा का पालन नहीं है, परम्परा का पोषण भी नहीं है, परम्परा से कुछ लेकर आगे बढना भी नहीं है वरन् आज की रचना को विगत की रचना मे पहचानना ही परम्परा है।"[34] यह कथन यह प्रमाणित करता है कि ये वस्तुत परम्परा को अविच्छिन्न रूप मे नहीं स्वीकार करते हैं। नूतन सर्जना ही परम्परा की स्वीकृति है । परम्परा के ज्ञान और उसके अज्ञान से मुक्त होकर ही कोई कलाकार नूतन-सृष्टि करने मे समर्थ होता है । जितने भी कवि हुए है सभी परम्परा के विपरीत अपनी बात भीड से पृथक होकर कहते है । भीड से पृथक होकर अकेला होना ही परम्परा से जुडते प्रगति के रास्ते पर चलना है । रघुवीर सहाय स्पष्ट शब्दो मे कहते है- "जब तक हम पूरी मानव जाति को मानवीय प्रयत्न मे शामिल करने का साहस नहीं करते, न तो परम्परा मिलने का कोई अर्थ है और न ही न मिलने का ।"[35]

रघुवीर सहाय की दृष्टि मे किसी मूल्य की सुरक्षा के लिए उसे बार-बार दुहराते रहना ठीक नहीं है वरन् उसे नये ससार में ले जाकर नया रूप देना ही श्रेयस्कर है ।[36] इसीलिए ये 'फिल्म के बाद चीख' शीर्षक कविता मे भीड से पृथक अस्तित्व के लिए चीखने की बात करते हैं- "बन्द होते हुए कमरे में/एक बार भीड में/जानबूझ/कर चीख/ना होगा/जिन्दा रहने के लिए।"[37] रघुवीर सहाय विश्वास की मूर्ति को तोडना नहीं

चाहते[38] किन्तु सर्जना को नवीन रखने के लिए अपने विचारो की मूर्ति को तोड़ते और बनाते रहने पर विश्वास करते है – "अपनी एक मूर्ति बनाता हूँ और ढहाता हूँ।"[39] वस्तुत समय परिवर्तन के साथ मूल्यो मे न चाहते हुए भी परिवर्तन होता रहता है। रघुवीर सहाय इस सच को स्वीकार करते है – "वक्त जब बदलता हे एक सिरे से मानक तब बदल जाते है बहते हुए/जोर से पानी पर उतराते जाते हे वे चिकने खोपडे।"[40]

रघुवीर सहाय की दृष्टि विवेकमयी है इसीलिए भारतीय सास्कृतिक परम्परा को ज्यो का त्यो स्वीकार नहीं करते है। वे सावित्री की सस्कृति 'पतिव्रत-स्वरूप' को स्वीकार नही करते है क्योकि आधुनिक नारी पुरूष के भाग्याधीन नही है।[41] खोखली मानवतावादी सस्कृति की बात करने वालो पर व्यग्य करते हुए कहते है – "हम उपन्यास मे बात मानव की करेंगे/और कभी बता नही पायेगे/सूखी टॉगे घसीट कर खम्भे के पास मे आकर बैठे हुए लडके के सामने पडे हुए तसले का अर्थ।"[42]

रघुवीर सहाय 'पितृ देवोभव' सस्कृति को स्वीकार करते हुए "कुछ पत्ते कुछ चिट्ठियॉ" कविता सग्रह को अपने पिता को समर्पित करते है – "शक्ति दो, बल दो, हे पिता, जब दुःखो के भार से मन थक जाय/पैरो मे कुली की सी लपकती चाल छटपटाय/इतना सौजन्य दो कि दूसरो के बक्स-बिस्तर घर तक पहुँचा आये। कोट की पीठ मैली न हो/ऐसी दो व्यथा ..... ।"[43] "लोग भूल गये है"- कविता-सग्रह को अपनी पत्नी विमलेश्वरी सहाय को समर्पित कर नारी मर्यादा को अभिव्यक्ति दी है।

रघुवीर सहाय जातिवाद, साम्प्रदायिकता, रूढियो, अन्ध विश्वास आदि सामाजिक कुरीतियो के सदा विरोधी रहे है। जातिवाद पर किया गया व्यग्य – "राष्ट्र को महासघ का सदेश है/जब मिलो तिवारी से – हॅसो – क्योकि वह भी तिवारी है/जब मिलो मुसद्दी से/खिसियाओ जात-पॉत से परे/रिश्ता अटूट है/राष्ट्रीय झेप का।"[44] शासन व्यवस्था के दोगले चरित्र का पर्दाफाश करता है। कवि जाति-पॉति की

दुर्व्यवस्था पर तीखा प्रहार करते हुए कहता है कि जब कभी सत्ता बडी जातियो के हाथ से निकलकर छोटी जातियों के हाथ मे आ जाती है तब इसकी आलोचना होने लगती है। यह आलोचना यथास्थिति को ही बनाये रखना नहीं चाहती है वरन् पीछे की ओर पलायन को आधुनिकता के रग मे रग देना चाहती है।[45] बुद्धिजीवियो, कवियो और शासको के दोहरे चरित्र पर कठोर आघात करने वाले कवि रघुवीर सहाय यह चाहते है कि समाज मे जाति से रहित एक समरसता का वातावरण बने। किन्तु इसके विपरीत लोगो की वाणी और कर्म मे बहुत दूरी बनी है- "शासन को बदलने के बदले अपने को/बदलने लगे और मेरी कविता की नकले/अकविता जाये। बनिया बनिया रहे/ बाम्हन बाम्हन और कायस्थ कायस्थ रहे/ पर जब कविता लिखे तो आधुनिक हो जाये/ खीसे बा दे जब कहो तब गा दे ।"[46]

रघुवीर सहाय ईश्वरवादी कवि नहीं है । वे ईश्वर के बरावर होने का साहस रखते है। वे ईश्वर से बराबरी का रिश्ता कायम रखना चाहते है- "वह बडा है मुझसे पर वह मुझसे इतना ज्यादा बडा रहे/यह रिश्ता देर तक चल नहीं सकता है/बार-बार त्यागूँगा अपने को/उसके करीब होना है बराबर।"[47] कर्मवादी रघुवीर वस्तुत अपने कर्म पर दृढ विश्वास रखकर ईश्वर हो जाना चाहते है । इनका यह ईश्वरत्व प्राप्त करना दार्शनिक मुक्ति नहीं है, वरन् मनुष्य की प्रगति के अन्तिम सोपान की प्राप्ति की बलवती इच्छा का द्योतक है । इसीलिए खाने वाले अन्न के रस मे वे ईश्वर की कृपा को लाना नहीं चाहते- "खाने के पहले कृतज्ञ होता हूँ मै/खाने के बाद भी। कहॉ आ जाते हो श्रेय लेने को/हर-बार/ईश्वर ।"[48]

निर्भय होने के लिए रघुवीर सहाय भय से मुक्ति की कामना नहीं करते है । उनकी दृष्टि में मुक्ति एक झूठ है- "नहीं, मुक्ति मत देना चाहिए/यदि निर्भय होना है/मुक्ति एक झूठ है।"[49] भारतीय संस्कृति का गुणोगान करने वालों को उत्तर देते हुए यह कहने

वाले- "हत्याएँ, चीथडे, खून और मैल आज भारतीय सस्कृति के मूल्य है"- रघुवीर सहाय सतीप्रथा जैसे सामाजिक अभिशाप के विरोध मे शकराचार्य के सडे-गले विचारो की घोर निन्दा करते है- "उनके लिए धर्म और धार्मिक मे कोई अन्तर नहीं है, जबकि सामान्य लोक-भाषा मे अधर्म वही है जिसे शकराचार्य धार्मिक बता रहे है शकराचार्य ने स्वेच्छा से सती होने वाली स्त्री का नाम लेकर उसकी स्वेच्छा की रक्षा करने पर जोर दिया है । मै उसकी स्वेच्छा की नहीं उसके प्राण की रक्षा करने पर जोर दूँ।"[50] स्वर्ग की कल्पना करने वाले धर्म सघो तथा प्रतीको का प्रयोग करने वाले लोगो का उपहास करते हुए रघुवीर सहाय कहते है कि स्वर्ग धर्मसघो का मायाजाल है । इस स्वर्ग लोक मे अनेक अजनबियो को राजनैतिक शरण पाने की अनुमति भी मिलती होगी। सबसे पहले धर्मसघ यह काम करते है फिर जड प्रतीको का अर्थ समाज के एक अश मे व्याप्त हो जाता है ।[51] वस्तुत रघुवीर सहाय स्वर्ग लोक की कल्पना को व्यर्थ मानकर सम्भवत इस पौराणिक कथन को सिद्ध करना चाहते है कि स्वर्ग और नरक इसी पृथ्वी पर है[52] जिसका निर्माण आभिजात्य या साम्राज्यवादियो ने ही किया है ।

साम्प्रदायिकता के घोर विरोधी रघुवीर सहाय का दृष्टिकोण बहुत ही स्पष्ट है । वे समस्या की जड मे जाकर उसका समाधान करते है । वस्तुत भारत की सस्कृति मे कोई अल्पसख्यक नहीं है । सभी ने समझौते और आध्यात्मिक उद्देश्यो से तथा सघर्ष से एक दूसरे को अपनाया है।[53] धर्म निरपेक्षता और सर्व धर्म समभाव पर कटाक्ष करते हुए रघुवीर सहाय ने अत्यन्त विचारपूर्ण शब्दो मे कहा है- "हमारे नेतागण लौकिकता नहीं, बल्कि धर्म निरपेक्षता बल्कि सर्वधर्म समभाव कहना अधिक पसन्द करते है, क्योकि सर्वधर्म समभाव में सभी सम्प्रदायो की सकीर्णताएँ बनाये रखने का योग रहता है जबकि लौकिकता धार्मिक नेतृत्व को उसकी ठीक जगह पर रखकर जीवन मे कर्म और आनन्द की लोकतन्त्रीय योजना करती है।[54] रघुवीर सहाय सभी गरीब, पीडित व दु खी जन के

प्रति सवेदनशील है चाहे वह किसी भी धर्म का क्यो न हो । वे पूरे समाज के पिछडेपन को दूरकर एकता की स्थापना के लिए प्रयत्नशील रहे है।[55] धर्म की रक्षा के नाम पर शोषितो को आतकित कर उन्हे शरणागत होने के लिए बाध्य करने वाले तथाकथित प्रतिष्ठित जनो पर कवि ने तीखे प्रहार किये है । रघुवीर सहाय की सूक्ष्मदर्शिनी दृष्टि हिन्दू व मुसलमान दोनो धर्मो के वास्तविक स्वरूप को समझकर उसके पाखण्डो पर प्रहार करती हुई कहती है कि दोनो समाज कर्मकाण्ड के वास्तविक स्वरूप को भूलकर केवल अर्थ और भावहीन चिल्लाहट को जीवन का लक्ष्य मानते है– "मै जहॉ रहता हूँ, हिन्दू और मुसलमान/दोनो बेसुरे है/भजन और कीर्तन/करते है, ढोलक और चिमटे की/ढक-ढक सुन पड़ती है/भजन के शब्द नहीं/अजान दी जाती है/हरियाणवी लोकगीत सुन पडता है/ दोनो समाज कर्मकाण्ड का उच्चारण/भूल गये/उनकी पकड मे चिल्लाहट आती है ।"[56]

सहाय जी की कविताऍ आत्म प्रसूता है । इसलिए उनमे लोक-जीवन की सच्चाई है, कृत्रिमताऍ नहीं है । उनकी कविताऍ जातिवाद, क्रान्तिवाद, अगडा-पिछडावाद के फूट की विभीषिका से बडी विभीषिका को प्रस्तुत करती हुई कहती है कि जो मारा जा रहा है और जो बचा हुआ है- इन दोनो की फूट की स्थिति जब तक बनी रहेगी ,भारत की अधोगति होती रहेगी- "हिन्दू और सिख मे/बगाली असमिया मे/पिछडे और अगडे मे/पर इन सबसे बड़ी फूट/जो मारा जा रहा है और जो बचा हुआ/उन दोनो मे है ।"[57]

रघुवीर सहाय भारतीय रीति-परम्परा के बाह्य रूप को न मानकर उनके आन्तरिक रूप को स्वीकार करते हुए कहते है कि दया, दान, परोपकार जैसी रीतियॉ गरीब और अमीर के बीच खाई पाटने का काम करती हैं । इसके लिए कानून की अपेक्षा नहीं रहती, वरन् कुछ मान्यताऍ होती है, लेकिन कानून और रीतियों- दोनों के सहयोग से भेद-भाव को दूर किया जा सकता है । एक का रास्ता पकड़ने पर कानून मे

चोरी बढती है और रीतियो मे पाखण्ड पनपता है।[58] वस्तुत रीतियॉ जिनमे सहजता होती है वे ही सास्कृतिक धरोहर को अक्षुण्ण रखती है और जिनमे पाखण्ड का मुलम्मा चढने लगता है, वे केवल दिखावे तक ही सीमित रहती है । इसीलिए रघुवीर सहाय यह स्वीकार करते है कि "जिस सस्कृति मे शोषण और दमन नहीं है वही अविष्कार की सस्कृति है । वही तो हर अनुभव मे मनुष्य की गरिमा और स्वाधीनता अर्थात् एक जीवन शैली खोजती रहती है जो सस्कृति का दिखावा नहीं करती ।"[59]

रघुवीर सहाय की दृष्टि मे सम्प्रदायवाद का समापन तभी सम्पन्न हो सकता है जब हिन्दू आधा हिन्दू हो, आधा मुसलमान और मुसलमान भी आधा मुसलमान हो, आधा हिन्दू । ऐसी सस्कृति जो मानवीय-मूल्यो के प्रभाव से मिली-जुली कही जा सकती है, राष्ट्र और राज्य के लिए नया पर्याय बन सकती है । वे कठमुल्ला हिन्दू बनने वाले को सचेत करते हुए कहते है कि इक्कीसवीं सदी मे क्या यही हिन्दू टुकडो मे बॅटे हिन्दुस्तान पर शासन कर सकेगा ?[60]

रघुवीर सहाय 'रामायण' और 'महाभारत' जैसे लोकप्रिय ग्रन्थो के रूढ-परम्परावादी विचारो का विरोध करते है क्योकि उनकी दृष्टि मे परम्परा का उतना महत्व नहीं है जितना कि तत्कालीन परिस्थितियो मे यथार्थ की ओर ध्यान आकृष्ट करना जरूरी है।[61] वे राजनैतिक, सास्कृतिक, सामाजिक व आर्थिक-किसी भी प्रकार के ढोग से मुक्त समाज की रचना करना चाहते है । इसीलिए वे इस कृत्रिम समाज के हाहाकार मे कम से कम एक बार अट्टहास अवश्य करना चाहते है- "ढोग के ढोल जो डुड बजाते है उस हाहाकार मे/यह मेरा अट्टहास ज्यादा देर गॅ़ज खो जाने के पहले/मेरे सो जाने के पहले/उलझन समाज की वैसी बनी रहे ।"[62]

रघुवीर सहाय वास्तव में आम-जीवन के हृदय मे प्रविष्ट कवि है । इनकी प्रत्येक कविता में कहीं न कहीं आम-आदमी की मर्मान्तक पीडा अन्तर्निहित है । क्रूर शोषण ने

जिस गरीब आदमी को चिथडा-चिथडा करके सडको पर फेक दिया है उसी चिथडे मे अपने को समाहित कर लेने वाले- (मै चिथडे-चिथडे हो गया हूँ/यही मेरी पहचान हैं)[63] रघुवीर सहाय जीवित रहने के लिए परायी पीडाओ को बार-बार सहना ही अकेला उपाय मानते है (सहना पराई पीडाओ को बार-बार/जीते रहने का अकेला उपाय हैं)[64]। उन्हे महती व्यथा है कि गॉधी के शिष्य ही हिसा का देश भर मे प्रचार कर गॉव-गॉव[65] मे कमजोर लोगो की हत्या कर रहे है और उनके मारे जाने पर कोई रोने वाला भी नहीं है केवल भाग्य से बची हुई विधवा को छोडकर।[66] किसी भी गुलाम और गरीब देश को अपनी स्थिति सुधारने के लिए पॉच बरस बहुत बरस होते है।[67] किन्तु इस देश की स्वतन्त्रता को गुजरे हुए अनेक वर्ष व्यर्थ हो गये है । इस देश की प्रत्येक व्यवस्था से रघुवीर सहाय अत्यन्त व्यथित है । यथास्थितिवाद उन्हे किसी प्रकार सह्य नहीं है। जो शासक गरीबो के हाथ मे सींचने के लिए पानी न देकर हथियार देता हुआ दमन चक्र चलाता रहता है और शोषितो की न्यायोचित माग को बन्दूक की गोली से भूनता रहता है उसको सवेदनाशील कवि उखाड़ फेकना चाहता है । आज स्थिति यह हो गयी है कि कोने-कोने में होने वाली लूट ने जमीन के अन्दर तक मिट्टी को तोड दिया है।[68] जिस अनाथ और शोषित व्यक्ति की स्वप्न मे भी कभी तस्वीर नहीं छपती है उसकी हत्या की गयी लाश की तस्वीर अवश्य छपती है । जिनके पास चेहरा नहीं, वे ही समाज पर राज कर रहे हैं । भविष्य दृष्टा रघुवीर सहाय ठीक ही कह रहे है कि यदि हमारी यही स्थिति रही तो "कल किसी और बड़े देश के गुलाम हो जायेगे/हम अपने देश के उजाडो मे खोजते रहेंगे अपना चेहरा ।[69]

वस्तुतः आज का मनुष्य इतना सवेदनशील हो गया है कि वह आदमी नहीं है । **इसीलिए रघुवीर सहाय कहते हैं कि यह देश अपने मनुष्यों को आदमी नहीं बना सकता** है।[70] वे अपनी रचनाओं से मानवीय सत्य की स्थापना कर यथास्थितिवाद को बदल देना

चाहते है । यही उनकी रचनाओ की विशेषता है । स्वतन्त्रता के बाद किया गया चालीस वर्षो का लेखा जोखा रघुवीर सहाय के शब्दो मे- "आजादी के चालीस साल भौतिक उपलब्धियो के साल होगे, हुआ करे । हमे यह जानकर कोई क्रान्तिकारी खबर नहीं मिलती कि अब हम कितना इस्पात और सीमेन्ट पैदा कर रहे है । हम कितना रोजगार पैदा कर रहे है यह जानने लायक बात है और इसी के साथ यह भी हमारी कितनी नयी प्रतिभा अपने आपको रचनात्मक कार्य मे लगा पा रही है और आविष्कार कर पा रही है- चाहे साहित्य मे चाहे विज्ञान में और सबसे बढकर हम यह जानना चाहेगे कि राजनीति के द्वारा हमने मनुष्य को स्वतन्त्रता की कितनी समझ दी है । अगर चालीस मे हमने यही निष्कर्ष निकाला है कि समाज के टुकडे-टुकडे करके उन्हे एक जगह से सचालित करना राष्ट्र कहलाता है तो हमने गुलामी का केवल स्वातन्त्र्योत्तर सस्करण तैयार किया है ।" कितना सत्य है उनका यह कथन कि हमारे राष्ट्र की वास्तविक तस्वीर "गुलामी का केवल स्वातन्त्र्योत्तर सस्करण" है ।[71]

गिरिजा कुमार माथुर की कविताओं में लोक संवेदना :-

मेरे पास सिर्फ शब्द है/जो समय के अस्त्र है/

इसलिए अब फिर/वहीं से शुरू करता हूँ/

जहॉ से चीजो की सही शक्ल/साफ दिखने लग जाती है ।

जब अपने से बडे दुख की आवाज/शब्द मे उतर आती है ।[1]

अपनी उपर्युक्त पक्तियो मे सॉस लेते हुए और उसे वास्तविक रूप मे चित्रित करने वाले गिरिजाकुमार— जिनकी दृष्टि मे "कविता सिर्फ आत्माभिव्यक्ति नहीं है, वह मानसिक क्रिया नहीं है न आत्मनिष्ठ-कल्पना विलास ही है- उसका सरोकार एक वृहत्तर दुनिया से है, एक पूरे जीवन-ब्रह्माण्ड से है । जो है, उसकी पहचान उसे पूरी तरह वाणी दे सकना और जो नहीं है- होना चाहिए- उसकी तलाश"[2]—समकालीन कवियो मे

अपना अद्वितीय स्थान रखते है ।

'जो है'- यह यथार्थ है और इस यथार्थ का ज्ञान राजनीति की समझ के बिना सम्भव नहीं है । यह यथार्थ दार्शनिक नहीं है वरन् सामाजिक, आर्थिक, और राजनैतिक जीवन की विसगतियो तथा विद्रूपता का सही बोध है । मार्क्सवाद ने सत्ता के स्वरूप, राजनीति, समाज के आर्थिक आधार, ठोस यथार्थ, वर्ग-चेतना, इतिहास की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया दमन और शोषण से मानवीय समता और स्वाधीनता के नये मार्ग को खोल दिया है।[3] मार्क्सवाद से प्रभावित गिरिजा कुमार माथुर ने अपने देश की जन-परम्परा और सांस्कृतिक मिट्टी से मार्क्सवाद को नया स्वरूप प्रदान कर तथा उसमे अपने को आत्मसात कर, उससे अपनी कविताओ को आलोकित और अनुप्राणित किया है । कविता का यथार्थ मात्र राजनैतिक व्याख्या नहीं है, वरन् सत्य का वह साक्षात्कार है जिसमे मानवीय संवेदनाओं के साथ-साथ अतीत कालीन परम्परा, सास्कृतिक धरोहर, राजनैतिक आडम्बर तथा आम आदमी की प्रत्येक सॉस का पुनर्मूल्याकन अभिव्यक्त होता है । प्राचीन के सभी अवयव मनमोहक नहीं होते, न व्यर्थ ही । नवीन न हेय है न ध्येय ही। इन दोनों में जो साधारण जनो के दु ख-दर्द को, उनके प्रति होने वाले अन्याय-परम्परा से मुक्ति को, समरसता एव यथासाध्य समता को तथा आदमी को आदमी समझने की समता को विकसित कर सके, वही श्रेय है और प्रेय है । कविता कभी यह दावा नहीं कर सकती कि वह सब कुछ कर देगी, जो वह कहती है। लेकिन बौने हाथो को इतना बडा करने की सामर्थ्य देती है कि वे दुर्लभ्य फलो को प्राप्त कर सके ।

गिरिजा कुमार माथुर की कविता हारे थके लोगो को प्रेरणा देने के लिए उनके अन्तस्थल को भेदकर पृथ्वी पर पैर रखती है । इनकी कविता रॅगी-चुनी, अधखुली, आधी **ढकी, खुशबूदार फूल बॉंधे जूड़े से, कसे तंग रेशमी कपड़ों, सजे लानों के बीच बिछे** मखमली स्वागत कालीनो से जन्म नहीं लेती वरन् यह उस वामा की जमीन से उत्पन्न

होती है जो तपी हुई सुनहली शाम सी नंगे पॉव पगडण्डी पर अपनी कमर मे दरॉती खोसे हुए तथा सिर पर जिन्दगी के गट्ठर को ढोती हुई गॉव, घर की ओर लौटती है। माथुर जैसे कवि की कविता देख सकती है कि फासिस्टी-शक्ति अपने हाथ से इसानो को गीले कपडे सा निचोडती रहती है । शोषको के दरवाजे पर पक्ति-बद्ध होकर बलि चढने के लिए बाध्य करती है उनकी "पेट की भूख" । यही भूख गरीब-शोषित जन की सारी शक्ति और सम्पूर्ण मेधा को निष्क्रिय कर देती है । मजबूरी मे उसे शोषको के द्वारा निर्मित साचे मे ढलना पडता है ।

गिरिजा कुमार माथुर को शोषित किसान, श्रमिक और दलितो से अगाध प्रेम है । कवि ने एक ही बसन्त को दो चित्रो मे बडी ही कुशलता से चित्रित किया है । जिसकी ऑखो मे स्वर्णिम ज्योति है वह सरसो के पीले-पीले फूलो मे बसन्त के आगमन का दर्शन कर प्रसन्न है किन्तु दीन-हीन किसान उन फूलो के सौन्दर्य को नही वरन् उस आकाश की ओर देखता है जो कुछ बूॅदे इन फसलो पर डाल दे और इसकी सुरक्षा ओलो से हो जाय तो अच्छे दामो मे वह सरसो को बेचकर अपनी पुत्री के हाथ को पीला कर सकेगा।[4] गिरिजा कुमार माथुर की सवेदना उस किसान की विवश आत्मा के प्रति है, जो अपनी पुत्री के विवाह की चिन्तानल मे जल रही है । कवि की 'घासवालियो का वसन्त' शीर्षक कविता ने जिस यथार्थ को उपस्थित किया है वह सचमुच हृदय-विदारक है । रूखे बालो वाली तथा मटमैली धोतियो मे अपनी लज्जा को आवृत करने वाली दो औरते मैली चादर की झोली को कधे पर लटकाए हुए खुरपा और खुरपी लेकर चुपचाप पार्क मे घुस जाती है । माली के ऊॅघते रहने पर वे क्यारियों के आस-पास की दूब को खुरपी सें खोदकर झोली में भरती जाती हैं । उन्हें पुष्पित-पुष्पो में बसन्त का सौन्दर्य नहीं दिखाई पडता वरन् उगी हुई घास मे भूख की आग की लपटो वाला "बसन्त" दिखाई पड़ता है क्योकि यही घास उनके लिए रात की रोटी का आग्र बनती है ।[5]

गॉव की मिट्टी मे जन्म लेने वाले गिरिजा कुमार को उस वसन्त- जिसमे लोग रॅगरेलियॉ मनाते है- मे भी किसानो की उस भूमि की याद आती है जो पानी के बिना उनके हृदय की भॉति दरक गयी है, उन ऑखो की याद आती है जिनमे भूसा की किरकिरी भर जाती है, उन मजबूर किसानों की याद आती है जिनके अनाज को सस्ते दामो पर लूट लिया जाता है।[6] गिरिजा ने अपनी ऑखो से देखा है कि शोषित-दलित रामबहादुर जैसा इन्सान जब अन्याय के खिलाफ हक मॉगने के लिए आगे पॉव निकालता है तब उसी पर पहला और आखिरी बार होता है । उसके लिए न कोई शोक-सभा होती है और न कोई प्रस्ताव पास होता है । बस कुछ चदो से उसके बाप, पत्नी और नासमझ बच्चो की सूनी ऑखो से अनवरत् बहते हुए ऑसुओ को पोछने का खोखला प्रयास किया जाता है।[7] कवि नहीं चाहता है कि उसका बेटा भी किसी दैनिक का छोटा समाचार बने । कवि की यही संवेदना कविता को जीवन्त बना देती है । कवि माथुर ने ठीक ही कहा है कि पीड़ा की कोई भाषा नहीं होती, अधी सुरग सा एक प्रश्न होता है ।वे दो वर्षो से देखते आ रहे है कि मामूली आदमी फटी हुई बेवाई वाले पॉव की गतिहीनता को लेकर किसी सड़क के किनारे खरहरी जमीन पर किसी वृक्ष के नीचे गठरी बने बैठा है । 'सब कुछ बदल रहा है' के शोर मे उसकी पशु गधी शोक की रात[8] की न समाप्ति हुई है और न होगी । एक-एक आदमी यहॉ पर चलती फिरती कब्र है ।[9]

गिरिजा कुमार माथुर की "मशीन का पुर्जा" कविता एक ओर पूॅजीवाद के वैभव का चित्र प्रस्तुत करती है वहीं दूसरी ओर औसत मध्यवर्गीय आदमी की व्यथा को अभिव्यक्त करती हुई कह रही है कि जब ठिठुरन से सूरज की भी गर्मी जम जाती है और सारा नगर लिहाफो मे सिकुडा रहता है, ऐसे समय मे भी तीन सर्दियो को झेलने वाले रफू किये गये स्वेटर को पहने हुए विवश आदमी कॉपता हुआ उठकर अपने काम पर लग जाता है । उसके. लिए जाडे की मिठास जहर बन गयी है- "ठिठुरन से सूरज

की गर्मी जमी हुई है/सारा नगर लिहाफो मे सिकुडा सोता है,/पर वह मजबूरी मे कॉपता आया है -- जाडो के दिनो की मिठास/अब जहर हुई है ।"[10]

अनादिकाल से ही 'सभी को सुखी' बनाने का नारा दिया जा रहा है, किन्तु नारा देने वाले ही भेष बदलकर शोषण करते रहते है । वस्तुत् जैसे मौसम मे मूलभूत परिवर्तन नहीं होता है, घूम-फिरकर वही-वही वापस आते रहते है और उनका सम्मान होता रहता है[11] उसी प्रकार लोकतन्त्र शब्द समाजवादी शब्द मे अपने को ढालकर राजतन्त्र के शोष,णवाद को विभिन्न रूपो मे जीवित रखे हुए है। राज्यो की पद्धतियो के निर्माता के हाथ मे सर्व नियतृत्व शक्ति निहित रहती है, वे सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान के साधनो को अपने अधिकार मे रखकर करोडो लोगो के भाग्य को अपनी मुट्ठी मे बद रखते है । ये पूँजीवाद व्यवस्था के पोषक शासक अर्ध-सत्यो के क्रूर पजो मे जनमानस को जकडकर उसे वैचारिक कोडो से मारकर चलाते रहते है और लोकमत को अपने दल के अनुरूप गढ़ने के लिए अथक प्रयास करते है।[12] पूँजीवादी व्यवस्था का परिणाम है कि मनुष्य पर सूर्य-ग्रहण का प्रभाव है। चारो ओर युद्ध राक्षस डोल रहे है। नभ मे शक्ति की भुजा तनी है और दूसरी ओर शक्ति हीन आदमी असहाय है। अर्द्ध-सत्य के द्वारा सत्य की हत्या की जा रही है । हर नृशंसता को जनता की इच्छा कहा जा रहा है। क्रूर-नियत्रण के परदे मे हथौडे की चोटो से समष्टि की भयावह मूर्ति ठोकी जा रही है । कोटि जनो के रक्त, मास-मज्जा आदि को गली हुई धातु का केवल कच्चा माल समझा जा रहा है । शासक अपने दलवाद की निहाई पर मानव आत्मा को टीन सा ठोक पीटकर एक सरीखा जस्ते का ब्लॉक बना रहा है ।[13]

गिरिजा कुमार माथुर द्वारा पूँजीवादी व्यवस्था पर किये गये प्रहारो मे आम आदमी की छटपटाहट है उसकी मानसिक व्याकुलता और न चाहने पर भी भोगने की विवशता है। आम आदमी प्यास से तड़प रहा है किन्तु उसके आस पास हत्यारे कुएँ है, जिनसे

वह प्यास नहीं मिटा सकता वरन् उसमे गिर सकता है । उसे अधेरी बन्द दुनिया मे न चाहते हुए भी जीना पडता है- "मुझे बेहद प्यास लगी है/पर आसपास हत्यारे कुएँ है/जिनमे मै सिर्फ गिर सकता हूँ/घुप अन्धेरे वाली/एक अन्धी बन्द दुनिया है/जो मैने न रची थी/न मॉगी थी- वह दुनिया मेरी है ।"[14]

कैसी विडम्बना है कि असली बौने की दृष्टि मे जितने साधारण जन है, बौने है । सभी शासक आम आदमी को बौना ही बनाकर रखना चाहते है क्योकि आम आदमी का बौनापन राज्यो को क्लर्क, कारखानो को मजदूर, तोपो को भोजन, पार्टीवालो को 'यस मैन' मतवादों को बुद्धू, संघवादो को सॉचे-ढले आदमी और नवीन राजाओ को सस्ता गुलाम देगा। आम आदमी की व्यथा कभी दूर नहीं हो सकती । क्योकि पूँजीवादी व्यवस्था के लिए ही युग-युग से यह आदमी जीता आ रहा है । उसके गगनचुम्बी महलो की नींव यही लोग हैं । यही उनके इतिहास की स्याही है । यही उनकी विजयश्री के घायल सिपाही है । इन्हे वस्तुत घायल सिपाही ही रहकर जीना होगा और दैत्यो का काम निभाकर बौना ही बना रहना होगा।[15] भारत की लोकतान्त्रिक व्यवस्था जो वस्तुत शोषण तत्र है, ने केवल जिगर बढे लाइलाज बच्चो, व्यर्थ नौकरी तलाशते हुए पढे अध-पढे लडको, सड़क के किनारे पक्तिबद्ध बैठी घाघरा फैलाये हुए बेशरम लुगाइयो, कोढ खाई सामाजिकता, जातीय-शील के खोखले ढोल पर गॅवार असलियत की थप्पड और अनेक प्रकार की विकृतियो को पाल-पोसकर बडा किया है ।[16]

गिरिजा कुमार माथुर का मर्माहत मन क्रूर-शासन व्यवस्था से पीडित आम आदमी के प्रति संवेदनशील होकर कहता है- "इतिहास के घोघे! तुम्हे क्या चाहिए-/ मलबा और मौत- आजादी या दलाली/ढफली या गुलामी/आदमी या कठपुतली।"[17] संवेदनशील कवि के बाहर और भीतर से लगातार एक साथ वह मलवा गिर रहा है जो शासन व्यवस्था का अभिशाप है । वह देखता है कि वक्त की सलाई बुझी जा रही है और वह कुछ

करने मे समर्थ नहीं है ।

गिरिजा कुमार माथुर की दृढ आस्था कहती है कि धूल की बरसात मे बडी-बडी राजधानियाँ मिट जाती है । शोषको के हाथो से पूरी दुनिया छिन जाती है । आम-आदमी के आग के होठ जब खुलते है तब एक व्यास, तुलसी, गेटे या गालिब पैदा होकर जन-क्रान्ति का रूप लेता है । किसी बाहरी गणित से इतिहास के पहिये हॉके नहीं जाते है । आदमी के सनातन जीव-कोषो की ईप्सा और उसके खोखले नियमो की आग ही जल्लाद बनकर नियम-नियामकों को मौत के घाट उतारती हुई नूतन-सृष्टि करती है । यह अवश्य है कि इस फैसले मे देरी भले ही लगती है लेकिन सब कुछ साफ हो जाता है । एक समय ऐसा आता है कि क्रूर शासन-तन्त्र के पक्ष मे न गवाह मिलते है, न वकील ही । न जिरह होती है न बहस । न जारी किये हुए फरमान और फतवे काम आते हैं न नकाबे, न चमडी पर चढाये हुए पर्दे और न अफलातूनी चेहरे ही। एक समय ऐसा आता है कि सब उलट जाता है-

"बेबाक इस हिसाब मे/ऐसा अक्सर हो जाता है/अदा किये हुए पार्ट आपस मे बदल जाते हैं/कत्ल किये हुए नाम फिर जिन्दा हो जाते है/जो कल तक थे जज/वही मुजरिम हो जाते है "[18]

एक दिन ऐसा आयेगा कि खेतो से सनातन अग्नि उठकर उषा सी मुक्तिप्रदा बन जायेगी और यन्त्रणा देने वाली लोहे की दीवार पिघलकर नष्ट हो जायेगी ।[19]

सभी शब्द जालों को[20] काटकर सार्वजनिक दर्द को नयी ऑच पहनाने वाले[21] कवि गिरिजा कुमार समाजवाद के मुखौटे को धारण करने वाले क्रूर शासको को ललकारते हुए कहते हैं कि तुमने आम आदमी के लिए जो ॲधेरा दिया है उसी से एक रोशनी उत्पन्न होगी, जो तुम्हारे अन्याय के महल को राखकर देगी । तुम इसे किसी प्रकार नहीं रोक सकते हो।[22] कोई भी क्रूर शासन उस धूप को नहीं रोक सकती, जो किसी झरोखे से

अवश्य भीतर आ जायेगी और अधेरे मे होने वाले पापो का पर्दाफाश करेगी । यह (क्रान्ति की) रोशनी कहीं फूल बनकर, कहीं किरण बनकर, कहीं हवा और जल की झारन बनकर आम लोगो को सुख प्रदान करेगी । इस रोशनी मे इतनी शक्ति होगी कि इसके द्वारा भूखे को रोटी और अधे को ऑख मिल जायेगी । इस रोशनी की आग को कौन रोक सकेगा? यह सभी रास्तो के बन्द कर दिये जाने पर भी—("गॉव से गली से/फुटपाथ से/जमीन से/मिट्टी से बीज से/राख की दीवार फाड/मस्मक अग्नि-पक्षी सी/उडती चली आयेगी/कितनी रोकोगे आग/"-)-खामोश पैरो से चुपचाप आयेगी और शासको द्वारा किये गये अन्याय को गिन-गिन कर उसके नियामको को विनष्ट कर देगी ।[23]

कवि माथुर आने वाले नये नामधारी शासको की दोगली नीति पर स्पष्ट शब्दो मे कटाक्ष करते हुए कहते है कि प्रत्येक बार वक्त एक विटप के नीचे आकर नया आसन बिछाता है और हर बार गरीबी, अशिक्षा आदि को दूर करने का बीडा उठाने वाला एकदम बौना हो जाता है । उनकी प्रतिभा का आकार कच्चा रहता है । जब ये शासक मिले हुए अमृत-घट के रस को आम आदमी को बॉटे बिना स्वय पीने लगते है तब यह अमृत विष बन जाता है क्योकि समय का रथ ज्यादा रूक नहीं पाता है और चूका हुआ क्षण कभी लौटकर नहीं आ पाता है ।[24]

दूर टिमटिमाते गॉवो के उठते हुए तमाम दर्द तथा जात-पॉत की धक्काशाही से मर्माहत लोग आजादी को मेला ठेला और तमाशा ही मानते है । इस आजादी ने नये शब्दो के माध्यम से जातिवाद के धंधे को कल्पतरू बना दिया है, गोत्र, बिरादरी, पथ, प्रान्त और भाषा के व्यापार से अपने को आजादी के रक्षक मानने वालो ने अपने को कालजयी बनाने का प्रयास करते हुए देश के भविष्य को मॅझधार मे छोड दिया है । आम-आदमी की जीवन-धारा एक बॉझ वर्जित प्रदेश मे पहुँच गयी है । आज यह स्थिति है कि हर दरवाजा बिक्री को तत्पर है । नस्ल, रंग, जाति और धर्म के वितण्डावाद को

तोड़कर[25]मुक्त वातावरण मे सॉस लेने वाला कवि अत्यन्त पीडित होकर कहता है-

"जातिवाद का जहर किसी ने/घर-घर मे फैलाया है/

वर्तमान है वृद्ध/भविष्यत आने से कतराया है/

उठती है तूफानी लहरे तट का है आभास नहीं ।

पृथ्वी है, सागर, सूरज है, लेकिन अभी प्रकाश नहीं ।"[26]

गिरिजा कुमार माथुर कट्टर सम्प्रदायवाद, जाति-प्रथा, रूढियो आदि से मुक्त होकर नूतन ससार मे जीना चाहते है । वक्त तेजी से आता है और उसके प्रवाह मे जो कुछ सड़ा गला है सब ढह जाता है । वस्तुत. यह सच है कि जब बहुत कुछ टूटता है तभी नया बनता है । जन्म से ही जात-पॉत, ऊॅच-नीच आदि द्वन्द्वात्मक भावना से मुक्त[27] रहने वाले कवि माथुर जी बूढी रूढियो की कडकडाती रीढ और घुनी अनुभूतियो को नये गरजते स्वर मे उपस्थित करते है।[28] उनकी रचनाये उस आधुनिकता वाद को स्वीकार नहीं करती है, जिसमे मानवीय-सवेदना, भावना और मूल्यो का कोई स्थान नहीं है और जिसमे निर्ममता, क्रूरता, कुटिलता शोषण तथा दानवीय प्रवृत्तियो का अट्टहास हो रहा हो।[29]कवि को विश्वास है कि-

"धरती की सुन्दरतम/सृष्टि इन्सान है/सशय, भय, घृणा/युद्ध, लिप्सा शैतान है। सामूहिक मृत्यु, त्रास/कुण्ठा, दमन, अवसाद/दुनिया पर मतवादो के जघन्य अनाचार/ मिथ्या आदर्शो के प्रेतो विकृतियो पर/शव साधक पन्थो पद्धतियो पर/जडवादी पजो मे जकड़ी सस्कृतियो पर जीत इन्सान की/पृथ्वी की गाथा/इतिहास की कहानी है ।"[30]

गिरिजा कुमार माथुर वस्तुत. प्रेम के कवि है । उनकी कविता मे 'सेक्यूलरिज्म' पर उनका आग्रह रहा है[31]और इससे उनका मतलब है एक ऐसी कविता, जिसका सम्बन्ध **ईश्वर या किसी देवी देवता से न होकर** मनुष्य से और केवल मनुष्य से हो। मनुष्यता की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति उन्हे प्रेम मे दिखाई पडती है।[32] गिरिजा कुमार माथुर वस्तुत

मानवतावादी कवि है । यद्यपि इनकी मानवता की छाती पर सत्ता का सिहासन रखा हुआ है और इनकी आत्मा पर विषधर सा सामन्ती शासन बैठा विष उडेल रहा है[33] फिर भी ये अपने अनुभूत सत्य को- जो इनके जीवन की गाढी कमाई है- अर्थ देने के लिए अपना सब कुछ लुटाने को तैयार रहते है। क्योकि इनकी मानवता अरूप भावना वाली नहीं है । इसमे न धर्म-सम्प्रदाय का सघर्ष है न ईश्वर की रहस्यात्मक प्रतिष्ठा मे मतवादो का नग्न नृत्य ही है । इनका मानना है कि- "जिस प्रकार धर्म सम्प्रदाय की ऑच मानवता का एक व्यापक आलोक-सकेत छोडकर मिट गयी थी उसी प्रकार आज के मतवादो के समन्वय से भयरहित, कष्ट-त्रास रहित अर्थ-मुक्त मानवता के एक सर्वाङ्गीण दर्शन की उत्पत्ति होगी जिसमे श्रद्धा, निष्ठा, आस्था, विनय-शील, प्रेम, जीवन-सम्मान, सामाजिक न्याय, अन्तकरण की नैतिक स्वतन्त्रता प्रतिष्ठित होगी । इसी पीठिका पर स्वस्थ, मुक्त मानवता का नया व्यक्तित्व उदित होगा जिसमे बाह्य-अर्थ-व्यवस्था की तुष्ट और परिपूर्ण नींव पर बुद्धि, विवेक मर्यादा और असीम प्रेरणा के नये मानसिक स्तर प्राप्त होगे ।[34]

गिरिजा कुमार ने इन्हीं मानवीय मूल्यो की अवधारणाओ को लेकर अपनी काव्यधारा को प्रवाहित किया है । प्रकृति के वातावरण मे इन्हे मानवीय मूल्यो की मीठी-मीठी गन्ध की अनुभूति होती रहती है, जिसमे डूबकर उसके अन्तरतम सौन्दर्य का रसास्वादन करते हुए वे अपनी कविता को दर्पण बना देते है जिससे उसमे वास्तविक संसार दिखाई पड़ने लगता है।[35] इनका प्रकृति वर्णन केवल अभिधात्मक नहीं है वरन् इनकी प्राकृतिक माटी मे ग्रामीण जीवन के श्रम की सुगन्ध है । इनकी कविता के शब्द महलों की सजावट नहीं है वरन् उसके अर्थ मे मामूली लोगो के जीवन की मर्मभेदिनी पीड़ा है । गाँव के मेलों, त्यौहारों, दूर तक फैले कँकरीली पठारों, ढूहों, हरे-भरे खेतों, गाँवों, गलियारों, बच्चो के घरौंदो, रूखे फूल पत्तो और वन-कन्याओ के सीधे सरल जूड़ों

में इनकी कविता के शब्द प्रवेश कर[36] हाड़ तोडते हुए किसान, झीलो तक पानी के लिए जाने वाली औरतो और लठैतो द्वारा बहू-बेटियो की सरेआम होने वाली बेइज्जती वाले संवेदनशील अर्थों को अभिव्यक्त कर सभ्य समाज के दिगम्बर चरित्र को सबके सामने रखते हैं ।[37]

गिरिजा कुमार माथुर की 'मटियाली धरती' गॉव की धूसर, सॉवर मटियाली, काली, आसमान के घेरे मे धूप से बुझी हुई और जगलो से मिली हुई धरती है । इस पर उपजे नीम, आम, वट, पीपल के वृक्षो पर निखरे-निखरे मौसम आते रहते है । कच्ची मिट्टी के गॉव के वक्ष पर धूप क्रीड़ा करती रहती है और फसलो मे दूध बनकर उसी के रूप मे मिल जाती है । प्रत्येक अन्न के दानो मे चन्द्रमा अपना अमृत भर देता है।[38] इसी मटियाली धरती को नया बसत रंगीन बनाता रहता है किन्तु आज किसान की मटियाली धरती की रेखा के ऊपर गोल रक्त पत्थर के टुकडे के समान सूरज ठिठक रहा है । वहॉ का वातावरण जमे हुए हिम की चट्टानो सा हो गया है और मृत सूरज अतल मे गिर रहा है ।[39]

गिरिजा कुमार माथुर प्राकृतिक दृश्यो मे अपने को विलीन कर उसके एक-एक दृश्य को अपनी कविता मे साकार करते हैं। उनकी दृष्टि मे मिट्टी अपनी जगह पर निश्चल पड़ी आनन्दित है। अपने पत्तो मे लिपटा हुआ पौधा धूप और हवा का सेवन करता हुआ मगन है । जल बेरोक-टोक बहता हुआ प्रसन्न है। कीट पक्षी और लताऍ सब आनन्दित हैं लेकिन कवि के आस-पास की दुनिया हजारो चाबुके लिए हुए दिन-रात पागलों के समान दौड़ती रहती है। इन्ही पागलो की दुनियॉ ने पहाडो के सौन्दर्य को नीलाम कर दिया है, फल-फूल से लदे जगलों को काट डाला है, नदियो किनारे बॅधी नाव के मछेरों के छप्पर में, गाँव के खपरैलों, रूआसे घरों में आग लगा दी है जिसके कारण जंगल साय-सांय करता हुआ अभिशप्त बन गया है।[40] 'ढाकवनी' कविता ग्राम्य जीवन की

सुन्दर किन्तु दर्दभरी कहानी कहती है । किसानो का जीवन भिखारी और प्रेत के समान है । उन्हे दिन-भर श्रम करने के पश्चात भी पेट भर भोजन नहीं मिलता है- "भूख की मनहूस छाया/जबकि भोजन सामने हो/आदमी हो ठीकरे सा/जबकि साधन सामने हो/धन वनस्पति भरे जगल/और यह जीवन भिखारी/शाम नूल का घूमता है/भोथरे है हल कुल्हाडी ।"[41] इसी प्रकार 'दियाधरी' कविता प्राकृतिक वर्णन मे भी ग्रामीण मॉ की वत्सलता का मनोरम चित्र उपस्थित करती है- "वत्सल छाती सी पहाडिया/दूध पिलाने आतुरा/बच्चे सा सूरज सो जाता/लेकर मुँह मे ऑचरा/नम रहती पलास की चोली/रिसती बूँदे दूध की/माटी घास अमरता पाती चरागाह की रूँद की ।"[42] 'शाम की धूप' शीर्षक कविता गॉव के जीवन की व्यथा कथा है । गॉव मे पग-पग पर कठिनाई है । घर से खलिहान तक न अन्न है न पहनने को वस्त्र । गुड-दाल, चीनी, नमक तक नहीं है तो दूध घी की चर्चा ही व्यर्थ है । मौत सी सकटो की छाया अधिक नीचे तक आ गयी है और घरेलू अगीठियो की आग बचाकर डॅसना चाहती है ।[43]

गिरिजा कुमार माथुर को पीडा इस बात की है कि नरक की जिन्दगी जीने वाले किसान, श्रमिक और आम आदमी अन्ध विश्वासो के चक्कर मे अपने सोने जैसे जीवन को राख बना रहे हैं । वे अपने रूग्ण बच्चो का भी झाड-फूँक से (मटमैले बच्चे/बिन इलाज/झाड-फूँक)[44] इलाज कराकर अपने हाथो से ही उसे मौत के मुँह मे ढकेल देते है। इनकी दृष्टि मे भ्रष्ट मन्त्र व्यर्थ का पाखण्ड है ।[45] कडे शीश के समान मत्र उड रहे है और आहुति प्यासी जिह्वाओ सी उड़ रही है।[46] विभिन्न प्रकार के मत-मतान्तर भोली-भाली आम जनता को अन्ध विश्वास रूप कुएँ मे झोककर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हुए अज्ञान को ही जन्म दे रहे है ।[47]

गिरिजा कुमार माथुर मूल्य विहीन रात वाली परम्परा के नहीं वरन् मानवतावादी मूल्यों की परम्परा के समर्थक है । उन्हे असीम व्यथा है कि मूल विहीन परम्परा, जिसमे

आडम्बर, पाखण्ड, धर्म के नाम आम जनता को ठगा जाता है, कुण्डली मारकर बैठी हुई परम निरकुश नयी अग्नि के दाह मे मूल्यो की परम्परा भ्रष्ट कर रही है- "अभी आज तो मार कुडली/बैठी मूल्य विहीन रात है।/ भस्म हो गयी सब परम्परा/परम निरंकुश नयी अग्नि के दाह में ।"[48]

मानवतावादी कवि माथुर सुदूर अतीत के उस मानवतावादी मूल्यो को-(फेंक दिये थे हमने/अनगिन-जीर्ण-वसनो से/सारे क्षुद्र स्वार्थ/क्रूर लोभ, कुटिल अहकार/फेंक दिये थे दिग्विजयों के हथियार/हिंसा के आसन पर अभिषेकित किया था प्यार")[49]-स्थापित करना चाहते है । मानव के अन्तरिक्ष लोक की यात्रा के पश्चात क्या पृथ्वी पर समवेत शान्ति, प्यार पुन. न आ सकेगा ? कवि की पीडा आज के मानव से यह प्रश्न पूछती है कि क्या मध्य युग के क्रूर किले मे या जन्तु गधी अधेरो मे फिर से इतिहास की लहर लौट जायेगी ।[50] उन्हे वैज्ञानिक प्रक्रिया से उद्भूत वही आधुनिकता प्रिय है जिसमे मूल्य-दृष्टि हो। आधुनिकता के बाह्य आरोप या उसकी अनुकृति उतनी ही दोषपूर्ण है जितना स्वीकृत रूढियो का अनुकरण ।[51]

गिरिजा कुमार माथुर की प्रारम्भिक कविताओ का प्रेम मूर्त और मासल है । इनकी प्रेयसी ही पत्नी है जिसने अपने ऊपर अपार सकटो को झेलकर अपने तन-मन, रोम-रोम की जीवन-आभा इनके अन्तस्तल में भरी है।[52] जीवन के प्रत्येक चरण मे उन्हे प्रेम की वह पिपासा रही है जो प्रत्येक निकष को मिथ्या बनाती हुई अपनी सत्यता को प्रमाणित करती है ।[53] इस प्रणय के सत्य की खोज आत्मा की ओर मुडती है तभी प्रेम का वास्तविक स्वरूप ज्ञात होता है और कवि कह उठता है-

"तन का आकर्षण/है पशु का आकर्षण/तू पशुता से ऊपर उठकर/मानव बन/है बुद्धिज्ञान ज्यादा तुझ में/पशुओं से/इसीलिए नेह तू लगा/ज्ञान छवियों से/तू मुड आत्मा की ओर/देख छवि उसकी/जिस गुण से होती है/पहचान मनुज की ।"[54]

गिरिजा कुमार माथुर अपने प्यार के कलश के सम्पूर्ण जल को अपनी पत्नी के ऊपर उड़ेलते रहे हैं । इतना ही नहीं, उसके प्रदर्शन को न्याय की भाषा देना चाहते है ।[55] 'प्यार' को प्यार करने वाले माथुर जी पारिवारिक एकता को सम्पूर्ण देश की एकता की आधारशिला मानते है । इन्हे बच्चे अति प्रिय है । उनके द्वारा फैलाई गयी गन्दगी अब उनमे झुझलाहट उत्पन्न नहीं करती।[56] वे परिवार को अपनी छाया मानते है । वे जहॉ जाते हैं परिवार की छाया उनके साथ जाती है और अधेरे मे उन्हीं मे समा जाती है । जब-जब अंधेरा होता है तब-तब वह नारी-शक्ति की प्रतिमूर्ति अपनी पत्नी से मौत की तलवार से लडने के लिए शक्ति मॉगते है ।[57]

गिरिजा कुमार माथुर स्वातन्त्रयोत्तर भारत के प्रमुख कवियो मे अमिट हस्ताक्षर है जिनके शब्दो मे वह अपरिमित शक्ति, प्रेम, त्याग, तपस्या, ममता, करूणा, न्यायप्रियता और मानवीय मूल्यों का दिक्‌दिगन्त तक व्याप्त हो जाने वाला कालजयी अनुरणन है जिसने कभी भी निराला की इस बात- "सुनो! तुम अपनी कलम पेट से बॉधोगे? तो जो तुम्हारा पेट जिस तरह भरेगा, वैसे ही कलम चलवायेगा"[58]-को मानकर अपने शब्द को बिकने नहीं दिया।[59] आकाश की विद्युत रेखा बनकर प्रत्येक फरेब की जकडन को उन्होने नगा किया है ।

"गॉव पर अब भी ॲधेरा पाख है"[60] की दृष्टि रखने वाले माथुर का "बीसवा अन्धकार" एक अधनंगा आदमी के काले कारनामो का कच्चा चिट्ठा है । इन्हे आधुनिक सभ्यता की आदम-प्रवृत्ति अप्रिय है । उनकी दृष्टि आम-आदमी की भूख-बीमारी, गरीबी, गन्दगी, कौड़ियो के मोल बिकती हुई जिन्दगी, दैन्य, दु ख, अन्याय तथा अत्याचार का उन पर होता हुआ वार और धूप, सर्दी और बरसात को सहती उनकी जीर्ण-शीर्ण काया पर है।[61] उन्हें सत्य, शिव और विश्व कल्याण पर विश्वास है । वे मृत्यु को मृत्यु न मानकर आखिरी नींद मानते हुए उसे जीवन की एक चुनौती मानते हैं । इस चुनौती को स्वीकार

करने वाला ही सारे मोहक सपनो के बीच अपने को समझ सकता है और नवीन सपने को पूरा करने के लिए जीता है।[62] पुनर्जन्म पर विश्वास न करने वाले[63] कवि माथुर यह स्वीकार करते हैं कि एक दिन मानव का शरीर मिट्टी मे मिल जायेगा और मन यहीं पर मनोहर दृश्यो मे रह जायेगा । वह बार-बार इन्हीं दृश्यो मे जन्म लेगा और उसी मे पुन विलीन हो जायेगा।[64] कवि की दृष्टि मे मन विराट है वह प्रकृति के प्रत्येक उपादानो- नयी-नयी कोपलो, घास, फूलो, सन्नाटे को तोडने वाले झींगुरो आदि- के रूप मे बार-बार जन्म लेकर भूखे, प्यासे, सताये गये पीडित- शोषित जनो की व्यथा को हरता रहेगा । अन्त मे उसकी यही अभिलाषा है- "जितने अधूरे छूट गये है मेरे काम/पूरा करने को उन्हे उकसायेगा/नये रूपो मे/और अच्छी दुनिया को देखने/यह मन/यहीं-यहीं रहता चला जायेगा ।"[65]

पृथ्वी का प्रत्येक प्राणी द्वन्द्वो मे जीता है किन्तु आम आदमी का द्वन्द्व भोगात्मक मात्र होता है । उसके द्वन्द्व मे पीडा, सत्रास, भय पलायन अन्याय आदि का आधिक्य होने के कारण वही उसकी सॉस बन जाता है । ये ही तत्व शोषको की क्रीड़ा है । संवेदनशील कवि माथुर का हृदय उस द्वन्द्वात्मक टकराहट के परिणाम स्वरूप कुछ नयी कराह लेकर बहिर्भूत होता है । यही कराह उनकी कविता बनती है । भारत के आदि कवि वाल्मीकि का हृदय जब क्रौञ्च की पीडा नहीं सह सका और कविता के रूप मे उन्होने अपने आक्रोश को अभिव्यक्त किया तो सवेदनशील कवि माथुर का हृदय आम आदमी की पीड़ाओ से ऑख मूँदकर कैसे कल्पना लोक मे तैर सकता है । वह कवि कवि नहीं जो वर्तमान से ऑख मूँदकर केवल स्वप्नो के ससार मे विचरण करता हुआ मिथ्यावादी आडम्बरों का सृजन करता है । यथार्थ दृश्य अतीत के दर्पण मे देखकर कुछ सीमा तक ही समझा जा सकता है । प्रत्येक अतीत न मोहक है न हेय है । यही स्थिति वर्तमान की है । सजग कवि दोनो के शिवत्व को लेकर एक ऐसे सत्य की सर्जना करता

है जो मानवता के शाश्वत मूल्यो- दया, करूणा, ममता, प्रेम अहिसा- आदि को स्थापित कर जन-जन के लिए स्वर्णिम भविष्य का निर्माण कर सके । गिरिजा कुमार माथुर इसी सत्य की स्थापना के लिए आजीवन सघर्ष करते रहे है और उनका मन भविष्य मे भी प्रकृति के विभिन्न रूपो मे अवतरित होकर सघर्ष करता रहेगा, जब तक कि सच्ची मानवता की धरा पर स्थापना न हो जाय । गिरिजा कुमार माथुर 'वक्त के सामने' खडे होकर 'महावृक्ष की पुकार' को सुनते हुए 'खोये वर्तमान की तलाश' मे वैश्वानरीय शब्दो के द्वारा हमेशा हमेशा नये प्रकाश का सृजन करते रहेगे ।

अज्ञेय की कविताओं में लोक संवेदना :-

कवि अज्ञेय का प्रारम्भिक जीवन प्रकृति की लहलहाती हरीतिमा से सम्पन्न सुरम्य वातावरण मे बीता था । अतः प्रकृति के प्रति उनका आकर्षण स्वाभाविक ही था । उनके प्रथम काव्य-सग्रह "भग्नदूत" की- "दृष्टिपथ से जाते हो जब", "रहस्य", "असीम प्रणय की तृष्ण", "कहो कैसे मन को समझा लूँ" आदि कविताओ मे विराट-प्रकृति के साथ कवि का रागात्मक सम्बन्ध प्रमुख रूप से दिखाई पडता है । इसके अलावा "बत्ती और शिखा" व "दीपावली का एक दीप" कविता मे समाज की कृतघ्नता उनके लिए असह्य, बनती दिखाई पड़ती है। "घट" व "नहीं तेरे चरणो मे" कविता मे आत्मीय जन के प्रति कोमल प्रतिकार की भावना दिखाई पडती है । कवि कुछ कविताओ मे 'कवि व कविता' से सम्बन्धित विषयों व आदर्शो का बखान करने लगता है ।

तत्कालीन पराधीन भारतीय परिवेश मे "प्रस्थान" व "पराजय गान" कविताए कवि अज्ञेय को तत्कालीन सामाजिक सन्दर्भो या देश के प्रति आत्मीयता पूर्ण सम्बन्धो से जोड़ती है । अपनी 'प्रस्थान' कविता में कवि देश-हित की खातिर जान-न्योछावर करने वाले सैनिकों को 'रणक्षेत्र में जाने से पहले जी-भरकर रो लेने को कहता है ताकि युद्ध क्षेत्र मे वह इस कमजोरी का शिकार न होकर अपने कर्त्तव्य का निर्वाह भली-भाँति कर

सके। अत कहा जा सकता है कि कवि के इस सग्रह की कविताए रहस्य, प्रेम, प्रकृति, सौन्दर्य के साथ-साथ समाज् बोध और देश-प्रेम से भी जुडी हुई है । कालक्रम की दृष्टि से दूसरे काव्य सग्रह "चिन्ता" की कविताओ मे कवि अज्ञेय चिरन्तन नारी व पुरूष के सहज आकर्षण को ही प्रमुख रूप से व्यक्त करते है । धीरे-धीरे जीवन के विस्तृत पहलू से परिचित होने पर उनकी समझ का दायरा बढा । रहस्यात्मक दुनिया से नीचे उतर कर उन्होने यथार्थ जीवन का साक्षात्कार किया। फलत उनकी कविताए मानवीय जीवन की संवेदनाओ से, युग यथार्थ से जुडती गयी । उनके 'इत्यलम' कविता सग्रह के 'बन्दी स्वप्न' खण्ड की कविताओ मे तत्कालीन पराधीन भारत की चेतना कहीं बन्दी जीवन के कारण निराशा व अवसाद मे डूबी हुई दिखाई पडती है तो कहीं क्रान्ति, राष्ट्रीयता की भावना व स्वतन्त्रता की चाह जन-जन में जागृत करती है।[1] इस खण्ड की कविताएँ कवि अज्ञेय के बन्दी जीवन के दौरान ही लिखी गयी थी । अत बन्दी की व्यथा, पीडा, उसकी राष्ट्रीयता व क्रान्ति की भावना का यथार्थाकन करती है । इसी सग्रह के 'हिय हारिल' खण्ड की अधिकाश कविताएं विजय प्राप्ति की आशा से आलोकित, पराधीनता से शीघ्र मुक्ति के विश्वास से परिपूर्ण, हारिल की भाँति अपने स्वतन्त्रता के लक्ष्य को दृढता से पकड़े हुए हैं । उनकी "कीर" "निरालोक" "आज थका हिय-हारिल मेरा", "उड चल हारिल", "ओ मेरे दिल" आदि कविताओ मे स्वतन्त्रता-प्राप्ति की चाह, जो उन्हे सबसे प्यारी है, स्पष्ट देखी जा सकती है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए व्याकुल कवि कही थका जरूर है, पर हताश नहीं है । नयी शक्ति के साथ आगे बढने का उत्साह उनमे सर्वत्र दिखाई पड़ता है । अत स्पष्ट है कि पराधीन भारत की जनचेतना की मुक्ति के लिए प्रयत्नशील कवि देश व जनता के प्रति रागात्मक सम्बन्ध रखता है ।

'वंचना के दुर्ग' खण्ड की "वर्ग-भावना-सटीक" शीर्षक कविता उच्चवर्गीय शोषण की प्रवृत्ति पर मर्मान्तक व कटु व्यग्य करती है । कविता की मूल-सवेदना उन दो

पक्तियो मे है जहॉ कवि यह कहता है कि उच्चवर्गीय व्यक्ति ने अधम व्यक्ति के पास मैथुन सुख के अलावा और कोई सुख नहीं छोडा,[2] क्योकि उनके सारे सुख तो उन्होने निर्दयता पूर्वक छीन लिए है । एक कविता मे कवि ने मानवता के शव पर आसीन तथा श्मशान के देव स्वरूप उन शोषको को ललकारते हुए घृणा का गान गाया है,[3] जिन्होने कृषक/मजदूर का शोषण कर उन्हे विचित्र स्थिति मे डाल दिया है ।[4]

उनके 'इत्यलम्' काव्य सग्रह की एक महत्वपूर्ण कविता है 'घृणा का गान' जो पराधीन भारत मे शोषको के अत्याचार व समाज मे व्याप्त छूआछूत, ऊॅच-नीच की भावना पर कटाक्ष करती हुई तत्कालीन समाज की विसगतियो को उजागर करती है व शोषित जन के प्रति हार्दिक सवेदना व्यक्त करती है —

"तुम जो महलों मे बैठे दे सकते हो आदेश-

मरने दो बच्चे, ले आओ खींच पकड़कर केश

नहीं देख सकते निर्धन के घर दो मुट्ठी धान-

सुनो, तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान ।"[5]

"मिट्टी की ईहा" की कविताओं में अज्ञेय की अनेक विचारधाराएॅ परिलक्षित होती हैं । मिट्टी के बीच उगने वाले बसन्त के अङ्कुर रूप शोषित के क्रान्ति-स्वर शोषको को दार्शनिक रूप में भौतिक जीवन की चकाचौध मे सत्य का आभास कराते है –

"कितना तुच्छ है तुम्हारा अभिमान,

जो कि मिट्टी नहीं हो

जो कि मिट्टी को रौंदते हो

जो कि ईहा को रौदते हो,

क्योंकि मिट्टी ही ईहा है ।"[6]

देश को आजादी तो मिली पर ऐसी कि, मानव से मानव की ऑख मिलने पर गिलगिली घृणा उत्पन्न हो जाती है।[7] साम्प्रदायिकता व बैर की बुनियाद पर खडी आजादी ने खून की नदियॉ ही बहायीं । जिस बैर को अपने स्वार्थ की खातिर राजनीतिज्ञो ने पाला-पोसा । आज उसमे घृणा की खेती पककर तैयार है। नयी पीढी को पकी हुई यह घृणा की खेती ही विरासत मे मिली है।[8] अज्ञेय की "शरणार्थी" शीर्षक कविताऍ स्वतन्त्रता के कुछ समय बाद भारत-पाकिस्तान के बीच हुए युद्ध के दौरान शरणार्थी हुए व्यक्ति की दुर्दशा का अत्यन्त संवेदना पूर्ण व सजीवाकन करती है। युद्ध की विभीषिका से प्रभावित आम-आदमी शरणार्थी बन कर दर-दर की ठोकर खाने को मजबूर है। गॉव या शहर कहीं भी उनके रहने का ठिकाना नहीं है । त्राहि-त्राहि करते ये शरणार्थी 'कैसे अपने-आपको इन खतरो से बचायें'[9] -इसी चिन्ता मे बिना रूके अपरिचित पथो पर बढे जा रहे है । बूढ़े, बच्चे सभी इस गम्भीर त्रासदी के शिकार है । सिर झुकाये, पीठ पर गट्ठर लादे, गोद में बच्ची लिए, अपनी मिट्टी से दूर होने की पीडा को समेटे इन शरणार्थियो की विवशता का कवि मूक साझीदार हैं ।[10]

भारत-पाक दंगे के दौरान लिखी गयी "गाडी रूक गयी" कविता मे कवि उन्हे धिक्कार रहा है, जो साम्प्रदायिक एकता मे बाधक बनकर मनुष्य के नाम पर कलक है। कविता की वस्तु इस प्रकार है- चलती हुई गाड़ी के अचानक रूक जाने पर पडताल करने पर पता चलता है कि किसी को छुरा मारकर बाहर फेक दिया गया है । मनुष्य का इस प्रकार अपमान करने वालो के प्रति कवि मे तीव्र आक्रोश है।[11] आधुनिकता की होड़ मे पशुओ की खाल से ढके हुए इन मनुष्यो के भयंकर रूप के पीछे का इन्सान अभी पूरी तरह नष्ट नहीं हुआ है, तभी तो कवि कहता है कि इनके अन्दर अभी खरा इन्सान है, पर वह दरिन्दों द्वारा सुला दिया गया है । आओ उन्हें जगा दें, उनके ऊपर चढी पशुओं की खाल उतार दें ताकि ये पुन मनुष्य बनकर मनुष्य के हित मे सोच सके

"किन्तु भीतर कहीं/भेड-बकरी, बाघ-गीदड, सॉप के बहुरूप के अन्दर/कहीं पर रौदा हुआ अब भी तड़पता है/सनातन मानव-/खरा इन्सान-/क्षण भर रूको तो उसको जगा ले ।"[12]

छब्बीस जनवरी के प्रथम पुनीत पर्व के अवसर पर कवि युगो-युगो के स्वप्न को साकार होते देख आह्लादित है । अपने देश के नागरिको को सम्बोधित करते हुए वह कह रहा है कि स्वतन्त्र भारत का यह आलोक पर्व तुम्हारे ही स्नेह व तुम्हारे ही रक्तदान का प्रतिफल है । इसे सॅवार कर रखना भी हम सबकी प्रतिज्ञा होनी चाहिए-

"आज हम अक्लान्त, ध्रुव, अविराम गति से बढे चलने का कठिन व्रत धर रहे है/आज हम समवाय के हित, स्वेच्छया आत्म अनुशासन नया वर रहे है ।"

इसी कविता मे आगे वे कहते है-

उत्तरोत्तर लोक का कल्याण ही साध्य./अनुशासन उसी के हेतु है।[13] स्वतन्त्रता के बाद भी लोक का कल्याण ही हमारा लक्ष्य है । अत हम अनुशासित रहे तो निश्चय ही इस लक्ष्य (लोक-कल्याण) की प्राप्ति हो सकेगी ।

स्वतन्त्रता के बाद लोक-कल्याण के नाम पर अनेक कार्य किये गये, पर उसका लाभ गरीबो, दलितो के जीवन मे कोई खास परिवर्तन न ला सका । उनकी गर्दने शोषको या जीवन दाता के पैरों तले दबी रही । अज्ञेय शोषक भैया[14] कविता मे शोषको पर व्यग्य करते हुए उन्हे आमन्त्रित करते है कि वे आये और अपनी काली करतूतो के माध्यम से शोषितो के रक्त को पिये । साथ ही वे यह भी कहते है कि अगर उनके रक्त में कोई दोष है तो इसके लिए वे जिम्मेदार नहीं । क्योकि आज उनकी जो स्थिति है वह उनके जीवनदाताओं की ही देन है । कविता के अन्त मे शोषितो मे भी सघर्षशक्ति आने का संकेत देते हुए कवि कहता है कि मेरे रक्त में जो ढलते इस्पात की धार है अर्थात आज जो मैं इतने उग्र स्वभाव का हो गया वह भी तुम्हारी ही देन है । तुम मुझसे क्यो डर

रहे हो?तुम्हीं ने तो मुझे निर्मित किया है । निर्माण करने वाला ही काल बनकर आता है।

'श्रम कोई और करे, खाये कोई और'- इस विडम्बना पूर्ण व्यवस्था से दु खी कवि उन कृषक-मजदूरो के प्रति अपनी सवेदना व्यक्त कर रहा है जिसके श्रम का लाभ सेत मे खाने वाले महाजन को मिल रहा है।[15] कवि "हवाई यात्रा" का जोखम भरा खेल भले ही खेल रहा है, पर उसकी निगाह से वह किसान परे नहीं है, जो हर वक्त दूसरो के लिए अन्न जुटाने मे अपने श्रम की पूँजी व्यय करता है । कवि यह स्वीकार करता है कि मेरा यह हवाई खेल किसान के सामने बेहद तुच्छ है जो अपने आगे पीछे की सैकडो पीढ़ियो को जीवनदान दे रहा है-

"उस अपने आडी किसान की जोखम मुझसे बहुत बडी है-

मै जो अपनी एक जान को ही चिपटे हूँ-

वह अपने आगे-पीछे सैकडो पीढियॉ दॉव-दॉव पर बढा देता है ।"[16]

कवि ऊँची उडान भरने वाले व्यक्तियो को सम्बोधित करते हुए उन्हे यथार्थ धरती को देखने व समझने की सलाह देते हुए कहता है कि वह उडन खटोले की दुनिया से नीचे उतरकर उन्हे देखे, जो उनके जैसे ही इन्सान है पर अन्तर इतना है कि उनकी ऑखे व्यथा से नम हैं।[17] "मैं वहॉ हूँ" कविता मे कवि का सवेदनशील हृदय उन सभी के लिए द्रवित है जो अपने लिए तो कुछ भी नहीं जुटा पाते, पर दूसरो के लिए जीविका के साथ-साथ विलासिता के साधनो की आपूर्ति मे अपना जीवन लगा देते है -

"यह जो मिट्टी गोडता है, कोदई खाता है और गेहूँ खिलाता है

उसकी मै साधना हूँ ।

यह जो मिट्टी फोडता है, मड़िया मे रहता है और महलो को बनाता है

उसकी मैं आस्था हूँ ।[18]

कालिख पुते खानों में उतरने वाला, कचरा ढोने वाला, झल्ली लेकर घूमने वाला,

गदहे हॉकने वाला, तन्दूर झोकने वाला, रद्दी बटोरने वाला, वासन मॉजने वाला, रिक्शा मे अपना प्रतिरूप लादे खींचने वाला हर "पीडित श्रमरत मानव/अविजित दुर्जेय मानव/कमकर श्रमकर, शिल्पी, स्रष्टा"[19] की व्यथा का कवि सहभोक्ता ही नहीं वरन् उन्हे उनके दु·खों से मुक्ति दिलाने वाला साक्षात् सघर्ष ही है-

"मै संघर्ष हूॅ जिसे विश्राम नहीं,

जो है मै उसे बदलता हूॅ, जो मेरा कर्म है, उसमे मुझे सशय का नाम नहीं"[20]

"इतिहास की हवा"[21] कविता में आधुनिक जीवन की मूल्यहीनता व सामाजिक अस्त व्यस्तता को शब्दों मे पिरोया गया है । कवि ने इतिहास के उन पृष्ठो को खोला है, जिन पर ताजमहल बनाने वाले के हाथ काट लिए जाने व गुरूदक्षिणा मे एकलव्य का अगूठा माग लिए जाने की करूण कथा अकित है । सामाजिक असमानता का मर्मान्तक दृश्य तत्कालीन समाज मे अपने को दोहरा रहा है । आज का द्रोण किसी एक शिष्य के अधिकार का हरण नहीं करता, वरन वह सम्पूर्ण समाज का भला नहीं चाहता । जो पददलित है, उनके लिए पहले तो वह कुऍ खुदवाता है ताकि अपनी छवि उनके बीच वना सके । फिर वही द्रोण चुपके से उनके कुऍ मे भॉग डाल देता है ताकि वह अपने विवेक से उचितानुचित का निर्णय न कर सके । अपने इस कार्य के द्वारा द्रोण पददलितो के विवेक को खरीद लेता है, फिर तो ये पददलित गुरू के इशारे पर अपने ही समान अन्य पददलितो की झोपड़ियो में आग लगाने मे सकोच नहीं करते।[22] इस कविता मे कवि ने साकेतिक रूप से यह भी कहने का प्रयास किया है कि गरीब ही जब गरीब का दुश्मन बन जाये तो सामाजिक विषमताओ को कैसे दूर किया जा सकता है ।

अपनी फटेहाल स्थिति को छिपाने के लिए रात मे निकलकर भीख मॉगने वाले व दर-दर की ठोकर खाने वाले लोगों को देखकर कवि आधुनिक सभ्यता पर तीखा व्यग्य करता है । जहॉ एक ओर शहरों में हर नुक्कड पर पक्के पेशाबघरो व सुन्दर

कचरा-पेटियों की व्यवस्था है तो दूसरी ओर इसका निर्माण कर्ता ही कूडे से भी बदतर जिन्दगी जी रहा है । कवि "महानगर रात" कविता मे तथाकथित सभ्य माने जाने वाले लोगो से प्रश्न करता है, जो गरीबी, फटेहाली की इस स्थिति के लिए सीधे जिम्मेदार है –

"बोलो, उसको देने को है

कोई उत्तर

होगा?"23

स्वतन्त्रता के इतने वर्ष बीत जाने के बाद भी सभी का पेट नहीं भर पाया है । भूख की पीडा से छटपटाते लोगो के लिए ऐसी स्वतन्त्रता का क्या मूल्य? ये हमारे देश के तथाकथित कर्णधारो का ही किया धरा है जिनको अपनी जेबो के अलावा किसी का दुख-दर्द दिखता ही नहीं । तभी तो खेतों मे फैली हरियाली किसानो के दिल तक नहीं पहुँच सकी । हर वह चीज खाली है जो भरी होनी चाहिए । "हरा भरा है देश" कविता मे कवि का संवेदनशील हृदय यह देखकर द्रवित है कि खेत तो हरे भरे है मगर खलिहान खाली हैं । अभावग्रस्त लोगो की ऑखे तो भरी है किन्तु उनके पेट खाली है, बनिये के कागज तो भरे है, पर टेट खाली है । व्यवस्था की मार से जो पहले ही मरे हुए जैसे है, वह जी कर भी क्या करे? जिसको पीने के लिए पानी नसीब नहीं, वह किसी से बदला लेने की ताकत कहॉ से जुटायेगा । अभावग्रस्त जिन्दगियो के लिए जिम्मेदार ऐसे लज्जाहीन, हृदयहीन व्यक्तियो को अपनी करनी का फल अवश्य ही भुगतना होगा, ऐसा कवि का विश्वास है–

"पकेगा फल, चखना होगा

उन्हीं को जो जीते है आज

जिन्हें हैं बहुत शील का ज्ञान–

नहीं है लाज ।" 24

जीवन की मूलभूत आवश्यकताओ की पूर्ति मे जुटे व्यक्ति को सामाजिक असगतियो को जानते हुए भी मौन रहना पडता है, क्योकि इन्ही विसगतियो के वीच ही उनकी जीविका के स्रोत हैं जिसे वह खोना नहीं चाहता । राजा जी के बाग मे एक कुऑ है जो सुरक्षा कवच से ढ़का है जिसका जल अत्यन्त मीठा व स्वच्छ है। राजा के सेवक के लिए एक नदी है जिसके पानी मे लोग नहाते है, कपडे धोते है, उसी मे उनके पशु नहाते हैं, अगर कोई मर जाय तो वही उनका दाह सस्कार भी होता है। कुऑ जो सार्वजनिक सम्पत्ति है, राजा जी का ही अधिकार है। आम-आदमी के लिए तो वह एक सपना है। अज्ञेय की "बॉगर और खादर"[25] कविता इस कटु सामाजिक सच्चाई पर मूक प्रहार करती है। इसी तरह उनकी "औद्योगिक बस्ती"[26] कविता बडे-बडे उद्योगो मे काम करने वाले अभावग्रस्त मजदूरो की विवशता को स्पष्ट करती है यह जानते हुए भी इस काम मे उनकी आयु तेजी से कम होती जा रही है, फिर भी वे अपने-आपको मजबूरी वश उसमे झोंके रहते हैं।

एक छोटा बच्चा, जिसे अभावो ने समय से पहले ही "अनुभव परिपक्व" बना दिया है, पाठक की सवेदना को गहराई से सस्पर्श करता है । बच्चा अपनी मॉ से यह आस लगाये बैठा है कि वह अगली दीवाली मे 'टीन का लट्टू' लेगा। वह छोटी सी उम्र मे यह महसूस कर रहा है कि मॉ इस स्थिति मे नहीं कि वह टीन का लट्टू खरीद सके, तो वह अपनी मॉग कुछ कम करते हुए कहता है कि 'मॉ' मुझे 'कागज की फिरकी' तो ले देना। अन्तत· बच्चा कहता है कि मुझे वो भी नहीं चाहिए, और फिर वह जिस चीज की मॉग करता है वह कविता में बच्चे की 'अनुभव परिपक्वता' व घर की कारूणिक दशा का बिम्ब एक साथ-खडा करती है -

"-अच्छा, मॉ, मुझे खाली मिट्टी दे दो-

मैं कुछ नहीं मागूँगा·

मेले जाने की हठ नहीं ठानूँगा ।

जो कहोगी मानूँगा ।"[27]

१९६५ मे हुए भारत-पाक युद्ध के यथार्थ से कवि अपनी लेखनी को अलग न रख सका, जिसे जन-जन के सहयोग के बिना नहीं जीता जा सकता था । युद्ध के बाद की तबाही- रौदे हुए खेत, जहॉ-तहॉ पडी मौत की मशीने, जलते गॉव, नहरो के टूटे कगार, बैर की जलती पगडण्डियॉ-ये सभी जन-हानि को ही द्योतित करते है। कवि नतमस्तक हो उस जन के प्रति आभार व्यक्त करता है जिसके बिना यह जीत सम्भव नहीं थी -

"देश के जन-जन का/यह स्नेह और विश्वास

जो हमें बताता है/कि हम भारत के लाल है-

x x x x x

हमे बल दो, देशवासियो, क्योंकि तुम बल हो।"[28]

"अन्धकार में जागने वाले"[29] शीर्षक कविता मे कवि उस हर योद्धा की जिन्दगी का मूक साक्षी है जो देश की खातिर युद्ध मे विजय प्राप्त करने के लिए दुश्मनो की राह मे विस्फोटक बिछाता है और युद्ध भूमि मे मारा जाता है । इसी कविता मे कवि उस अभावग्रस्त जीवन को वाणी देता है, जो युद्ध से बेखबर है, और जिनकी सुबह रोजी-रोटी के लिए जद्दोजहद से शुरू होती है ।

किसी भी सभ्य राष्ट्र के लिए दासता बहुत बडा कलक है । आजादी के इतने वर्षो के बाद भी यह दास-वृत्ति नष्ट नहीं हो पायी । जीवित धडकनो का सौदा मानवता का भयंकर अपमान है । माताऍ, बहनें, बहुऍ व बेटियो की खरीद-फरोख्त से उत्पन्न शब्दातीत व्यथा कवि के अन्तर्मन को पीडा पहुँचाती है। अपनी "दास-व्यापारी"[30] कविता मे कवि उन पर अपना आक्रोश व्यक्त करता है, जिनकी रगरेलियो के कारण यह व्यापार चलता है । अन्य अनेक सामाजिक बुराईयों में जातिगत भेद-भाव, धर्म व सम्प्रदाय के नाम किये जाने वाले कृत्य देश को खोखला करने के प्रयास मे जुटे हुए है । "अह राष्ट्री

सगमनी जनानाम्" कविता मे कवि ने उस समाज पर व्यग्य किया है, जहॉ सभी जातिगत भावना से भरे हुए है । हर जाति के लोगो के एक न होने पर कवि को कहीं वह समाज नहीं दिखा, जो किसी देश की एकता व सुदृढता के लिए अनिवार्य है । वह देश से पूछता है-

"देस रे देस/तेरे सिर पर कोल्हू/इसका भार तू कैसे ढोयेगा/

जिसे पेरेंगे जाट, बाम्हन, बनिया, तेली, खत्री/

कब बनेगा तू राष्ट्र ।"[31]

देश के सुविधा-भोगी लोगो का अभारतीय वस्तुओ के प्रति प्रेम कवि के लिए दु:खद है । अपनी "जनपथ× राजपथ" कविता मे कवि पाश्चात्य सभ्यता रूपी भैस को राजपथ पर बैठकर जुगाली करते हुए देखकर व्यग्य करता है-

"राष्ट्रीय राजमार्ग, प्रादेशिक पशु /योजना आयोग वाले करे तो क्या करे ?/विचारे उगाते हैं/आयातित रासायनिक खाद से/ अन्तर्राष्ट्रीय करम कल्ले ।"[32]

"केले का पेड़"[33] "देखिये न मेरी कारगुजारी"[34] कविता मे कवि खुशामदी उन लोगो पर व्यंग्य करता है जिनकी अपनी रीढ़ की हड्डी है ही नहीं । जब तब वह अपने हित की खातिर दूसरो के चरणों में झुके रहते हैं, और इसे ही अपना सौभाग्य समझते है ।

हमारे देश में निर्माणकर्ता, जिसके श्रम की बुनियाद पर महलो व पुलो का निर्माण होता है उसका समाज में क्या मूल्य है। "जो पुल बनायेगे" कविता इसका कटु अहसास कराती है।[35] कवि निरन्तर श्रम द्वारा कुछ नया निर्मित करते रहने वाले की महत्ता को भलीभॉति समझता है ।[36]

अज्ञेय अपनी कविताओं मे एक ओर तो शोषको के दृष्कृत्यो पर प्रहार करते व शोषितों की पीड़ा, उनके मर्मान्तक दुःखों के प्रति सहानुभूतिशील दिखते हैं, वही दूसरी ओर ग्राम्य-जीवन के बीच नित नूतन दिखाई पड़ने वाली उन्मुक्त प्रकृति को अनुभूतियो

मे उतारते है, और फिर अत्यन्त सहज शब्दो मे, लोक लय के सहारे उसे अभिव्यक्ति देते है । विभिन्न ऋतुओ मे होने वाले परिवर्तनो से कवि भलि-भॉति परिचित है । तभी तो वह प्रभावकारी व सहज भाषा के माध्यम से हर-ऋतु को सजीव कर देता है । गॉव से तादात्म्य बनाये रखने वाले कवि अज्ञेय की प्रकृति सम्बन्धी कविताएॅ उन्हे लोक के अत्यन्त निकट ले आती है । "कतकी पूनो" (कार्तिक पूर्णिमा) की शीतल चॉदनी मे फलॉग भरती शशकों की जोड़ी, फुहार सा झर रहा कुहरा, अकासनीम, मालती व कास की आभा मन को सहज ही आकर्षित करती है । उस स्वच्छ चॉदनी मे ग्राम्य बाला के मन की हुलास, जो अपने प्रियतम की राह देख रही है, इस प्रकार प्रकट हो रही है जैसे चोरो की परछाई न चाहते हुए भी उभर जाती है ।[37]

'बसन्त की बदली', 'शरद', 'रात सावन की', 'क्वार की बयार', 'सो रहा है झोप', 'सबेरे-सबेरे', 'तुम फिर आ गए क्वॉर', 'चॉदनी जी लो', 'झरने के लिए', 'सन्ध्या-तारा', 'प्रथम-किरण', 'पानी बरसा' आदि कविताए[38] कहीं प्रकृति का सुमधुर बिम्ब उपस्थित कर मन को मोहती है, तो कहीं मानव के सुख-दु ख की सहचरी बनकर उनमे स्नेह व प्रेम का सचार करती है । "चॉदनी जी लो"[39] कविता मे कवि शरद चॉदनी के सुमधुर हास से क्षण के लिए ही सही, अन्तर्मन को प्रफुल्लित करने की सलाह दे रहा है।

आरम्भ से लेकर काव्य-यात्रा के अन्तिम चरण तक की उनकी कविताओ मे प्रकृति इस प्रकार छायी हुई है, जैसे पुष्प में सुगन्ध ।

कवि सिर्फ ग्रामीण प्रकृति की सहजता मे ही अपने को नहीं डुबाये रखता । गॉव मे रहने वालों की सहज जीवन-शैली, उनकी समस्याये, उनके दु ख-दर्द, रीति-रिवाज, **विश्वास व परम्पराये भी कवि की सवेदनशील दृष्टि से परे नहीं रहे है । "हमारा देश"** कविता ग्रामीण-संस्कृति से उनके लगाव व शहराती सभ्यता पर तीक्ष्ण व्यग्य करती है -

"इन्हीं तृण-फूस छप्पर से

ढँके ढुलमुल गँवारू

झोपड़ो में ही हमारा देश बसता है ।

x x x x

इन्हीं के मर्म को अनजान

शहरो की ढ़की लोलुप

विषैली वासना का सॉप डॅसता है ।"[40]

उपेक्षित पर्वतीय गॉव की दुर्दशा पर कवि का सवेदनशील मानस कहता है कि शहरो मे तो समृध्दि का जाल सा फैला है, पर इन पर्वतीय गॉवो मे सामान्य वस्तु भी अनुपलब्ध है । जो उपलब्ध है, वह है- "भूख व बेबसी" । जब शासन के सामने मॉगे रखी जाती है तो उन्हे सिर्फ झूठे वायदे मिलते है ।

"कल के लिए हमे/नाज का वायदा है-/आज ठेकेदार को/हमारे पेड काट ले जाने दो;/ कल हाकिम के आयात की/योजना सुनाने आवेगे-/आज बच्चो को/भूखा ही सो जाने दो ।"[41] और तो और अपने स्वार्थ के लिए प्राकृतिक सम्पदा का लगातार दोहन वहॉ के सौन्दर्य को भी दिन-प्रतिदिन नष्ट करता जा रहा है । कवि के अनुसार अगर इसी प्रकार 'बीस-तीस पचास बरस' और दोहन चलता रहा तो-

"हम तुम्हारे नीचे एक मरू बिछा चुके होगे ।"[42]

क्योकि झरने-सोते के सूख जाने व धुँधुआते ट्रको से निकले धूम-सूत्रो के गुझर से विषाक्त वातावरण वहॉ बीमारियो को ही उत्पन्न करेगा, जिससे जन-हानि ही होगी ।

अज्ञेय की कविताओ मे लोक जीवन में व्याप्त सस्कार, रीति-रिवाज पर्वोत्सवो विविध विश्वास व मान्यताएँ और इन्हीं के बीच बिखरी हुई भारतीय सस्कृति की छटा सर्वत्र दिखाई पड़ती है । पतिव्रत धर्म का पालन करती हुई लज्जाशील भारतीय नारी का

बिम्ब "पूनो की सॉझ" कविता मे सहज ही मन को आकर्षित करता है-

"पति सेवा रत सॉझ/उचकता देख पराया चॉद

लजा कर ओट हो गयी ।"[43]

त्यौहारो के प्रति लगाव को कवि की इन पक्तियो से भलि-भॉति समझा जा सकता है -

"कल जो जला रहे थे दीप

आज संलग्न भाव से मॉज रहे है फर्श

कि कैसे दाग तेल के छूटे ।"[44]

जो तेल कल दीप प्रज्वलित करते वक्त गिरा था आज उसे ही साफ कर रहे है । इन कार्य को करने मे उनके मन मे कोई मलाल नहीं है । तेल पोछने मे दिखाई पडने वाली उनकी सलग्नता त्यौहारो के प्रति उनकी अटूट आस्था को व्यक्त कर रही है । किसी उत्सव मे तोरण सजाना, पाहुनो को पत्तर मे भोजन कराने की लोक-रीतियो से सजी-सॅवरी कविता अज्ञेय की इन रीतियो मे आस्था को व्यक्त करती है -

"अम्बार है जूठी पत्तलो का, निश्चय ही पाहुन आये थे ।

बिखरी पडी है डालियॉ-पत्तियॉ, किसी ने तोरण सजाये थे ।"[45]

भगवान बुद्ध के मद्धिम स्वरो को दुहराते हुए कवि कहता है कि तितीर्षा ही तीर्थो का निर्माण करती है । मन्दिरो मे तो कुछ नहीं होता, वहॉ तीर्थ यात्री की श्रद्धा ही मूर्ति को अर्थवत्ता प्रदान करती है । कवि को जन-सामान्य की तीर्थो के प्रति आस्था अनुचित नहीं लगती, क्योकि उससे कोई हानि नहीं है। इतना जरूर है कि जो अन्दर से जितना दानी है वह उतने की प्राप्ति का ही हकदार है ।

"कुछ मिलेगा, अवश्य मिलेगा,

पर उतना ही जितने का तू है अपने भीतर से दानी ।"[46]

अज्ञेय की सम्पूर्ण कविताओ को देखने के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि सवेदना के साथ-साथ सजग बौद्धिकता होने के कारण कवि की अनुभूतियॉ गहराई तक न जाकर सतह को ही भली-भॉति देख सकी है । कहने का तात्पर्य यह नहीं कि उनमे लोकानुभूतियॉ थी ही नहीं । इतना अवश्य है कि वे लोक जीवन मे उस गहराई तक नहीं पहुँच सके, जिस गहराई तक लोक जीवन के बीच पलाव बढ़ा हुआ व्यक्ति पहुँच सकता है ।

निष्कर्ष :-

इन सभी कवियो की रचनाओ मे लोक जीवन की अनकही वेदनाओ का मर्मस्पर्शी चित्रण है । सत्ताधारी व पूँजीपतियो के प्रति इनके मन मे अत्यन्त आक्रोश है जो आम-आदमी की निम्नतर स्थिति के जिम्मेदार है । इन्हे प्रेम है गॉव की मिट्टी से, किसानो के दुर्गन्ध-युक्त पसीने से, जो अन्न के रूप में परिवर्तित होकर पूँजीपतियो की भूख मिटाता है । उन्होने अपनी कविताओ द्वारा चढी हुई रूढ़ियो की प्रत्यचा वाले अन्ध-विश्वासो के शिव धनुष को तोड़कर दबे हुए लोगो के एक हाथ मे हथौडा और दूसरे में श्रमशील हंसुए को थमाकर जीने का रास्ता बताया है । इन कवियो को विश्वास है कि एक दिन गरीबो के रक्त से बने हुए शोषकों के गगनचुम्बी भवन-जिनमे सिसकती हुई कितनी ही दलित औरतो की प्रतिष्ठा दफनायी गयी है, मजदूरो की सूखी हुई हड्डियॉ चुनी गयी है, दलितों के, शोषित के रग जगह-जगह पुते हुये है और किसानो की आत्माएँ सिसकती हुई मुक्ति के क्षण की प्रतीक्षा कर रही है- धूल मे मिल जायेगे और एक लाल बीज का विरवा पनपकर महान् अक्षयवट बनेगा, जिसकी सुखद शीतल छाया मे बैठकर शोषित जन अपने अतीत की नींव पर सुखद भविष्य का निर्माण करेगे ।

चतुर्थ अध्याय - सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) सतरगे पखो वाली (कविता सग्रह) – नागार्जुन, "खुरदरे पैर" शीर्षक कविता,

पृ0 – 23।

(2) दृ0 वही, पृ0 – 24।

(3) "सामने आकर/रूक गयी चमचमाती कार।

बाहर निकली वासक सज्जा युवतियॉ।

X X X

मुड गयी सहसा वापस/ तीन वोट रह गये फैशन के नाम पर।"

नागार्जुन चुनी हुई रचनाऍ – 2, सम्पादक – शोभाकान्त मिश्र, पृ0–122, 123।

(4) तुमने कहा था (कविता सग्रह) – नागार्जुन, पृ 0 81।

(5) "श्रम का अपना सु-फल वो/जाने किस–किस को चखाएगा,

वो अपना मन ताश और शतरज मे नही लगायेगा।

X X X X

कुछ न कुछ उपजा के चले जाऍ/भले, दूसरे ही उनके उपज के फल पाऍ।"

खिचडी विप्लव देखा हमने (कविता सग्रह) – नागार्जुन, पृ0 39–39।

(6) प्यासी पथराई ऑखे (कविता सग्रह) – नागार्जुन, "घिन तो नही आती" शीर्षक कविता,

पृ0 – 29।

(7) युगधारा (क0स0) – नागार्जुन, पृ0 – 113।

(8) "नागार्जुन" – डॉ0 प्रभाकर माचवे, पृ0 – 70।

(9) युगधारा (क0 स0) – नागार्जुन, पृ0 – 103–104।

(10) नागार्जुन चुनी हुई रचनाएँ – 2, सम्पादक–शोभाकान्त मिश्र, पृ 0 186।

(11) नागार्जुन चुनी हुई रचनाएँ – 2, सम्पादक–शोभाकान्त मिश्र, पृ0 – 240।

(12) दृ0 वही, पृ0 – 236।

(13) "मै तुम्हारी जूतियाँ चमकाऊँगा / दिल बहलाऊँगा तुम्हारा।

कुछ भी करूँगा तुम्हारे लिए / मै तुम्हे अपना चुम्बन दूँगा।"

नागार्जुन चुनी हुई रचनाएँ–2, सम्पादक–शोभाकान्त मिश्र पृ0–202।

(14) दृ0 वही, पृ0 107–108।

(15) माँ–बाप गरीब, न कर सकते प्रतिकार बहरापन का,

सोचा होगा, पकडा देगे कोई पथ जीवन यापन का।

X X X X

जिससे न माँगनी पडे भीख/लेकिन यह तो बस सपना है।

चलता भी बस कुछ अपना है।"

तालाब की मछलियाँ (क0स0)– नागार्जुन, पृ0 – 12।

(16) खिचडी विप्लव देखा हमने (क0स0) – नागार्जुन, पृ0 – 83।

(17) खिचडी विप्लव देखा हमने (क0स0) – नागार्जुन, पृ0 – 40।

(18) "सामन्तो ने कर दिया प्रजातंत्र का होम,

लाश बेचने लग गये खादी पहने डोम।"

"नागार्जुन" – डॉ0 प्रभाकर माचवे, "प्रजातन्त्र का होम" शीर्षक कविता, पृ0 – 97।

(19) नागार्जुन चुनी हुई रचनाएँ – 2, सम्पादक शोभाकान्त मिश्र, पृ0 – 83।

(20) "खादी ने मलमल से अपनी सॉठ–गॉठ कर डाली है।"

इस गुब्बारे की छाया मे (क0स0) – नागार्जुन – पृ0 – 62।

(21) दृ0 वही, पृ0 – 63।

(22) प्यासी पथराई ऑखे (क0स0) – नागार्जुन, पृ0 – 36–37।

(23) प्यासी पथराई ऑखे (क0स0) – नागार्जुन, पृ0 – 55।

(24) दृ0 वही, पृ0 – 55।

(25) नागार्जुन चुनी हुई रचनाएँ –2, सम्पादक–शोभाकान्त मिश्र, पृ0–141।

(26) प्यासी पथराई ऑखे (क0स0) – नागार्जुन, पृ0 – 60।

(27) दृ0 वही, पृ0 – 33।

(28) दृ0 वही, पृ0 – 34।

(29) "अन्दर–अन्दर विकट कसाई, बाहर खद्दर घारी है।"

इस गुब्बारे की छाया मे (क0स0) – नागार्जुन, पृ0 – 62।

(30) युगधारा (क0स0) – नागार्जुन, पृ0' 100।

(31) नागार्जुन चुनी हुई रचनाएँ–2, सम्पादक–शोभाकान्त मिश्र, पृ0–139।

(32) "लोकतन्त्र के मानचित्र को रौद रही है, कील रही है,

सत्तामद की बेहोशी मे हॉफ रही है।

ऑय–बॉय बकती है कैसे, देखो कैसे कॉप रही है,

यह चुडैल है।

महाकुबेरो की रखैल है।"

खिचडी विप्लव देखा हमने (क0स0) – नागार्जुन, पृ0 – 28।

(33) "जमती अशोक के सिहो पर वेशर्म उल्लुओ की जमात,

X X X X

रो देती क्रान्ति कुमारी तब, जब होता उसका चीर–हरण

नब्बे प्रतिशत का दस प्रतिशत खुलकर करते तकदीर–हरण।"

तुमने कहा था (क0स0) – नागार्जुन, पृ0 – 9।

(34) "नयी ऋचा, नव मच रचेगी अन्न ब्रह्म की माया

X X X X

युग की पीडाएँ हर लेगी अन्न ब्रह्म की माया।"

नागार्जुन चुनी हुई रचनाएँ – 2, पृ0 – 208।

(35) दृ0 वही, पृ0 – 264।

(36) "मेरे साक्षात्कार", – नागार्जुन, पृ0–89।

(37) नागार्जुन चुनी हुई रचनाएँ – 2, पृ0 – 286।

(38) "पतित बुद्धिजीवी जमात को आग लगा दो

वर्ग–शत्रु तो ढेर पडे है / उनकी ही लाशो से अब तुम /

भूमि पाटते चलना ।"

आखिर हमने ऐसा क्या कह दिया (क0स0)– नागार्जुन पृ0 198।

(39) "मेरे साक्षात्कार", नागार्जुन – पृ0 – 127।

(40) तालाब की मछलियॉ (क0स0) नागार्जुन, पृ0 – 2 ।

उद्धृत – "नागार्जुन" – सत्यनारायण, पृ0 – 41।

(41) यो ही गुजरेगे हमेशा नही दिन/बेबसी मे खीझ मे,

घुटन मे, ऊबो मे/आयेगी वापस जरूर हरियालियॉ।"

"नागार्जुन" – डॉ0 प्रभाकर माचवे, पृ0 – 90।

(42) महाभिनिष्क्रमण, उद्धृत – नागार्जुन की काव्य यात्रा – डॉ0 रतन कुमार पाण्डेय, पृ0–30–31।

(43) नागार्जुन चुनी हुई रचनाएँ – 2, सम्पादक – शोभाकान्त मिश्र, पृ0 – 245।

(44) "नागार्जुन की काव्य यात्रा" – डॉ0 रतन कुमार पाण्डेय, पृ0 – 46।

(45) "यज्ञ के निमित्त पशुओ की सृष्टि की विधाता ने,

यज्ञ के निमित्त ही उन्हे मार गिराया जाता है

इसी कारण मै तुम्हे मरवाऊँगा

यज्ञ की हिसा ,हिसा नही हुआ करती।"

मेरे साक्षात्कार – नागार्जुन, पृ0 – 84, 86, 91 एव 93।

(46) नागार्जुन चुनी हुई रचनाएँ – 2, सम्पादक शोभाकान्त मिश्र, पृ0 – 140।

(47) द्रृ0 वही, पृ0 – 42।

(48) "नागार्जुन की काव्य यात्रा" – डॉ0 रतन कुमार पाण्डेय, पृ0–48 पर उद्धृत।

(49) "भूख ही सबसे बडा धर्म है, सबसे बडा देवता है।"

"तेरी खोपडी के अन्दर" शीर्षक कविता।

उद्धृत – "नागाजुर्न की काव्य यात्रा" – डॉ0 रतन कुमार पाण्डेय, पृ0–49।

(50) नागार्जुन चुनी हुई रचनाएँ – 2, सम्पादक शोभाकान्त मिश्र पृ0–43।

(51) द्रृ0 वही, पृ0 58–59।

(52) द्रृ0 वही, पृ0 – 195।

(53) "फिरकावन्दी जातिवाद का झाडेगे यह भूत।"

"गूँजते रहे बडी देर तक" कविता।

द्रृ0 वही, पृ0 – 196।

(54) दृ0 वही, पृ0 – 162।

(55) दृ0 वही, पृ0 – 201–202।

(56) दृ0 वही, पृ0 – 237।

(57) "हरे हरे नए–नए पात/पकडी ने ढक लिए अपने सब गात।"

दृ0 वही, पृ0 – 238।

(58) "लाल गुलाबी पत्ते कैसे।

लहलहा रहे है / कैसी सुन्दर रात, चॉदनी की

किरणो मे नहा रहे है

दृ0 वही,पृ0 – 19 ।

(59) "पीपल के पत्तो पर फिसल रही चॉदनी

नालियो के भीगे पेट पर, पास ही

जम रही,, धुल रही,, पिघल रही चॉदनी

पिछवाडे बोलत मे टुकडो पर

दृ0 वही, पृ0 – 238।

(60) "छोटे है, बढने का वर दो।

X X X X

राह रोककर खडे न होना"

दृ0 वही, पृ0 – 19।

(61) दृ0 वही, पृ0 – 239।

(62) दृ0 वही, पृ0 – 21।

(63) दृ0 वही, पृ0 – 19।

(64) "उसके शीतल तुहिन कणो को/मानसरोवर के उन/स्वर्णिम कमलो पर

गिरते देखा है।"

दृ0 वही, पृ0 – 19।

(65) दृ0 वही, पृ0 – 253।

(66) दृ0 वही, पृ0 – 256।

(67) दृ0 वही, पृ0 – 188।

(68) "तुम खिलो रात की रानी ।

X X X X

दिन हुआ कि बस हो गयी मौन तुम सजनी

आई निशा कि फिर खिली कौन तुम सजनी।"

दृ वही, पृ0 – 22।

(69) नीम की दो टहनिया/झॉकती है सीखचो के पार /

यह कपूरी धूप ।"

सतरगे पखो वाली (क0स0) – नागार्जुन, पृ0 – 35।

(70) " टिपिर, टिपिर/झर–झर झर रिमझिम–रिमझिम रिमझिम।

X X रोप रहे होगे कोटि–कोटि जन मगन, मन धान। "

तुमने कहा था (क0स0) – नागार्जुन, पृ0 – 90।

(71) "गुदगुदा उठते है मन–प्राण/बुरा नही लगता है

बादलो का घिराव।"

तुमने का था (क0स0) – नागार्जुन, पृ0 – 92।

(72) दृ वही, पृ0 – 88।

(73) खिचडी विप्लव देखा हमने (क0स0) – नागार्जुन, पृ0 – 75।

(74) सतरगे पखो वाली (क0स0) – नागार्जुन, पृ0 – 25–26।

(75) प्यासी पथराई ऑखे (क0स0) – नागार्जुन, पृ0 – 39–40।

(76) "घोर निर्जन मे परिस्थिति ने दिया है डाल।

याद आता है तुम्हारा सिदूर तिलकित भाल।"

सतरगे पखो वाली (क0स0) – नागार्जुन, पृ0 – 48।

(77) "नागार्जुन की काव्य–यात्रा" डॉ0 रतन कुमार पाण्डेय, पृ0 – 28 पर उद्धृत।

(78) नागार्जुन चुनी हुई रचनाऍ – 2, सम्पादक – शोभाकान्त मिश्र, पृ0 – 81।

(79) नागार्जुन चुनी हुई रचनाऍ – 2, सम्पादक–शोभाकान्त मिश्र, पृ0–303।

(80) "पहले का जो था, उसमे सब बुरा ही बुरा नही, आज जो

है उसमे सब अच्छा ही अच्छा नही।"

मेरे साक्षात्कार, नागार्जुन, पृ0 – 127।

(81) नागार्जुन चुनी हुई रचनाऍ–2, सम्पादक शोभाकान्त मिश्र, पृ0 – 93।

(82) दृ0 वही, पृ0 – 41।

(83) मेरे साक्षात्कार – नागार्जुन, पृ0 – 127।

केदारनाथ अग्रवाल

(1) आग का आईना (कविता सग्रह) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 – 18–19।

(2) "शहर, यह तो मुझे रोटियॉ देता है और/केन का दमदार पानी देता है।"

आग का आईना (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 – 19।

(3) "चम्मचो से नही/आकन्ठ डूबकर पिया जाता है/दु:ख को दु:ख की नदी मे/और तब जिया जाता है। आदमी की तरह आदमी के साथ/आदमी के लिए।"

आग का आईना (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0–25।

(4) दृ0 वही, पृ0 – 39।

(5) कहे केदार खरी–खरी (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0–133।

(6) "नौ सौ है घोडे का दाम/तेरा (आदमी का) धेला नही छदाम।"

कहे केदार खरी–खरी (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 – 20।

(7) दृ0 वही, पृ0 – 62।

(8) दृ0 वही, पृ0 – 66।

(9) कहे केदार खरी–खरी (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 – 84।

(10) दृ0 वही, पृ0 – 94।

(11) दृ0 वही, पृ0 – 102।

(12) "हाथी सा बलवान/ सूरज सा इसान सुन ले री सरकार, कयामत ढाने वाला और हुआ/एक हथौडा वाला घर मे और हुआ।"

कहे केदार खरी–खरी (क0सं0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 – 113।

(13) दृ0 वही0,पृ0 – 101।

(14) आग का आईना (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 – 81।

(15) दृ0 वही, पृ0 – 87।

(16) बोले बोल अबोल (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल – पृ0 47।

(17) कहे केदार खरी–खरी (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0–81।

(18) दृ0 वही, पृ0 – 144।

(19) "अश्रु विगलित है जनतन्त्र की जनता।"

अपूर्वा (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 – 66।

(20) दृ0 वही, पृ0–6 ।

(21) दृ0 वही, पृ0–78।

(22) "चॉदी सोने के जूतो मे/पका रहे है खीर।"

कहे केदार खरी–खरी (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0–125।

(23) दृ0 वही, पृ0 – 50।

(24) "डालर को पीस दिया/जाहिल आबादी ने/डालर का खून किया।"

दृ0 वही, पृ0 – 153।

(25) कहे केदार खरी–खरी (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 – 120।

(26) "बॅधी मुट्ठियॉ/उठे हजार हाथ भीड के/जन का ज्वार सडक पर उमडा/नगर/सिह का गरजा तडपा।"

"हे मेरी तुम" (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 – 46।

(27) गुलमेहदी (क0स0) केदारनाथ अग्रवाल, पृ0–55।

(28) दृ0 वही, पृ0–55।

(29) दृ0 वही, पृ0–67–68।

(30) 'प्रगतिशील काव्य धारा और केदारनाथ अग्रवाल" – डॉ0 राम विलास शर्मा पृ0–174।

(31) दृ0 वही, पृ0–180।

(32) दृ0 वही, पृ0 – 199।

(33) "सिपाही का डडा/तोडता है अडा/शान्ति का दिया हुआ/

अडे से निकल आया/असतोष/भभक उठा रोष/लहर उठा झडा/

क्राति का।"

दृ0 वही, पृ0 – 125।

(34) प्रगतिशील काव्य धारा और केदारनाथ अग्रवाल – डॉ0 रामविलास शर्मा, पृ0 – 126।

(35) प्रगतिशील काव्य धारा और केदारनाथ अग्रवाल – डॉ0 रामविलास शर्मा, पृ0–118।

(36) दृ0 वही, पृ0 – 119–120।

(37) दृ0 वही, पृ0 – 120।

(38) दृ0 वही, पृ0 – 213।

(39) कहे केदार खरी–खरी (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, कैफियल, पृ0–12।

(40) "केदारनाथ अग्रवाल" – सम्पादक– अजय तिवारी, पृ0–155।

(41) फूल नही रग बोलते है (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 – 72।

(42) "पेट के पालने का/हो रहा आतुर उपचार/सुनती हुई/भूखोद्वार का मन्त्रोच्चार।"

बोले बोल अबोल (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 – 24।

(43) दृ0 वही, पृ0–112।

(44) "नही सहारा रहा धरम का और करम का।"

बोले बोल अबोल (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0–94।

(45) "धर्म निरपेक्ष देश की जनता/देखती रहती है बधोत्सव/और गद्–गद् होती है भीड/ समाप्त हो गया एक वार्षिक सास्कृतिक तमाशा।"

कहे केदार खरी खरी (क0सं0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 19।

(46) आग का आईना (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 – 81।

(47) दृ0 वही, पृ0 – 27।

(48) अपूर्वा (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 – 68।

(49) आग का आईना (क0स0) केदारनाथ अग्रवाल, पृ0–72।

(50) दृ0 वही, पृ0–72।

(51) कहे केदार खरी–खरी (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0–35।

(52) दृ0 वही, पृ0–93।

(53) दृ0 वही, पृ0–92।

(54) अपूर्वा (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0– 81।

(55) "पेड नही/पृथ्वी के वशज है/फूल के लिए/मानव के अग्रज है।

फूल नही रग बोलते है (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 – 35।

(56) दृ0 वही, पृ0 – 48।

(57) दृ0 वही, पृ0 – 47।

(58) "एक बीते के बराबर/यह हरा ठिगना चना/बॉधे मुरैठा शीश पर/

छोटे गुलाबी फूल का/सजकर खडा है।"

फूल नही रग बोलते है (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 – 2।

(59) गुलमेहदी (क0सं0)–केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 – 21।

(60) फूल नही रग बोलते है (क0स0)–केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 – 103।

(61) दृ0 वही पृ0 – 19।

(62) "जमुन जल तुम" – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0–9 (कैफियत के बाद)।

(63) दृ0 वही, पृ0 – 121।

(64) दृ0 वही, पृ0 – 101।

(65) अपूर्वा (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0–29।

(66) फूल नही रग बोलते है (क0स0) केदारनाथ अग्रवाल, पृ0–162।

(67) आत्मगध (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0–4 (भूमिका)।

(68) आत्मगध (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0–119।

(69) दृ0 वही, पृ0 – 151।

(70) दृ0 वही,पृ0 – 87।

(71) फूल नही रग बोलते है (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0–78।

(72) दृ0 वही, पृ0–103।

त्रिलोचन

(1) "त्रिलोचन के बारे मे – सम्पादक – गोविन्द प्रसाद, पृ0 – 222।

(2) "शब्द जहॉ सक्रिय है" – नन्द किशोर नवल (शिला सधि का दूर्वाङ्कुर), पृ0 – 50।

(3) "वे ऑसू जो औरो के तप–ताप पर झरे

जीवन के पौधे इस कारण हरे–भरे।"

अनकहनी भी कुछ कहनी है (क0स0) – त्रिलोचन, पृ0–52।

(4) "खेतो और कारखानो मे जीवन–धारा/ लहराती है, सत्य उजागर है अब सारा।"

द्र0 वही, पृ0–103।

(5) "है धूप कठिन सिर ऊपर/थम गयी हवा है जैसे/दोनो दूब के ऊपर।

रख पैर सीचते पानी/उस मलिन हरी धरती पर/मिलकर वे दोनो प्राणी

दे रहे खेत मे पानी।"

धरती (क0स0) – त्रिलोयन, पृ0 – 20।

(6) "भाव उन्ही का सबका है जो थे अभावमय/पर अभाव से दबे नही जागे स्वभावमय।"

द्र0 वही, पृ0 – 149।

(7) ताप के तापे हुए दिन–त्रिलोचन, "आरर डाल" शीर्षक कविता, पृ0–54।

(8) "दु.ख से दबे हुए मानव आ मै ले लूँ/ तेरा सब दु.ख तू हल्का होकर सिर ताने,

आसमान मे, इस दुनिया को अपनी माने।"

"शब्द जहॉ सक्रिय है" – नन्द किशोर नवल, पृ0– 52 पर उद्धृत।

(9) **ताप के तापे हुए दिन (क0सं0)** – त्रिलोचन, पृ0–54।

(10) फूल का नाम है एक (क0स0) – त्रिलोचन, पृ0 – 41।

(11) बुढिया से मैने कहा – अम्मा, सारी चीजे इकट्ठे बॉधकर मुझको दे दीजिए।

बुढिया असीसती हुई चली गयी। "

त्रिलोचन के बारे मे – सम्पादक गोविन्द प्रसाद, पृ0 – 117।

(12) दृ0 वही, पृ0 186।

(13) दृ0 वही, पृ0 187।

(14) दृ0 वही, पृ0 – 187।

(15) दृ0 वही, पृ0 187–188।

(16) शब्द जहॉ शक्रिय है" – नन्द किशोर नवल, पृ0–54 पर उद्धृत।

(17) "और पूॅजी खीच–खीच कर सब दुनिया की । मुट्ठी भर पूॅजीपति पहले से अधिक

मोटे होते चले जा रहे है।"

धरती (क0स0) – त्रिलोचन, पृ0 – 97।

(18) "तब जनता उनसे उस धन का उद्धार करके/जीवन के नये भवन/निर्माण करेगी।"

धरती (क0स0) – त्रिलोचन, पृ0 – 97।

(19) "अगर न पीडा होती तो भी क्या मै गाता।
यदि गाता तो क्या उसमे ऐसा स्वर आता।"
अनकहनी भी कुछ कहनी है (क0स0) – त्रिलोचन, पृ0–92।

(20) दृ0 वही, पृ0 – 20।

(21) सबका अपना आकाश (क0स0) – त्रिलोचन, पृ0 – 42।

(22) दृ0 वही, पृ0 – 43।

(23) दृ0 वही, पृ0 – 17।

(24) अनकहनी भी कुछ कहनी है। (क0स0) – त्रिलोचन, पृ0 – 29 ।

(25) दृ0 वही, पृ0– 28।

(26) साक्षात्कार (पत्रिका) 1990 जून, पृ0–89 पर उद्धृत।

(27) "एक दूसरे के दुख को अपना ही जाने, अपना माने

और दुख कम करने के लिए समाज समान बनाये।"

धरती (क0स0) – त्रिलोचन, पृ0–75।

(28) दृ0 वही, पृ0 – 89।

(29) दृ0 वही, पृ0 – 96।

(30) ताप के तापे हुए दिन (क0स0) – त्रिलोचन, पृ0 – 65।

(31) अनकहनी भी कुछ कहनी है (क0स0) – त्रिलोचन, पृ0– 14।

(32) दृ0 वही, पृ0 – 77।

(33) "मै अपने युग का समाज का जन जीवन का

अभिव्यक्तिमय एक व्यक्ति हूँ जाग्रत मन का

दृ0 वही, पृ0 – 76।

(34) दृ0 वही, पृ0 – 71।

(35) दृ0 वही, पृ0 – 25।

(36) धरती (क0स0) – त्रिलोचन, पृ0 – 121।

(37) "शब्द जहॉ सक्रिय है" – नन्द किशोर नवल (शिलासधि का दूर्वाङ्कुर पृ0 – 55 पर उद्धृत)

(38) दृ0 वही, पृ0 56–57 पर उद्धृत।

(39) धरती (क0स0) – त्रिलोचन, पृ0 – 32।

(40) दृ0 वही, पृ0 – 74।

(41) दृ0 वही, पृ0 – 57।

(42) दृ0 वही, पृ0 – 129।

(43) फूल नाम है एक (क0स0) त्रिलोचन, पृ0 – 21।

(44) अनकहनी भी कुछ कहनी है (क0स0) – त्रिलोचन, पृ0 – 48।

(45) दृ0 वही, पृ0 – 28।

(46) दृ वही, पृ0 – 77।

(47) दृ0 वही, पृ0 – 86।

(48) दृ0 वही, पृ0 – 86।

(49) दृ0 वही, पृ0 – 42।

(50) फूल नाम है एक (क0स0) – त्रिलोचन, पृ0 – 6।

(51) "त्रिलोचन के बारे मे" – सम्पादक गोबिन्द प्रसाद, पृ0 – 100।

(52) अनकहनी भी कुछ कहनी है (क0स0) – त्रिलोचन, पृ0 – 100।

(53) दिगन्त (क0स0) – त्रिलोचन पृ0 – 56।

(54) सबका अपना आकाश (क0स0) – त्रिलोचन, पृ0 – 37।

(55) अनकहनी भी कुछ कहनी है (क0स0) – त्रिलोचन, पृ0 – 97।

(56) दृ वही, पृ0 – 97।

(57) धरती (क0स0) – त्रिलोचन, पृ0 – 25।

(58) दृ0 वही, पृ0 – 27।

(59) दृ0 वही, पृ0 – 34।

(60) अनकहनी भी कुछ कहनी है (क0स0) – त्रिलोचन, पृ0 – 19।

(61) सबका अपना आकाश (क0स0) – त्रिलोचन, पृ0 – 33।

(62) "शब्द जहाँ सक्रिय है" (क0स0) – नन्द किशोर नवल, पृ0 – 53 पर उद्धृत।

(63) दृ0 वही, पृ0 – 54 पर उद्धृत।

(64) दृ0 वही, पृ0 – 53।

(65) त्रिलोचन के बारे मे – सम्पादक गोविन्द प्रसाद, पृ0 – 186।

(66) शब्द जहॉ सक्रिय है – नन्द किशोर नवल पृ0 – 62 पर उद्धृत।

(67) अनकहनी भी कुछ कहनी है (क0स0) – त्रिलोचन, पृ0 – 90।

(68) दृ0 वही, पृ0 – 64।

(69) अनकहनी भी कुछ कहनी है (क0स0) – त्रिलोचन, पृ0 – 8।

(70) धरती (क0स0) – त्रिलोचन, पृ0 – 82।

(71) दृ0 वही0, पृ0 – 27।

(72) वर्तमान साहित्य (पत्रिका), अगस्त 1992, पृ0 – 28।

(73) दृ0 वही, पृ0 – 28।

(74) "त्रिलोचन के बारे मे" – सम्पादक गोविन्द प्रसाद, पृ0 – 28।

धूमिल

(1) "बीस साल बाद और इस शरीर मे/सुनसान गलियो से चोरो की तरह गुजरते हुए/अपने आपसे सवाल करता हूँ –
क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रगो का नाम है।"
ससद से सडक तक (क0स0) धूमिल, पृ0 – 10।

(2) दृ0 वही, पृ0 – 16।

(3) दृ0 वही, पृ0 – 44।

(4) दृ0 वही, पृ0 – 114।

(5) "बच्चे भूखे है/मॉ के चेहरे पत्थर/पिता जैसे काठ, अपनी ही आग मे /
जले है ज्यो सारा घर।"
कल सुनना मुझे (क0स0) – धूमिल, पृ0 – 98।

(6) दृ0 वही, पृ0 – 66।

(7) ससद से सडक तक (क0स0) – धूमिल, पृ0 – 91।

(8) "मगर मै जानता हूँ कि मेरे देश का समाजवाद/मालगोदाम मे लटकी हुई/उन बाल्टियो की तरह है / जिस पर आग लिखा है और उसमे बालू और पानी भरा है।"
ससद से सडक तक (क0स0) – धूमिल, पृ0 – 139।

(9) "मै रोज देखता हूँ कि व्यवस्था की मशीन का/एक पुर्जा गरम होकर/अलग छिटक गया है और/ठण्डा होते ही/फिर कुर्सी से चिपक गया है। उसमे न हया है/न दया है।

X X X X

कानून की भाषा बोलता हुआ/अपराधियो का एक सयुक्त परिवार है।"
ससद से सडक तक (क0स0) – धूमिल, पृ0 – 125–126।

(10) "इसीलिए मै फिर कहता हूँ कि हर हाथ मे/गीली मिट्टी की तरह–हॉ–हॉ मत करो/तनो/अकडो/अमरबेलि की तरह मत जियो। जड पकडो/बदलो – अपने आपको बदलो/यह दुनिया बदल रही है।"

ससद से सडक तक (क0स0) – धूमिल, पृ0 – 48।

(11) " न कोई छोटा है/न कोई बडा है/मेरे लिए हर आदमी एक जोडी जूता है/जो मेरे सामने/मरम्मत के लिए खडा है।"

दृ0 वही, पृ0 – 37।

(12) दृ0 वही, पृ0 – 38।

(13) "चोट जब पेशे पर पडती है/तो कही न कही एक चोर् कील।

दबी रह जाती है/जो मौका पाकर उभरती है/और उँगली मे गडती है।"

दृ0 वही, पृ0 – 39–40 ।

(14) "और भाषा पर/आदमी का नही, किसी जाति का अधिकार है।"

दृ0 वही, पृ0 – 41।

(15) "कटघरे का कवि धूमिल" – डॉ0 ग0तु0 अष्टेकर, पृ0 – 157।

(16) "कटघरे का कवि धूमिल" – डा0 ग0तु0 अष्टेकर, पृ0 26 पर उद्धृत।

(17) " संसद से सडक तक (क0स0) – धूमिल, पृ0 – 7 व 12।

(18) कल सुनना मुझे (क0स0) – धूमिल, पृ0 –51 ।

(19) ससद से सडक तक (क0सं0) – धूमिल, पृ0 – 63।

(20) दृ0 वही, पृ0–66।

(21) "जिस उम्र मे/मेरी मॉ का चेहरा/झुर्रियो की झोली बन गया है।

उसी उम्र की मेरे पडोस की महिला/के चेहरे पर/मेरी प्रेमिका के चेहरे सा/लोच है।"

दृ0 वही0, पृ0 17–18।

(22) आजकल (पत्रिका) मार्च 1980, पृ0 – 8।

(23) ससद से सडक तक (क0स0) – धूमिल पृ0 – 13।

(24) "कटघरे का कवि धूमिल" – डॉ0 ग0तु0 अष्टेकर, पृ0–19 पर उद्धृत।

(25) "धूमिल और उसका काव्य सघर्ष" – ब्रह्मदेव मिश्र, पृ0 – 45।

(26) "अनाज मे छिपे उस आदमी की नीयत/नही समझते

जो पूरे समुदाय से/अपनी गिजा वसूल करता है।"

संसद से सडक तक (क0स0) धूमिल, पृ0 – 17।

(27) "यह रात है सिर्फ रात/इसका स्वागत करो/यह तुम्हे/शब्दो के नये परिचय की ओर लेकर/चल रही है।"

दृ0 वही, पृ0 – 48।

(28) दृ0 वही, पृ0 – 16।

(29) "मूत और गोबर की सारी गध उठाये/हवा बैल के सूजे कधे से टकराये /

X X X X / लगता है यह गॉव नरक का/भोजपुरी अनुवाद है।"

"गॉव" शीर्षक कविता – धूमिल, "वागदेवी" (प्रतिनिधि काव्य संकलन) – सम्पादक नरेश मेहता, से उद्धृत, पृ0 535।

(30) कल सुनना मुझे (क0स0) – धूमिल, पृ0 99।

मुक्तिबोध

(1) चॉद का मुँह टेढा है (कविता सग्रह) मुक्तिबोध, शीर्षक – 'पता नही', पृ0 – 34।

(2) दृ0 वही, शीर्षक – 'अतकरण का आयतन', पृ0 – 208।

(3) दृ0 वही, शीर्षक – 'इस चौडे ऊँचे टीले पर' पृ0 – 230।

(4) "नुकीला एक कीला तेज/ गहरा पड गया औ धँस गया इतना/

कि ऊपर प्राण–भीतर तक घुस आया/लगी है झनझनाती आग/

लाखो बर्र –कॉटो ने अचानक काट खाया है/

ब्रणाहत पैर को लेकर/भयानक नाचता हूँ, शून्य/मन के टीन–छत पर गर्म।

दृ0 वही, शीर्षक – चकमक की चिगारियॉ, पृ0 – 157।

(5) भूरी–भूरी खाक धूल (कविता सग्रह) मुक्तिबोध, 'सूरज के वशधर' शीर्षक, पृ0–172।

(6) "उद्विग्न रात/के हाथो से/अँधियारे नभ की राहो पर/

है गिरी छूटकर/गर्भपात की तेज दवा/

X X X X X

गहरे कराहते गर्भो से/मृत बालक ये कितने जनमे, बीमार समाजो के घर मे।"

चॉद का मुँह टेढा है (क0स0) मुक्तिबोध, 'डूबता चॉद कब डूबेगा'- शीर्षक, पृ0 69–70।

(7) "चिथडा मे सधोजात एक बालक सुन्दर/आत्मारूपी माता ने जाने कब त्यागा/

देखा–बालक । अनुभव – बालक ।। /

चट उठा लिया अपनी गोदी मे/वापस खुश–खुश घर आया।"

दृ0 वही, पृ0–72।

(8) "सिकुडते हुऐ घेरे मे वे तन–मन/दबते–पिघलते हुए एक भाप बन गये/ एक कुहरे के मेह।"

दृ0 वही, शीर्षक–'एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्मकथन', पृ0 – 82।

(9) "सामन्ती घराने की जागीरदार/बूढी सी सास ज्यो/स्वय पिशाचिनी का प्रचण्ड रूप ले/ विद्रोहिणी विधवा निज बहू को पीटी गयी/ पीठ पर बैठकर/ जबर्दस्त हाथ मे/गरम–गरम लोहे की श्लाका से पीठ दागती है, त्यो रामू के जन–जन का हिय भी/ पल–पल मे दागा है।"

भूरी–भूरी खाक धूल (क0स0) – मुक्तिबोध, "जिन्दगी का रास्ता",–शीर्षक, पृ0–184।

(10) "चाहे जलधि, पर्वत, हजारो मील की दूरी/हमारे बीच मे आ जाय/ फिर भी मानसिक अदृश्य सूत्रो से/ हमारी आत्माएँ परस्पर बात करती है
गहन मस्तिष्क–कोषो मे/हृदय के रूधिर कोषो मे।"

भूरी–भूरी खाक धूल (क0स0) – मुक्तिबोध'गुँथे तुमसे, विधे तुमसे',–शीर्षक, पृ0 – 34।

(11) "हरिजन–गलियो मे/लटकी है पेड पर/कुहासे के भूतो की ऑवली चूनरी/चुनरी मे ॲटकी है कजी ऑख गजे सिर टेढे मुँह चॉद की।" चॉद का मुँह टेढ़ा (क0स0) – मुक्तिबोध, पृ0 – 53।

(12) "वेदना मे हम विचारो की/गुँथे तुमसे/विधे तुमसे/व आवेष्टित परस्पर हो गये/ कर्मण्य–क्षिप्रा–तीरपर। कोई नही थे हम तुम्हारे किन्तु/सहचर हो गये।"

भूरी–भूरी खाक धूल (क0स0) – मुक्तिबोध, 'गुँथे तुमसे, विधे तुमसे' शीर्षक, पृ0–34।

(13) "नैतान विहाय कृपणान् विमुमुक्ष एको।

"श्रमद् भागवत पुराण" 7/9/44।

(14) चॉद का मुँह टेढा है (क0स0) – मुक्तिबोध, 'चम्बल की घाटी मे', शीर्षक, पृ0–253।

(15) "झुके हम और अज्जलि भर/ लगे पीने/ तुम्हारे साथ/ उस झरते हुए जल–रूप/द्युति निष्कर्ष को।
भूरी–भूरी खाक धूल (क0स0) – मुक्तिबोध, 'गुँथे तुमसे विधे तुमसे' शीर्षक, पृ0 – 35।

(16) "इसी बैलगाडी को/बहुत दूर तुम/खीच रहे हो शहरी अँधेरे मे।
अपन दोनो भाई है। और दोनो दुखी है।" द्र0 वही, पृ0 23, 26।

(17) "श्री–हीन दीन। सच तुम्हारे बिना बजर होगा आसमान। ऊजड होगी सारी जमीन।"
दृ वही, पृ0 – 73 ।

(18) "वह तुम्हे कभी नही / अपने ठण्डे प्याऊ पर/ स्नेह से पिलाती जल हृदय का/प्राण का !! ।" दृ0 वही, पृ0 – 20।

(19) "जो मारे–मारे से हमारे–से/ ईट के सिरहाने अकेले लेटते है/ धूल के बवण्डर सा वक्त समेटते है उन्ही के साथ मेरी पटरी बैठती है। उनके साथ। हॉ, उन्ही के साथ/ यह बिजली भरी ठठरी लेटती है।" पृ0 – 91। द्र0 वही ।

(20) "गरीबिन मॉ ने ही बेचे हुए/खाते हुए मार और करते हुए काम नित/
उदास पॉच बरस के बालक के / दर्द भरे फटेहाल जीवन सा जिसमे/
पुचकार का रस/मिलाहीनही, फिर भी/पढने के शौक और जानने की चाह ने/
मुसीबते बढा दी।" दृ0 वही, पृ0 – 178 ।

(21) दृ0 वही, 'जिन्दगी का रास्ता'- शीर्षक, पृ0 – 178, 179, 181।

(22) "कदाचित मेरी भी अस्थि कभी किसी काम आ जाये
जनो के हाथो मे खिलाफ जानवरो के।" दृ0 वही, पृ0 – 197।

(23) चॉद का मुँह टेढा है (क0स0) – मुक्तिबोध पृ0 – 109।

(24) दृ0 वही, पृ0 – 51।

(25) दृ0 वही, पृ0 – 59।

(26) दृ0 वही, पृ0 – 58।

(27) "सटर–पटर सामान को धरे हुए शीर्ष पर/पुरूष उबारता–धरे हुए टोकरियो मे बिलखते बच्चो को।"

भूरी–भूरी खाक धूल (क0स0) मुक्तिबोध,'सूरज के वशधर'-शीर्षक पृ0 – 172 ।

(28) "खण्डहरनुमा जिन्दगी के ऑगन मे एक ओर/शक्तिशाली विचारो की / लहलहाती तुलसी खडी है आज ।।" दृ वही – पृ0 – 173।

(29) "पूॅजीवादी शक्तियॉ/ शासन के चाकू से/विद्रोहिणी बुद्धि की त्रिकालदर्शी ऑखे काटकर/निकाल देना चाहती है अवरूद्ध जीवन को अकस्मात् किसी ने / सत्य की शक्ति दी / 'औ' हिम्मत की राह दी"

दृ0 वही, 'जिन्दगी का रास्ता'-शीर्षक, पृ0 184–185।

(30) चॉद का मुॅह टेढा है (क0स0) – मुक्तिबोध, पृ0 – 68।

(31) "कण्डे की लाल आग/टिक्कड लगी सेकने आत्मा मे फैलती है/ ईमान की भाप बन।।" भूरी–भूरी खाक धूल (क0स0) – मुक्तिबोध,'इसी बैलगाडी को'-शीर्षक, पृ0 – 25।

(32) दृ0 वही, पृ0 – 24।

(33) "मुक्तिबोध ज्ञान और सवेदना" – नद किशोर नवल, पृ0 137 पर उद्धृत।

(34) "सूखे कठोर नगे पहाड ले उठा सबल निज कधो पर/

सॉवले अनुर्वर खल्वाटो को बुद्धि–हीन,

जोर से भूमि से दे उखाड।"

भूरी–भरी खाक धूल (क0स0) – मुक्तिबोध 'सूखे कठोर नगे पहाड' शीर्षक, - पृ0–217।

(35) "नष्ट कर लोक–शशि–ग्रास–मग्न
सौ राहु–केतु।"
दृ0 वही, पृ0 – 228।

(36) "गलियो के अधेरे मे एक ओर/मै थक कर बैठ गया/
---अँधेरे मे डूबे मकानो के छप्परो पार से/
रोने की पतली सी आवाज/सूने मे कॉप रही दूर तक/
कराहो की लहरो मे पाशव प्राकृत।
वेदना भयानक थरथरा रही है।" – चॉद का मुँह टेढा है (क0स0) मुक्तिबोध पृ0 – 278–279।

(37) "सॉझ उतरी रग लेकर उदासी का/पर्वतो के पास।"
भूरी–भूरी खाक धूल (क0स0) – मुक्तिबोध, पृ0 – 106।

(38) "इस तुलसी बन मे आग–लगी।
क्यो मारी–मारी फिरती।" चॉद का मुँह टेढा है। (क0स0) मुक्तिबोध, पृ0–117।

(39) भूरी–भूरी खाक धूल (क0स0) – मुक्तिबोध, 108, 109, 111।

(40) दृ0 वही, पृ0 174–175।

(41) "कर्म के फल पर नही – कर्म पर ही अधिकार
सिखाने वाले का वचन का आडम्बर/पावडर मे सफेद अथवा गुलाबी।
छिपे बडे–बडे चेचक के दाग मुझे दीखते है।
सभ्यता के चेहरे पर।" चॉद का मुँह टेढा है। (क0स0) मुक्तिबोध, शीर्षक–'मुझे याद आते है।' पृ0 – 96।

(42) "सस्कृति के सुवासित आधुनिकतम वस्त्रो के/अन्दर का बासी वह/ नग्न अति बर्बर देह/ सूखा हुआ रोगीला पजर मुझे दीखता है/ गर्भवती नारी का। जो पानी भरती है वजनदार घडो से/ मजदूरी करती है पुत्रो के भविष्य के लिए।" दृ0 वही, पृ0 96–97।

(43) भूरी–भूरी खाक–धूल (क0स0) – मुक्तिबोध, पृ0 – 175 ।

(44) "इस नगरी के किले–कँगूरे–बुद्धि खत्म कर, शीश कटाकर/मात्र उदर ले सिर्फ पेट ले अपने मालिक के ये चाकर/घर बैठे आदर्श घोखते ।" भूरी–भूरी खाक–धूल (क0स0) – मुक्तिबोध पृ0 – 146–147।

(45) दृ0 वही, पृ0 162–163।

(46) चॉद का मुँह टेढा है। (क0स0) – मुक्तिबोध पृ0 – 137, 138, 139।

(47) "प्रतापी सूर्य है वे सब प्रखर जाज्जवल्य/पर, यह क्या अँधेरे स्याह धब्बे सूर्य के भीतर।" दृ0 वही,पृ0 – 202।

(48) भूरी–भूरी खाक–धूल, (क0स0) – मुक्तिबोध, पृ0 16–17।

(49) चॉद का मुह टेढा है (क0स0), – मुक्तिबोध, पृ0 149।

(50) दृ वही, पृ0 – 137।

(51) दृ0 वही, 'मुझे याद आते है'-शीर्षक, पृ0 – 99।

(52) "मजूर लोहार के अथाह–बल/प्रकाण्ड हथौडे की दीख पडती है चोट/ एक अति भव्य देह/प्रचण्ड रूप श्याम काल मूर्ति/क्रान्तिशक्ति, जनयुग।।" दृ0 वही, 'मुझे याद आते है' शीर्षक, पृ0 – 100।

(53) मुक्तिबोध ज्ञान और सवेदना – नद किशोर नवल, पृ0 32–33।

(54) ''घर आ जाता है कि द्वार खटखटाता/अन्तर से 'आयी' की ध्वनि सुन पडती है/
अपना उर–द्वार खटखटाता हुआ/निश्चय–सा सकल्प सा करता हूँ।''
चॉद का मुँह टेढा है (क0स0) – मुक्तिबोध, 'मुझे याद आते है'-
शीर्षक, पृ0 – 100।

रघुवीर सहाय

(1) "यथार्थ यथास्थिति नही" – रघुवीर सहाय, सम्पा0 सुरेश शर्मा, पृ0–11।

(2) "कुछ समय लगेगा सुख के दिन आते–आते/आओ हम मेहनत से निपटा ले गाते–गाते।"

"रघुवीर सहाय का कविकर्म" – सुरेश शर्मा, पृ0–3 से उद्धृत।

(3) आत्महत्या के विरूद्ध (क0स0) – रघुवीर सहाय, पृ0–78।

(4) दृ0 वही, पृ0 – 77, 78।

(5) दृ0 वही, पृ0 – 89।

(6) "एक फटा कोट एक हिलती चौकी एक लालटेन/दोनो, बाप मिस्तरी, और बीस बरस का नरेन/दोनो पहले से जानते है पेच की मरी हुई चूडियॉ/नेहरू–युग के औजारो को मुसद्दीलाल की सबसे बडी देन।"

दृ0 वही, पृ0–86।

(7) दृ0 वही, पृ0 – 86।

(8) दृ0 वही, पृ0 – 86।

(9) दृ0 वही, पृ0 – 13।

(10) दृ0 वही, पृ0 – 62।

(11) लोग भूल गये है (क0स0) – रघुवीर सहाय, पृ0 84–85।

(12) दृ0 वही, पृ0 – 102।

(13) कुछ पते, कुछ चिठ्ठियॉ (क0स0) – रघुवीर सहाय, पृ0 – 56।

(14) आत्महत्या के विरूद्ध (क0स0) – रघुवीर सहाय, पृ0 – 68।

(15) लोग भूल गये है (क0स0) – रघुवीर सहाय, पृ0 – 62।

(16) दृ0 वही, पृ0 – 66।

(17) दृ0 वही, पृ0 – 38।

(18) दृ0 वही, पृ0 – 79।

(19) आत्मत्या के विरूद्ध (क0स0) – रघुवीर सहाय, पृ0–22।

(20) "मैले नाखून वाले चीकट लडके ने/नही सुना जो मैने पूछा था/पहले वह चाहता था कि मै समझ लूँ/कि वह मेरा कौन है।"

दृ0 वही, पृ0 – 82।

(21) "फूटकर चलते फिरते छेद/भूमि की पर्त गयी है सूख/मौरते बॉधे हुए उरोज/पोटली के अन्दर है भूख।"

दृ0 वही, पृ0 – 62।

(22) "आसमानी चट्टानी बोझ/ढो रही है पत्थर की पीठ।"

दृ0 वही, पृ0 – 62।

(23) "खडा है बूढा राम गुलाम प्रतिष्ठित राजाराम/मारते वही जिलाते वही/वही दुर्भिक्ष वही अनुदान/विधायक वही, वही जनसभा/सचिव वह, वही पुलिस कप्तान।"

दृ0 वही, पृ0 – 63।

(24) "वे और नही होगे जो मारे जायेगे" – रघुवीर सहाय, पृ0 – 87।

(25) "अर्थात्" – रघुवीर सहाय, सम्पादक हेमन्त जोशी, पृ0–63।

(26) "देखो खेत की मेड पर खडे होकर दूर–दूर तक फैली रेत।"

आत्म हत्या के विरूद्ध (क0स0) – रघुवीर सहाय, पृ0 – 83।

(27) दृ0 वही, पृ0 – 83।

(28) "वे और नही होगे जो मारे जायेगे" – रघुवीर सहाय, पृ0 104–105।

(29) अर्थात् – रघुवीर सहाय, पृ0 43–44।

(30) कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ (क0स0) – रघुवीर सहाय, पृ0–22।

(31) दृ0 वही, पृ0–48।

(32) दृ0 वही, पृ0 – 32।

(33) ''नयी कविताएँ एक साक्ष्य '' – रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ0 – 38।

(34) यर्थाथ यथास्थिति नही – रघुवीर सहाय, सम्पादक सुरेश शर्मा, पृ0 – 72।

(35) दृ0 वही, पृ0 – 72।

(36) रघुवीर सहाय का कविकर्म – सुरेश शर्मा, पृ॰ 14 (परिशिष्ट)।

(37) आत्महत्या के विरूद्ध (क0स0) – रघुवीर सहाय, पृ0 – 26।

(38) दृ0 वही, पृ0 – 32।

(39) दृ0 वही, पृ0 – 32।

(40) कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ (क0स0) – रघुवीर सहाय, पृ0–26।

(41) यथार्थ यथास्थिति नही – रघुवीर सहाय, सम्पा0 सुरेश शर्मा, पृ0 – 70।

(42) लोग भूल गये है (क0स0) – रघुवीर सहाय, पृ0 – 47।

(43) कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ (क0स0) – रघुवीर सहाय, पृ0 – 2।

(44) आत्महत्या के विरूद्ध (क0स0) – रघुवीर सहाय, पृ0 – 69।

(45) ''वे और नही होगे जो मारे जायेगे'' – रघुवीर सहाय, पृ0 – 84।

(46) आत्म हत्या के विरूद्ध (क0स0) – रघुवीर सहाय, पृ0– 16।

(47) लोग भूल गये है (क0स0) – रघुवीर सहाय, पृ0–25।

(48) दृ0 वही, पृ0 – 95।

(49) दृ0 वही, पृ0 – 98।

(50) अर्थात् – रघुवीर सहाय, पृ0 – 93।

(51) दृ0 वही, पृ0 – 75, 76।

(52) "अन्नैव नरक स्वर्ग इति मात प्रचक्षते।"

"श्रीमद् भागवत पुराण", 3/30/29।

(53) "वे और नही होगे जो मारे जायेगे" – रघुवीर सहाय, पृ0 – 144।

(54) दृ0 वही, पृ0 – 142।

(55) दृ0 वही, पृ0 – 116।

(56) कुछ पते कुछ चिट्ठियॉ (क0स0) – रघुवीर सहाय, पृ0 – 55।

(57) दृ0 वही, पृ0 – 47।

(58) अर्थात् – रघुवीर सहाय, पृ0–67।

(59) अर्थात् – रघुवीर सहाय, पृ0–68।

(60) दृ0 वही, पृ0– 8, 9।

(61) दृ0 वही, पृ0–153।

(62) आत्महत्या के विरूद्ध (क0स0) – रघुवीर सहाय, पृ0 15–16।

(63) लोग भूल गये है (क0स0) – रघुवीर सहाय, पृ0–74।

(64) दृ0 वही, पृ0–75।

(65) "गॉधी के शिष्यो ने फिर–फिर कर प्रहार/हिसा का निश्चित किया देश–भर मे प्रचार।"

लोग भूल गये है (क0स0) – रघुवीर सहाय, पृ0–32।

(66) "हत्या कमजोर की/सीधे–सीधे हत्या हॉ मारी नही गयी/तो विधवा रोती है।"

दृ0 वही, पृ0 – 100।

(67) "पॉच बरस बहुत बरस/होते है एक गुलाम/औ गरीब देश मे/इतने मे गया हुआ/वक्त लौट आता है/एक नये वेश मे।"

दृ0 वही, पृ0 – 99।

(68) "लूट ने जमीन के अन्दर तक मिट्‌टी को तोड दिया है।"

दृ0 वही, पृ0 – 103।

(69) दृ0 वही पृ0 – 103।

(70) "यह देश क्यो/कोई भी देश/अपने मनुष्यो को/आदमी बना लेगा।"

दृ0 वही0, पृ0–96।

(71) अर्थात् – रघुवीर सहाय, पृ0–56।

गिरिजा कुमार माथुर

(1) मै वक्त के हूँ सामने (क0स0) – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 2–3।

(2) "मुझे और अभी कहना है" – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0–7।

(3) दृ0 वही, पृ0 – 26।

(4) "अचानक वे किसान/देखने लगे आसमान/ अब की जेठ/इसी सरसो से विटिया के हाथ पीले कराना है।"

"मै वक्त के हूँ सामने" (क0स0) गिरिजा कुमार माथुर, पृ0–100।

(5) "दूब घास/बेचेगी चारे को/शाम, तभी उनके लिए आग लाएगी/यही घास रोटी के लिए आटा बन जायेगी।"

दृ0 वही, पृ0–103।

(6) दृ0 वही, पृ0–104–105।

(7) दृ0 वही, पृ0–120–121।

(8) दृ0 वही, पृ0–13।

(9) "मुझे और अभी कहना है" – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 – 339।

(10) दृ0 वही, पृ0–49–50।

(11) मै वक्त के हूँ सामने – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 – 1।

(12) तारसप्तक – सम्पादक अज्ञेय, पृ0–180।

(13) दृ0 वही, पृ0–182–183।

(14) "मुझे और अभी कहना है" – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0–180 ।

(15) दृ0 वही, पृ0–182।

(16) "सभी कुछ गड्ड्मड्ड / दिन–रात / हत्या–क्रान्ति / गोश्त–शान्ति / पब्लिक–प्राइवेट / जनता–नेता / चोरी–सीना–जोरी / बेईमान–दिलासे / ऐलान–उधार / वोट–विदेश / गेहूॅ–भुखमरी / कागज–हरी क्रान्ति / काला धन–इन्क्वायरी / शरारती–आत्म निर्णय / घेराव / और दुश्मन की दलाली।"

दृ0 वही, पृ0 210, 212, 213।

(17) दृ0 वही, पृ0 220।

(18) दृ0 वही, पृ0 238।

(19) दृ0 वही, पृ0 162।

(20) मै वक्त के सामने (क0स0) – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 16–17–18।

(21) "उन शब्दो को खामोश होने दो / सार्वजनिक दर्द को / नयी ऑच पहिन लेने दो।"

दृ0 वही पृ0 19।

(22) "धूप हवा नदी आग, आदमी की आवाज / इतिहास के कोठार मे कैसे बॉधी जायेगी।

दृ0 वही, पृ0 34 ।

(23) दृ0 वही, पृ0 96,97,98।

(24) दृ0 वही, पृ0 9,10।

(25) "हत्यारी दुनिया मे / मै पैदा हुआ। किसी एक शक्ल मे / नस्ल मे, रग मे, जाति मे, धर्म मे / मुझे मत तोडो मै एक अजर गध हूॅ। हर बार मिटकर। फिर सुलगता हुआ रग हूॅ।"

दृ0 वही, पृ0 92।

(26) दृ0 वही, पृ0 21।

(27) दृ0 वही, पृ0 56।

(28) "कडकडाये रीढ/बूढी रूढियो की/झुरियॉ कॉपे/घुनी अनुभूतियो की/उसी नयी आवाज की उठती गरज हूँ।"

तार सप्तक – सम्पादक अज्ञेय, पृ0 – 168।

(29) मुझे और अभी कहना है – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 – 14 (भूमिका)।

(30) तार सप्तक – सम्पा0 अज्ञेय, पृ0 – 181।

(31) "किन्तु तिमिर फिर उभरा/करने अन्तिम अस्त्र प्रहार/धर्म–जाति हिसा की लेकर/तक्षक सी तलवार।"

मुझे और अभी कहना है – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 – 97।

(32) साक्षात्कार (अगस्त 1995) सम्पा0 ध्रुव शुक्ल, पृ0 – 47।

(33) मुझे और अभी कहना है – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 – 71।

(34) धूप के धान (क0स0) – गिरिजाकुमार माथुर पृ0 – 11 (निवेदन से)।

(35) "मेरी कविता के दर्पण मे/झॉक रहा असली ससार

मै वक्त के हूँ सामने (क0स0) – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0–37।

(36) दृ0 वही0, पृ0–93।

(37) दृ0 वही0, पृ0 105।

(38) मुझे और अभी कहना है – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 – 67, 68।

(39) दृ0 वही, पृ0 59, 60।

(40) मै वक्त के हूँ सामने (क0स0) – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 – 68।

(41) मुझे और अभी कहना है – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 – 132।

(42) दृ0 वही,, पृ0 – 167।

(43) दृ0 वही, पृ0 – 84, 'शाम की धूप' शीर्षक।

(44) मै वक्त के हूँ सामने (क0स0) – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 – 104।

(45) "तप भ्रष्ट मन्त्र सा विफल हुआ।"

शिलापख चमकीले (क0स0) – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 – 44।

(46) मुझे और अभी कहना है – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 – 346।

(47) "एकाक्षी,, ठण्डे, चमकीले यम से/मत सिद्धान्त शिकजे/काठ मानकर जकडे है इसान को ठप्पेदार ज्ञान के फोके चूसे टुकडे फेक सामने।"

मुझे और अभी कहना है (क0स0) गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 – 337।

(48) दृ0 वही,, पृ0 – 338, 339।

(49) दृ0 वही,, पृ0 – 282।

(50) दृ0 वही,, पृ0–284।

(51) तार सप्तक – सम्पा0 अज्ञेय, पृ0–167।

(52) मुझे और अभी कहना है – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0–23 (भूमिका)।

(53) दृ0 वही,, पृ0–81।

(54) दृ0 वही,, पृ0–137।

(55) "न्याय की तरह ही प्यार/न केवल दिया जाय/प्रदर्शित भी किया जाय।"

दृ0 वही,, पृ0 – 198।

(56) "आज न बच्चे घर मे है कूडा करने को/ /पहले इस कूडे करकट से/ मन मे झुँझलाहट होती थी/आज वही बच्चो का कूडा याद आ रहा ।"

दृ0 वही, पृ0 81–82।

(57) "शक्ति दो मुझको सलोनी प्यार से/लड सकूँ मै मौत की तलवार से।"

धूप के धान (क0स0) – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 – 93।

(58) मुझे और अभी कहना है – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0–22 (भूमिका)।

(59) "शुक्र है/तमाम दबावो के बावजूद/अपनी तरह देख सकता हूँ अपना आस–पास।

शुक्र है। मेरा शब्द अब भी है मेरे पास।" मैं वक्त के हूँ सामने (क०सं०)-गिरिजा कुमार माथुर, पृ० 119।

(60) "मुझे और भी कहना है" – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 – 275।

(61) द्र0 वही,, पृ0 – 124।

(62) "मृत्यु नही है नीद आखिरी/बूँद भर धडकता आलोकित अन्तराल है।

जीवन का–/वह एक चुनौती है। इस सारे मोहक सपने के बीच/खुद को समझने की।"

दृ0 वही, पृ0 – 247।

(63) मै वक्त के हूँ सामने (क0स0) – गिरिजा कुमार माथुर, (वक्तव्य, अन्तिम पृष्ठ)।

(64) मुझे और अभी कहना है – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 – 287।

(65) दृ0 वही,, पृ0 – 289।

अज्ञेय

(1) 'कीर की पुकार', 'बन्दीगृह की खिडकी', 'अखण्ड ज्योति', 'गा दो', 'विश्वास' आदि शीर्षक कविताएँ।

उद्धृत – सदानीरा – 1, सम्पादक अज्ञेय (अज्ञेय की सम्पूर्ण कविताओ का सकलन)

(2) "हमलोगो का एक मात्र श्रम है,'सुरतिश्रम"
उस अत्यज का एकमात्र सुख है, मैथुन सुख,।"
सदानीरा 1, सम्पादक अज्ञेय, ('वर्ग–भावना सटीक' शीर्षक)

(3) "तुम, सत्ताधारी मानवता के शव पर आसीन।
जीवन के चिर रिपु, विकास के प्रतिद्वन्दी प्राचीन।
तुम श्मशान के देव! सुनो यह रणभेरी की तान।
आज तुम्हे ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान।"
सदानीरा–1, सम्पादक अज्ञेय, ('घृणा का गान' शीर्षक)

(4) "न हमे पशुओ–सा मरना मिला/न प्रभुओ सा जीना।
न मिला देवताओ–सा अमरता मे/सोम–रस पीना।
हम तीनो को/जिलाते रहे, मिलाते रहे/वह बडा वृत्त बनाते रहे।
जिसकी धुरी से हम/लौट–लौट आते रहे।"
नदी की बॉक पर छाया। (क0स0) – अज्ञेय, ('परती तोडने वालो का गीत' शीर्षक), पृ0–19।

(5) सदानीरा 1, सम्पा0 अज्ञेय, ("घृणा का गान' शीर्षक)

(6) सदानीरा 1, सम्पा0 अज्ञेय ।

(7) सदानीरा 1, सम्पादक अज्ञेय, पृ0–213, ('शरणार्थी–1, मानव की ऑख' शीर्षक)

(8) सदानीरा–1, सम्पादक अज्ञेय पृ0–214, ('शरणार्थी–2 पक गयी खेती' शीर्षक)

(9) सदानीरा–1, सम्पा0 अज्ञेय ('शरणार्थी – 3 ठॉव नही' शीर्षक)

(10) "गोद मे बच्ची लिए/उस हाथ से देते सहारा किसी बूढे या कि रोगी को–/

/तुम भी जीव हो बेबस।"

सदानीरा–1, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0–216, ('शरणार्थी–6 समानान्तर सॉप' शीर्षक)

(11) "धिक ! पुन धिक्कार !

और यह धिक्कार।

हिन्दू हो या मुसलमा नही, यह धिक्कार

आक्रोश है अपमानिता/मेरी मनुजता का।"

सदानीरा–1, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0–221, ('शरणार्थी–7 गाडी रूक गयी' शीर्षक)

(12) सदानीरा–1, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0–216 (शरणार्थी – 6 समानान्तर सॉप, शीर्षक)।

(13) सदानीरा–1, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0–243–244, ('जनवरी छब्बीस' शीर्षक)।

(14) 'डरो मत, शोषक भैय्या ! पीलो/ मेरा रक्त मीठा तो है, पर पतला या हल्का भी हो/इसका जिम्मा मै तो ले नही सकता/ ताजा जैसे भट्ठी से ढलते गले इस्पात की धार/ मुझसे क्या डरना ?"

सदानीरा–1, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0 259–260, ('शोषक भैया' शीर्षक)

(15) "कट गयी पूले हमारे खेत की/कोठरी मे लौ बढाकर दीप की।

गिन रहा होगा महाजन सेत की।"

सदानीरा–1, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0 – 252 (हवाएँ चेत की" शीर्षक)

(16) सदानीरा–1, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0 251–252 ('हवाई यात्रा' शीर्षक)।

(17) ''उतरो थोडा और /खडा मिलेगा वहॉ सामने तुमको/अनपेक्षित प्रतिरूप तुम्हारा/नर, जिसकी अनझिप ऑखे मे नारायण की कथा भरी है।''

इन्द्रधनुष रौदे हुए थे (क0स0) (हवाई यात्रा; ऊॅची उडान, शीर्षक) सदानीरा–1

सदानीरा–1, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0–290 (हवाई यात्रा, ऊॅची उडान शीर्षक)

(18) सदानीरा –1,सम्पा0 अज्ञेय पृ0 – 270, ('मै वहॉ हूॅ' शीर्षक)

(19) दृ0 वही, पृ0 – 271।

(20) दृ0 वही, पृ0 – 271।

(21) दृ0 वही, पृ0 – 272।

(22) पुरखो के झोपडे मे आग हम लगाते है/घर–घर का भेद हम लाते है।

अपने को पराया–नही आप का ! – बनाते है।

सदानीरा–1, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0 – 273 ('इतिहास की हवा') शीर्षक)

(23) सदानीरा–1, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0–289, ('महानगर 'रात' शीर्षक)

(24) सदानीरा–1, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0–314 ('हरा–भरा है देश' शीर्षक)

(25) सदानीरा–2, अज्ञेय, पृ0–60 ('बॉगर और खादर' शीर्षक) ।

(26) दृ0 वही, पृ0–37 ('औद्योगिक बस्ती' शीर्षक)

(27) सदानीरा–2, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0–106 ('अनुभव–परिपक्व' शीर्षक)।

(28) सदानीरा–2, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0 – 157 ('युद्ध विराम' शीर्षक)।

(29) दृ0 वही, पृ0 – 159 ('अधकार मे जागने वाले' शीर्षक)।

(30) "दो ही तो सच्चाइयाँ है/एक ठोस, पार्थिव, शरीरी–मासल रूप की ,/

एक द्रव, वायवी आत्मिक – वासना की धधक की/

बाकी आगे मृषा की, आत्म–सम्मोहन की/ ।

हमे चलता कीजिए/फिर रगरेलियाँ मनाइए।"

सदानीरा–2,सम्पा0अज्ञेय पृ0–209 ('दास व्यापारी' शीर्षक)

(31) सदानीरा–2, अज्ञेय, पृ0 – 205, ('अह राष्ट्री सगमनी जनानाम्'-शीर्षक)

(32) सदानीरा–2, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0 – 213।

(33) दृ0 वही,, पृ0 – 223।

(34) सदानीरा –2, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0–301।

(35) "जो पुल बनायेगे/वे अनिवार्यत /पीछे रह जायेगे/सेनाएँ हो जायेगी पार/

मारे जायेगे रावण/जयी होगे राम,/जो निर्माता रहे/इतिहास मे/बन्दर कहलायेगे।"

सदानीरा–2, अज्ञेय पृ0–307 ('जो पुल बनायेगे'-शीर्षक)।

(36) "उन्होने/घर बनाए/और आगे बढ गए/जहाँ वे/और घर बनायेगे।"

सदानीरा–2, अज्ञेय, पृ0–219 ('उन्होने घर बनाये'-शीर्षक)

(37) "छिटक गयी है चाँदनी/मदमाती उन्मादिनी/ पकी ज्वार से निकल शशो की जोडी गयी फलाँगती/ कुहरा झीना और महीन/झर–झर पडे अकास नीम/ उजली लालिम मालती/गन्ध के डोरे डालती,, मन मे दुबकी है हुलास ज्यो परछाईं हो चोर की–/ तेरी बाट अगोरते ये आँखे हुई चकोर की।"

सदानीरा–1, अज्ञेय पृ0–225, (कतकी पूनो' शीर्षक)।

(38) 'शरद' (शीर्षक), वही, पृ0–56, 'सो रहा है झोप' वही, पृ0 – 58। पानी बरसा वही, पृ0–54। ''रात सावन की' सदानीरा–2, पृ0 379–380।
'क्वॉर की वयार', 'सबेरे–सबेरे' सदानीरा–1–पृ0–230।
'तुम फिर आ गये क्वॉर', 'चॉदनी जीलो', 'झरने के लिए', 'प्रथम किरण'
सदानीरा–1, पृ0–246–247, 250, 'सध्या तारा', वही–पृ0–257 आदि।

(39) ''भर–भर कर अँजुरी पी लो/वरसी शरद चॉदनी/मेरा अन्तस्पन्दन तुम भी क्षण–क्षण जी लो/शरद–चॉदनी वरसी अँजुरी भरकर पी लो।''
('चॉदनी जी लो' शीर्षक) सदा नीरा–1–पृ0– 247।

(40) सदानीरा–1, पृ0–232 ।

(41) सदानीरा–2, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0–309, ('नदादेवी–2' शीर्षक)।

(42) द्र0 वही, ('नदादेवी–6' शीर्षक)।

(43) सदानीरा–2, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0–27।

(44) सदानीरा–1, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0–276 ('गोवर्द्धन' शीर्षक)।

(45) द्र0 वही,, पृ0–277 ('सीढियॉ' शीर्षक)।

(46) सदानीरा–2, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0–166–167 ('यात्री' शीर्षक)।

पंचम अध्याय

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी–कविता मे लोक–सवेदना के विविध आयामो की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त माध्यम –

[पृ०स० - 257 - 342]

(क) लोक–बोलियो मे प्रयुक्त विविध शब्द।

(ख) लोक–जीवन से गृहीत उपमान, प्रतीक और बिम्ब।

(ग) लोक–धुन

(घ) लोक–प्रचलित कहावते व मुहावरे।

प्राचीन काल से यह विवाद चला आ रहा है कि कविता की आत्मा भावपक्ष है या कला पक्ष? पाश्चात्य और पौर्वत्य विचारको ने कविता की आत्मा क्या है ? इस पर अपने-अपने दृष्टिकोणो को प्रस्तुत किया है किन्तु कविता केवल कला नहीं है वरन् निर्जीव रूप मे एक ऐसा सजीव चित्र है जो मनुष्य की प्रत्येक श्वसन क्रिया को महत्वपूर्ण बनाती है । वस्तुत कविता की भाषा ही समाज मे आदर्शो, यथार्थ चित्रण और क्रान्ति की आग को प्रज्जवलित करने मे सफल होती है ।

किसी भी कवि के लिए अपने भाव को अभिव्यक्त करने के लिए सबसे बड़ी समस्या भाषा की होती है । जो कवि जितना बडा होता है, उसकी भाषा की समस्या उतनी ही गुरूतर होती है । प्रत्येक कवि द्वन्द्वात्मक युद्ध मे निर्द्वन्द्व होने का प्रयास करता है । महाकवि तुलसी के सामने समस्या थी कि वह अपनी रचना सस्कृत मे करे या हिन्दी मे ? हिन्दी मे किस बोली या भाषा को माध्यम बनावे । इसी प्रकार प्रत्येक कवि जब रचना करने बैठता है तो द्वन्द्वो मे अपने को घिरा पाता है । स्वानुभूत प्रत्यक्ष की भाषा और कविता की भाषा के द्वन्द्व की पृष्ठभूमि मे ही अपने को स्थापित करना पडता है । नागार्जुन जैसा कवि, जो सस्कृत का विद्वान है- अपनी कविता के लिए लोकभाषा के शब्दो को बडी सहजता से चुनता है । गिरिजा कुमार माथुर और रामविलास शर्मा जैसे आग्ल भाषाविद् कवि को भी अपनी भाषा की तलाश करनी पडी । रघुवीर सहाय व अज्ञेय ने भाषा के आकर्षण के कारण ही लिखना आरम्भ किया ।

इन कवियो ने लोक-जीवन की भाषा के माध्यम से उन्हीं की पीडा, उनके हास-परिहास, उल्लास-प्रेम आदि भावो को अत्यन्त प्रभावशाली ढग से अभिव्यक्त किया । यह बात सच है कि जब कवि किसी भाव को द्योतित करना चाहता है तब उसकी बुद्धि के समक्ष शब्दो का समूह अहमहमिकया भाव से आने लगता है । कुशल कवि का सही

चयन ही पूर्ण अभिव्यक्ति का माध्यम बनता है । प्रत्येक भाषा के शब्दो की अपनी विशेषता है । प्रत्येक शब्द का अपना विशिष्ट अर्थ होता है, उसके लिए पर्याय नहीं दिया जा सकता है । पर्याय उस अर्थ को हृदय मे प्रविष्ट नहीं करा सकता है जिसे कवि व्यक्त करना चाहता है । आम आदमी की अपनी शब्दावली होती है जिसमे वह सॉस लेता हुआ अपने भाव को स्पष्ट करने का प्रयास करता है । इसलिए कुशल कवि जिनकी स्थिति को उपस्थित करना चाहता है, उसके लिए यह आवश्यक है कि उसकी 'बोलियो' का वह अपनी कविता मे प्रयोग करे । इन सभी कवियो ने इसका सार्थक प्रयोग किया है कुछ प्रयोग सामन्तवादियो को भले ही अश्लील लगे हो किन्तु उन प्रयोगो मे कवि की जो पीडा है उसे दूसरे शब्द नहीं अभिव्यक्त कर सकते है। मनोवेग की स्थिति अनियत्रित होती है, उसका मूल्याकन उन्हीं स्थिति की ध्वनियो से किया जा सकता है ।

स्वातन्त्र्योत्तर इन कवियो ने नये उपमानो का प्रयोग कर कविता को एक नयी दिशा दी है । इन उपमानो मे लोक जीवन की पीडा और पूॅजीवादी व्यवस्था की क्रूर-क्रीडा व्यञ्जित होती है। कुछ कवियो ने प्रतीक और बिम्बो के मोह का परित्याग करने का प्रयत्न किया। वस्तुत उनकी रचनाओ मे इनका सर्वथा अभाव नहीं है । साधारण जनो के जीवन से सम्बन्धित प्रतीक और बिम्बो के माध्यम से कविता द्वन्द्वात्मक जीवन की विकट कहानी ही व्यक्त नहीं करती है वरन् पाठक या श्रोता को निर्द्वन्द्वात्मक स्थिति तक पहुॅचाकर एक ऐसा मार्ग प्रदान करती है जो पुराने प्रतिमानो को ध्वस्त कर नूतन सर्जनात्मक क्षमता के साथ नया ससार बना सके, जहॉ समता, करूणा, दया, प्रेम, मैत्री, सहिष्णुता, कर्तव्यशीलता तथा सहभागिता की अविकल धारा बहती रहे और ससार का प्रत्येक व्यक्ति मनुष्य बन सके । आदमी को आदमी की तलाश है पर आदमियो के बीच में रहने वाले आदमी को आदमी नहीं मिलता, मिलता है उसे एक ऐसा अधनङ्गा आदमी, जो रूप-रग से मानव प्रतीत होता है, किन्तु उसके कर्म दानवीय होते है जिसके

कारण उसके भय से पत्ता भी न खडक सके। लोक प्रचलित शब्दो, लोकोक्तियो, मुहावरे ध्वनियो, उपमानो, बिम्बो और प्रतीको के किये गये सार्थक प्रयोग सवेदनाओ को और प्रभावशाली बना देते है । स्वातन्त्र्योत्तर इन कवियो ने लोक जीवन से सम्बन्धित काव्य रूपो का प्रयोग कर उनके जीवन के बाह्य एव आन्तर स्वरूप के विविध प्रकार के चित्रो को प्रस्तुत किया है । कहावते जीवन के अनुभूत सत्यो को सूक्ति रूप मे वर्णित करने मे सक्षम है । मुहावरो मे अर्थ गाम्भीर्य समाया रहता है । ये मुहावरे और सूक्तियाँ ग्रामीणो के जीवन की कडुवाहट, मिठास, तिक्तता, उष्णता, आत्मीयता, करूणा आदि को अभिव्यक्त करती है । भाषा की अपनी गम्भीरता, अर्थवत्ता, सम्प्रेषणीयता और कलात्मकता होती है जिसके हृदय मे हठात् प्रवेश नहीं किया जा सकता है । इन कवियो ने अपनी रचनाओ मे ग्रामीण जन, मजदूर, दलित आदि की भाषा के विविध अनुगूँज आयामो के द्वारा उनके जीवन की सवेदनाओ को अभिव्यक्त करने का सफल प्रयत्न किया है ।

नागार्जुन की कविता और भाषा सवेदना :-

कवि नागार्जुन की मातृभाषा मैथिली और पितृ-भाषा सस्कृत है । इसके अतिरिक्त पालि, अर्द्ध-मागधी, अपभ्रश, सिघली, तिब्बती, मराठी, गुजराती, बगाली, पजाबी, सिन्धी आदि भाषाओ के जानकार होने के कारण नागार्जुन सभी भाषाओ को पढने मे रूचि रखते है । इसलिए इनकी रचनाओ मे यत्र-तत्र सभी भाषाओ के शब्दो का सार्थक प्रयोग हुआ है । अपने अचल तथा अपनी धरती से घनिष्ठ रूप मे जुडे रहने पर भी वे वैश्विक कवि है। क्योकि उनकी सवेदना न वैयक्तिक है न आञ्चलिक, वरन् सार्वजनीन वैश्विक वातावरण की नवीन उपज है जिसकी सुरभि विश्व के सभी सहृदयो को आह्लादित करती है । नागार्जुन की सस्कृतनिष्ठ कविताओ मे भी लोकभाषा के सुन्दर प्रयोग को देखकर यही प्रतीत होता है कि मानो पूनम के चॉद की कालिमा चन्द्र की

शोभा वृद्धि कर रही है ।

कवि ने लोकभाषा के माध्यम से सामान्य जन जीवन की सवेदनाओ को अति कुशलता से अभिव्यक्त किया है । वे पत्तर (पत्तल) जोडने वाले से अपने मन को जोडकर अपने सपने को उन्हीं के समान बुनते है । वे जानते है कि दीन-दलित की घुटन ठहाको (उन्मुक्त हॅसी) मे घुलती है किन्तु आधुनिक कवि की घुटन नींद-विहीन रात्रि की घडियो मे चुरती (धीरे-धीरे पकती) रहती है। चितकबरी (कई रगो का मिश्रण) चॉदनी मे खोने वालो की अपेक्षा फसलो मे हुलसित (प्रसन्न) हो जाने वाले किसान अच्छे है ।[1] सूक्ष्मदर्शी कवि नागार्जुन गॉवो के प्राइमरी स्कूल की फटी भीत (दीवाल), चूती (टपकने वाली) छत तथा आले (दीवार मे बनी हुई छोटी सी आलमारी) पर नाचती हुई विसतुइया[2] (छिपकली) को चित्रित कर ग्रामीण छात्रो की दुर्दशा को अभिव्यक्त करते है । यह सब इसलिए है कि टेकरी (शासन की कुर्सी) पर मादा भेडिया (सरकार) बैठी हुई है।[3] इन्हीं के कारण गेहुॅअन (कोबरा सॉप) का पोआ (बच्चा) समाज को डॅसता रहता है ।[4]

धरती पुत्र नागार्जुन के मन मे धरती के प्रति करूणा है । वे इसे पेन्हाई (दूध देने के लिए तत्पर) गाय नहीं समझते है।[5] महानाश के मसीहा को न वरण करने वाली धरती से उत्पन्न होने वाली अन्न-ब्रह्म की माया कवि की दृष्टि मे डायन है । इस माया को प्राप्त करने के लिए भुक्खड (भूखे लोग) जब कूच करेगे, तब ससार थर्रायेगा।[6] कवि नागार्जुन के मन मे गट्ठल (गॅठीले) घट्टे (काम करने वाले से कडे हो जाने वाले) पैर की फटी हुई बेबाइयॉ खुबी (धॅसी) हुई है।[7] "तुम तो नहीं गयी थी आग लगाने" शीर्षक कविता मे कवि ने लोक-भाषा के 'चीथडा'[8] शब्द का प्रयोग (तुम्हारे हाथ मे पेट्रोल का गीला चीथड़ा नहीं था) कर जॉघ पर गोली लगी हुई उस औरत की बेबसी और गरीबी तथा शासन की क्रूरता का वीभत्स चित्रण किया है जिसका इस ससार मे कोई सहायक नहीं होता है । भविष्य-द्रष्टा कवि दीन-जनों को 'ढोर-डॅगर' (पशुओ) के समान हॉकने

(सचालित करने) वालो पर आक्रोश व्यक्त करते है -

" क्या वे हमे ढोर-डॅगर की तरह । डण्डे दिखा दिखाकर हॉकेगे ?[9]

"यह उन्मत प्रदर्शन" शीर्षक कविता मे लोकभाषा के शब्द 'छौने'[10] का प्रयोग कर उन्होने दीनो के प्रति अपनी सवेदना और अन्याय के प्रति घृणा को अभिव्यक्त किया है। वस्तुत 'छौना' शूकर के बच्चे को कहा जाता है । लक्ष्णार्थ से सभी पशु के बच्चो को 'छौना' कहते है । धनपतियो पर कटाक्ष करते हुए वे कहते है कि 'कुबेर के छौने' की शान-शौकत ने दीनो को जूठन चाटने के लिए बाध्य कर दिया है।[11] कवि नागार्जुन ने इसी प्रकार लोकभाषा के अनेक शब्दो - 'बतकही', 'छिनाल' (व्यभिचारिणी), 'खूॅसट' (व्यर्थ का), 'फॉक' (चीरा हुआ), 'झबरा' (बालो वाला कुत्ता), 'तलइया', 'अण्डबण्ड', 'तिड़ी विडी', 'मुच्छड', 'कुच्छ', 'बेरूखी' आदि के माध्यम से लोक-सवेदना को अभिव्यक्त किया है । वस्तुत नागार्जुन लोक की मिट्टी के कवि है। इसलिए इनकी रचनाओ मे लोकभाषा के शब्दो का अनूठा सगम मिलता है ।

"घिन तो नहीं आती"[12] कविता मे ट्रामो की भीड मे कुली-मजदूरो के बीच किसी तथाकथित अभिजात्य को देखकर कवि द्वारा पूछा हुआ प्रश्न अत्यन्त मार्मिक है- "सच-सच बतलाओ/नागवार तो नहीं लगती है/जी तो नहीं कुढता है/ घिन तो नहीं आती है / क्योकि तुम्हारा आधार- /दूध का धुला हुआ लिबास है तुम्हारा/निकले हो शायद चौरगी की हवा खाने/ ये तो बस इसी तरह/लगायेगे ठहाके, सूरती फॉकेगे/भरे मुॅह बात करेगे अपने देश कोस की । सच-सच बतलाओ । अखरती तो नहीं है इसकी सोहबत ।" - इस कविता मे नागार्जुन ने लोक भाषा के विविध शब्दों - 'नागवार', 'जी', 'कुढता', 'घिन', 'लिबास', 'सूरती फॉकेगे', 'भरे मुॅह, 'देश कोस', 'अखरती' और 'सोहबत' के प्रयोग के द्वारा सामान्य जनो के प्रति अपनी आन्तरिक पीडा को अभिव्यक्त किया है। नागवार (फारसी), लिबास, सोहबत (अरबी) शब्द जो लोकभाषा में प्रयुक्त होते

है – कुली–मजदूरो और पूँजीपतियो के बीच की दूरी को द्योतित करते हुये उनके मनोवैज्ञानिक भावो को स्पष्ट करते है । कुलियो के कधो पर चढकर जीवन जीने वाले उन्हीं से घृणा करते है । कुली और मजदूर चाय से मानसिक थकान को दूर नहीं कर सकते है, वरन् वे सूरती (तम्बाकू) फॉककर अपने दु ख-दर्द को दूर करते है और आपस मे अपने देश–कोस (गॉव–गिरॉव) के लोगो से भरमुँह (खुलकर) बात कर ठहाके लगाते रहते है । ऐसे लोगो की सोहबत (सगति) किसे प्रिय होगी? उनके प्रेम करने वालो को ही उनकी सगति नहीं अखरेगी (पीडा देगी) ।

कवि नागार्जुन ने अनेक भाषाओ के लोक प्रचलित शब्दो का सार्थक प्रयोग किया है । अग्रेजी भाषा के स्पीड,[13] जक्शन, वैलेट पेपर, पार्टी, कैम्प, स्ट्रीट, फुटपाथ, सेफ प्लेट,[14] पक्चर आदि लोक प्रचलित शब्द लोक सवेदनाओ की अभिव्यक्ति मे सहायक बने है ।

नागार्जुन ने मैथिल शब्दो- मजरल (बौर आ जाना), सुग्गा, कैठो, आन्हर, भैक्त, अहिबारे, आमक बाग (आम के बाग), गे भइयो, सींध, धिरावा से भी कविता को सॅवार कर उसे लोक-सवेद्य बनाया है ।

साधारण जनो मे असाधारण[15] रूप देखने वाले नागार्जुन का हृदय वस्तुत आदम का तबेला है,[16] जिसकी सत्रह कोठरियो मे ढाई सौ प्राण चुरते रहते है । वे दीन–जनो के दु ख से इतने करूणार्द्र है कि उनके इस बेहाल जीवन को हैजा या काली माई को समर्पित करने मे सकोच नहीं करते है । वे 'पब्लिक' की पीठ पर 'वजट' से लदे हुए पहाड को देखकर, मास्टर, मजदूर, स्त्री और बच्चो की छाती के हाड को गिन–गिन कर मर्माहत है ।[17]

लोकभाषा के प्रचलित शब्दो को नागार्जुन कुछ तोड–मरोड कर रखते है । इससे उनकी कविता का प्रभाव और बढ जाता है । लोक प्रचलित 'दादा' के स्थान पर मार्शल

टीटो के लिए दद्दू (माइ डियर दद्दू हमारे मार्शल टीटो मैत्री की चादर को ज्यादा न पछीटे) शब्द प्रयुक्त कर टीटो का उपहास किया है । इसी प्रकार नागार्जुन मास्को-फास्को (महाप्रभु जान सनक) सकट-फकट (बाढ- छकि -पटना), ससद-फसद (इसके लेखे ससद-फसद सब फिजूल है) जेल-सेल[18] आदि शब्दो को प्रयोग कर अपने स्वतन्त्र चिन्तन के प्रभाव को अभिव्यक्त करते है ।

नागार्जुन की कविताओ मे बिम्ब-विधान केवल शब्द चित्र ही नहीं वरन् अत्यन्त मर्मस्पर्शी है । बिम्ब और प्रतीको के माध्यम से कवि सहृदय पाठक के भीतर चिरस्थायी प्रभाव डालने मे समर्थ होता है । 'अकाल और उसके बाद' कविता मे नागार्जुन ने जिस बिम्ब को प्रस्तुत किया है वह वस्तुत अत्यन्त सवेदनात्मक है –

कई दिनो तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास,
कई दिनो तक कानी कुतिया सोई उनके पास
x x x x x
दाने आये घर के अन्दर कई दिनो के बाद
धुँआ उठा ऑगन से ऊपर कई दिनो के बाद
चमक उठी घर भर की ऑखे कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलायी पॉखे कई दिनो के बाद[19]

इस कविता मे जड चूल्हे के रूदन ने व्यक्ति की दरिद्रता की पराकाष्ठा को अभिव्यक्त किया है। 'चक्की का उदास' रहना घर मे अन्नाभाव को द्योतित करता है । कानी कुतिया भूखी रहकर भी अपने गृह-स्वामी के पास उसकी रक्षा के लिए सोती है । इस पक्ति से कवि ने यह व्यञ्जित किया है कि मनुष्यो की अपेक्षा पशुओ मे स्वामिभक्ति है । कई उपवास के बाद घर मे अन्न नहीं 'दाने' आये । 'दाने' का बिम्ब अन्न की अल्पता को अभिव्यक्त करता है । थोडे से अन्न की प्राप्ति से घर का माहौल बदल

जाता है।घर भर के लोग प्रसन्न हो जाते है और कौए भी अपनी पॉख को जूठन मिलने की आशा से खुजलाने लगते है ।

"ऐसा क्या अब फिर फिर होगा ?" शीर्षक कविता मे कवि ने स्मृति-बिम्ब के माध्यम से सर्वपूज्या नारी के प्रति किये गये कुकृत्य को हृदय विदारक रूप मे प्रस्तुत किया है- "ग्रामवासिनी-नगरवासिनी । माताओ बहनो-बहुओ की । सभी निगाहे, झुकी निगाहे ।' भीगी-भीगी सहती-सहमी । दहशत भरी निगाहो के ये दृश्य भूल सकूँगा?[20]
— इस कविता मे दृष्टि के विभिन्न रूपो के माध्यम से विभिन्न प्रकार के भावो को बडी ही कुशलता से अभिव्यक्त किया गया है । एक ही कुत्सित घटना ने मॉ-बहनो के हृदय में उठने वाली भाव-तरगो की विवशता को विभिन्न प्रकार की दृष्टियो से द्योतित कर सभ्य समाज के ज्ञानपीठ मे होने वाले दानवीय कृत्य के प्रति मर्मान्तक दुख को व्यञ्जित किया है ।

"गीले पॉक की दुनिया गई है छोड" कविता मे नागार्जुन ने बाढ की विभीषिका का बिम्ब प्रस्तुत कर बाढ की विनाशकारिणी लीला को शब्दो के माध्यम से भावपूर्ण ढग से अभिव्यक्त किया है । कवि ने मल्लाहो को कृष्ण द्वैपायनो का परिवार कहकर उनकी श्रेष्ठता तथा भारतीय सस्कृत के विकृत चित्र को प्रस्तुत किया है।कवि इन मल्लाहो के बीच अपने को खडा ही नहीं करता है वरन् वह वहीं का हो जाना चाहता है।[21] 'आदम का तबेला' कविता शोषित जन के यथार्थ जीवन का हृदयस्पर्शी बिम्ब प्रस्तुत करती है । सत्रह कोठरियो मे ढाई सौ प्राणी किस प्रकार (चुरहे) रह रहे है? इसकी कल्पना से ही रूह कॉप उठती है । छोटी बच्ची को भी पानी के बदले ॲगूठा चूसकर सन्तोष करना पडता है । वह खिड़की से लटका हुआ खिलौना मात्र देखती रहती है ।[22]

मर्म पर प्रहार करने वाले प्रतीको के माध्यम से नागार्जुन अपनी कविताओ मे जन सामान्य के जीवन की विषमताओ को अभिव्यक्त करते है । "मुर्गे ने दी बॉग" कविता

पूर्ण प्रतीकात्मक है । दडवे मे बन्द रहने पर भी लाल रग वाला मुर्गा- (यह सुर्ख मुर्ग ठीक वक्त पर बॉग दे रहा है न? यह मुर्ग नहीं, अलार्म घडी है जेल की)[23] - -

-) –जो क्रान्ति का प्रतीक है- रात्रि व्यतीत होने और प्रभात (सुख के दिन आने की) की सूचना देकर दीन, दलित और शोषितो को उत्साहित करता है । "छोटी मछली शहीद हो गयी" कविता लोक-जीवन की व्यथा कथा है । 'छोटी मछली' शोषित जन की प्रतीक है । उसकी मृत्यु पर छोटे कर्मचारी (दलित) गण अत्यन्त दु खी है किन्तु पूँजीवादी व्यवस्था के प्रतीक मोती सिह के मन मे उसके प्रति किसी प्रकार की करूणा नहीं है । वह तो अपनी-अपनी क्रूरता की आग मे उसे भूनकर खाने के लिए तैयार है ।[24] वस्तुत नागार्जुन ने अपने प्रतीको के माध्यम से क्रूर शासन तन्त्र पर कडे प्रहार किये है।सभी प्रतीको मे सामान्य जनो के हृदय की असह्य पीडा को इन्होने बिना किसी भय और सकोच के अभिव्यक्त किया है ।

नागार्जुन के उपमानो की तुलना सिर्फ उन्हीं से की जा सकती है । एक कविता– ("बताऊँ? / कैसे लगते है / दरिद्र देश के धनिक? / कोढी कुढव तन पर मणिमय आभूषण ।")[25] मे उन्होने 'दरिद्र देश के धनिक' के लिए 'कोढी कुढव शरीर पर मणिमय आभूषण' का उपमान दिया है । देश को खोखला बनाकर अपना घर भरने वाले धनिको का उपहास करते हुए उनकी यह कविता देश के प्रति उनके प्रेम-भाव को अभिव्यक्त करती है ।

नागार्जुन जैसा सवेदनशील कवि ही सत्य के स्वरूप को ठीक ढग से देख सकता है । तभी वे कहते है - सत्य को लकवा मार गया है / वह लम्बे काठ की तरह पडा रहता है सारा दिन . . सत्य अब पडा रहेगा । लोथ की तरह, स्पन्दन शून्य मासल देह की तरह ।[26] सत्य लम्बे काठ (सूखी लकडी), लोथ (मास का टुकडा) की तरह और स्पन्दन शून्य मॉसल देह की तरह निष्क्रिय पडा है। कवि ने तीन उपमानो के द्वारा चेतन

प्राणी- जो सत्य बोलने का दावा करते है- को पाषाण बना दिया है । यदि सत्यनिष्ठ प्राणी दीनजनो ,शोषित-दलितो व सामान्य जनो पर किये गये अत्याचार को देखकर कुछ बोलते नहीं, मूक बने रहते है - वे वस्तुत शुष्क काठ की भॉति है, अथवा मॉस के लोथडे की भॉति घृणा के पात्र है अथवा मृत शरीर ।

मुहावरो व लोकोक्तियो के सुन्दर प्रयोग वाली नागार्जुन की कविताएँ लोक सवेदना को अत्यन्त प्रभावशाली ढग से अभिव्यक्त करती है । लोक जीवन से तादात्म्य रखने वाले व भौतिक सुख के लिए लार न टपकाने वाले नागार्जुन को "लोकतन्त्र के मुॅह पर ताला"[27](कुछ भी बोलने मे असमर्थ बना देना) लगाकर फूले न समाने वाले लोग असह्य है । क्रूरशासन के समक्ष घुटने न टेकने वाले[28] नागार्जुन ने ही शासन रूपी 'मगर के ऑसू' को बहते हुए सही मायने मे देखा है । शासको या शोषको का दामन कितना पाक-साफ है? और दुनिया की चादर कितनी मैली है? इसका ज्ञान नागार्जुन को हैं। तभी तो गरीबो की चिन्ता के नाम पर उनका उपहास करने वाले राजनारायण जैसे नेता शासन को बाहरबॉस करने[29](कष्ट देने) के लिए तैयार रहते है तथा अपने दुश्मनो की ऐसी-तैसी (मिट्टी मे मिला देने) करने के लिए ठकुरसुहाती (चमचागिरी) करते रहते है । नागार्जुन की पैनी दृष्टि ही देख सकती है कि खादी ने किस प्रकार मलमल से अपनी सॉठ-गॉठ (दोस्ती) कर ली है । इसीलिए धनिको के यहॉ "तीसो दिन दीवाली" (सुख की घडी) मनायी जाती है और गरीबो का चूल्हा ठण्डा रहता है। उनकी "हांडी फूटी" हुई रहती है ।[30]

"आम के आम गुठलियो के दाम" कहावत मे नागार्जुन ने स्वार्थी तत्वों की करनी को बडे ही मार्मिक ढग से प्रस्तुत किया है - "पके आमो को सहेजो काम आयेगे । सारवन्ती गुठलियों के दाम आयेगे ।"[31] 'अजगर करे न चाकरी' कहावत को कवि ने अपनी कविता का शीर्षक बनाकर सत्ताभोगी अनेकान्तवादी कवियों का उपहास किया है ।

'शासक की बन्दूक' शीर्षक कविता मे "बाल न बॉका कर सके जो जग वैरी होय" कहावत के आधे अश का प्रयोग कर कवि ने शेष आधे अश को वर्तमान से जोडते हुए नयी उक्ति का निर्माण किया है- "जली ठूँठ पर बैठकर गयी कोकिला कूक, बाल न बॉका कर सकी, शासन की बन्दूक ।"[32]

नेताओ को "घर के न घाट के"[33] समझने वाले नागार्जुन दलितो के उत्थान के लिए क्रान्ति के 'तिल को सदा ताड' बनाने के लिए उद्यत रहते है - "आये है सम्पूर्ण क्रान्ति मे/ताड बना लेगे तिल से ।"[34]

नागार्जुन की कवितायें बहुआयामी रूप वाली है । इनकी सपाटबयानी कविताओ मे भी एक लय का माधुर्य है । "इन्दु जी क्या हुआ आपको"[35] कविता प्रारम्भ से लेकर अन्त तक एक प्रकार की लोक-धुन को प्रस्तुत करती है । ज्यो-ज्यो कविता आगे बढती है, त्यो-त्यों भावो की गम्भीरता लोक प्रचलित शैली मे नादात्मक सौन्दर्य की पराकाष्ठा को प्राप्त करती है । पूरी कविता मे लोक-धुन के माध्यम—जनून-खून, दग-रग, बाप को, पाप को— से साधारण जनो के प्रति कवि की सवेदना को व्यञ्जित कर रही है । 'खूब सज रहे' कविता - "खूब सज रहे आगे आगे पडे / सरो पर लिए गैस के हण्डे / . चमके काले गडे/सौ-सौ ग्राम वजन है। कछुए ने डाले अडे ।"[36] में प्रयुक्त पंडे, हडे, गडे आदि शब्दो की लयात्मक ध्वनियॉ विशेष अर्थों को द्योतित करती हुई शासन की विद्रूपता के साथ-साथ जनता के साथ किये गये छलावा को व्यञ्जित कर रही हैं ।

'खाली नहीं और खाली' शीर्षक कविता— "मकान नहीं खाली है/दुकान नहीं खाली है/स्कूल नहीं खाली है, खाली नहीं कालेज/खाली नहीं टेबुल, खाली नहीं मेज खाली है हाथ, खाली है पेट/खाली है थाली, खाली है प्लेट।"[37] मे 'खाली' पद की बार -बार आवृत्ति की गयी है । इस आवृत्ति मे पुनरूक्ति दोष नहीं है वरन् अर्थ को प्रभावकारी बनाने के लिए प्रयुक्त है । इस ससार में यदि कुछ खाली है तो दीन-दलितों के हाथ,

पेट,थाली और प्लेट । इसी प्रकार "पीपल के पीले पत्ते" शीर्षक कविता- खड-खड-खड करने वाले/ओ पीपल के पीले पत्ते/हरे-भरे कुछ भूरे-भूरे टूसो से लद रही टहनियॉ । लह-लह-लह-लह लहा रहे है ।"[38] अपने ध्वन्यात्मक शब्दो के द्वारा पुराने बुर्जुआ सिद्धान्तो को नष्ट कर नयी क्रान्ति के बीज के प्रस्फुटन को अभिव्यक्त कर रही है । पूॅजीवादी व्यवस्था के ध्वस को 'खड-खड-खड' लोक-ध्वनि बहुत बारीकी से द्योतित कर रही है तथा 'लह-लह-लह' लोक-ध्वनियॉ सर्वहारा के शासन के प्रभात को द्युतिमान कर रही है ।

वस्तुत नागार्जुन लोक जीवन के सहज चितेरे ही नहीं है, वरन् उनकी कविता स्वय की भोगी हुई जीवन-निधि है । वे कविता के लिए कविता नहीं लिखते वरन् उनके हृदय का रस स्वय ही कवित्व का रूप ले लेता है । इसीलिए उनकी भाषा अत्यन्त और सहज है । उनकी सहजता मे भावो की गम्भीरता रहती है । कहीं-कहीं कविता तीखा प्रहार करती हुई उनके सात्त्विक क्रोध को अभिव्यक्त करती है । उनकी कविताओ मे लोक भाषा के शब्द उसी प्रकार अनेक रहस्य को प्रकाशित करते है जैसे नीलाम्बर के तारे । यह कहना अनुचित न होगा कि नागार्जुन जैसे कवि सदियो में होते है जो लोक जीवन के दामन को छोडकर अन्यत्र रमण करने मे अपना व सरस्वती का अपमान समझते है ।

केदारनाथ अग्रवाल की कविता की भाषा मे लोक-संवेदना

जनता का यह चहेता कवि केदारनाथ अपनी कविता की थाती को हृदय मे समाहित कर अपनी छाती ताने हुए सबसे पृथक खडे है।[1] इनकी स्वतन्त्र लेखनी कभी किसी भी भौतिक मूल्य पर नहीं बिकी । ये जीवन-पर्यन्त मनुष्यो को साहस, स्वाभिमान अर्थ और वाणी देने के लिए तथा स्वदेश को नवीन रूप मे गढ़ने के लिए बिना किसी लोभ के अपनी जीवन्त तथा सहज लेखनी के माध्यम से सघर्ष करते रहे हैं। इनकी भाषा

की सरलता इनके कथ्य को जन-जन तक पहुचाने मे सफल रही है। प्राचीन काल से भाषा, विषय और अभिव्यक्ति का संघर्ष चलता आया है । साहित्यिक भाषा और विषय के विवाद ने कविता की धारा को अनेक रूपो मे विभाजित किया है। केदारनाथ यह स्वीकार करते है कि आम-आदमी के जीवन से सम्बन्धित साहित्य की भाषा आम-आदमी की ही होनी चाहिए ताकि विषयी को विषय का बोध हो सके । भाषा की सरलता और दुरूहता कविता का बाह्य पक्ष है । भाषा एक इकाई है जो किसी अमूर्त को शाश्वत मूर्त रूप प्रदान करती है । समकालीन कवियो की भाषा सरचना उनके वैयक्तिक गुणो के कारण विविध रूपो को धारण करती है । यह होना भी चाहिए । अनुकृति का लोभ कथ्य को नीरस और अबोधगम्य बना देता है । कवि केदार स्वय कहते है -"कवि कविता को नीचे गिरने से बचाता है । वह उसे भाषा देता है जो कर्त्तव्य और कर्म से उपजी हो और सार्थक हो और दूसरो की समझ मे आ सके ।"[2]

वस्तुत. कविता का आलोक उस अन्धकार को जिसे सूर्य भी नहीं मिटा सकता है- मिटाने मे सक्षम होता है । कविता शाब्दिक इन्द्रजाल नहीं है जो यथार्थ से दूर ले जाकर वञ्चना के रत्नाकार मे उठाकर फेक दे, अनेक रत्नो की प्राप्ति के लिए । यह एक छलावा हो सकता है और भ्रमजाल हो सकता है ,कविता नही । कविता का सम्बन्ध क्रान्तिदर्शी कवि से है । क्रान्तिदर्शी यथास्थिति वाद का कभी भी पोषक नहीं होता है, वह प्रकृति के प्रत्येक उपादानो मे देश-काल, परिस्थिति के प्रत्येक घटक मे क्रान्ति, नूतनता का सर्जक होता है । इसी अवधारणा को अपने मे समेट कर चलने के कारण केदारनाथ की कविता जितनी उनकी है उतनी दूसरो की भी है ।[3]

जिस कवि की कविता मे जनता का स्वर गूँजता रहता है वही कविता राज्य -सुखो को लात मारकर युग जीवन के सत्य के चित्र को चित्रित कर सकती है।[4] पचास वर्ष की अवस्था के बाद भी जिस कवि को गॉव बार-बार बुलाता रहता है ("गॉव अब

भी मुझे बुलाता")[5], उसकी रचनाओ मे बरबस लोकभाषा की मधुर ध्वनि क्यो नहीं गूँजती रहेगी।'कल और आज' शीर्षक कविता-('तकिया-मचिया जन जीवन के लिए कठिन है')- के द्वारा कवि ग्रामीण जन जीवन के अभावो को व्यक्त करता है । 'मचिया' शब्द - जिसका अर्थ होता है 'एकदम छोटी बॉस की बनी खाट' । आम आदमी के लिए 'मचिया' जैसी तुच्छ चीज भी उपलब्ध न होना देश की सम्पन्नता की बात करने वालो पर क्रूर तमाचा है । राजनीति के मक्कारपन ने आम आदमी के पेट को गड्ढा बना दिया-"पेट खलाये . बोझा ढोते राहे टोते जो गाते है रोते निर्धन।"[6] 'पेट खलाये' मे 'खलाये' शब्द का अर्थ है- भूख के कारण पेट का धॅस जाना', और 'टोते' का अर्थ है- अधेरे मे किसी वस्तु को प्राप्त करने का प्रयास करना । नागार्जुन द्वारा प्रयुक्त लोक भाषा के ये दोनो शब्द एक ओर शोषित की दुरवस्था ('पेट खलाये') का और दूसरी ओर उनके क्रान्तिकारी अदम्य साहस (राह टोते) को व्यञ्जित करते है । "फूल नहीं रग बोलते है"[7] सग्रह की यह कविता -"ऑख खुली/कर उठा/करेजा कडका/धूल झाडकर/सोता मानव/फडका रात ढली/दिन हुआ/ उजाला दौडा/ताबडतोड/चला, बज उठा/हथौडा"[9]- विविध लोक प्रचलित शब्दो के माध्यम से श्रमिक के जीवन की व्यथा को सहज ही अभिव्यक्त करती है । दिन भर कठिन परिश्रम करने वाले श्रमिक के लिए रात छोटी पड गयी है । उसकी ऑख देखती है कि उजेला दौड रहा है तब उसका करेजा (हृदय) कडकने (व्याकुल) लगता है कि उसे काम पर जाने में बिलम्ब हो गया है । इसलिए वह फड़कता हुआ ताबडतोड (अतिशीघ्रता से) दौडा और जाते ही (बिना विश्राम किये) उसका हथौडा बजने लगा ।

अपने मित्र शमशेर की भॉति 'कधें पर नदी व मूँड (सिर) पर नाव'[8] रखकर चलने वाले केदार को यह भली-भॉति ज्ञान है कि भारत के जगली जनतन्त्र के व्यापक प्रचार और प्रसार मे आम आदमी को सामाजिक न्याय नहीं मिल सकता है क्योंकि चारो

ओर किल-किल (कलह या आपस मे टकराहट) है । इसीलिए भुक्त भोगी अपने बेटे से कहता है कि यहॉ आम लोगो के लिए 'ठेगा' (ॲगुठा अथवा निराशा) और 'टिलटिल' (दुर्गन्धयुक्त कीचड ही कीचड) है ।9

केदारनाथ की "बोले बोल अबोल" सग्रह की इस कविता मे प्रयुक्त लोक-प्रचलित शब्द भूखी लडकी की सवेदना को मार्मिक रूपो मे अभिव्यक्त करते है --

"आग पर चढी बटुई/खुदुर-खुद/खुद-बुद करती है/भाप है/कि ठेलती-ठालती/कटोरी को/बारम्बार उठाती-बैठाती है/बटुई के मुॅह पर/जलती-जलाती/लकडियो की धधक में/चूल्हे पर चढा चावल चुरता है / धुआई बिटिया/ॲसुवाई बैठी/कोठे मे देखती है/ पेट के पालने का/हो रहा आतुर-उपचार/सुनती हुई / भूखोद्धार का मंत्रोच्चार।"10

'बटुई' (चावल पकाने का कॉसे का पात्र) आग पर चढी है । उसमें रखे हुए चावल के पकने की ध्वनि को 'खुदुर- खुद' 'खुद-बुद' शब्द से व्यञ्जित किया गया है। भूख व धुये (धुॅआई) से पीडित बिटिया (लडकी) ॲसुवाई (ऑसू मे डूबी हुई) ऑखो से चावल चुरने (पकने) के इन्तजार मे बैठी है । इनकी रचनाओ मे अधिकाश स्थलो पर लोकभाषा के शब्द अनायास प्रयुक्त होकर अर्थ को बहुत ही सवेदनशील बना देते है । आम आदमी के जीवन से जुडे हुए कवि की कविता बिना लोकभाषा के शब्दों के अर्थहीन और प्राणहीन लगती है । वह केवल हृदयहीन नारी की भॉति अलकृत होकर मात्र हाव-भाव ही प्रदर्शित करती है ।

केदारनाथ के प्राण गॉव की माटी मे ही बसते रहे है । इसीलिए इनकी कविता तभी सुहागिन होती है, जब अपनी मॉग मे लोक जीवन से ग्रहीत प्रतीको और माथे पर बिम्बो को धारण करती है । इतना ही नहीं, इनकी कविता-कामिनी लोकजीवन के उपमानो के सुन्दर पुष्पों से अपने केश-पाश को अलकृत कर उस पाश मे सहृदय के मन को बॉधकर हठात्-अपने वश में कर लेती है । "आग का आईना" केदार का एक

महत्वपूर्ण प्रतीकात्मक काव्य है जिसकी अधिकाश रचानाए आम आदमी की विवशता का यथार्थ चित्रण करती है — "चरित्र सब चालते है / अपनी चलनी मे/सोना निकालने के लिए/मिट्टी निकलती है मिट्टी/सोने के भाव न बिकी।"[11] इस कविता मे 'चलनी' सोना और 'मिट्टी' तीन प्रतीक है। 'चलनी' मापदण्ड या परीक्षण-नियम की प्रतीक है । प्रत्येक व्यक्ति अपनी चलनी मे अर्थात् अपने मापदण्ड से दूसरो के चरित्र को मापते है । उनका जैसा मापदण्ड होगा वैसा ही उनकी दृष्टि मे व्यक्ति का चरित्र होगा । सोना निकालने के लिए मिट्टी खोदी जाती है पर उस मिट्टी का क्या मूल्य ? मिट्टी यहाँ वह शोषित-दलित श्रमिक है जो पूँजीपतियो के लिए विलासिता की सामग्री जुटाता है और स्वय मूल्यहीन जीवन जीता है ।

"कुत्ता कुत्ता है"[12] शीर्षक कविता मे कुत्ता उन शोषक नेताओ का प्रतीक है जो गॉव या शहर मे कहीं भी रहे, अपनी काली करतूतो से आम आदमी के हाथ की रोटी छीनता रहता है । ऐसे कुत्ते को मारना ही पाप है । इसे मारना ही व्यक्ति का स्वधर्म व कर्त्तव्य होना चाहिए । इस कुत्ते को बूँद-- जो आम आदमी की प्रतीक है--तब तक नहीं मार सकती जब तक वह एकत्रित होकर नद्, सरिता, सागर या जलधर नहीं बन जाती।[13]

प्रगतिशील कवियो ने अपने बिम्ब विधान में यथार्थ के अनुभव को प्रभावोत्पादक एवं अत्यन्त सवेदनशील चित्रो मे प्रस्तुत किया है । इन बिम्बों में सामाजिक, राजनैतिक और सास्कृतिक यथार्थ के बहुआयामीय स्वरूप को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है जिससे उसका प्रभाव आम आदमी के मानस पटल को मथकर उसे सभी प्रकार की चुनौतियो को स्वीकार करने की क्षमता प्रदान कर सके। केदारनाथ के बिम्ब आम आदमी के सघर्षशील व्यक्तित्व को निखारने के लिए प्रस्तुत किये गये है- "मैने उसको/जब-जब देखा/लोहा देखा/लोहा जैसे तपते देखा/गलते देखा/ढलते देखा/मैंने उसको/गोली जैसा चलते देखा"[14] इस कविता में कवि के अनुसार ऐसी क्रियाशील नारी के स्वभाव का बिम्ब खींचा गया है।

जो एक ओर तो लोहे की भॉति कठोर हृदय वाली व क्रान्ति की आग को अपने मे समाहित किये हुए है वही अन्यत्र अत्यन्त सवेदनशील दिखाई पडती है ।

विद्वान् पथ प्रदर्शक होता है और सूर्य अधकार को दूर करता है किन्तु कवि की निराशा ने इनके अपकर्म को चित्रित कर पूरे समाज की दुर्दशा को कम शब्दों में अभिव्यक्त किया है- "विद्वान ॲधेरा/ढपोरशखी सूर्य/दोनो हमारे है/और हम उनके सहारे है/थके हुए है/हारे है ।"[15] आम आदमी के लिए विद्वान ॲधेरा बना हुआ है और सूर्य (देश का प्रधान) ढपोरशखी बना केवल घोषणाएॅ ही करता है, उसे पूरी नहीं करता है। ऐसी स्थिति मे साधारण जनता के हाथ निराशा ही लगती है । इसी प्रकार का एक प्राकृतिक बिम्ब अत्यन्त हृदयस्पर्शी है --"मर्माहत है । प्रकृति बिगडी राजनीति से/उखडे पडे है/परार्थी पेड/सूरज-चॉद-सितारो का मुॅह जोहते/इसान अब फिर रोपते है/ अपने और दूसरो को एक समान।"[16] बाढ ने सब कुछ ध्वस्त कर दिया है । इस बाढ का कारण गन्दी स्वार्थसाधिका राजनीति है । मनुष्य के कुकृत्य के कारण प्रकृति भी मर्माहत है ।

केदारनाथ के बिम्बो के समान ही लोक जीवन के उपमान इनके ग्राम्य जीवन और शोषित श्रमिको के प्रति सच्चे प्रेम को प्रदर्शित करते हैं । दूध के बुल्ले के समान ("नीम के फूल/दूध की फुटकियो से झरे")[17] नीम के श्वेत और मुलायम पुष्प को कठोर भूमि पर झर कर बिखरते हुए देखकर कवि को यही प्रतीत होता है कि कोई दुखी व्यक्ति का प्यार से स्पर्श कर रहा है ।

कवि केदारनाथ ने औद्योगीकरण के प्रदूषण से दिन की दुर्दशा के चित्रण के लिए मर्मभेदी उपमान के माध्यम से मनुष्य की विवशता को अभिव्यक्त किया है- "दिन है कि हंस हलाहल पर । मद मधुर तिर रहा है।"[18] विषैले धुॅए से आकाश हलाहल के समान है और दिन नीर-क्षीर विवेकी हस के समान जो सदा निर्मल वातावरण (मानसरोवर) मे

रहता है-- विवश होकर आकाश मे तिर रहा है । इसी भॉति दूसरी कविता "उदास दिन" मे इन्होने विषाक्त वातावरण वाले दिन के लिए अल्पवेतन भोगी चपरासी, जुए मे हारे हुए व्यक्ति और आपे मे खोये हुए गदहे को उपमान बनाया है । ऐसी विषम परिस्थिति मे धूप परित्यक्ता के समान तथा मॉ से बिछुडे हुए बच्चे के समान कातर है ।[19]

कवि केदार के उपमान जितने लोक-जीवन से जुडे है उतने ही सवेग से लोक-ध्वनियॉ उनकी कविताओ को प्रभावशालिनी बनाती है। उनकी कविताओ मे लोक-ध्वनियो के शिल्प का सौन्दर्य अनेक भाव-भङ्गिमाओ के साथ अभिव्यक्त हुआ है । प्रकृति के सौन्दर्य को ही इनकी कविता ने नहीं निखारा है, बरन् उसकी अनबूझ-ध्वनियो को मूर्तिमान रूप दिया है । इन्होने स्वत कहा है-- "प्रकृति का मेरा निरूपण चित्रोपम निरूपण है । उसमे कलाकारिता है । शब्दो का सौन्दर्य है । ध्वनियो की धारा है । कहीं-कहीं क्लासकीय अभिव्यक्ति है।बसन्ती हवा मे अवश्य गति और बेग है ।"[20] केदार की धरती राधा बनी हुई है । यह फसल की "घॉघरिया" पहनकर और आसमान की ओढनी ओढकर नाच रही है और कृषक उसका "सॅवरिया" बनकर नाच रहा है । मतवाली हवा की थाप पडने के कारण पेडो की 'ढुलकिया' बज रही है और पक्षियो के जी भर के फाग काटने के कारण राग की गगरिया रस को ढरका रही है ।[21] यहॉ कवि ने घॅघरिया, सॅवरिया, गगरिया, खबरिया और डगरिया आदि लोक-ध्वनियो मे रागात्मक लय के समावेश के साथ कृषक की सवेदना को अभिव्यक्त किया है ।

केदार के कृषक बुन्देलखण्ड के हैं, जो खाली समय मे गुडगुड-गुडगुड शब्द करने वाले हुक्का से धुऑ उडाते रहते है । हुक्का पीते समय 'गुडगुड' की ध्वनि निकलती है। यह ध्वनि किसान के हृदय में जलने वाली आग और पानी की ध्वनि है जिसे हुक्का व्यञ्जित कर रहा है । केदार की 'चन्द्रगहना से लौटती बेर', 'बसन्ती हवा', 'हम चलते है फिर खेतों मे' आदि अनेक कविताए विभिन्न लोक-ध्वनियो व लोकलय मे खेत-

खलिहान व कृषक जीवन को साकार करती सामान्य जन के हृदय को सहज ही आकृष्ट करती है ।

लोक-ध्वनियो के सम्पन्न कवि केदार ने लोक प्रचलित कहावतो और मुहावरो के द्वारा लोक सवेदना को इतनी गहराई प्रदान की है कि एक बार उसके रग मे डूबने के पश्चात कोई भी पाठक अपने को उससे असम्पृक्त नहीं रख सकता है। गॉव का महाजन 'गोबर-गनेश'[22] (अत्यन्त भद्दा) की भॉति आसन मार कर ग्रामीणो जनो का शोषण करता हुआ अपना धन बढाता रहता है । ऐसे ही 'गोबर गनेश' स्वरूप गोबरो की काली करतूत के कारण श्रमिक वर्ग अपना "हाड बजाता" रहता है और उसका अपना दु ख उसे "नाच नचाता" रहता है ।[23] प्रतिदिन उस पर "गाज गिरती" (विपत्ति पडती) रहती है।[24] आम जनता की बडी रात (दु ख) काटे नहीं कटती है (दु ख दूर नहीं हो पाता है), इसीलिए केदार ऐसे कुशासन जिसे रामराज्य की सज्ञा दी जाती है- मे "आग लगाने" (विनष्ट करने) के लिए तत्पर है ।[25] उन्हे ऐसे शोषको का 'मुँह जोहना' (आस लगाये बैठे रहना) एकदम सह्य नहीं है वरन् ऐसे गधो की "पोल खोल देना"[26] (कुकृत्यो को सबके सामने रख देना) प्रिय है ।

केदारनाथ की सबसे बडी विशेषता है कि एक ही कविता में मुहावरो की लडी पिरो देते है । "कहे केदार खरी-खरी" संग्रह की इस कविता मे कवि एक साथ कई मुहावरों का प्रयोग कर उस क्रूर शासन को धिक्कारता है जो कान में रूई डालकर नाक फुलाता और गाल बजाता हुआ देश के भीतर खून बहाता रहता है ।[27]

शोषितो का गला काटते रहने वाले तथा नित्य अपना पजा पसारने वाले शोषको को समूल नष्ट कर देने की इच्छा रखने वाले केदार अपनी लोकोक्तियो के माध्यम से आम आदमी के प्रति अपनी सवेदना को व्यक्त करते है । "यश-अपयश विधि हाथ" के भाग्यवादी सिद्धान्त के बल पर आम आदमी के ऊपर "हँस कर बिजुरी मारने वाले"

शोषको को, जो दूसरो के लिए "मौत के कुएँ खोदते" रहते है- वे हथौडा मार-मार कर समाप्त कर देना चाहते है । जो शासन तन्त्र पूँजीवादी और एकतन्त्रात्मक जनतन्त्र को कायम रखना चाहता है वही "अपना सिक्का बराबर चलाना"[28] चाहता है । पहाड खोदने वाले श्रमिक जनता के हाथ मे जो केवल चुहिया देकरजेअपने को गौरवशाली मानता है और जिसके राज्य मे नहर ही पानी पी जाती है, ऐसे शासको से श्रमिको का सच्चा साथी केदार बार-बार यही कहता है- "नीचे नीचे नीचे उतरो/सिहासन से नीचे उतरो / देखो नंगी भूखी रोती/व्याकुल मरती खपती जनता ।"[29]

कवि केदार गॉव मे रहने वाली उन स्त्रियो को देखकर अत्यन्त द्रवित हो जाते है जो गन्दी कोठरियो मे हॉफती और खॉसती हुई अपने भविष्य को निष्फल हाथो से गढती है । बदले मे जिन्हे मिलता है खाने के लिए सूखा पिसान, फिर भी वे "पीठ-पेट एक कर" तथा पत्थर रगड कर 'हाड तोडती हुई' मर जाती है ।[30]

आम जनता के कष्टो से दुःखी केदारनाथ ने शासन पर कडे प्रहार किये है । पूँजीवादी शासक रूपी घडियाल घोडे पर सवार होकर ऑसू गिराता रहता है । इनका घोडा पट्ट पडा सोता रहता है ।[31] इसीलिए कवि आम जनता को घोडे व घडियाल को भगाने की प्रेरणा देकर हाथी हीन राजनीति को स्थापित करने को कहता है। कवि को विश्वास है कि पूँजीवादी शोषक शासक आम जनता को भले ही अस्तित्वविहीन कर देने की इच्छा रखते हो, और मौत के घाट उतारे गये आदमियो को देखकर भोडा अट्टहास करते हों, लेकिन जो श्रमिक वर्ग धूल चाटकर बडा हुआ है, तूफानों से लड़कर खडा हुआ है, जो सोना को खोदकर लोहे को मोड रहा हो, सूर्य के रथ का घोडा बना हुआ हो, जो जीवन की आग जलाकर आग बना हो जो अपने फौलादी पंजे को फैलाए हुए नाग बना हो और शासन को तोड रहा हो वह कभी मर नहीं सकता है,[32] वरन् एक दिन आम जनता ही अपना भाग्य निर्धारित करेगी ।

अनादिकाल से प्राकृतिक और मानवीय चेतना-सृष्टि का क्रम चलता आ रहा है । प्राकृतिक सृष्टि स्वत प्रक्रिया है अथवा ईश्वर या किसी परम महत् शक्ति की चेतना का परिणाम है जो दृश्य होते हुए भी अदृश्य है, और विविध रूपो मे गम्य होकर भी अगम्य है । चेतना सृष्टि मानवीय है । इस सृष्टि की परिणति वैज्ञानिक और यथार्थमूलक है । यह पुरातन सिद्धान्तो को गॉठ मे बॉधकर नहीं चलती है वरन उसकी ग्रन्थियो को खोलती हुई सूक्ष्म से सूक्ष्मतम तथ्यो का साक्षात्कार वैज्ञानिक रीति से करती है ।

साहित्य और कला की सृष्टि चेतनात्मक है । वह अतीत के बीज से भले ही अकुरित है किन्तु उसके रूप-रग और प्रभाव मे नवीनता रहती है । सजग कवि चेतना के विकास पथ पर चलता हुआ अतीत की ओर मुडकर मात्र देख लेता है। वह जहॉ से चला रहता है वहॉ नहीं लौटता है, वरन् उसका लक्ष्य बढता ही जाता है । सम्भवत भविष्य मे भी कलाकार और साहित्य का लक्ष्य और बढता ही जायेगा । यह प्रगति उस अनन्त सत्ता की कला के भीतर प्रवेश करने का प्रयास मात्र है ।

कवि केदारनाथ भी नवीन सर्जना के कवि है । उनकी कविता की सृष्टि विवेकपूर्ण आदर्शोन्मुख चरित्र की सोपान-परम्परा है । इस परम्परा में सामाजिक दायित्व का वहन और सामाजिक जीवन मे सुरूचिपूर्ण सौन्दर्य स्थापना का सामञ्जस्य है । ये प्राकृत सृष्टि के समकक्ष मानवीय सृष्टि को नहीं रखना चाहते है।[33] इसीलिए इन्होने अपनी भाषा के स्वरूप को नया रूप प्रदान किया है । सत्य को स्थापित करने वाली इनकी भाषा अन्य कवियों से इन्हे पृथक खडा करती है । कवि केदार न्यायालय मे खडे होकर सदा न्याय के लिए वकालत करते रहे हैं । यही प्रभाव इनकी कविता की भाषा मे है । इस भाषा मे सत्य का सूर्य सदा चमकता रहता है । केदारनाथ आम जनता के दुख दर्द को उन्हीं की भाषा मे जिस सरलता से उपस्थित करते हैं, वह अत्यन्त आश्चर्यकारी है -

सुख ना कटै/करम ना फूलै/अन्न अकाल दुआरे झूलै ।

मारे पेट करेजा हूलै/ऐसि राज ना हमको भूलै ।[34]

आम जनता का सुख फर नहीं रहा है और न करम फूल रहा है 'फरै और फूलै' सकर्मक है किन्तु इसे क्रिया बनाकर कवि ने सुख और कर्म को क्रियाशीलता प्रदान की है । सुख भोज्य है, इसलिए उसे फलना चाहिए पर नहीं फलता है गरीबों के लिए। काम साधन है इसलिए वह फूल है । फूल के बाद ही फल लगता है। लेकिन जिस दीन दु खी के कठोर कर्म मे फूल ही नहीं लग रहा उससे फल प्राप्ति की आशा कैसे की जा सकती है ? 'पेट मारना' एक मुहावरा है अर्थात् आम आदमी को भूख से तडपाना शासन के लिए भले क्रीडा हो किन्तु गरीब के लिए कलेजा को विदीर्ण कर देना है । कवि आम जनता के स्वर मे स्पष्ट व्यग्य करता है कि ऐसे क्रूर राज्य को क्या जनता कभी भूल सकती है? अर्थात् उसे माफ नहीं कर सकती है और अवसर आने पर उससे अवश्य ही बदला लेती है ।

कवि केदारनाथ प्रतीक बिम्बो व उपमानो के माध्यम से कविता की सवेदनशीलता को अद्वितीय बना देते है । धन-रहित शोषित श्रमिक का जीवन छूँछे (खाली) घडे के तुल्य है । उसने अपना सर्वस्व देकर पेड-पौधो (पूँजीपतियो) को सींच-सींचकर बडा किया है । आज उसे न कोई हाथ लगा रहा है न अड्क मे रख रहा है और न शीश पर ही चढा रहा है । उसके सारे स्वप्न धूल मे मिल गये है।[35] एक ही कविता में प्रतीक और मुहावरो के प्रयोग ने शोषित जनो के जीवन के कटु और मर्मभेदी यथार्थ को उपस्थित कर कविता को अन्तहीन सवेदनशील जीवन प्रदान किया है । मौत से बार-बार युद्धकर उसे पराजित कर देने वाले केदारनाथ उस भीड से अत्यन्त दु खी है जो अपनी वेदना को अन्त स्थल में छिपाये हुए अपनी जान को जोखिम से बचाते हुए तथा काटते हुए जूतो के समान कष्ट देने वाले दुष्ट शासकों से परेशान होते हुए भी सघर्ष नहीं करते हैं, वरन् दर्द की बहरी सडक पर अन्तहीन यात्रा का अन्त खोजते रहते हैं और पास आयी मौतो

को देवी-देवताओ की मनौतियो से रोकने का प्रयास करते है।[36] 'काटते हुए जूते' जैसे नवीन उपमानो ने इनकी कविता को जन-जन की कविता बना दिया है जिसकी अनुभूति आम जनता को अधिक होती है क्योकि उसके पास अपने गतिशील पैरो की सुरक्षा का काटते हुए जूते के अलावा और कोई विकल्प नहीं है ।

कवि केदारनाथ की कविताओ मे लोकगीतात्मक लय है, ताल और छन्द है। वस्तुत इन्होने प्रकृति की ध्वनियो के अर्थ और रूप को ठीक-ठीक समझकर अपनी कविता का विषय बनाया है । इनकी 'उदास दिन' कविता इनका अपना उदास हृदय है जो दु खी जनो के ऊपर ढहाये जाने वाले विघ्नो से उदास है । इनका एक बित्ता का चना अपना ही एक अल्प प्रमाण वाला उत्साह है जो सिर पर मुरैठा बॉधकर अन्याय से लडने के लिए मानों खडा है । गेहूँ का पौधा उनका अपना लहलहाता हुआ पौरूष है जो नुकीले भालो से किसानो पर ढाये जाने वाले जुल्मो से युद्ध करने के लिए कमर कस कर खडा है ।[37]

परम्परा से भिन्न मार्ग पर चलते हुए इन्होंने स्वकीया प्रेम का जो सगीतात्मक रूप प्रदर्शित किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है । इन्होने युवती से विवाह नहीं किया था वरन् प्रेम से किया है । इनका यह प्रेम महाकवि भवभूति का आदर्श-मूलक प्रेम है जो उत्तरोत्तर आनन्दात्मक परिपाक को प्राप्त होकर एक दूसरे के लिए अपने को समर्पित करता है । जो कवि धरती की ममता के बल पर आकाश मे चमकते हुए सूरज से, जीवन की प्रभुता के बल पर अधकार के द्रोह मे शेषनाग से और अपनी अजर अमर कविता के बल पर मृत्युञ्जय के गोद मे महाकाल से ऑख लडा सकता है, उसी कवि की कविता का पानी निराकुल बह सकता है, उसके हृदय का कठोरत्व रूप पत्थर अतल मे डूबा रह सकता है, क्षण-क्षण नूतन चिन्तन कर सकता है, आम आदमी के लिए खुला हुआ दिग्पट अशेषत: खुला रख सकता है और आद्यन्त दिग्भ्रम निराला रह सकता है ।[38]

त्रिलोचन की कविता की भाषा में लोक-संवेदना :-

त्रिलोचन की कविताएँ लोकभाषा के बीज से अङ्कुरित होकर पल्लवित एव पुष्पित हुई है । इनकी भाषा पहेली नहीं है वरन् सरल व सहज है । भाषा का जीवन से चोली-दामन का सम्बन्ध होता है । इसीलिए भाषा के साथ की गयी क्रीडा आह्लादिनी नहीं होती है।[1] त्रिलोचन की कविताएँ जन-साधारण की भाषा मे उपस्थित होकर आम आदमी के हृदय मे प्रवेश कर वहीं समाधि ले लेती है । घुमन्तू कवि त्रिलोचन की कविताओं को पूँजीपति खरीद नहीं सके , धर्मशास्त्री अपने खारे समुद्र में डुबो नहीं सके और न साहित्यिक नियम अलङ्कारो की श्रृखला मे बॉध सके थे।[2] आम जनता की बोली में अपनी कविता को रूपान्तरित करने वाले त्रिलोचन ही कह सकते है कि- "गालिब गैर नहीं है, अपनो से अपने है / गालिब की बोली है आज हमारी बोली । है नवीन ऑखों मे नवीन सपने ।"[3]

त्रिलोचन मूलत अवध क्षेत्र के हैं। इसलिए इनकी कविताओ में अवधी भाषा का सुन्दर सयोजन है । चाहे 'सानेट' हो या गीत हो या छन्द रहित कविताएँ हों, सब मे लोकभाषा के शब्द सम्पूर्ण कविता को उसी प्रकार आह्लादक बना देते है जैसे किसी पात्र के जल में डाला हुआ गङ्गा का एक बूँद जल सबको पवित्र बना देता है । अवधी भाषा में लिखा गया इनका बरवै छन्द वस्तुत 'धरती' के सौरभ को 'शब्द' के माध्यम से 'अनकही' कहानी बनाकर दिग-दिगन्त तक फैलाता रहता है । जीवन के ऊबड-खाबड पैंडा (पगडण्डी) पर चलने वाले कवि त्रिलोचन ने (आनई आने अपन रूप मुलान लखसिन पएडा केस-केस फूल फुलान) छोटे-छोटे मार्ग के फूल-कुश कॉटो को अच्छी तरह से देखा है । वे उसे अपनी कविताओ मे कैसे भूल सकते हैं। ढाक के पत्तों (उपेक्षित जनो की भाषा) को थाती (कविता) की मर्यादा देने वाले कवि त्रिलोचन[4] सीधी भाषा मे बोलते है ।

त्रिलोचन ने अपनी रचनाओ को लोक भाषा के प्रचलित शब्दो के प्रयोग से सर्वग्राह्य बना दिया है । माटी और मडई (घास फूस का बना हुआ छोटा सा घर) मे घुरियान (धूल धूसरित) रहने वाला कवि का जिउ (हृदय) जिधर भी अँजोर (प्रकाश) देखता है, खुरियाने (बछडा जन्म लेते समय पहले अगले दोनो खुर और मुँह को निकाल देता है) लगता है।[5] त्रिलोचन का दीन-जन केकुरी मारकर (घुटनो को पेट मे रखकर दोनों हाथो से घुटने को दबाये रखना) जाडा बिताते हुए धँधोर (जलती हुई आग) तापने वाले (पूँजीपतियो) को चुनौती देते रहते है।[6] किसी भी दलित मनुष्य के जीवन का मोल (मूल्य) कूटना (लगाना) सहज नही है ("इस जीवन का मोल बहुत है । मोल कूटना सहज नहीं है"-[7]) किन्तु इसका सदा अपमान होता रहता है । त्रिलोचन की ग्राम्या चम्पा भले ही काले 'अच्छर' को नहीं 'चीन्हती' (पहचानती) है ("चम्पा काले-काले अच्छर नहीं चीन्हती") किन्तु अपने जीवन के सर्वस्व 'बालम' (पति) को अपने आँचल मे बाँधकर रखना चाहती है ("मै अपने बालम को सग साथ रखूँगी । कलकत्ते में कभी न जाने दूँगी। कलकत्ते पर वजर गिरे")[8]।

कवि त्रिलोचन ने लोक भाषा के शब्दो जैसे- ग्वैडे[9] (गौइड़= घर के पास का खेत जो अधिक उपजाऊ होता है), थेथर (निर्लज्ज), हरहा (अनुशासनहीन), पलिहर (बिना बोयी हुई भूमि), नोना (नमकीन मिट्टी), धुँधनी (घुघरी), कोल्हाड[10] (जहॉ ईख की पेराई होती होकर गुड बनता है), इनार (कुऑ), बकैया (घुटने के बल चलना) मडई,[11] काढा,[12] झापस, जेवरी, उबहनी, जोत- आदि का जैसा सटीक प्रयोग किया वैसा अन्यत्र नहीं मिलता है । त्रिलोचन की कविता मे धरती की मनमोहक गंध है जो गेहूँ, जौ, सरसो जलकुम्भी, पुरइन, पाकड, दुपहरिया, पीपल आदि को जीवन प्रदान करती रहती है । त्रिलोचन ने एक ही पंक्ति मे तत्सम् और लोकभाषा के शब्दो का बडा ही मनोरम प्रयोग किया है- "चलता रहा तब तक फरियाई (स्पष्ट होना) प्राची/नस-नस राची/जान-पडी,

आर्द्रता आ गयी थी कूनो मे ।"[13]

त्रिलोचन ने अपनी कविताओ मे लोक उपमानो के माध्यम से जीवन के रहस्यात्मक जगत् को बडी कुशलता से अभिव्यक्त किया है। ठूँठ सा जीवन व्यतीत करने वाले-(रहा ठूँठ सा अकेला/मित्र बनाये नहीं भला इस नादानी का)[14] त्रिलोचन की कामना जब भी पीपल के पत्ते के समान मुँह खोलती थी तब लू का तमाचा चटाक से लग जाता है ("पीपल के पत्ते ने ज्यो मुँह खोला-खोला/त्यो चटाक से लगा तमाचा आकर लू का")[15] वस्तुत सॉवली घटाओ के समान दीन-दुखियो की इच्छाओ के इन्द्रधनुष बन-बनकर मिटते रहते है । उनके पैरो के आस-पास बस कीचड ही कीचड रहता है- (इंन्द्रधनुष कितने/इच्छाओ के/बन कर मिटते है/सॉवली घटाओ के/कीचड ही पैरो के आसपास होता हैं)।[16] त्रिलोचन जब मजदूर की नौकरी के लिए आररडाल[17](जो थोडे से आघात से टूट जाती है) के उपमान को सम्मान देते है तब यही ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण दु खी मानव के दु ख को वे अपने मे समेटने के लिए तत्पर रहते है । वस्तुत दु खी जनो के सुख के दिन हस के समान उड जाते है । उसके पास कोयल सी श्यामा सी केवल निविड रात्रि मौन भाव से रहती है।[18]कवि त्रिलोचन यह जानते है कि सरसो के फूल सी छा जाने वाली सुन्दरता उसी फूल के समान नष्ट हो जाती है- "सुन्दरता छायी है सरसो के फूल सी - श्री झर जायेगी सरसों के फूल सी।"[19]इसीलिए वे चाहते हैं कि जैसे वायु जननी के समान सभी चराचर को समान भाव से अनचाहे स्नेह प्रदान करती है उसी प्रकार मनुष्य को सभी के साथ एक समान व्यवहार करना चाहिए-("किन्तु वायु जननी सी स्नेहमयी प्राणमयी/सौ-सौ कोमल लहरो से छू-छू कर/कहती सी है जैसे मौन मधुर-)"[20] और प्रज्वलित दीप ज्वाला की भॉति ऊपर की ओर बढते हुए साम्राज्यवाद, सामन्तवाद और व्यक्तिवाद को नष्ट कर साम्यवाद की स्थापना करनी चाहिए ("तुम पढो जिस तरह दीप्त प्रज्जवाल")

त्रिलोचन गॉव की माटी से उपजे कवि है । इसलिए इनके उपमानो मे उसी माटी का सौरभ है । किसी भी व्यक्ति की व्यथा उसके धैर्य को धीरे-धीरे उसी प्रकार नष्ट कर देती है जैसे नोना (नमकीन मिट्टी) दीवालो को खा जाती है ।

त्रिलोचन के बिम्ब विधान परम्परावादी होते हुए भी नवीन कल्पनाओ के रगो से चित्रित होने के कारण अपना विशिष्ट महत्व रखते है ।[21] कबीर, सूर, तुलसी की परम्परा की याद दिलाने वाले उनके बिम्ब कथन के प्रवाह मे स्वयमेव निर्मित होते चलते है, आयासपूर्वक अलग से थोपे गये नहीं लगते है ।

लोकमाटी से सजे-संवरे त्रिलोचन के प्रतीक बडे प्रभावशाली है । "सबका अपना आकाश" सग्रह का यह गीत पतझर के माध्यम से नवीन उन्मेष का स्वागत करते हुए नये रूप में जीवन जीने का आह्वान कर रहा है - यह नया पतझर, रहे झर/वे पुराने भाव वे स्वर/मिट रहे वे चित्र धन के/रवि गया जिनको विरचकर/रात मे जो स्वप्न देखा/पुष्ट जिसकी भाव रेखा/जा रही है रात तुमको मूर्ति है अपनी बनानी ।[22] त्रिलोचन 'दीप' प्रतीक के माध्यम से बार-बार रात्रि (दीन दुखियो के दु ख) को दूर करने की प्रेरणा देते रहते हैं- "आ गयी है रात, उठो दीप जला दो ।"[23] "दीप जलाओ/इस जीवन मे रह न जाय मल गृह गृह की लक्ष्मी मुस्काओ ।"[24] "सो गया था दीप मैने फिर जगाया ।"[25]

त्रिलोचन ने 'काठ की हाडी' प्रतीक के द्वारा भ्रष्टाचार और अन्याय से प्राप्त भोग के सर्वनाश को बहुत सहज ढग से अभिव्यक्त किया है -

"चढती नहीं दुबारा कभी काठ की हाडी

एक बार मे उसका सब कुछ हो जाता ।

चमक बढाती और कडा रखती है मॉडी

कपडे मे जब पानी उसको धो जाता है ।"[26]

जिन दीन हीन जनो के जीवन मे कभी नया बसन्त (सुख के दिन) न आया हो, सर्वदा लू की लपट चलती रही हो और धूल उड रही हो ("नया बसन्त और आया कब याद नहीं है/ अब तो धूल उडा करती है, लू की लपट यही है")[27], जहॉ नगई महरा (मेहनतकश मजदूर) पेट भरने के लिए कुछ भी करने को मजबूर हो,[28] जहॉ मन की चुनी चाह कभी फलती ही दिखाई न पडती हो, ("मन की चुनी चाह फलती कहॉ है")[29] फिर भी जो बरगद[30] (पूॅजीवाद, पराश्रय) को उखाड फेकने के लिए तत्पर रहते है-त्रिलोचन ऐसे ही जन के कवि है।

त्रिलोचन की कविताओ मे मिलने वाले मुहावरो व लोकोक्तियो ने उन्हे लोक जीवन का अप्रतिम कवि बना दिया है। वे अन्याय की मक्खी देखकर लीलने वाले व्यक्ति नही है ("देखते हुए मक्खी लीलते नही बनता")[31] विपन्न अवस्था मे रहते हुए भी इन्होने किसी को तेल लगाकर (चापलूसी कर) ("बात नहीं है इसमे केवल तेल लगाना")[32] अपना कार्य नहीं साधा क्योकि "चार दिनो की चॉदनी"[33] मे जीना उन्हे पसन्द न था। अपनी बात कहने के लिए उनका पेट कभी भी नहीं फूलता है[34] और न ही वे येन केन प्रकारेण अपना झण्डा फहराना चाहते है।[35] मानवता के पुजारी कवि त्रिलोचन ने किसी को उल्लू बनाकर (मूर्ख बनाकर) उसके माल को चापने का कभी प्रयास नहीं किया और न ही कभी "ऊॅट के व्याह-मे गधे का गीत" गाया - "चापो माल बनाओ उल्लू मौज से जीओ"। ऊॅट के ब्याह मे गधो की रीति नवाहे चले चलो।"[36] काले धन (पाप की कमाई) से पानी (प्रतिष्ठा) चाहने वालो से त्रिलोचन को घृणा है।[37] 'अपनी गोटी देखने वाले' (अपनी ही भलाई सोचने वाले) जन इस ससार मे सुखी रहते है। किन्तु त्रिलोचन सिर्फ अपना लेखा-जोखा कभी नहीं रखते है। इन्हे अपना ढोल बजाना (प्रशसा करना) प्रिय नहीं है। ये हाथ पर हाथ रखकर बैठने वाले[38] (निठल्ला बैठे रहना) कवि नहीं है वरन् जीवन की नावो को तरगो मे खेते रहते है[39] (सघर्ष करते रहना)। इस ससार में सबको

अपनी हाय-हाय (चिन्ता) है किन्तु कवि त्रिलोचन की ऑखे देखती है कि जनता रूपी दिलीप की गाय (नन्दिनी) पर दु ख रूपी सिह ने आक्रमण कर दिया है । इसीलिए ये जन-जन के दु ख को बॉटने के लिए व्याकुल रहते है ।[40]

त्रिलोचन की कविताओ की आत्मा उसकी 'लोकध्वनि' है । कर्म पथ पर निरन्तर चलने वाले इस कवि ने ठीक ही कहा है कि बैठे रहने से मञ्जिल की प्राप्ति नहीं हो सकती है-

बइठे-बइठे मञ्जिल नाइ नगिचात

रेले आर जहाजे दूसरि बाति"[41]

'बइठे-बइठे' लोक ध्वनि अति आलस्य को द्योतित कर रही है । 'नगिचात'ध्वनि प्राप्ति की ओर बढने को अभिव्यक्त करती है। त्रिलोचन के गीतो मे लोक-ध्वनि की अजीब सङ्गति है । "जो उठाई है ध्वजा झुकने न देना" के तुक के लिए इन्होनें 'लुकने न देना' ("जो जगाई शक्ति है लुकने न देना .जो लगाई लौ कभी चुकने न देना")[42] और चुकने न देना ध्वनियो के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि क्रान्ति का ध्वज कभी झुके नहीं, विपत्तियों के कारण कहीं लुके (छिपे) नहीं और वह कभी चुकने (दीपक के तेल की भॉति समाप्त) न पावे।इसी प्रकार एक अन्य कविता मे - "व्यूह बनते है दलो के एक दल चुनना पडेगा,--एक अपहर्त्ता अपर कर्त्ता तुम्हे गुनना पडेगा--सोच लो जो बीज बोओगे तुम्हे लुनना पडेगा"[43]--'चुनना' ध्वनि को प्रभावशाली बनाने के लिए 'गुनना' व 'लुनना' दो लोक- ध्वनियो का सार्थक प्रयोग किया है । 'गुनना' ध्वनि अर्थ की गम्भीरता को अभिव्यक्त करने के लिए चिन्तन की सघनता को द्योतित करती है । 'लुनना' जीवन के 'कर्म-फल' के यथार्थ स्वरूप को प्रकाशित करती है। त्रिलोचन की एक कविता मे लोक-ध्वनि के प्रयोग की अर्थ गम्भीरता देखने लायक है —

"गाता अलवेला चरवाहा/चौपायों को साथ सॅभाले/

पार कर रहा है वह वाहा/गये साथ तो व्याह हुआ है

अभी-अभी बस जुआ छुआ है ।"[44]

'चरवाहा' पशुओ को चराने वाले को कहते है। 'चरवाहा' ध्वनि को प्रभावी बनाने के लिए त्रिलोचन ने 'बाहा' लोक-ध्वनि का प्रयोग किया है । 'बाहा' चौडे नाले को कहते है। 'बाहा' मे पशुओं के और स्वय के बह जाने की आशका बनी रहती है । इसलिए 'चरवाहा' जिन्दगी के बाहा को सॅभाल-सॅभाल कर पार कर रहा है । सॅभालने की सार्थकता इसलिए है कि अभी-अभी उसका व्याह हुआ है । त्रिलोचन की "अभी-अभी बस जुआ छुआ है"लोक-ध्वनि अत्यन्त मार्मिक है । जब खेत जोतने के लिए बछडे के कधे पर जुआ रखा जाता है तब उसे 'जुआ छूना' कहते है । त्रिलोचन का चरवाहा भी अभी नवयुवक है । उसके कन्धे पर नूतन पत्नी का जुआ रखा गया है । व्याह मे व्यक्ति का उल्लास अभिव्यक्त होता है किन्तु बछडा जुआ नहीं चाहता है । दो विरोधी भावों की सगति ने कविता को मार्मिक बना दिया है ।

शेक्सपीअर की भॉति चुनौती को स्वीकार करने वाले त्रिलोचन ने अपने 'सॉनेटो'[45] में 'लोक-ध्वनियो' का बहुत ही हृदयस्पर्शी प्रयोग किया है--"लेकिन मेरा कदम किसी दिन कहीं न अटका-/घोर घटा हो, वर्षा हो, तूफान ॲधेरी, रात हो, अगर चलते-चलते भूला-भटका/तो इससे मेरे सकल्पो को कुछ झटका/लगा नहीं, जो गिरता पडता आगे बढता/ है, करता कर्त्तव्य है, उसे किसका खटका,/ पग-पग गिन कर पर्वत श्रङ्गो पर हूॅ बढता"[46]।'अटका' (फॅसकर रूक जाना) 'झटका' (किसी चीज से आघात लगना),'खटका' (चिन्ता) आदि लोक-ध्वनियो का सुन्दर प्रयोग कर कवि ने विपत्तियो मे भी विचलित न होने वाली अपनी कर्त्तव्य निष्ठा की दृढता को अभिव्यक्त किया है ।

वस्तुत त्रिलोचन आधुनिक युग के प्राचीन कवि है जिनकी कविता मे कबीर, तुलसी, निराला जैसे कवि सम्राटो की शाश्वत सुरभि है और प्रेमचन्द तथा गॉधी का

भारत समाहित है । मर्मस्पर्शी सूक्तियो के प्रणेता त्रिलोचन की कविता की क्लासिकी मर्यादा और उनमे व्याप्त लोक सवेदना की सहजता उन्हे 'साधारण जीवन का असाधारण कवि' सिद्ध करती है । वास्तव मे अपनी विशेषताओ के कारण ही त्रिलोचन कहॉ नहीं है।

धूमिल की कविता की भाषा मे लोक-संवेदना :-

नये बदले हुए कथ्य के अनुरूप भाषा मे बदलाव आवश्यक हो जाता है । अन्यथा भाव व भाषा का सम्बन्ध अटपटा दिखाई पडता है तथा वह (भाषा) अपने कथ्य के सम्प्रेषण मे भी सफल नहीं हो पाती । इस दृष्टि से कवि धूमिल की कविता पर जब दृष्टि डालते है तो उनकी भाषा सर्वत्र कथ्य के अनुरूप दिखाई पडती है । आम आदमी के जीवन से जुडे खुरदुरे व कटु-सत्यो को अभिव्यक्त करने के लिए धूमिल ने भाषा को आक्रामक तेवर दिये हैं । धूमिल ने अपनी काव्य-भाषा के विद्रोही रूख के द्वारा पूर्ववर्ती काव्य भाषा के कोमल स्वरूप नकारकर, अपनी भाषा को वह मजबूती प्रदान की, जिसे उनके बाद के कवियो ने बहुत कुछ अपनाते हुए स्वीकार किया ।

कवि धूमिल ने जिस काव्य भाषा को अपनाया, वह समसामयिक परिस्थितियो से सीधे साक्षात्कार से उत्पन्न हुई थी। वह (परम्परागत) पूर्ववर्ती कविता की भाषा से काफी भिन्न है । अपने पूर्ववर्ती कवियो के सम्बन्ध में उन्होंने स्पष्ट कहा कि वे शब्दो को 'गोलकर' रखते है जबकि वह स्वय उन्हे 'खोलकर' पाठक के सामने रखते है।[1] जो भाषा बिम्ब, प्रतीक से बोझिल थी, जटिल शब्दो से आकान्त थी, जिसमे बोलचाल के शब्द ढूढने पर मिलते थे, उस भाषा को कवि धूमिल के ठेठ गॅवई-शब्दो, आम-प्रचलित मुहावरो, ग्रामीण जीवन से लिए गये बिम्बो व प्रतीको ने आमूल बदलकर रख दिया । डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव के शब्दो में--"धूमिल के बारे मे यह कहना अतिरजना नहीं माना जायेगा कि उन्होने अपने समय को शब्द दिये । पहले से प्राप्त मुहावरे में भाषा या

काव्य भाषा मे इतना बडा परिवर्तन लाने के लिए केवल साहस नहीं, नया काव्यात्मक विवेक भी अपेक्षित है ।"[2]

काव्य भाषा मे यह परिवर्तन उन्होने मात्र परिवर्तन के नाम पर नहीं किया, वरन् अपनी बात को आम आदमी तक सरलता से पहुँचाने के लिए किया । उनकी दृष्टि मे यदि भाषा कविता के सम्प्रेषण मे बाधक बनती है तो वह कविता निरर्थक सी प्रतीत होती है । अत सहज शब्दो मे व्यक्त कथ्य कविता को सम्प्रेषणीय बनाकर उसे सार्थकता प्रदान करता है । उनके शब्दो मे--"आज महत्व शिल्प का नहीं कथ्य का है । सवाल यह नहीं कि आपने किस तरह कहा है, सवाल यह है कि आपने क्या कहा? इसके लिए आदमी की जरूरतो के बीच की भाषा का चुनाव करना और राजनैतिक हलचलों के प्रति सजग दृष्टिकोण रखना अत्यन्त आवश्यक है।"[3]आम आदमी की जिन्दगी की जटिलताओ को अपना कथ्य बनाने वाला कवि धूमिल आम बोलचाल की भाषा मे अपनी अनुभूतियो व सवेदनाओ को व्यक्त करता है ।

कविता का नाम सुनते ही पाठक के मन में एक पूर्व-निर्धारित धारणा बन जाती है कि कविता की भाषा तो जटिल व सश्लिष्ट होती है । कवि धूमिल के शब्दों मे--"इस सन्दर्भ में पहला काम कविता को भाषा हीन करना है"।[4] इस पंक्ति से उनका आशय अस्पष्ट व कृत्रिम कलात्मकता से 'भाषा की मुक्ति' है जो कथ्य को पाठक तक पहुँचने में जटिलता उत्पन्न करती है । वे चाहते थे कि कविता की भाषा किसी सैद्धान्तिक चौखटे में न बँधकर स्वतन्त्र रूप से अभिव्यक्ति का माध्यम बने । कवि धूमिल आम जनता की भाषा में ही उनकी आवाज जन-जन तक पहुँचाने का आह्वान करते हुए कहते है-

"ओ देश के पोर-पोर मे दुखते हुए गूँगे जुनून ।

क्रोध की अकेली मुद्रा मे/उफनते हुए सात्त्विक खून/

आ, बाहर आ,/मै एक अदना कवि-तेरी भाषा का

मुँहताज/मुझे अपनी बोली मे शरीक कर।"[5]

धूमिल की काव्य भाषा पर विचार करते हुए जिस बिन्दु पर हमारा ध्यान केन्द्रित होता है वह बिन्दु है -- 'धूमिल द्वारा अपनी कविताओं में आम आदमी की भाषा प्रयुक्त करने की ललक।' "धूमिल कविता को भाषिक आभिजात्य से मुक्त करना चाहते थे। अतः उन्होंने आम प्रचलित शब्दों को चुना है। वे जब भी बातचीत के दौरान कोई प्रभावी शब्द या कोई उक्ति सुनते तुरन्त उसे नोटकर अपनी कविता में जरूरत के अनुसार रख देते, ताकि उनकी कविता पाठक को प्रभावित कर सके।"[6]

कवि धूमिल मूलतः किसान थे। अतः उनकी भाषा किसानी जीवन संस्कारों की ही उपज है। "इसी किसानी दृष्टि के द्वारा धूमिल ने हिन्दी कविता को एक जीवन्त नई भाषा दी, केवल शब्द नहीं, बल्कि वाक्य-विन्यास और बात-चीत का लबो-लहजा भी, जिसे 'मोचीराम' की बातचीत और 'कवि १६७०' के कथोपकथन में साफ देखा जा सकता है।"[7]

उनके कथोपकथन कविता व पाठक के बीच की दीवार को गिरा कर उन्हें आमने-सामने लाते हैं। कथोपकथनों की सहजता द्वारा ही यह सम्भव हो सका है। एक उदाहरण 'मोचीराम' कविता से --

"बाबूजी! सच कहूँ-मेरी निगाह में/न कोई छोटा है/न कोई बडा/मेरे लिए हर आदमी एक जोड़ी जूता है/जो मेरे सामने/मरम्मत के लिए खडा है।"[8]

अपने गाँव 'खेवली' के अलावा शहरी आम आदमी के बीच कवि धूमिल प्रसिद्ध हैं। इसका कारण यह है कि उनके शब्द, बिम्ब, प्रतीक, मुहावरों व सूक्तियॉ आदि इन्हीं वर्गों (जिसका सम्बन्ध गाँव से जुड़ा हुआ है) के दैनिक जीवन की बोलचाल की भाषा के बीच से चुने गये हैं, जिसमें सर्वत्र सहजता व आत्मीयता दिखाई पड़ती है, बनावटी पन कहीं नहीं। कवि धूमिल ने अपनी अनेक कविताओं में व 'कविता पर एक वक्तव्य'

शीर्षक निबन्ध मे काव्य भाषा पर विचार किया है । 'ससद से सडक तक' काव्य सग्रह की पहली कविता मे ही उन्होने साकेतिक व अस्पष्ट कलात्मकता से बोझिल व सश्लिष्ट कविता को अनुपयुक्त मानते हुए कहा---

"नहीं--अब वहाँ कोई अर्थ खोजना व्यर्थ है

पेशेवर भाषा के तस्कर-सकेतो

और बैलमुत्ती इबारतो मे

अर्थ खोजना व्यर्थ है।"[9]

कविता उनके लिए सिर्फ 'शब्दो की विसात' नहीं बस 'वाणी की ऑख' है।[10] उनकी यह दृष्टि काव्य भाषा को एक नयी अर्थवत्ता देती है । भाषा का सौन्दर्य व चमत्कार उनके लिए महत्वपूर्ण नहीं है वरन् वह किस हद तक अपनी अनुभवगत सच्चाई से पाठक को प्रभावित कर रही है-यह उनके लिए विशेष महत्वपूर्ण है ।

कविता पर एक वक्तव्य[11] शीर्षक निबन्ध मे उन्होंने कहा कि समकालीन यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त शब्दो की 'तलाश' आवश्यक है । यह तलाश उन्हे आम-आदमी की रोजमर्रा की जिन्दगी के करीब ले गयी, जहॉ से उन्होने- सीवान, मदरसा, दरकी जमीन, जंगल, कुऑ, पोटली, आगड-बागड, पुलडा, पतरमुँही, फाल, गडसा, खुरपी, कुदाल, बतकहीं, करछुल, बटलोही, रापी, चकत्ती, अइशा, मूठ, कमजात, खटवाता, विसूरता-आदि अनेकानेक शब्दो को अपनी कविताओ के लिए चुना ।

उनकी 'किस्सा जनतन्त्र' कविता मे आये करछुल, बटलोही, चिमटा, तवा आदि सहज शब्दों से व्यक्त होता अभावग्रस्त जीवन कवि धूमिल की निर्धन गृहस्थ जीवन में पैठ को दर्शाता हैं । उनकी यह मर्मस्पर्शी कविता भाषिक सहजता व सम्पन्नता की दृष्टि से अत्यन्त प्रभावी है।

"करछुल/बटलोही से बतियाती है और चिमटा

तवे से मचलता है/चूल्हा कुछ नहीं बोलता/

चुपचाप जलता है और जलता रहता है

x x x x x

कुल रोटी तीन/पहले उसे थाली खाती है/

फिर वह रोटी खाता है ।"[12]

डॉ० विद्या निवास मिश्र के अनुसार --"गरीबो के चित्र गैर गरीब लोगो ने खीचे है, गरीबी मे झिलने वाले लोगो ने खीचे है, पर गरीबी की भाषिक सम्पन्नता मे जीने वाले शायद अकेले धूमिल है, जिनकी 'करछुल बटलोही से बतियाती है,' (क्योकि बात बात है, वहॉ और कुछ नहीं), 'चिमटा तवे से मचलता है', जिनके घर 'चूल्हा' (मन का ताप) कुछ नहीं बोलता, चुपचाप जलता रहता है, वहॉ पहले 'थाली खाती है' तब आदमी रोटी खाता है।"[13]

कथ्य के सहज प्रवाह मे उन्होने कई ऐसे शब्द अपनी कविताओ मे प्रयुक्त किये है, जिन्हे अश्लील कहा गया है। ये शब्द है- मासिक धर्म[14] जाघ, गाभिन पेट,[15] बैलमुत्ती,[16] नितम्ब, सहवास, पूछ उठाना, मूतना।[17] आदि-आदि। कविता मे ये शब्द समकालीन यथार्थ से जुडकर आये है, जो न उत्तेजना प्रदान करते है और न कोई चमत्कार प्रदर्शन । ये शब्द कथ्य को प्रभावी ढग से व्यक्त करने मे सहायक बने है। डॉ० विद्या निवास मिश्र के अनुसार- "यौन और ऊपर से वीभत्स लगने वाले बिम्ब, प्रतीक, और सादृश्य विधान तो उनकी भाषा को चौखटा देने वाले हासिया मात्र है। धूमिल मन से इतने स्वस्थ थे कि समूची सामाजिक व्यवस्था के अस्वास्थ्य को सह नहीं पाते थे।"[18]

अत्यन्त आक्रोश व आवेग मे कहे गये उनके ये शब्द अश्लील तो है, लेकिन जब कथ्य पर दृष्टि जाती है तो लगता है कि वे शब्द वहॉ रोक कर हमे सोचने को विवश करते है । अत. वे हर जगह अनुपयुक्त नहीं, कहीं-कहीं अवश्य खटकते है।

काफी लम्बे अरसे तक देश में फारसी (उर्दू) कोर्ट कचहरी की भाषा रही है। आज भी हलफनामा,[19] मुजरिम,[20] पेश, अमीन, जुर्म इश्तिहार आदि अधिकाश शब्द अदालतो मे प्रयुक्त हो रहे है। गॉव मे जमीन-जायदाद को लेकर होने वाले झगडो मे मुकदमे बाजी बढती जा रही है। कवि धूमिल को भी जमीनी झगडो के कारण कोर्ट-कचहरी के काफी चक्कर लगाने पडे थे । अत उनका व आम जनता का इन शब्दो से परिचय स्वाभाविक था। इस बात को ध्यान मे रखकर कवि धूमिल ने इन अदालती शब्दो को काफी सख्या मे अपनी कविताओं मे स्थान दिया ।

आज साधारण पढा-लिखा व्यक्ति ही नहीं वरन् शहर व देहात मे रहने वाला अनपढ व्यक्ति भी आम प्रचलित अग्रेजी शब्दो का प्रयोग करता दिखाई पडता है। अत इन्हीं के बीच प्रचलित-टेम, ऐना, कोरस, किडनी, टेलीफून,[21] ट्रैफिक, रायल्टी, वारट,[22] पुलिस, लेबिल आदि अग्रेजी शब्दो को कवि धूमिल ने अपनी कविताओ मे प्रयुक्त किया।

आम-आदमी की भाषा मे प्रयुक्त होने वाले मुहावरे उनकी कविताओ में सहज रूप मे मिलते है, जो प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। धर्मशाला होना, जगल होना, बसन्त बुनना, बैलमुत्ती इबारत,[23] चेहरा टटोलना, गीली मिट्टी की तरह हॉ-हॉ करना,[24] ऑखों मे कुत्ते भौकना आदि कई नये-पुराने मुहावरो द्वारा उन्होंने अपनी कविताओ को जन-जीवन से जोडे रखा है।

धूमिल की कविताओ मे अनेक ऐसे वाक्य या वाक्य-खण्ड है जो कम शब्दों में प्रभावी बात कहते है। ये वाक्य मात्र नैतिकता सिखाने के लिए ही नहीं प्रयुक्त हुए है वरन् पाठक को झझोड कर उन्हे सोचने को विवश करते है। अपनी 'बीस साल बाद' कविता में आजादी के बीस साल गुजरने के बाद भी हर जगह डर, बेइमानी, हत्या, भ्रष्टाचार दिखाई पड़ने पर कवि यह कहने को विवश है —

"क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रगो का नाम है

जिन्हें एक पहिया ढोता है/या इसका कोई खास मतलब होता है ? "[25]

अपनी प्रौढ शिक्षा कविता मे वे कहते है--

"मगर मै जानता हूँ कि मेरे देश का समाजवाद/ माल गोदाम में लटकती हुई/ उन बाल्टियो की तरह है जिस पर आग लिखा है/और उनमे बालू और पानी भरा है।"[26]

धूमिल के ये सूक्ति- परक-वाक्य सघन सवेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति करते है। धूमिल ने इन सूक्तियो को भले ही बातचीत के दौरान ग्रहण किया हो या उनकी अपनी दिमागी उपज हो, इससे उनका महत्व कम नहीं होता । निश्चित ही उन्होने नवरचित मुहावरे व सूक्तियाँ द्वारा सन् साठ के बाद की कविताओ को एक नयी पहचान दी ।

कवि धूमिल कविता मे निरर्थक तुकबन्दी के खिलाफ थे । उन्होने अपनी कुछेक कविताओ मे ऐसे तुक्कड कवियो की हॅसी की है जो कि आजीविका के लिए फूहड तुकबन्दी करते है। वे कहते है-

(1) "वाकई-चमडे को खतरा है/तुक्कड जी/राम राम जाइए/
और रामभरोसे बैठकर शाम का तुक/लगाम से मिलाइये ।"[27]

(2) "क्या मैं व्याकरण की नाक पर/रूमाल लपेटकर/
निष्ठा का तुक/विष्ठा से मिला दूँ ?"[28]

उनकी कविताओं मे तुक को देखकर ऐसा लगता है कि उन्हें उन तुकों से कोई परहेज नहीं था जो कथ्य के प्रवाह में स्वाभाविक रूप में अपना स्थान बना लेते है क्योकि उनकी 'मोचीराम'[29] व कई अन्य कविताओ मे (इस प्रकार के) स्वाभाविक रूप से आने वाले तुकों को देखा जा सकता है ।

कवि धूमिल ने अपने काव्य-भाषा विषयक वक्तव्य मे अत्यधिक बिम्बमयी प्रतीक भाषा का मजाक उडाते हुए उसकी तुलना उस स्त्री से की है जो एक के बाद एक बच्चे जनने पर अपनी स्थिति को हास्यास्पद बना लेती हैं । उन्हीं के शब्दों मे- "कभी-कभी (या अधिकांशत) प्रतीकों और बिम्बो के कारण कविता की स्थिति उस औरत जैसी

बच्चा पेट मे हो । प्रतीक-बिम्ब जहॉ सूक्ष्म-साकेतिकता और सहज संप्रेषणीयता मे सहायक होते है, वही अपनी अधिकता से कविता को ग्राफिक बना देते है ।"[30]

उनकी कविताओ मे बिम्बो प्रतीको की कमी नहीं है, पर वे कहीं भी अधिकता मे थोपे हुए नहीं है । वे जहॉ भी है, कवि की सवेदना का अग बनकर आये है । सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अगर उन्होंने अपनी कविता मे बिम्ब व प्रतीक थोपे होते तो वह उनकी अधिकता को लेकर कभी कोई वक्तव्य न देते ।

जीवन यथार्थ से जुडी सवेदनाओ को मूर्त रूप देने मे धूमिल के काव्य मे बिम्बो का सहज प्रयोग हुआ है । उन्होने बिम्बो की कारीगरी पर नहीं, उसकी प्रासगिक अर्थवत्ता पर विशेष ध्यान दिया है । अत उनके बिम्ब रचना प्रक्रिया के अग के रूप मे दिखाई पडते हैं, न कि अलग से कलात्मकता उत्पन्न करने के लिए जोडे गये लगते है । काव्य-सवेदना से गहराई से जुडे हुए ये बिम्ब उनकी शब्द योजना के तहत स्वत स्फूर्त हुए है ।

धूमिल के बिम्ब आम आदमी की रोजमर्रा की जिन्दगी से जुडे हुए हैं । डॉ० नामवर सिह के शब्दों मे "उल्लेखनीय बात यह है कि जिस दौर मे हिन्दी कविता आयातित विदेशी बिम्बो और प्रतीको से सज रही थी और हर जगह कविता में सलीब लटकते हुए दिखाई पडते थे, धूमिल ने ठेठ अपने आसपास की दुनिया से बिम्ब आदि लिए है।"[31] मॉ का चेहरा उन्हे झुर्रियो की झोली नजर आता है।[32] आदमखोर के जबडे की तरह मकान का फाटक खुलना और उसमे मुस्कराते हुए आदमी का नमक के ढेले[33] सा घुल जाना धूमिल के प्रयोग की विशेषता है। भारत की दुर्दशा का बिम्ब खींचते हुए वे कहते हैं कि ऐसा लगता है जैसे हवा मे फडफडाते हिन्दुस्तान के नक्शे पर गाय ने गोबर कर दिया है।[34] कवि को अपना गुस्सा जनमत की चढी हुई नदी में तैरता एक सडा हुआ काठ नजर आता है ।[35]

कवि धूमिल के बिम्ब राजनीति के इर्द-गिर्द घूमते हुए वर्तमान शोषण तन्त्र की यथार्थता, जनता के सघर्ष, उनके अभावग्रस्त जीवन को सजीव करने मे भी सहायक बने है । उनकी दृष्टि मे राजनीति सुविधापरस्त लोगो के ऊसर दिमाग मे थूहर की तरह उग आती है।[36] जनता दूसरो के लिए अपनी पीठ पर ऊन ढोने वाली भेड बन गयी है ।[37] किसान की चिन्ता को चित्रवत करता उनका यह बिम्ब अत्यन्त प्रभावी है-

"एक ठण्डी और गाठदार अगुली माथा टटोलती है
सोच में डूबे हुए चेहरो और
वहा दरकी हुई जमीन मे
कोई फर्क नहीं है ।"[38]

धूमिल ने अपनी कविताओ मे जगल, घास, भेडिया, पतझर, मदारी की भाषा, कटघरा, दलदल आदि लोक प्रचलित शब्दो को प्रतीकात्मक रूप में लिया है । 'जगल'[39] शब्द उनकी कविताओ मे अनेक बार आया है जहॉ वह भ्रष्ट व्यवस्था का प्रतीक है 'घास' शोषित जन का प्रतीक है । उनके प्रतीक जन-जीवन से जुडे होने के कारण सहज सुग्राह्य है ।

धूमिल की कविता को सपाट बयानी कहकर सराहा भी गया व उसकी आलोचना भी हुई । सपाट बयानी का अर्थ है किसी बात को सीधे-सीधे शब्दों में सरल ढग से कहना । यह सपाट बयानी कविता को गद्य के समीप ले जाती है जहॉ भावुकता का कोई महत्व नहीं । धूमिल कविता मे जटिलता, सश्लिष्टता के खिलाफ थे, क्योकि यह सम्प्रेषणीयता मे बाधक बनती है । उनकी कविता शाब्दिक दृष्टि से देखने पर अवश्य सपाटबयानी लगती हो, पर भावनात्मक स्तर पर प्रतीक, बिम्ब व व्यग्योक्तियो का समावेश होने से उसे सपाटबयानी नहीं कहा जा सकता ।

"एक आदमी/रोटी बेलता है/एक आदमी रोटी खाता है/

एक तीसरा आदमी भी है/जो न रोटी बेलता है, न
खाता है/वह सिर्फ रोटी से खेलता है/मै पूछता
हूँ/यह तीसरा आदमी कौन है/मेरे देश की ससद
मौन है ।"[40]

यह कविता शाब्दिक स्तर पर भले ही सरल कही जाय, पर इसका अर्थ हमे उस सवेदनात्मक गहराई तक ले जाता है जहॉ यह अभावग्रस्त जीवन और इसके लिए जिम्मेदार सत्तासीनो, पूजीपतियो से जुडती है ।

निष्कर्षत धूमिल की काव्य-भाषा विषयक मान्यताओ व कविता मे उनकी भाषा को देखने के पश्चात यह कहा जा सकता है, कि कवि धूमिल ने कविता को बोझिल करने वाली अतिरिक्त प्रतीकात्मकता, बिम्बात्मकता, शाब्दिक चमत्कार, अस्पष्टता व कोरी तुकबन्दी आदि कलात्मक सजावट को भाषा के लिए निरर्थक माना और जनजीवन से जुडी हुई भाषा को अपनी कविता के लिए उपयुक्त जाना । डॉ० विद्यानिवास मिश्र के अनुसार " . . धूमिल ने भाषा से सरोकार अपने समकालीन बहुत से रचनाकारों से कुछ ज्यादा रखा । यह भाषा से सरोकार चौकाने के लिए नहीं, न आचलिक या भदेसी छटा देने के लिए है, यह सरोकार है- जीवन मे सम्पृक्त व्यक्ति के खुरदुरे पर कारगर अनुभव को उसके अनुरूप आक्रामक अभिव्यक्ति देने के लिए है ।"[41]

मुक्तिबोध की कविता की भाषा में लोक-संवेदना -

'नयी कविता' वैविध्यमय जीवन के प्रति आत्मचेतस् व्यक्ति की सवेदनात्मक प्रतिक्रिया है । चूँकि आज का वैविध्यमय जीवन विषम है, आज की सभ्यता ह्रासग्रस्त है, इसीलिए आज की कविता मे तनाव होना स्वाभाविक है।[1] वस्तुत साहित्यिक कलाकार अपनी विधायक कल्पना द्वारा जीवन की पुनर्रचना करता है । जीवन की यह पुनर्रचना ही कलाकृति बनती है । कला में जीवन की जो पुनर्रचना होती है वह सारत· उस जीवन

का प्रतिनिधित्व करती है जो जीवन इस जगत मे वस्तुत जिया और भोगा जाता है स्वय द्वारा तथा अन्यो द्वारा ।[2]

मुक्तिबोध की कविता मे यथार्थात्मक विश्व दृष्टिवाद का सुन्दर और स्वप्निल चित्रण है । मुक्तिबोध किसी भी कथ्य को कहने के लिए एक सुन्दर कल्पनातीत चित्र उपस्थित करते है । इसी कारण उनके चित्र वस्तुपरक होने के साथ-साथ स्वप्निल होते है। उनकी कविताये प्राय स्वप्न-चित्रो के द्वारा एक अद्भुत कथ्य को प्रस्तुत करती है जिसे देखकर कभी-कभी पाठक भ्रमित होकर उसे मिथ्या समझने लगता है किन्तु ऐसा है नहीं। मुक्तिबोध ने स्वय कहा है –

"क्योकि पी जहर यह/क्योकि जी जहर यह/सुन्न हुई नाडिया"[3]

हम वस्तुत इतने सवेदनशून्य हो गये है कि हमे क्रूरता, अमानवीयता, भयावहता और रक्तपात रञ्जित नहीं कर पाता है। हम पाषाणवत सबको देखते रहते है । मुक्तिबोध संवेदनशील कवि है इसलिए उन्होने स्वप्न-चित्रों के द्वारा सामान्य का असमान्यीकरण किया है ।[4] इसीलिए उनकी कविताओ मे स्वप्न मे सत्य और सत्य मे स्वप्न दिखाई पडता है । यही स्वप्न मे सत्य की मिली-जुली गन्धवाही बयार सूखे-बबूलो के मैदानो मे बहती हुई अगारी चमत्कारपूर्ण चेतना बन जाती है ।[5]

मुक्तिबोध की कविता लोकजीवन के प्रत्येक अगो से निकले हुए रस की परिणति है । इसीलिए इनकी कविता मे लोक भाषा के सवेदनशील शब्द बहुत सहज रूप मे प्रयुक्त हैं । इनकी कविता मे केवल मार्क्सवाद की व्याख्या ही नहीं है वरन् वैज्ञानिकता और कला का सामजस्य भी हैं । इनकी रचना मे मनोवेग का पूर्ण नियत्रित स्फुरण है जिससे कविता की उदात्तता विराट् रूप धारण कर लेती है । इसीलिए कविता का अनगढ रूप भी सुन्दर लगने लगता है । इन्होने अपनी अभिव्यक्ति के लिए लम्बी कविता की शैली का अविष्कार किया है । इनकी लम्बी कविताओं मे कथा भी है और नहीं भी है ।

कथा मे तारतम्य नहीं है किन्तु उनमे सर्वत्र सामाजिक शोषण का अभिशाप और उससे मुक्ति प्राप्त करने का उपाय अवश्य है । इन कविताओ मे कवि का अपना जीवन भी प्रतिबिम्बित होता रहता है ।

इनकी कविता की भाषा अपनी है । सभी प्रकार के तत्सम, अग्रेजी, फारसी तथा लोक भाषा के शब्द इनकी कविताओ मे स्वाभाविक रूप मे सुगठित है । उनमे अद्‌भुत अर्थ समाया हुआ है । इन अर्थो को समझने के लिए पश्चिम और पूर्व के दर्शन, विविध प्रकार के साहित्य तथा इतिहास को अवश्य जानना होता । आवेशपूर्ण-कथन के समय मुक्तिबोध की कविता अग्रेजी शब्दो के माध्यम से अपनी वेदना को अभिव्यक्त करती है । पूरा का पूरा वाक्य अग्रेजी शब्द के द्वारा विशेष अर्थ (एक ओर अधिकारी का आदेश और दूसरी ओर क्रूरता) को अभिव्यक्त करता है ।

-"स्क्रीनिग करो मिस्टर गुप्ता ।

क्रास एक्जामिन हिम थारोली ।"[6]

मुक्तिबोध शोषितो की आम बोलचाल की भाषा के द्वारा अपनी कविता को अत्यन्त प्रभावशाली रूप प्रदान करते है -

मैं कनफटा हेठा हूँ ।

शेव्रलेट डॉज के नीचे मै लेटा हूँ ।

तेलिया-लिबास मे पुरजे सुधारता हूँ ।"[7]

रेफ्रीजियेटर, विटैमिन, रेडियोग्राम की दुनिया से अलग मजदूरो की दुनिया तेलिया लिबास में समाज को गतिशीलता देने के लिए उसकी गति के पुरजे को सुधारती रहती है और उसे बदले मे मिलता है शोषको की आज्ञाओ के बोझ को निरन्तर ढोते रहने का कार्य ।

मुक्तिबोध की भाषा प्रस्तुत और अप्रस्तुत विधानो के सामञ्जस्य से जिस बिम्ब

को उपस्थित करती है वह हिन्दी के किसी अन्य कवि मे नहीं दिखाई पडता है । इनकी प्रत्येक कविता नये अर्थो को लेकर प्रस्तुत होती है । इनमे साधारण जनो की पीडा, समाज की नग्नता, आदर्शो का खोखलापन, बौद्धिकता की कायरता और उसका दोहरा चरित्र, पुराने कथानको का नवीन रूप और शोषित के अत्याचार के पहाड के नीचे शोषितो की आत्मा की तेजस्विता इस प्रकार से समाहित है जो पाठक की सवेदना को अत्यन्त तत्परता से जागृत कर देती है । मुक्तिबोध की वाणी छद्‌म रहित, वास्तविक जीवन के चित्र को प्रस्तुत करने मे किसी प्रकार का समझौता नहीं करती है ।

मुक्तिबोध की कविता मे लोकभाषा के प्रचलित शब्दो का अति सफल प्रयोग हुआ है । "स्वय के श्याम कॉधे पर/रखी थीं कॉवडे जल की।[8] -पक्ति में कॉवडे शब्द लोक-भाषा का महत्वपूर्ण शब्द है । तीर्थयात्री पवित्र जल को मिट्टी के पात्र मे भरकर तथा उसे बॉस के डण्डे के दोनो ओर बाधकर कधे पर ढोते हुए ले जाते है, उसे 'कॉवड' कहा जाता है । क्रान्तिकारी नवीन कुऑ खोदकर जो शुद्ध जल निकालता है उसे 'कॉवड' पर रखकर दूसरो को पिलाने के लिए ले जाता है । इसी प्रकार 'पालागी' शब्द है, जिसका अर्थ है- 'बडों का चरण स्पर्श करना ।' लेकिन 'पालागी' शब्द यहॅा पॉवो मे लग जाने (लिपट जाने) के अर्थ को अभिव्यक्त कर रहा है -

"सुख-दु.ख ने, अकस्मात् भावुकतावश/सुख-दु ख के
चरणो को/मन ही मन/यो की पालागी ।"[9]

मुक्तिबोध को नैतिक अनुभूति कष्ट देती रहती है क्योकि वह झूठी है और सठियायी भी है।[10] "सठियायी" शब्द का अर्थ "साठ वर्ष का हो जाना" अर्थात् "मूर्खतापूर्ण आचरण करना" है ।'सठियायी' शब्द एक ओर व्यक्ति की अवस्था को द्योतित करता है, दूसरी ओर नैतिक शठता को भी ।

एक ही वाक्य मे विशेषण और सज्ञा के रूप मे लोकभाषा के मर्म को स्पर्श करने

वाले शब्दों के प्रयोग–"मेरे स्याह चेहरे पर/निलाई चमचमाती है। समुन्दर है समुन्दर है।"[11] (स्याह, निलाई (नीलिमा) समुन्दर)-दृष्टव्य हैं। ये शब्द कविता को अत्यन्त प्रभावशाली बना देते हैं। मुक्तिबोध के समक्ष उलझनों और प्रश्नों का 'ठूँठ'[12] (सूखा पेड) जब आता है तब इन्हें सूखी डालों पर बदनीयत गिद्ध दिखाई पडता है।

मुक्तिबोध का 'लत्तर' लोकभाषायी शब्द अत्यन्त मार्मिक है। 'लत्तर' या 'लत्ता' उस कपडे को कहते है जो फटा-पुराना होकर तार-तार हो गया हो। पूँजीपतियों द्वारा मुक्तिबोध जैसे दलितों की मर्यादा के वस्त्र को फाड़कर, नोचकर लत्ता बना दिया गया है। उनके मैले-पसीने के हाथों से यह 'लत्तर' लगातार बद से बदतर होता जाता है।[13] इसी प्रकार 'चिथरे' शब्द का सार्थक प्रयोग किया गया है।[14] मुक्तिबोध की भाँति शोषितों को बीडी पीने की तलब बनी रहती है। भले ही उनके भीतर बेशर्म दलिद्दर (=दारिद्रय) चिलचिलाता है।

मुक्तिबोध ने लोकभाषा के क्रिया-पद को बहुत प्रभावशाली बनाया है। निहारना[15] (ध्यान पूर्वक देखना), फुसफुसाना,[16] थामना[17] (स्तम्भ बनकर अपने ऊपर भार को रखना), लपकना,[18] छेंकना,[19] सरकना,[20] कराहना,[21] बीनना, (अग्नि के काष्ट/खोजती माँ/बीनती नित्य सूखे डंठल,[22] चिहुँकना[23] आदि क्रियापद के कवि के हृदय के भाव को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करते हैं। इनके स्थान पर यदि तत्सम या प्रचलित हिन्दी के शब्द रखे जाते, तो वे कवि के हृदय को खोलने में असमर्थ होते। इसी प्रकार मुक्तिबोध के लोकभाषा के विशेषण या कर्मपद जब कृदत्त और क्रिया के रूप में प्रयुक्त होते हैं तब इनके अर्थों में प्रभावकारी संवेदना की गम्भीरता अभिव्यक्त होती है – "वह सँवलाया कलियाया मुँह/है सनेह भरी चिन्ता मे ···/ निरर्थकता की आग में/जलता-धुऑता हुआ"।[24]

मुक्तिबोध के हिये (हृदय) में मिट्टी की गन्ध समायी है। इसीलिए ओस से गीली झुलसी हुई चमेली के आहों से इनका दिल भर उठता है-"वह मिट्टी की सुगन्ध/मेरे

हिये में समाती है।"[25] मुक्तिबोध शोषितों के साथ जीवन-यर्थाथ की चट्टानों से जूझकर भी हुलास (उल्लास) में रहते हैं।

मुक्तिबोध जब एक ही वाक्य में तत्सम और लोकभाषा का प्रयोग करते हैं तब वह पूजीवाद और शोषित-क्षुद्र जनो की स्थिति को बडी कुशलता से अभिव्यक्त करते हैं-

"आश्चर्यचकित जिज्ञासु आत्मा/चढती किरनों की चढान
नभ शिखरो तक/छुटपन से ही।"[26]

आश्चर्यचकित जिज्ञासु आत्मा के साथ-साथ 'किरनों की चढान' तथा नभ-शिखरों के साथ-साथ 'छुटपन' का प्रयोग अत्यन्त सारगर्भित है। मुक्तिबोध ने भडाभड, खडाखड,[27] ढपाढप, थपा-थप, तुम-तोम-तम्बूरे आदि लोकभाषा के नादात्मक शब्दो के प्रयोग से कथ्य को मूर्तिमान संगीतात्मक रूप प्रदान कर दिया है। इसी प्रकार के उन उर्दू शब्दो-जो लोकभाषा में घुलमिल गये हैं, जैसे-दर्द, दिल, तजुर्बा, आदि का प्रयोग अर्थ को बोधगम्य और प्रभावशाली बनाने के लिए किया है। लोकभाषा के जिन्न, च्यूँटी, गिट्टी, मुँडेर, कन्हेर कण्डे आदि शब्दों के प्रयोग से मुक्तिबोध ने कविता को एक ओर जन-जीवन के हृदय के रस से आप्लावित कर दिया है तथा दूसरी ओर लोक-जीवन के अर्थों को पूर्ण रूप से स्पष्ट कर दिया है। कहीं-कहीं इन्होंने लोकभाषा के शब्द-समूहों का एक साथ प्रयोग कर - "सियाह समुन्दर के वे पॉखी उड़-उडकर,"[28] वह सवॅलाया कलियाया मुँह,"[29] "विरान चिलचिलाहट में फटे चीथ चमके"[30]- कविता को अत्यधिक ओजस्विनी बना दिया है।

मुक्तिबोध ने प्राय. लोक-भाषा के प्रचलित शब्दों का ही सफल प्रयोग किया है। एक ही वाक्य में कई-कई लोकभाषा के शब्दों का प्रयोग अर्थ को अत्यधिक प्रभावशाली बना देता है। "बगासी और उमस के स्वेद में/भींगी हुई उकताहट-उचाट खत्म हुई,"[31] "हाय अपने आप पर झींख-झख मारते,"[32] "अंट-संट-अँधेरे"[33] आदि शब्द अर्थ को

अत्यन्त सवेदनात्मक रूप प्रदान कर रहे है । मुक्तिबोध ने कहीं-कहीं लोकभाषा के शब्दो को तत्सम के साथ संधि कर के शब्दो को अर्थानुकूल बना दिया है। "मलिनान्धार मे भटकोगे,"[34]मे अन्धार' का अर्थ है ॲधेरा । मलिन के साथ सन्धि हो जाने पर 'गहन ॲधेरा' अर्थ अधिक प्रभावोत्पादक हो गया है । 'ऐडे-बेडे' को 'ऐडे-बैडे'[35]और 'बण्टाधार' को बण्टाढाल'[36]के रूप मे प्रयोग कर उसे आम आदमी के अनुरूप बना दिया है ।

अलङ्कारवादियो ने उपमान को विभिन्न रूप मे प्रयुक्त कर उपमेय (प्रस्तुत) को अत्यन्त चमत्कारपूर्ण बनाने की परम्परा डाली है । इस परम्परा का परित्याग कर कवि अपनी रचना को लोकोत्तर नहीं बना सकता है । समय के साथ उपमानो के स्वरूप मे परिवर्तन-परिवर्धन होते आये है और होते रहेगे किन्तु उपमान के अस्तित्व का निराकरण कर कवि अपनी कविता को अस्तित्व हीन नहीं बना सकता है ।

मुक्तिबोध की सम्पूर्ण रचनाओ मे उपमानो का सुन्दर प्रस्तुतीकरण किया गया है जिस चॉद की चॉदनी को पूर्व के कवियो ने श्रृगार का उद्दीपन रूप प्रदान किया वही चॉदनी मुक्तिबोध की दृष्टि में आवारा मछुआरो सी रात-बे-रात मछलियों (शोषितो) को फॅसाती रहती है और शोहदो सी सडको के पिछवाडे टूटे-फूटे दृश्यो मे गन्दगी के काले से नाले के झाग पर बदमस्त कल्पना सी रात भर फैली रहती है।[37]शोषको की चॉदनी (मिथ्या कृपा) भले ही सुन्दर लगती है किन्तु वे वस्तुत आवारा मछुआरो के समान भोली भाली शोषित जनता को अपने जाल मे फॉसकर उनके खून से अपने प्रासादो को गगनचुम्बी बनाती रहती है । रामू (शोषित मजदूर) का गुलाम दिन मुक्ति के सपने मे डूबकर द्रोह की ज्वालाओ से उसी प्रकार आसमान चूमने लगता है जिस प्रकार पुचकार के रस से रहित मॉ के द्वारा बेचे गये पॉच वर्षीय दर्द-भरे-फटे-हाल बालक का जीवन पढने की अभिलाषा करता है।[38]आदमखोर रावण (पूॅजीपति शोषक) के घर चाकरी करने वाले बुद्धिजीवी रूपी घुग्घू के स्वर को सुनकर मुक्तिबोध का नारीमन (कोमल हृदय) पीले

पत्ते की भॉति कॉपने लगता है क्योकि वेश्याओ के देह के समान अपनी-अपनी आत्मा को बेचने वाले इन बुद्धिजीवियो के स्वर मिर्च की धॉस की खॉसी के समान शोषितो को पीडित करते हैं।[39]मुक्तिबोध का शोषित रामू रूपी मन मानवी पीडा को गुजान जगलो के हरे-भरे पौधों के जहरीले बीजो को मींचकर उससे बनाये गये काले से काढे को पीना चाहता है।[40]शोषितो की पीड़ा जीने वाले कवि की दृष्टि मे शोषित जन ही अक्षयवट है । यदि उनका सम्बल न मिला तो वे चोर की गठरी के समान सूने मे पडे होते अथवा अन्धकार मे पड़े रहने वाले भूसे के तुल्य अस्तित्व विहीन जीवन की सॉस लेते रहते ।[41] रास्ते पर फेंके गये कचरे के समान[42]कल्याणमयी करूणाओ को पहिचान कर अपने कन्धे पर ढोने वाले कवि मुक्तिबोध अरूप-ईश्वर को सूनेपन के डीह मे ॲधियारी डूब के तुल्य समझते है।[43] इसका अनुभव ढिबरी सा टिमटिमाता[44]हुआ मुक्तिबोध का दिल ही कर सकता है, क्योकि इन्होने शोषको की फूॅक से शोषितो के ढहते हुए मकान, उनकी उड़ती हुई झोपडियो तथा मनुष्य के सॉवले समूह की जिन्दगी को अपनी ऑखों से झुलसी हुई पुरानी धुनकी हुई रूई के टुकडों सी उडते हुए देखा था ।[45]

शिलालेखो के अक्षर-अक्षर पर चढकर केवल रेगने वाली और उसके अक्षरो को न पढ सकने वाली चींटी के समान मुक्तिबोध का मन अन्तस्थ लेखो को मात्र छू भर लेता है, उसके प्रत्येक अक्षर को न पढ सकने के कारण बैचेन होकर भटकता रहता है ।[46] इसीलिए वे आत्म-मथन से प्राप्त विष-भरे तीर से मिथ्या की हत्या कर प्राणो के रूधिर की लकीरों से सुनहली धूप सा निखर उठने वाले मानव का चित्र खींचना चाहते है,[47]जो अन्याय को चुनौती दे सके ।[48]

मुक्तिबोध के बिम्ब अत्यन्त प्रभावोत्पादक है । मुक्तिबोध का क्रान्ति-देवता विराट् पुरूष के बिम्ब के रूप में प्रस्तुत होकर यही द्योतित करता है कि वही एक शक्ति है जो दु:खों को दूर कर सकती है । यह विराट् पुरूष आकाश-पाताल सबको नापने मे सक्षम

है।[49] ''एक अन्तकथा'' में मुक्तिबोध के द्वारा प्रस्तुत किया गया बिम्ब अत्यन्त हृदयस्पर्शी है। मुक्तिबोध माँ (आत्मा की) ध्वनि को सुनकर (क्रान्ति के) बालक को टोकरी में रखकर चल रहे हैं। उसकी मधुर ध्वनि सुनकर, जो कल सच होगी, एक फैंटेसी लोक मे विचरण करने लगते है तथा अपने को विराट पुरूष के रूप में देखते है।''[50]

मुक्तिबोध के जीवन के अनुभवों को व्यक्त करने वाले बिम्ब-विधान एवं प्रतीकों[51] मे लोक-प्रतीति का मर्मभेदी चित्रण है। मुक्तिबोध क्रान्ति के शिशु को सबको शीतल जल पिलाने वाली श्रम से थककर सोई हुई सीमन्तिनी के खुले हुए स्तन के पास रखना चाहते हैं। उन्हें विश्वास है कि यह बालक श्रम गरिमा का दूध पीकर विकसित होता जायेगा।[52]

मुक्तिबोध की कविता में लोक जीवन के दुःखों का शरण स्थल 'बरगद' बार-बार आकर यह विश्वास दिलाता है कि दु:ख की घडी में कोई न कोई 'बरगद' की भाँति अवश्य सहायता प्रदान करेगा। इसी प्रकार 'तुलसी का पौधा' मुक्तिबोध को आशा की किरण प्रदान कर नैराशय के अँधेरे से निकालने का प्रयास करता है। ''कल जो हमने चर्चा की थी'' शीर्षक कविता उस क्रान्ति-कन्या का बिम्ब खड़ा करती है जिसका सम्बन्ध जन-मन के अन्तस्तल और युगान्तकारी आस्थाओं में है।[53] मुक्तिबोध की कविता ''अंधेरे में'' स्वप्न का बिम्ब का अद्वितीय काव्य है जिसका नायक स्वयं मुक्तिबोध है जो कभी पागल बनकर क्रान्ति का गीत गाते हैं और पूँजीपति रूप राक्षसों का संहार करने के लिए कुमार-सम्भव की भाँति आत्मसम्भवा अभिव्यक्ति रूपी क्रान्ति को जन्म देने के लिए 'अंधेरे' युग में व्याकुल है।[54]

मुहावरा किसी बोली या भाषा में प्रयुक्त होने वाला वह अपूर्ण वाक्य खण्ड है जो अपनी उपस्थिति से समस्त वाक्य को सतेज, रोचक और चुस्त बना देता है। संसार के मनुष्य ने अपने लोक-व्यवहार में जिन-जिन वस्तुओं व विचारों को बडे कौतहूल से देखा और समझा तथा जिसका बार-बार अनुभव किया, उन्हीं को उसने शब्दों में बाँध दिया

है। वे ही मुहावरे कहलाते है।[55] मुक्तिबोध ने अपनी कविताओ मे मुहावरो और लोकोक्तियो का जीवन की सॉस के समान स्वाभाविक प्रयोग किया है । मुक्तिबोध बोझा उठायी हुई माताओ, बहनो, बेटियो आदि सभी को राम-राम करने[56] (नमस्कार करने) के लिए व्याकुल रहते है । क्योकि इनके हृदय मे भारत की मिट्टी की सस्कृति समायी हुई है । इसीलिए ओस-गीली झुलसी हुई चमेली (दीन आत्माओ) की आहों से इनका दिल भर उठता (हृदय अत्यन्त द्रवित हो जाना)[57] है। मुक्तिबोध की आत्मा रूपी ग्रामीण नारी सभी कष्टो को लात मारकर (निरादर कर) ध्रुव सत्य की ओर बढती रहती है । इसीलिए मिथ्या का प्रबलतम रहस्योद्‌घाटन द्रुत श्रद्धा का ऑचल थाम लेता (आश्रय ले लेता) है।[58] मुक्तिबोध की दृष्टि में मनुष्य के मन मे जब तक विकार रहता है, वह जन साधारण से अपने को महान् समझता है। जब मन का विकृत आइना टूट (आधार नष्ट हो) जाता है जिसमे चेहरा या तो बडा दिखाई पडता है अथवा छोटा सा - तब सिट्टी गुम हो जाती है और नाडी ठण्डी (भयाक्रान्त और मृतप्राय) हो जाती है । मुक्तिबोध की पटरी (आत्मिक सम्बन्ध) उन्हीं लोगों से बैठती है-'जिनके चेहरो पर/ वीरान खण्डहरों की धूप/घने पेडो के/साये' मड़लाया करते है।[59] अपने जिन्दा सत्यो का गला बचाने (सुरक्षित रखने) को तत्पर रहने वाले मुक्तिबोध ने अपनी आँखों से देखा है कि शोषको के अत्याचार से अम्बर के भी हाथ पैर फूल (किकर्त्तव्यविमूढ) जाते है किन्तु वे जिनका खाओ उनका बाजा बजाने को न कभी तैय्यार रहते हैं और न अपने पखो को तथा जीभ को काटकर[60] (अपनी अस्मिता को नष्ट कर) राजहंस ही बनना चाहते है क्योंकि अपने को इच्छानुसार सिकोडकर (अस्तित्व को समेटकर) भी पूँजीपतियो की चौखट में कभी भी फिट (ऑख मूँदकर चलना) नहीं हो सकते हैं।[61] मुक्तिबोध यही कामना करते है कि शोषित जन सत्ता की छाती पर गला दबाकर (परास्त कर, नष्ट कर) बैठ जाय ।[62]

मुक्तिबोध ने लोकोक्तियो का सुन्दर प्रयोग किया है लोक मे यह प्रचलित है कि

"जिसका खाओ उसका गाओ।" इन्होंने इसका सुन्दर प्रयोग उपहास के रूप में किया है- "खूब बजाओ, जिसका खाओ, उसका बाजा"। "दो पाटन के बीच में साबित बचा न कोय" इस लोकोक्ति को मुक्तिबोध ने अपनी तेजस्विनी कविता "ब्रहम राक्षस" में व्यक्त करते हुए कहा है कि - जो आत्मचेतस् और विश्वचेतस् के द्वन्दों में फँसा रहता है वह पिस जाता है।[63] मुक्तिबोध लोकोक्तियों को नये रूप में प्रस्तुत कर शोषित के प्रति सवेदना और शोषकों के प्रति क्रोधाग्नि को अभिव्यक्त करते हैं। "एक ही थैली के चट्टे बट्टे" लोकोक्ति को मुक्तिबोध ने इस प्रकार - "नेता, वक्ता, लेखक, शास्त्री/मेरे बनते हुए किले के हैं सब मिस्त्री"[64] - व्यक्त कर समाज के बौद्धिक वर्ग तथा तथाकथित समाज सेवको को एक ही मंच पर दिगम्बर कर दिया है। 'हीरा हेरा गये कचरे में' लोकोक्ति को - "शत-उपेक्षिता भूमि में फिकें/चुपचाप छिपाये गये/शुक्र गुरू बुद्ध-मङ्गल/कचरे की परतों-ढँके तुम्हें मिल जायेंगे।"[65] - पंक्ति के द्वारा कहकर बताने का प्रयास किय. है कि शोषित में ही शाश्वत चमकने वाले गुरू-शुक्रादि जैसे ग्रह मिल जायेंगे जो क्रान्ति के रथ को लक्ष्य तक ले जा सकते हैं। मुक्तिबोध ने -("स्वार्थी भावों की लाल-लाल/बेचैन चीटियो को सहसा/अब नये पंख निकले-निकले")[66] चीटियों को पंख निकलते देखा है और ॲधियारे बिल मे झॉक रहे सॉपों की तेज आँखें का भी बडे उद्धिग्न मन से निरीक्षण किया है।

'अपनी-अपनी ढपली अपना-अपना राग' लोकोक्ति को मुक्तिबोध ने नये रूप में- ("ऐसी आज आइडियोलॉजी है/हरेक के पीपल के पास अब बैठा हुआ एक निज/सन्त निज पीर है"),[67] ("घूरे का घर। घर का घूरा। अपना अपना सबको प्रिय है)[68]- प्रस्तुत कर बुद्धिजीवियों का मार्मिक उपहास किया है। मुक्तिबोध ने "उल्लू का पट्ठा" लोक प्रसिद्ध कथन को कई स्थलों पर अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। इन्होंने 'उल्लू' को पूँजीपति और पट्ठा को उसके 'गुलाम' के रूप में प्रस्तुत कर समाज

के बौद्धिक खोखलेपन का उपहास करते हुए आक्रोश भी व्यक्त किया है – "अन्ध कौन, बहरा कौन / एक नये कौन कहॉ उट्ठा है / हमे सब मालूम । कौन किस उल्लू का कितना बडा पट्ठा है ।"[69]

मुक्तिबोध की कविताओ में विशेष प्रकार की लोक-ध्वनियॉ सवेदनात्मक स्थिति उत्पन्न करती है जो तत्सम ध्वनियॉ नहीं कर सकती । मुक्तिबोध 'हर चीज जब अपनी' शीर्षक कविता मे कहते है- अपने पूरे लहरीले रग/कि जिनसे दिल/जरा सा सुलगे और भभक जाय/उस बाहर के भीतर की तसवीर उभर जाय।"[70] लोक जीवन अत्यन्त भावुक व निर्मल होता है, जो शुष्क पत्तियों की भॉति थोडी सी क्रान्ति की चिंगारी से सुलग कर भभक उठता है । 'भभकना' एकाएक प्रज्वलित होना है । जो हृदय भभक कर दूसरे को समाहित न कर सके, वह हृदय नहीं पाषाण है । मुक्तिबोध के दिल मे भावुक और सवेदनशील शोषितो की याद चिलचिलाती और चिलकती रहती है।[71] इन लोक ध्वनियो के मूलार्थ को वही समझ सकता है । जो लोक जीवन मे रम गया हो । लोक जीवन के अधेरे मे जलती हुई लाल ढिबरी की याद रखने वाले (मुझे याद आती है लाल लाल जलती हुई ढिबरी)[72] मुक्तिबोध जीवन पर्यन्त आग में झुलसते रहे अथवा धूल-धक्कड़ मे मुॅदते रहे (झुलसते जा रहे आग में/या मुॅद रहे है धूल-धक्कड में)।[73] जब मुक्तिबोध की भौतिक जागृत चेतना के बुश-कोट को पूजीवाद चर्र से फाड़ता है,[74] तब यही लगता है कि मुक्तिबोध की लोक सवेदना को कोई क्रूर हाथ नष्ट करना चाहता है ।

मुक्तिबोध अपनी भाषा-संवेदना के द्वारा आजीवन शोषित जनो की वेदनाओं को अपनी वेदना समझकर उन्हें अंधेरे से ॲजोर में निकल चलने[75] की प्रेरणा देते रहे है । भाषिक संवेदना उनकी कविताओं को प्रभावकारी रूप प्रदान करती है । लोक प्रचलित शब्दों की अधिकता होते हुए भी जटिल बिम्बों के सृजन के कारण उनकी कविता कुछ दुरूह अवश्य लगती है पर धीरे-धीरे उसकी तह तक पहुॅचने पर वह परत दर परत

खुलती जाती है और तब कवि मुक्ति बोध आम आदमी के बीच रहने वाला एक साधारण व्यक्ति दिखाई पड़ता है ।

रघुवीर सहाय की कविता की भाषा और लोक संवेदना –

भाषा के आकर्षण से प्रेरित होकर लिखने वाले रघुवीर सहाय की दृष्टि में १६४७ ई० के बाद का साहित्य भाषा के नाम पर राजनैतिक सत्ता के कुछ बचे-खुचे टुकडे बटोरने का जरिया तो बना, पर मानवीय मान्यताओ की रक्षा मे अन्याय का विरोध या नये मानवीय मूल्यों की स्थापना करने को तैयार व्यक्ति का आत्मोसर्ग का साधन नहीं बन सका।[1] रघुवीर सहाय अपनी लेखनी के प्रति ईमानदार व सवेदनशील कवि है, क्योंकि वे कुछ भी लिखने के पूर्व अपने पर हॅसते है और निराश इसलिए होते है कि जो वे लिखेंगे, वैसा दिखेंगे नहीं । वे किसी के आदेश से लिखने वाले आत्म-विक्रेता कवि नहीं है। उन्हे लेखन और अपने तथा आम आदमी के जीवन से आत्मिक प्रेम है । इसलिए उनके लिए भाषा मुश्किल नहीं है।[2] रघुवीर सहाय की भाषा बोलचाल की भाषा है, जो लेखन-शिल्प न होकर उनकी निष्ठाकीकसौटी है । इस बोलचाल की भाषा में ही करूणा की गङ्गा, वेदना की यमुना तथा अनन्त व्यथाओं की छोटी-छोटी नदियॉ प्रवाहित होती हुई अपने अस्तित्व को विलीन करती रहती है । इनके इस वैशिष्ट्य को देखकर ही रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कहा है – "मालूमी शब्द और मालूमी अनुभव मे एक नयी शक्ति सक्रिय कर देना यदि नयी कविता की पहचान बनी है तो इसका बडा श्रेय रघुवीर सहाय को दिया जा सकता है।"[3] वस्तुत सजग, संवेदनशील व स्वच्छन्द कवि शब्दों की खोज मे बहुत देंर तक कलम लिए बैठा रहता है।[4] शब्द बहुलता, अतिरेक और दुरूहताओं का अतिक्रमण कर वह एक ऐसा शिल्प और मुहावरा अर्जित करता है जो मनुष्य के हालात के बारे मे अत्यन्त सघन और मार्मिक बखान करने में समर्थ है ।[5]

रघुवीर सहाय बिना किसी कृत्रिमता के सीधे शब्दो में लोक जीवन की व्यथाओं का

इतना सजीव चित्रण करते है जिसे देखकर संवेदनशील पाठक का हृदय द्रवित हो जाता है। और उसके निर्विकार मस्तिष्क पर एक ऐसी प्रेरणादायिनी रेखा बन जाती है जो उसे जीवन की सच्चाई का साक्षात्कार कराने में सहायता प्रदान करती है ।

रघुवीर सहाय की रचनाओ में लोक- बोलियो में प्रयुक्त शब्द लोक जीवन की मार्मिक व्यथाओं को बडी ही निपुणता से प्रस्तुत करते हैं। 'दयाशंकर' शीर्षक कविता में 'नेम', 'लुकमा', 'चबलाता', 'पुआ' आदि लोक बोलियो के शब्दों का प्रयोग दयाशकर जैसे अल्पवेतन भोगी के जीवन की दुर्दशा को ही द्योतित नहीं करता है अपितु शोषणवादी व्यवस्था का पर्दाफाश करता है । 'नेम' शब्द 'नियम' अर्थ को ही नहीं बताता, वरन् दयाशंकर की निष्ठा को भी लक्षित करता है । 'लुकमा' कौर या ग्रास है 'चबलाता' का अर्थ चबाना है । 'पुआ' एक प्रकार का पकवान है । इसे विशेष प्रकार से बनी हुई मीठी पूडी कह सकते है। सात बच्चो के बीच दयाशकर की पत्नी की पुआ खाने की अभिलाषा बन्ध्या बनी रहती है । एक रात बच्चो के सो जाने पर पत्नी चुपके से किसी प्रकार चार पुए बनाती है । ये पुए उसे मधुर मिलन के समान प्रतीत होते है । ज्योंही पति-पत्नी खाने बैठते हैं, अचानक 'बच्चो' का जगना और फिर मुस्कराते हुए सो जाना जीवन की उस अभावग्रस्त सच्चाई को प्रकट करता है जिससे आज का प्रत्येक आम-आदमी पीडित है । "अखबार वाला" शीर्षक कविता रामू जैसे अनगिनत अखबार बेचने वालो की व्यथा को लोकभाषा के शब्दों के द्वारा अभिव्यक्त करती है । प्रचण्ड गर्मी में रामू तप रहा है । उसके नङ्गे पॉव की जमीन 'भुलभुल' (गर्म राख की ढेर) है जिसमे पॉव आसानी से धॅसे जा रहे है, फिर भी कुछ कमीशन के पैसे के लिए उसे असह्य व्यथा सहन करनी पड़ती है ।

'अधिनायक' शीर्षक कविता में कवि सुथन्ना (एक प्रकार का अधोवस्त्र पायजामा जैसा) पहने हुए हर चरना (गरीब जनता) को अपने भाग्य-विधाता नेताओं के गुन (गुण)

गाते हुए देखकर अत्यन्त संवेदनशील हो जाता है । हर–चरना जैसे गरीब शोषित जनों को अपने भ्रष्ट नेताओ का गुणगान करना ही पडता है क्योकि वही उनको रूखी-सूखी रोटी देने वाले है । यह छद्‌म लोकतन्त्र की कुटिल नीति है । यह लोकतन्त्र आम-जनता को धोखा देने के लिए काल को भी 'बुत्ता' (धोखा) देता रहता है।[6] कवि लोक–भाषिक 'बुत्ता शब्द के माध्यम से लोकतन्त्र के शासकों के दु साहस को द्योतित करता है । आम औरतों को जिन्हें आजीवन अपने शरीर को श्रम की भट्‌ठी में गलाना पडता है, कभी भी स्नेह या प्यार का वास्तविक रूप प्राप्त नहीं होता है । उनकी बच्चियों को विरासत मे भरी जवानी मे अपनी दादियो की 'काठियॉ'[7] प्राप्त होती है । 'काठियॉ' शब्द शरीर की बनावट को द्योतित करता है । काठ जैसे विरस और अग्नि में जलने वाला होता है, उसी प्रकार श्रमिक औरतो का शरीर गरीबी के कारण जवानी मे ही विरस हो जाता है फिर भी श्रम के अनल मे उसे जलना ही पडता है । संवेदनशील कवि रघुवीर सहाय ने देखा है कि टेसन (स्टेशन) पर गरीब भिखमंगे, रोगी, अपाहिज, फटेहाल लोग जो वही पडे रहकर भिक्षाटन से अपनी क्षुधाग्नि को शान्त करते है, खास लोगों की दृष्टि को सुख देने के लिए उनसे यह अधिकार भी छीन लिया गया– "पूछो सवाल है लोग कहॉ लोप हो गये है?/टेसन से हॉक कर उन्हें तुमने बद कर दिया?[8] इस कविता में हॉंककर शब्द अत्यन्त मार्मिक है । 'हॉकना' शब्द पशुओ को हटाने के लिए है । कवि द्वारा प्रयुक्त 'हॉककर' शब्द यह द्योतित करता है कि अधिकारियों की दृष्टि मे गरीब लोग पशु के समान हैं ।

कवि सहाय साधारण जनो के कवि हैं । इसीलिए चित्रकार की भॉति रगो का चमत्कार, (बाह्य चमक-दमक) दिखाना उन्हें पसन्द नहीं है । 'रंगो का हमला'[9] शीर्षक कविता में कवि ने लोकभाषा के 'ऑकना' शब्द का कई बार प्रयोग किया है । ऑकना का अर्थ होता है– ठीक-ठीक मूल्यांकन करना, निशान लगाना और रेखाचित्र बनाना । आज के कुशल राजनीतिक कलाकार– भूखे लड़के, कड़े-छडे पहने औरतों के प्रसन्न मुॅख,

यहॉ तक कि मरे हुए चेहरो पर भी इस तरह रग चढाते है कि उनका वास्तविक रूप छिप जाय ताकि उनका ठीक मूल्याकन न हो सके । एक अन्य कविता मे उन्होने बाल-मजदूर की दुरवस्था को अभिव्यक्त करने के लिए 'चीकट'[10] शब्द का प्रयोग किया है। 'चीकट' उसे कहा जाता है जिसके कपडों या शरीर पर मनो गंदगी चिपकी हुई होती है । इसी प्रकार एक गरीब लडकी को 'हडैली'[11](जिसके शरीर मे हाड ही हाड दिखाई पडते हैं) कहकर इन्होंने यह द्योतित किया है कि गरीबी ने उसके शरीर के सम्पूर्ण मांस को खाकर नरकंकाल का रूप दे दिया है जिसके कारण वह जिन्दगी लेस-पोतकर (किसी प्रकार सॉस लेती हुई) जी रही है । इन स्थितियो मे रघुवीर सहाय जैसे कवि हाथ में पोतना (फर्श साफ करने का गन्दा कपडा अथवा रसोईघर को साफ सुथरा रखने के लिए मिट्टी मिला कपडा) लेकर राजनीति के गंदे फर्श को उजला (साफ) करने का प्रयास करते हैं।[12] ये गरीबो के 'सीले बरोठे'[13] (सीलन से भरी हुई ड्योढी)- जहॉ कोई जाना पसन्द नहीं करता है- पर जाकर चौखट से सटे हुए उनके निराश जीवन के भीतर प्रवेश कर उन्हे सात्वना देते है ।

कवि प्राचीन परम्परा- यथास्थितिवाद या पूँजीवाद को 'घर-घुस'[14(अ)] (अपने ही घर मे घुसा हुआ अर्थात् जो अपने कार्यो को ही श्रेष्ठ मानता है) कहते हैं । इसलिए इसे फलॉंग (लांघकर) का एक नया समाज बनाना आवश्यक समझते हैं । कवि ने इसी प्रकार के अनेक लोकभाषिक शब्दों- वमचख, पावने, हगनी- मुतनी, एवजी, असवाव, सलोतर, कवायद आदि के प्रयोग से जन-सामान्य के सदियों से उपेक्षित-निराश्रित और पद-दलित जीवन के अभिशाप को द्योतित किया है ।

रघुवीर सहाय प्रतीक, उपमा और बिम्व के प्रयोग से अपने को अधिक बचाकर कविता लिखते है।[15] उनकी दृष्टि मे कविता की आत्मा कवि की वैचारिक पृष्ठभूमि है। उपमा कवि को बहकावे में डालती है।[16] इससे यह स्पष्ट होता है कि इनकी रचनाए केवल

विचारो को अभिव्यक्त करती है। प्रतीक, बिम्ब, उपमा आदि कविता के बाह्य अङ्ग है, जिसका प्रयोग , मात्र शोभा की वस्तु है। कोई कवि अपने को कितना ही नवीन बनाने का प्रयास करे किन्तु वह न चाहते हुए भी प्राचीन आधार पर अपने को एक पैर पर ही खडा पाता है। कवि रघुवीर सहाय भी इससे अछूते नहीं है । उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र उन प्रतीक, बिम्ब और उपमानो का प्रयोग पाया जाता है जिसके द्वारा आम आदमी की विपन्नता, विवशता, दुर्बलता और कष्ट सहने की क्षमता की अभिव्यक्ति होती है। 'मनुष्य मछली युद्ध'[17] कविता मे मछली शोषित जनो की प्रतीक है । शोषक मनुष्य उसे नदी के मीठे पानी से निकाल कर खारे पानी वाले समुद्र में डाल देते हैं और उसका व्यापार करते हैं। जो मछली लगडी होकर मीठे पानी वाली नदी (सुख-सुविधाओ) मे आना चाहती है उन्हे आने के पूर्व ही मार डालते हैं ये शोषक वर्ग । 'पत्तो का धुऑ'[18] शीर्षक कविता में सूखे पत्ते के ढेर से उठता धुऑ शोषितों के जन-समूह मे उठती क्रान्ति की आग है और हवा उन शोषको की प्रतीक है जिसने अपनी शक्ति बल से क्रान्ति के उठते धुएँ को बुझा दिया। इसी तरह 'रचता वृक्ष' कविता भी प्रतीकात्मक है, जिसमे सूखे पत्तो (शोषित मन) द्वारा बनायी गई अल्पना (रचना) को हवा (शोषित जन) सदैव नष्ट करने को तत्पर है ।[19]

प्रतीको की भॉति उनके बिम्बों में भी आम आदमी की सघर्षशीलता, जिजीविषा और ममता के बीच होने वाली द्वन्द्वात्मक स्थिति व्यक्त होती है । अकाल के एक दृश्य-बिम्ब में बाप अपनी गोद में एक कटोरा- जिसकी पेंदी में भात है- लेकर बैठा है । फर्श पर उसका पुत्र लेटा है । पुत्र को गोद में होना चाहिए और कटोरे को फर्श पर, किन्तु क्षुधानल ने ममता को जला दिया है ।[20] 'बच्चे की मॉ' शीर्षक कविता भी अभावग्रस्त दीन-हीन मॉ की अन्तहीन दुरवस्था की सजीव कहानी कहती है ।[21]

"भीड में मैकू और मै" शीर्षक कविता मे इन्होने मार्मिक शब्द-बिम्ब और गन्ध-

विम्ब प्रस्तुत कर पूँजीवाद की क्रूरता और शोषित दलित आम आदमी की सडी गली निर्जीव जिन्दगी की दुर्गति[22]को अभिव्यक्त किया है । 'सस्ते दाम की दुकान' के माध्यम से कवि ने यह कहकर- "हम गेहूँ देगे और चीनी भी देंगे । क्योंकि चीनी के खाने का अनुभव जरूरी है । वे अपनी चीनी कुछ पैसा के बदले हमको देंगे"- चीनी के स्वाद विम्व[23] में एक मर्मभेदिनी रिक्तता का अनुभव कराया है । इसी प्रकार 'दयाशंकर'[24] शीर्षक कविता दयाशंकर की पत्नी के पुए खाने के स्वाद में एक दर्द युक्त कड्डुवाहट की अनुभूति कराती है ।

रघुवीर सहाय ने स्थल-स्थल पर न चाहते हुए भी विभिन्न प्रकार के बिम्बो के माध्यम से अपनी आत्मा को आम आदमी की वेदना मे प्रविष्ट कराया है । बिम्बो की भाँति इनके कम प्रयुक्त उपमानों मे भी आम-आदमी की मर्मस्पर्शी पीडा चित्रित है । शोषक पूँजीवाद की झूठी करूणा की क्रूरता को अभिव्यक्त करते हुए रघुवीर सहाय कहते है कि ताकतवर पूँजीवाद धरती निचोडकर कमाई गई दौलत को गरीबों मे इस प्रकार बॉटते रहते है जिससे उनको गरीबी की जगह मिलती रहे और हर समय एक इस प्रकार की क्रूरता पैदा होती रहे, जैसे एक कृत्रिम मौसम बनाकर असमय का पकाया हुआ फल-फूल होता है।[25] ऐसे लोगो की समेटी हुई धन की गठरी ठीक उसी प्रकार खाली हो जाती है जैसे जादू के खेल से भरी हुई टोकरी एक क्षण में खाली हो जाती है।[26] तभी रघुवीर सहाय ने चदरा (चादर) खोले हुए नगी पागल पैदल स्त्री को एक बडी चिडिया का उपमान देकर मनुजता पर पक्षीत्व का आरोप किया है । तभी गाडियों पर बैठे हुए शिकारी-स्वरूप शोषक वर्ग उस चिडिया को शिकार की दृष्टि से देखते हुए निकल जाते है।[27] यह उपमान शोषक की हृदय-हीनता, असुरता और उसके क्रूर जङ्गलीपन को अभिव्यक्त करता है । इसी जङ्गलीपन के कारण बढ़ती हुई प्रेमशून्य 'हत्या की संस्कृति' मे पली हुई रखैल स्त्री हत्यारे को उससे बिना कुछ लिए पतिव्रता की भाँति सेवा कर सब

कुछ दे देती है।[28] कवि ने आम आदमी के जीवन के हर कोने मे प्रवेश कर उसकी विवशता को महसूस किया है । आम आदमी के लिए रेल के डब्बे मे तृतीय श्रेणी (अब द्वितीय श्रेणी) सुरक्षित है, भले ही उसमें बैठने की जगह न हो । लोग उसमे बैठने के लिए कंधे पर बोझ धरे हुए ऐसे भागते है जैसे बमबारी के बाद नगर की सडांध लिए-दिये लोग दूसरे नगर को जाते है ।[29]

रघुवीर सहाय, जिन्होंने अपने खड-खड-खड[30] करने वाले दरवाजे से लोक जीवन की ध्वनि को अच्छी तरह समझा है- अपनी कविता मे लोक ध्वनियो का सुन्दर प्रयोग किया है । लोक-जीवन में व्याप्त ध्वनियो को उन्होंने केवल प्रयोगात्मक रूप ही नहीं दिया है वरन् उसमे एक ऐसे अर्थ का सृजन किया है जो कथ्य के समग्र रूप को मानवीय मूल्यो से जोडकर प्रस्तुत करता है । 'महफिल में सितार' शीर्षक कविता मे तबले का 'गिड़गिडा-गिडगिड़ा' कर थक जाना केवल तबले की ध्वनि को ही नहीं द्योतित करता है वरन् शोषित के गिडगिड़ाने[31] को (याचना भरी विनती) को अभिव्यक्त करता हुआ शोषक की क्रूरता को दर्शित करता है जो उसके गिडगिडाने को अर्थहीन बना देता है । उन्हें न तो ठेले की खडखडाहट, न दूधवाले के बर्तन की खनकती ध्वनि और न ही दीन-हीन की चप्पलो के हकलाते हुए शब्दो की वेदना सुनायी पडती है।[32] पूँजीवादी व्यवस्था के अभिशाप स्वरूप चारो ओर अलगाव और संवेदनहीनता की काली छाया पसरी रहती है । ऐसी स्थिति मे लोगो की विवशता इन लोक ध्वनियों से स्पष्ट होती है - "खौंखियाते हैं, किंकियाते हैं, घुन्नाते हैं / चुल्लू में उल्लू हो जाते हैं / मिनमिनाते हैं, कुडकुड़ाते हैं ... झॉय-झॉय करते है, रिरियाते है / टॉय-टॉय करते हैं हिनहिनाते हैं / गरजते हैं घिघियाते हैं / ठीक वक्त पर चीं बोल जाते है।"[33] इस चीं बोल देने (असमर्थता प्रकट करने) के कारणों को कवि ध्वनियों के माध्यम से बताता है- "सभी लुजलुजे हैं, घुल-घुल हैं, लिब-लिब है / पिल-पिल हैं / सब मे पोल है / सब में झोल है ।"[34] इन लोक ध्वनियों

मे शारीरिक और मानसिक असमर्थता के साथ-साथ साहस और उत्साह की कमी को द्योतित किया गया है ।

लोक ध्वनियों के साथ-साथ इनके द्वारा प्रयुक्त लोक जीवन के मुहावरे पूँजीवादी शोषको द्वारा आम-आदमी को दी जाने वाली मौत से सघर्ष करते हुए विजय प्राप्त करते है क्योकि वक्त के सामने इनकी लेखनी की भाषा की बधिया कभी नहीं बैठती है।[35] बधिया शब्द का अर्थ है- बंध्याकरण, नपुसंकता। अपनी आत्मा को बेच देने वाले गरीब की व्यथा नहीं लिख पाते है क्योकि उनकी लेखनी बधिया जाती है। वे उनकी व्यथा को कविता का विषय नहीं बना सकते जो प्रत्येक दिन चक्की पिसने[36] (कठोर कर्म करना) से अपने कार्य को प्रारम्भ कर सोने पर्यन्त तक ऐसे ही कठोर कर्म को करते रहते हैं। शोषितो के जीवन के क्षणो को वे कैसे देख पायेगे, जिनकी पटिया चिकनी होती है[37] (जिसके मन पर सुख और दु ख का प्रभाव नहीं पड़ता है कमल पत्ते की तरह)। रघुबीर सहाय यह देखकर अत्यन्त दु खी है कि इस देश में लोकतंत्र है किन्तु अधिनायक वाद का नग्न-नर्तन होता रहता है और इस नर्तन को प्रभावशाली बनाने के लिए डरे हुए बहुत से लोग बेमन ही बाजा बजाया[38] करते है (अधिनायक वाद का गुणोगान किया करते है)। दूसरों के बोझ को उसके घर तक अपनी पीठ पर ढोकर ले जाने की कामना करने वाले और इस कार्य मे अपनी कोट की पीठ मैली[39] (अपमान की अनुभूति) न मानने वाले रघुबीर सहाय 'अपना खुद पकाना'[40] (अपनी विचार धारा के अनुसार चलना) पर विश्वास करते है। क्योंकि उनकी 'ऑख खुल गयीं'[41] (ज्ञान की प्राप्ति हो गयी) और उन्होंने महसूस किया कि इस संसार का ॲधेरा सूरज से नहीं मिटेगा। इसे तो जन-क्रान्ति की कभी न बुझने वाली आग से ही मिटाया जा सकता है।

इनकी कविताओ मे मुहावरो की भॉति कहावतों की भरमार नहीं है किन्तु यत्र-तत्र उनके प्रयोग ने कविता को जीवन्त बना दिया है। 'जैसी करनी वैसी भरनी' कहावत को

रघुबीर सहाय ने 'जैसा किया वैसा भरा' के रूप में प्रयुक्त कर खुशीराम जैसे गरीब व्यक्ति पर किये जाने वाले अत्याचार को बताते हुए शोषण वादी शासन पर व्यंग्य किया है।[42] खुशीराम को छुरा मारा गया है, लेकिन उस पर बदचलनी का आरोप लगाकर 'जैसा किया वैसा भरा' के सिद्धान्त को पुष्ट करना शासन-व्यवस्था के अन्याय को द्योतित करता है । इसी प्रकार 'असमय के बाजा' (कृत्रिम मौसम बनाकर पकाया हुआ बेफसल फल-फूल)[43] के द्वारा इन्होने शोषितों पर किये जाने वाले क्रूर दया-भाव को अभिव्यक्त किया है। रघुवीर सहाय पुरानी मान्यताओ को तोडकर नयी मान्यता की स्थापना के पोषक है। इसलिए इन्होने 'अपनी-अपनी ढपली अपना-अपना राग' कहावत को "बेसुरे लोग"[44] के रूप मे ढाल कर सम्प्रदायवाद, जो उनकी दृष्टि में भारत की एकता का विध्वसंक तत्व है, पर साघातिक प्रहार किया है। "सबसे बडा रूपैया" कहावत को "पैसा जो सिर्फ है मुआवजा मौत का" रूप देकर कवि ने गरीब-समाज मे बढती हुई सवेदन हीनता पर करूणा प्रकट की है। गरीब व्यक्ति के सामने सबसे बडी समस्या भूख की है। वह इसी समस्या के समाधान मे अपने सारे आदर्शों और सवेदनाओ की हत्या करता रहता है।[45] क्योकि 'मरता क्या नहीं करता है' ।[46]

रघुवीर सहाय वस्तुत. नवसर्जना के कवि हैं। इनके विचार अपने स्वय के है। इसीलिए इनकी भाषा इनका शिल्प और शब्द-विन्यास प्राचीन परम्परा के विपरीत किन्तु सटीक अर्थों को अभिव्यक्ति देते है। इनकी दृष्टि मे रचना वही है जो पाठक या श्रोता के मन मे घतन के विकल्प को जागृत करे।[47]

विकल्प की चेतना के विपरीत कविता केवल यथास्थिति वाद को पुनर्स्थापित करती हुई अपने समाज को और पतन की ओर ले जाती है। रघुवीर सहाय ने शिल्प और भाषा को नवीन रूप दिया है भले ही रचनाएँ दुरूह और नीरस हो गयी हों। इनकी रचनाओ में क्षोभ, आक्रोश, घृणा, करूणा आदि भावों की मार्मिक अभिव्यञ्जनाएँ हैं।

नाटकीयता की अपेक्षा इनकी कविताएँ गतिशीलता की अन्विति को बनाये रखती है, जिसके कारण विषय गम्भीर होने पर भी सहज-सरल और अन्त स्पर्शी बन जाता है। यह बात सत्य है कि इनकी कविताएँ छन्द-मुक्त हैं किन्तु उनमे एक प्रकार की नवीनतम लय,गति और स्पन्दन है। सपाट बयानी की शैली में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सास्कृतिक विकृतियो पर गम्भीर चोट करते हुए ये कविताएँ पाठक को अपने साथ उस बिन्दु तक ले जाने मे सफल सिद्ध हुई है जहाँ विकृत समाज की वास्तविकता को गहराई से अनुभूत किया जा सकता है।

इनकी भाषा आत्मीय, सहज व आत्म प्रवेशी है। लोक भाषा के शब्दो का विन्यास न कहीं कृत्रिम प्रतीत होता है न ही ऐसा प्रतीत होता है कि उनका प्रयोग किसी आवश्यक नियम को मानकर किया गया है। 'आत्महत्या के विरूद्ध' संग्रह की अधिकाश कविताएँ कवि के सामाजिक दायित्व बोध और अन्याय के विरूद्ध निर्भय होकर संघर्ष करने के संकल्प को द्योतित करती है। 'आत्महत्या के विरूद्ध' कविता की निम्न लिखित पक्तियो -"न टूटे, न टूटे तिलस्म सत्ता का मेरे अन्दर एक कायर टूटेगा टूट/मेरे मन टूट एक बार सही तरह/ टूट, मत झूठ-मूठ अब मत रूठ/ मत डूब सिर्फ टूट .. ..।"[48] में यदि किसी को आनुप्रासिक छटा का मोह दिखाई पडता हो या प्राचीन कवियों का मोह, तो यह चिन्तन अतथ्यपरक है । 'दूर' शब्द के कई बार प्रयोग में कवि की अन्तर्व्यथा द्योतित होती है जो उन्हे कृत्रिमता के पङ्क से निकालकर उस वास्तविक जीवन जीने की ओर जाने की प्रेरणा देती है जिसमें न छल है न दिखावा, न मन वाणी और कर्म में अनेक रूपता का वञ्चक मन्नजाल ।

इनकी कविता मे कभी-कभी ऐसे लोकभाषा के शब्द प्रयुक्त होते है जिसे अश्लीलता की संज्ञा दी जा सकती है । जैसे- "अब भी वे झगड़ते होंगे / हगनी-मूतनी बातों पर।"[49] ये शब्द कवि के मन के तीव्रतम आक्रोश को अभिव्यक्त करते हैं । कवि

दु खी है कि भारत के लोग विश्व में इतना आगे बढ जाने पर भी निरन्तर ओछी बातो मे लिप्त रहकर प्राचीन परम्परा और निरर्थक बातो मे लगे हुए अपनी चिन्तन शक्ति को कुण्ठित करते रहते है ।

वस्तुत रघुवीर सहाय सहज व सरल जीवन के हिमायती रहे है । डा० रामास्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों मे कहे तो- "रघुवीर सहाय के लिए जीवन अपने सहज सामान्य रूप मे भी सरस और रूचिपूर्ण जीने योग्य है, अत उन्हें पाखण्ड करके अनुभव और भाषा को किसी रूप में अतिरंजित बनाने की कभी आवश्यकता नहीं पडी।"[50] उनकी भाषा सदा दु खग्रस्त के ऑसुओ को पीती रही और एक चीकट बिस्तरे पर शयन कर अपने सपने को भ्रष्ट होने से बचाती रही है।[51] निरन्तर उपयुक्त शब्दो की खोज मे रहने वाले 'स्वच्छन्द कवि'[52] रघुवीर सहाय जब यह कहते है कि 'हमारी हिन्दी एक दुहाजू की नयी बीबी है।'[53] तो तुरन्त ऐसा लगता है कि ये अपनी भाषा का अपमान कर रहे हैं, किन्तु बात ऐसी नहीं है । वे हिन्दी के साथ किये गये दुर्व्यवहार से दुःखी हैं । वस्तुत वे हिन्दी भाषा के हिमायती रहे है । 'हिन्दी भाषा' पर लिखी गयी कविता इसका स्वय प्रमाण है । इनकी कविताएँ हिन्दी भाषा के अथाह सागर में डूबकर इन रत्न-रूप शब्दों को ढूंढकर लाती है जिनका निर्माण शोषितों के श्रम-बिन्दुओ, आँसुओं, विकराल धूप मे बहने वाले स्वेद-कणों और रिस-रिस कर बहने वाले रक्त कणो से हुआ है । इन रसों की पहचान सहृदय पाठक ही कर सकते है ।

गिरिजा कुमार माथुर की कविता की भाषा और लोक संवेदना :-

प्रत्येक मानव के हृदय में एक क्रान्तिद्रष्टा कवि का बीज सुप्त रहता है । सभी में इस बीज का विकास समान रूप से नहीं होता है । कुछ का सुप्त पडा रहता है । कभी-कभी किञ्चिचद् अनुकूल वातावरण पाकर अङ्कुरित भले ही हो जाय, पर पल्लव के पूर्व ही उसका विनाश भी हो जाता है । कुछ का बीज काल-चक्र के थपेड़ों से दग्ध कर

दिया जाता है । कर्मवाद के सिद्धान्त पर दृढ रहने वालो का बीज नया सूरज बनकर उन लोगों के गहनतम को दूर करता है जिन्हें जिन्दगी में न कभी सूरज का दर्शन हो पाता है, न सुधाकर के सुधारस का । ऐसे लोगों के लिए कवि की अन्तर्पीड़ा जब कविता बनकर आती है, तब अपने शाश्वत प्रकाश से उन्हें राह दिखाने का प्रयास करती है । गिरिजा कुमार माथुर इसी प्रकार के कवियों में से है, जिन्होंने सहज भाषिक-सवेदना के द्वारा अन्याय, अत्याचार, घृणा-द्वेष, हिंसा और शोषण के विरूद्ध आवाज उठाकर अपनी कविता को अकाल मृत्यु से बचा लिया है । इनकी कविताओं की मार्मिक पीडा पर-प्रत्यक्ष नहीं है वरन् स्वानुभूत प्रत्यक्ष का परिणाम है ।

गिरिजा कुमार माथुर की दृष्टि में विषय की मौलिकता के साथ-साथ कविता की प्रस्तुति की टेकनीक (शैली) भी मौलिक होनी चाहिए जिसके अभाव मे कविता अधूरी रह जाती है । अपनी रोमानी कविताओ में ये छोटी और मीठी ध्वनि वाले बोलचाल के शब्दो का और 'क्लासिकल' कविताओ मे लम्बी और गम्भीर ध्वनि वाले बोल चाल के शब्दो का प्रयोग करते हैं ।[1]

गिरिजा कुमार माथुर ने गॉव की मिट्टी के रस, गन्ध, स्पर्श, रूप और शब्द के सरोवर मे डूबकर अपने को निर्मल किया है । इसलिए इनकी कवितायें जब आञ्चलिक शब्दो की बिन्दी को अपने माथे पर लगाकर प्रकट होती है तो यही प्रतीत होता है कि चन्द-किरणे अपने भाल पर कस्तूरी का तिलक लगाकर ग्रामीण फसलों को अमृत-रस से सींच रही हो । कवि की सॉझ (संध्या) दिन डूब जाने के पश्चात् सलमों के तार की फरिया (ओढनी) पहन लेती है । कवि माथुर ने 'दियाधरी' और 'ढाकवनी' शीर्षक कविताओ में लोक-भाषिक शब्दो के प्रयोग से वहॉ के जनों की व्यथा को बड़े ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है- "निगल न ले इतिहास/ शेष जीवन की कोदो-काउनी।"[2] कोदो-काउनी एक प्रकार का निकृष्ट अन्न है जिसे अत्यन्त गरीब लोग खाकर

क्षुधा की आग को बुझाते हैं । कवि को दुख है कि समय का चक्र यहॉ के गरीब लोगो के प्राणो का आधार निकृष्ट अन्नो को भी न निगल जाय ।

कवि की 'ढाकवनी'[3] कविता के 'हाड़िया' (मिट्टी के पात्र जिसमें गरीब लोग अपने अन्न को पकाते है), मचिया (बॉस और मूँज से बनी हुई छोटी चारपाई, जिस पर व्यक्ति बैठता है), कठौते (काठ के बने हुए पात्र जो ऑटा गूँथने के काम आता है) लठ्ठ (लाठियॉ), गूदड (फटे-पुराने वस्त्र), वक्खर (बैलो को बॉधने का भूस निर्मित स्थान) आदि शब्द वहॉ के निवासियो- जो 'ठीकरे'[4] (टूटे हुए मिट्टी के पात्र के समान है)- की दुरवस्था को द्योतित करते है। ऐसे लोगो के व्यक्तित्व उस पत्थर के समान है जो 'गोफन'[5] (गुलेल) से पानी में फेके जाने पर डूब जाते है और इनके दुख दर्द की घुमेर[6] (चक्कर, परिक्रमा, गोलाकार भ्रमण) कभी समाप्त ही नहीं होती है ।

कवि की "एक अधनङ्गा आदमी" शीर्षक कविता, जो आज की शासन-व्यवस्था की विकृतियों का सशक्त चित्र खींचती है - मे लोक भाषिक शब्दों का किया गया प्रयोग वास्तव मे पाठक को अत्यधिक सवेदनशील बना देता है । प्रतिभा के सामने हर गद्दीदार आदमी 'गाबदी'[7] (अत्यन्त मूर्ख) है लेकिन इसी प्रकार के भोंदुओं (मूर्खो) की अपार भीड कनफुसियों मे (काना-फूसी करती हुई) कहती है कि प्रतिभाशील चिन्तक अत्यन्त खतरनाक आदमी है । कवि माथुर ऐसे ही खतरनाक अग्नि-ध्वज बनकर अँधेरी रात मे 'भभकना'[8] (प्रज्वलित होना) चाहते हैं ताकि असहाय ऑखो को प्रकाश मिल सके लेकिन ऐसी विषम स्थिति में भी समाज और राष्ट्र के प्रहरी कवि, लेखक और सम्पादक अपने को बेचने के लिए खरीददार की टोह[9] (खोज) में संलग्न है। "एक अधनगा आदमी" की कुछ पंक्तिया सड़क पर फेंके गये मलवे और कतरन-कूड़ों में अपने भाग्य को खोजने वाले शोषित जनों के स्वरूप को लोक प्रचलित शब्दों में अभिव्यक्त कर गरीबी दूर करने का नारा लगाने वालों के मुँह पर तमाचा मारती है । पंक्तियॉ इस प्रकार है-

भारी इस मलबे में/कतरन-कूडे में/हीरे के ठीकरे ढूँढते थे कुछ बेवकूफ/हाथो से सकेलते किचडते/दलिद्दर को/बच जाय / नस्ली गद्दारों से/घिरी हुई घरू धूप।"[10] इन पक्तियो मे ठीकरे, सकेलते, किचडते, दलिद्दर और घरू शब्दो के प्रयोग ने कविता को अत्यन्त सवेदनीय बना दिया है । भूखे-नगे लोग कूडे-करकट में भी हीरे के ठीकरे (मिट्टी के पात्र का टूटा हुआ टुकडा) ढूँढते हैं ताकि इसके द्वारा वे अपने हाथ से अपने दलिद्दर (दारिद्र्य) को सकेल (हटा) सके । लेकिन इनका ऐसा सोचना भी बेवकूफी लगता है क्योकि नस्ली गद्दार घिरी हुई घरू (घरेलू) धूप, जो सबके लिए सुलभ है- को भी अपने अधिकार मे रखने का प्रयत्न करते है । इनसे कुछ बच जाय, तभी दीन-जन उसे प्राप्त कर सकेगे । कवि की दृष्टि में भारतवर्ष मे सब कार्य राम-भरोसे ही चलता है । इसलिए जब कोई मजदूर काम की तलाश में निकलता है तो गठरी-पुटरी (छोटी पोटरी) लेकर निकलता है । उसे ज्ञात नहीं कि उसका अगला दिन कैसा व कहॉ गुजरेगा ।[11]

गिरिजा कुमार माथुर ने इसी प्रकार लोक-बोलियों के अनेक शब्दों- चॅदिरा[12] (चन्द्रमा), सॉवर (श्यामवर्ण), हॉकना[13] (पशुओ को आगे बढ़ाना) घिघियाना[14] (दया की भिक्षा के स्वर में कहना), बरजती[15] (रोकती), झॉई[16] (धब्बा, काली छाया), चूर[17] (चूर्ण) के प्रयोग द्वारा लोक जीवन में व्याप्त पीडा को अत्यन्त सहजता से अभिव्यक्त किया है ।

गिरिजा कुमार माथुर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह स्वतन्त्र विचार रखते हुए भी बिम्ब, प्रतीक और उपमानों को लोक-जीवन से ग्रहण कर उसे मनोरम रूप प्रदान करते है । इनके बिम्बो में विचार व सवेग की एकात्मकता है जो विभिन्न प्रकार के बिम्बो को स्वत जन्म दे देती है।[18] कविता यथार्थ की अनुकृति मात्र नहीं है वरन् वास्तविकता को एक कलात्मक आयाम देना ही कविता की यथार्थता है । 'शब्द' स्वयं एक संकेत या प्रतीक हैं । अन्तर बस यही है कि यह संकेत निश्चित अर्थ का अभिधान करता है । इसी के आधार पर ही लाक्षणिक और व्यंग्यार्थो की अभिव्यक्ति होती है किन्तु

कविता के प्रतीक अनेक प्रकार के उन अर्थो को अभिव्यक्ति देते हैं जिसकी सीमा कालातीत होती है । कुछ कवि ऐसे भी हैं जो प्रतीक और उपमानो के प्रयोग से अपनी कविता को मुक्त रखने का प्रयास करते हैं किन्तु अधिकाश कवि इन्हीं के माध्यम से अपनी कविताओ को और धारदार बनाने का सफल प्रयास करते हैं । माथुर जी ने इनके प्रयोगो मे सचमुच नवीनता ला दी है ।

इनके बिम्ब-विधान के विभिन्न रूप एकदम नवीन हैं- "बच्चा । गुमसुम है निढाल है । कह तो कुछ सकता नहीं/बुझी हुई ऑखों से सिर्फ देखता है । बीमार है।"[19] बीमार बच्चे का बिम्ब उसकी असहायता रूग्णता और असमर्थता की स्थिति को द्योतित करता है। परिवार की गरीबी जिसे वह बुझी हुई ऑखो से देखता रहता है - ने उसे छोटी उम्र मे ही गुमसुम बना दिया है । "मै वक्त के हूँ सामने" संग्रह की एक कविता में इन्होंने चॉदनी के बिम्ब द्वारा शासन-व्यवस्था की चोरबाजारी की मर्मभेदनी व्यजना की है[20] और गॉव के बूढ़े किसान के मुख से कहलवाया है- "गॉव पर अब भी अंधेरा पाख है / साठ बरसो मे न बदली चाँदनी ।"[21] इसी प्रकार इनके शब्द-बिम्ब,[22] स्पर्श-बिम्ब,[23] रूप-बिम्ब,[24] रसबिम्ब,[25] गन्ध[26] आदि बिम्बों ने लोक जीवन की अन्तहीन पीडा को अभिव्यञ्जित किया है ।

बिम्बो की भॉति माथुर जी के प्रतीक भी अत्यन्त संवेदनशील हैं । कवि ने अपने कथ्य को पाठक के अन्तस्तल तक पहुॅचाने के लिए कई प्रकार के- आग, बीज, रोशनी, चॉदनी, शिव-धनुष आदि-प्रतीकों का प्रयोग कर जीवन के सत्यात्मक तथ्यों को व्यंजित किया है । उन्होंने बहुत दिन पूर्व एक 'ललछौहा बीज'[27] गहरे में बोया था, इस पर अनेक प्रकार दबाव बढते गये थे, किन्तु इसके जन्म को कोई रोक नहीं सका । यह ललछौहा बीज दबे-कुचले फटेहाल जनो की क्रान्ति का बीज है, जिसे कवि ने बहुत गहरे (गम्भीरता से) शोषितों के मन मे बो दिया था । इस बीज को शोषको ने नष्ट करने के

अत्यन्त प्रयास किये किन्तु इनका जन्म हो गया है । इसलिए आता हुआ वक्त खुशी से ताशा (दलितो का एक प्रकार का वाद्य यंत्र) और नगाडा बजा रहा है ।

"बौनो की दुनिया"[28] शीर्षक कविता का बौना साधारण शोषित जन है जिन्हे आजीवन घायल सिपाही की भॉति दूसरो के लिए ही जीना है । इसी प्रकार "इतिहास का सिहासन"[29] आज की गुण्डागर्दी की राजनीति का प्रतीक है । माथुर जी के प्रतीक आम आदमी के जीवन की कडवी सच्चाई के गवाह है । "ढाकबनी" का जंगल वनस्पतियो से भरा हुआ है किन्तु वे भिखारी इसलिए है कि उनके "हल" और "कुल्हाडी " भोथरे[30] (धार -विहीन) हो गये है । 'हल' और 'कुल्हाड़ी' का भोथरा होना उनकी शक्तिहीनता का द्योतक है । उन्हीं के जंगल से शोषक सारी सम्पत्ति छीन कर सम्पन्न होते जा रहे है किन्तु उनमे क्रान्ति करने की क्षमता न होने से उनसे विद्रोह नहीं कर पाते हैं ।

प्रतीको की भॉति इनके उपमानो मे लोक-जीवन की दर्द भरी कहानी है । 'ढाकबनी' के किसानों के दु:ख से दु:खी सूरज जब डूबने लगता है तब सान्ध्यकालीन लालिमा नील गगन से इस प्रकार सिमटने लगती है जैसे दिनभर खेतों मे काम कर वहॉ से लौटती हुई किसानो की बहुओं के मुख की रक्तिमा ।[31] कवि बड़ी कुशलता से द्वितीया के चॉद को उपमान बनाकर कहता है कि इन बहुओ के हाथ का हॅसिया चॉद सा चमक रहा है ।[32]

गिरिजा कुमार माथुर की 'दियाधरी' शीर्षक कविता के उपमान अत्यन्त मनोरम हैं। वहॉ की पहाडियॉ वत्सला मॉ के पयोधर सी दूध पिलाने को आतुर है और यहां का सूरज मुॅह में माँ का ऑचल लिए हुए बच्चे सा सो जाता है।[33] प्रथम उपमान में ग्रामीण जीवन की वत्सलता, ममता और सब कुछ अर्पण कर देने की लालसा अभिव्यक्त है जब कि दूसरे उपमान मे बच्चे की क्षुधा की तीव्रता और माँ की विवशता द्योतित हो रही है । इनके उपमानों की विविधता इनकी कवित्व- शक्ति की गम्भीरता को व्यञ्जित

करती है । आम आदमी जो निरपराध बच्चे सा निर्मल-मन वाला है - जल्लाद के द्वारा किसी काले किले (क्रूर शासन) की दीवार पर से उसके द्वारा न किये जाने वाले अपराधों के लिए गिरा दिया जाता है।[34] यह सब इसलिए है कि समाज का अन्तःकरण मर गया है ।

माथुर जी शोषित किसान, मजदूरो और सताए हुए अन्य लोगो की पीडा दूर करने के लिए बार-बार जन्म लेने की कामना करते है । वे कहते हैं कि मेरा शरीर नष्ट हो जायेगा तो मेरा मन ज्वार के दानों मे रहेगा और वह दानों के मींजने पर भूखो के लिए दूध सा टपकेगा, सदानीरा निर्मला नदी सा बहकर किसानों, मजदूरो आदि को अपना जल पिलायेगा, अनार मे सिन्दूरी फल सा श्रमिकों के मन को प्रसन्न कर उनके श्रम को फलीभूत करेगा और जितने भी अधूरे कार्य छूटे है उन्हें बार-बार नये रूप में जन्म लेकर पूरा करता रहेगा।[35] इस जन्म मे तो उनकी कविताएँ हारे-थके पीडित-जनो की पीडा को उन्हीं के स्वरों में गाती उन्हीं को समर्पित हैं ।

इनकी कविताएँ लोक-जीवन की साँवली-मटियाली मिट्टी से उपजी हैं। इसलिए इनमे लोक-धुन की अनुगूँज है । इस अनुगूँज का प्रभाव हृदयस्पर्शी है । इन्होंने प्राचीन छन्द, सवैया को नये रूप में प्रस्तुत कर कविता की गेयता को माधुर्य प्रदान किया है । इनकी दृष्टि मे व्यञ्जन ध्वनियों की अपेक्षा स्वर-ध्वनियों में ही कविता का सङ्गीत श्रोता को अपने में समाहित कर लेता है । इन्होंने स्वयं कहा- "शब्द की आत्मा स्वर ध्वनि है। इसी कारण इस पर अवलम्बित सङ्गीत आन्तरिक, गम्भीर और स्थायी है । वह आकाश तत्व का सङ्गीत है । वातावरण-निर्माण में मैने इसी की सबसे अधिक सहायता ली है । मुक्त-छन्द के अन्तःसगीत में इन्हीं ध्वनियों की गूँजे बुनी है ।"[36]

कवि ने वस्तुतः अपनी कविता को अनेक प्रकार की ध्वनियों के चयन से बहुत ही आकर्षक बना दिया है । इन ध्वनियों में लोक-ध्वनियाँ ग्राम्य जीवन की विवशता और

विकटता को अभिव्यक्त करती है । 'ढाकबनी' की पक्तियों- "सनसनाती सॉझ सूनी । वायु का कठला खनकता झीगुरो की खजडी पर । मॉस सा बीहड झनकता ।"[37] मे सूनी सॉझ का सनसनाना, वायु का खनकना, झीगुरों की खजडी (एक प्रकार का वाद्य यन्त्र), बीहड (उबड-खाबड भूमि या जगल) का झॉझ सा झनकना 'ढाकबनी' की भयावहता को द्योतित करता है । ऐसे कष्टप्रद स्थान में यहां के दलितों को रहना पडता है । इस भयावह वातावरण को निथार्बौं (जंगल) अपनी भयप्रद सॉस से और डरावना बना रहा है। सुन्न (बेजान) छायाऍ, भी सॉस की तीव्रता से डोलने लगती है । प्रत्येक स्थान पर गुपचुप आत्माऍ खड़ी है।[38]

कवि का रामभरोसे गॉव से शहर की ओर काम के लिए सरक रहा है। उसका शहर मे और ठिकाना कहीं नहीं है। बोरी-बण्डल, टीन-टून के बर्तन-भॉडे लिए हुए वह चल देता है। उसके हर कदम पर बवण्डर है। रामभरोसे की अन्तिम चीख गूॅज जाती है और पुन वह नहीं लौट पाता है।[39] यहॉ कवि ने ठौर-ठिकाना, बोरी-बण्डल, टीन-टून, बर्तन-भॉडे आदि लोक-ध्वनियो से श्रमिक रामभरोसे की विपन्नता की पराकाष्ठा द्योतित की है। 'हर कदम बवण्डर' में 'बवण्डर' से उत्पन्न ध्वनि अत्यन्त मार्मिक है। 'बवण्डर' एक प्रकार का चक्रवात है जो अपने घेरे में किसी को लेकर उसे उठाकर कहीं पटक देता है। हर कदम पर ऐसे 'बवण्डर' को झेलने वाले शोषित जनों के प्रति कवि ने अपनी व्यथा को अभिव्यक्त किया है । 'रैन हुई उजियारी' कविता में लोक-ध्वनियों का सुन्दर प्रयोग कर कवि ने दुःखी जीवन मे आशा की किरण जगाने का प्रयास किया है । इस कविता- "रैन हुई उजियारी/चॉवर चौक पुराए मैंने/चंदा जोत उजारी । घर-आंगन पै चढी जुन्हाई/वन जंगल में छाई । दूर देश की झाई देखूॅ । चढ़के महल अटारी/चंदा उगे रहे रात भर । दूर-दूर तक उजयाला कर । परदेशी जो लौटे उनको । रस्ता लगे न भारी ।"[40]-में उजियारी और उजारी दोनों ध्वनियॉ एक ही अर्थ 'उजाला' को अभिव्यक्त

करती प्रतीत होती है पर दोनो में अन्तर है । 'उजियारी' ध्वनि रात्रि के अँधेरे को क्रमश उजला बनाने के लिए है और उजारी ध्वनि चन्द्र ज्योति की सतत निर्मलता को द्योतित करती है । जुन्हाई (चॉदनी) धीरे-धीरे घर-ऑगन पर चढ रही है। वह वन-जगलो मे भी छा गयी है । पूरी कविता गेयता को लिए हुए लोक-जीवन में व्याप्त मधुरिमा को चॉदनी के माध्यम से व्यक्त कर रही है ।

गुजराती लोक-नृत्य 'गरबा' के साथ गाये जाने वाले गीत के आधार पर 'चॉदनी गरबा' लिखकर इन्होंने अपनी रचनाओ मे लोक-जीवन के सुखात्मक-दु.खात्मक भावों का एक साथ ही चित्रण किया है । चॉदनी उभरे रोएँ को छुवाकर चली गयी है । इतना ही नहीं, चचल नयन वाली हिरनी के समान गोरी चॉदनी किरणों की सींग चुभाकर एक अमिट व्यथा देकर चली गयी है।[41] इसी प्रकार इन्होंने 'लोरी',[42] 'भूले हुओ का गीत',[43] 'नौकागीत'[44] लिखकर जन-सामान्य की निशाओं मे चॉदनी बिखेरने का सुन्दर प्रयास किया है ।

श्रम करने वाले मजदूर अपनी थकान को भूल जाने के लिए, एक दूसरे को प्रेरित करने तथा अपनी मजिल पर पहुँचने के लिए "हाइसा" का बार-बार उच्चारण करते हैं इन्होने इस शब्द का प्रयोग कर मानों उनके श्रम मे अपने को शामिल कर लिया है ।[45]

प्रत्येक कवि पुरानी लीक छोडकर चलते हैं । गिरिजा कुमार माथुर की कविता अभिनिश्चित लीक से हटकर नये मार्ग से चलती हुई लोकजीवन के अनछुए, अनकहे और अनदेखे चित्रों को नये प्रयोगो के साथ उपस्थित करती है । इनकी कविताओं मे सर्वत्र नवीनता है । इनके द्वारा प्रयुक्त मुहावरे भी नव-निर्माण और पुरातन-नाश के लिए उपस्थित होते है । एक ओर मध्यमवर्गीय क्लर्क का जीवन 'जीवनहीन मशीन' बन गया है.[46] (संवेदनाओ से रहित होकर निरन्तर कार्य मे संलग्न रहना पड़ता है), निरन्तर दु.खों को झेलते रहने से उनका 'सुनहला सूर्य डूब गया है[47] (स्वर्णिम सुख समाप्त हो गया है),

वहीं दूसरी ओर शोषक वर्ग चॉदी के पहियों[48]वाली मोटरों पर चलते हैं । संवेदनशील कवि माथुर अन्याय से कभी समझौता नहीं करते है, चाहे शोषक वर्ग अपनी पन्नी मढी तलवार को कितना ही भॉजता रहे[49](अपनी झूठी बात साहस के साथ कहता रहे) । वे आदमी को आदमी और पत्थर को पत्थर[50](सत्य कथन) ही कहते हैं । गिरिजा कुमार जैसे कवि ही 'नया सूरज उगाने'[51] (नूतन सर्जना) के लिए अग्निबीजो (क्रान्ति के बीज) को बोते रहते है ।

कवि माथुर देश के लुटेरे, भ्रष्ट और अन्याय प्रिय शासकों के अपकर्मो से इतना मर्माहत है कि हाथ में तेल पिये कोडे को लेकर एक ही साथ गाडी को, घोड़े को (साधनो को) सईस (देश के चालक) को, सवार (तथाकथित राजाओं) को, खचडे बागडोर को, खिचडी बाजार को, लोगो की ऐसी तैसी करते नेता के मोटे चाम को, फीते को, फाइल को, नमक-हराम को, शुभ लूटते गोदाम को, जौंक से शहर को पीटना चाहते है । इनका कल्लू लॅगोटिया (केवल पहनने को लॅगोटी है), चरवाहा, जुम्मन, जुलाहा, आलम, कूँजडा, घसीटा, चमार आदि सूनी-फटी ऑखों से इसाफ ढूढ़ते रहते है, पर इनको अपमान, गाली प्रताडना के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता है[52]जिस देश मे नौकरी में, क्यू मे, भगदड में, इण्टरव्यू मे, चेयर मे, फेयर में, योग्यता का मानदण्ड सिफारिश है और अक्ल, काबलियत, मौलिकता और साहस जूता खाने का नुस्खा है- "अक्ल और काबलियत मौलिकता और साहस/इनीसेटिव याने श्योर जूते खाने का नुस्खा।"[53]वह देश नहीं है, वरन् पुराणो का नरक और आम आदमी के लिए बधस्थल है ।

पुरातन शिव-धनुष (पुरानी परम्पराओं, रूढियों को) तोडने वाले गिरिजा कुमार की भाषा आकाशीय विद्युत की भॉति चमककर हर फरेब को नग्न कर देती है।[54]इस देश की गड्डमगड्ड व्यवस्था को पहचानने वाले कवि ने दिन-रात, हत्या-क्रान्ति, गोश्त-शान्ति, पब्लिक-प्राइवेट, जनता-नेता, चोरी-सीनाजोरी, बेइमान-दिलासे, ऐलान-उधार, वोट-विदेश,

गेहूँ-भुखमरी, कागज-हरी क्रान्ति, कालाधन-इन्क्वायरी, घिनौने उकसाये दगे, गला फाड लडती बोलियाँ, नकली एकता, अछूत-योजना, आबादी, शरारती-आत्म निर्णय, घेराव और दुश्मन की दलाली आदि विकृत द्वन्द्वों55को देखा ही नहीं वरन् उसको तपस्वी की भाँति सहा है । अत द्वन्द्वों की टकराहट से जन्मी हुई इनकी कविताओ की भाषा व संवेदना वायवीय जगत् की नहीं वरन् जमीन की व्यथाओं को बडे मर्मस्पर्शी रूप में प्रस्तुत करती है ।

अज्ञेय की काव्य-भाषा और लोक संवेदना :-

अपने शैक्षिक जीवन के आरम्भ से ही भाषा के सस्कारित रूप का ज्ञान प्राप्त करने वाले कवि अज्ञेय की काव्यभाषा में कहीं भी अनगढ-पन नहीं दिखाई पडता । पर भाषागत-सस्कारो को सहजता से अपनाने वाले अज्ञेय कहीं भी भाषिक दृष्टि से अत्यन्त जटिल प्रतीत नहीं होते, क्योकि वे जन-मानस के बीच प्रचलित सहज शब्दो के प्रयोग द्वारा अपनी भाषा का रूप निर्मित करते है। उनके अनुसार शब्दो से ही भाषा का निर्माण होता है । अत (उनकी दृष्टि में) शब्द ही प्रमुख है । उन्हीं के शब्दों में ".. सर्जक कवि का सरोकार भाषा से नहीं, शब्दों से होता है और रचनात्मक प्रयोग वास्तव में भाषा का नहीं शब्द का प्रयोग है ।"[1]

सहज शब्दो का प्रयोक्ता यह कवि शब्दों का सस्कार तो चाहता है, पर उनकी दृष्टि मे वही सस्कारित शब्द सार्थकता को प्राप्त करते है जो "सर्व-सवेद्य" और "सर्वग्राह्य" बन सके । दूसरे शब्दों में कहे, तो जो शब्द कवि के कथ्य को पाठक तक सरलता से प्रेषित कर सके । अज्ञेय काव्य-भाषा की प्रेषणीयता पर अधिक बल देते है क्योकि कथ्य का पाठक तक सरलता पूर्वक पहुँचना ही रचित साहित्य की सार्थकता व्यक्त करता है । उनकी दृष्टि में सम्प्रेषण दायित्वपूर्ण कलाकार की सबसे बडी समस्या है ।[2]

वैज्ञानिक युग ने व्यक्ति की सत्ता को चुनौती दी है । मनुष्य को यन्त्र बनाने

वाला विज्ञान उसकी शाश्वत संवेदनाओं पर प्रहार कर रहा है । अत कवि की आत्मचेतनता नये संवेदनों के स्वरूप को अभिव्यक्त करने के लिए व्याकुल हो उठती है । इसी व्याकुलता का परिणाम है- 'प्रातिभ नूतन प्रयोग'[3]-जो अज्ञेय की काव्यभाषा को नये रूपो से सॅवारती है । उनकी दृष्टि में आधुनिक कवि की संवेदनाए अपूर्व होने से उनकी सप्रेषणीयता के लिए नवीन विधाओं का अन्वेषण आवश्यक हो जाता है । अत कवि का दायित्व हो जाता है कि वह नयी विधाओं को ढूँढ़ ले ।[4] ताकि कवि का आत्मानुभूत सत्य सामान्यीकृत होकर सुगमता से पाठक तक पहुँच सके ।

किसी भी कला के विकास का पथ सीमाबद्ध नहीं होता । वैदिक काल से लेकर आज तक हृदय की सवेदनाओ को अभिव्यक्ति देने के लिए न जाने कितने माध्यमों का आश्रय लिया गया। हर-एक युग का कवि प्राचीन माध्यमों को इसलिए नहीं नकारता कि वह प्राचीन है, बल्कि इसलिए नकारता है कि वह माध्यम उसे कथ्य को सम्पूर्णत· प्रकट करने मे अपूर्ण लगता है । अत· नूतन-माध्यमो की सर्जना विवश कवि की स्वाभाविक सचेतना होती है । 'नूतन माध्यम' से तात्पर्य केवल नवीनता का प्रयोग ही नहीं, वरन् जो कवि के आत्मपरक सत्य को शीघ्रता से पाठक तक सप्रेषित कर सके । अत भाषापरक नवीन प्रयोग कवि की मौलिकता के उद्घाटन के साथ-साथ सम्प्रेषणीयता और साधारणीकरण की शाश्वत समस्या का समाधान कर सृजन को सार्थक बना देते हैं । अज्ञेय ने भाषागत नूतन प्रयोग इन समस्याओ को ध्यान मे रखकर ही किये हैं ।

'अद्यतन' में अज्ञेय ने कहा है कि रचते समय रचनाकार भाषा की चिन्ता नहीं करता ।[5] सर्वत्र अच्छी भाषा के सम्मान की बात कहने वाले कवि की ये पंक्तियाँ देखने मे परस्पर विरोधी प्रतीत होती है क्योंकि अच्छी भाषा का चुनाव भाषा की चिन्ता से जुड़ा है। पर वास्तव मे ऐसा नहीं है, क्योकि वे भाषा को सम्प्रेषण का माध्यम ही नहीं मानते वरन् रचनाकार के व्यक्तित्व का पर्याय भी मानते हैं । अच्छी या संस्कारित भाषा उनके

व्यक्तित्व का पर्याय बन गयी है, तभी तो रचते समय उन्हें भाषा की चिन्ता नहीं करनी पडती। और तभी तो वे यह कह सके हैं कि रचते समय वह भाषा की चिन्ता नहीं करते। वह स्वाभाविक होती है। कविता की रचना करते समय जब उपयुक्त शब्द स्वतः ही आ खडे होते हैं तो कवि को उसे और तराशने की भला क्या आवश्यकता हो सकती है मगर जहॉ ऐसा नहीं हो सका वहाँ कवि ने उपयुक्त शब्दों का चुनाव भी किया है और कहीं-कहीं पुराने शब्दों से 'नया शब्द[6] रचकर' उसमें नया और प्रभावोत्पादक अर्थ भरने का प्रयास भी कियाा है। उन्नीत, खादर, बांगर[7] आदि इस तरह के प्रयोगों से सहजता बाधित होती है पर भाषिक-समृद्धता की दृष्टि से यह कत्तई अनुचित नहीं।

संस्कारित भाषा के प्रयोग के लिए प्रसिद्ध अज्ञेय लोकभाषा की शक्ति से अपरिचित नहीं थे। उनका अध्ययन व्यापक रहा है। प्राचीन साहित्य से लेकर आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के विविध-क्षेत्रों की वे जानकारी रखते हैं। अतः काव्यानुभवो के साक्षात्कार के समय विविध लोक प्रचलित (तद्भव) शब्दों का आ टपकना उनके अध्ययन की व्यापकता को ही दर्शाता है। काव्य में सम्प्रेषण को महत्व देने वाले कवि अज्ञेय जन-हृदय की धड़कन से अनुप्राणित लोक-बोलियों में प्रयुक्त शब्दों के सार्थक प्रयोग द्वारा अपने कथ्य में या कविता में वह प्रभाव उत्पन्न करते हैं जो पाठक को कविता की ओर आकृष्ट करने में सहायक बनते हैं। भट्ठी (भस्त्रा), मर्जादा (मर्यादा), परछाई (परिच्छाया), भिखारी (भिक्षुक), उजली (उज्ज्वल), हुलास (उल्लास), दुबकी, ढार (धार), आँकना (अंकित), उनींदी (उनिद्रित), सांई (स्वामी), पिया (प्रिय), सेज (शैय्या), फुनगी (पुष्पाग्र), न्योतती (निमन्त्रण), अषाढ (आषाढ़), हॅसी (हास्य), खड़हर (खण्डहर), घुँघरू, छाँह (छाया), अनगिन (अगणित), महतो (महिष्मत्), मुट्ठी (मुष्टि), कोख (कुक्षि), बनिये (वणिक), टेंट, रूँधा (रूद्ध), मिट्टी (मृतिका), पोसना (पुष्ट), लाज (लज्जा), मुँहझौसी (मुख धूमित) चिहुँकना, पगडण्डी, चौखटा, फुलौड़ी छुलछुल, खुदबुद, चर्चर, झाग, झक्कड़,

डॉगर, चिरैया, चिऊरा, मचिया, अकास (आकाश), तलैया, रैन, बाट अगोरना, तिसूल, ठौर, कलौट, ओक, ठेका, फुरकन आदि अनेकानेक लोक-प्रचलित शब्दों का सफल प्रयोग करके उन्होने भाषा की स्वाभाविकता व सहजता बनाये रखने का प्रयत्न किया है । लोक जीवन से जुडी हुई कविताओ मे तो ये शब्द प्राण फूक देते है । 'औद्योगिक बस्ती', 'हरा भरा है देश', 'अह राष्ट्री सगमनी जनानाम्', 'पावस-प्रात, शिलड्', 'कतकी पूनो', 'पानी बरसा', 'मै वहॉ हूँ' 'अनुभव परिपक्व' आदि कवितायें इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है । सामान्य जनो के बीच प्रचलित उर्दू (जोखम, गेरबॉ) व अग्रेजी (थेटर, सनीमा) के शब्द भी उनकी कविताओ मे सहजता उत्पन्न करते हैं । संस्कृत के अल्प प्रचलित शब्द उनकी कविताओ को समझने मे कठिनाई उत्पन्न करते है, पर सर्वत्र ऐसा नहीं है । संस्कृत भाषा का ज्ञान रखने वाले कवि अज्ञेय कहीं-कहीं सस्कृत की प्रचलित सूक्तियों[8] को भी अपनी कविताओ मे रख देते हैं, जो भाषिक ज्ञान की दृष्टि से तो उचित है पर इस प्रकार के प्रयोग सहजता में बाधक बनते है । परन्तु अज्ञेय इस प्रकार के प्रयोग को आपद्धर्म मानते है क्योकि कवि अपने अर्थ को अभिव्यक्ति देने के लिए विवश है । वस्तुत. अज्ञेय ने अनुभूत व्यक्ति-सत्य को अपनी कविताओं के माध्यम से व्यापक सत्य बनाने का पूर्णत सफल प्रयास किया है । इसलिए इनकी भाषा बोधगम्य होती चली गयी।[9]

शब्द की प्रतीकवत्ता उसकी आत्मा है । यह प्रतीक उसकी सांस्कृतिक धरोहर होती है और नूतन परिवेशों को भी अभिव्यक्त करती है । परिवर्तनशील ससार मे कुछ शब्दों के लाक्षणिक तथा व्यंग्यार्थ भी परिवर्तित होते रहते है। इसलिए कवि शब्दों के माध्यम से साधारण से भिन्न अर्थ की प्रतीति कराने के लिए प्रयत्नशील रहता है । 'शब्द' को 'ब्रह्म'[10] मानने का तात्पर्य यही है कि शब्द जड़ नहीं है। वह प्राण-युक्त है । उनकी प्राणवत्ता का तात्पर्य यही है कि वह ब्रह्म की भॉति नित-नूतन अर्थो का प्रकाश करता

है। शब्द को ब्रह्म (सत्य) मानने वाले अज्ञेय शब्द से नूतन अर्थ प्राप्त करने के लिए सदैव प्रयासरत रहे है । अत साधारण शब्द भी कहीं-कहीं नूतन अर्थ-संवेदनो के कारण जटिल प्रतीत होते हैं, पर अर्थ के खुलते ही सहज प्रतीत होने लगते है ।

लोकजीवन से जुडी हुई कविता तभी प्रभावी रूप में अपने को व्यक्त कर पाती है जब सहज लोक-ग्राह्य शब्दों द्वारा उसे रचा गया हो । अगर ऐसा नहीं होता तो कविता अपने मूल-भाव को व्यक्त न कर सकने के कारण निरर्थक सी जान पडती है । अज्ञेय इस दृष्टि से सजग रचनाकार हैं । उनकी "वैशाख की आंधी"[11] शीर्षक कविता कथ्य व शिल्प की एकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, जिसमें लोक-जीवन के प्राण बसे हैं । इस कविता मे बद्दल, झक्कड, पछँवा, झगड़ैल, चिकोटी, इतराती आदि शब्दों के प्रयोग ने केवल वर्षा का ही वर्णन नहीं किया, वरन् इस बात को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया कि चाहे कितना ही कष्ट क्यो न मिले लेकिन अन्त मे स्नेह की एक बूँद मिल जाती है, तो सम्पूर्ण वेदना सह्य हो जाती है । 'बद्दल' मस्त सूर्य को ढकने वाला श्यामल मेघ का चित्र ही नहीं है, वरन् उसमे किसानो के लिए जीवन की आशा भी छिपी है। इस प्रकार का बादल झक्कड लेकर आता है । झक्कड़ में 'जल' और 'वायु' मिश्रण की घनीभूतता अभिव्यक्त होती है। 'धूल' के लिए 'झगडैल' शब्द का प्रयोग ग्राम्य परिवेश को ही अभिव्यक्त नहीं करता, वरन् उस शाश्वत सत्य को प्रकाशित करता है कि सत्य की प्राप्ति की स्थिति मे तमस् बरबस ही उसका रास्ता रोकने का प्रयास करता है । किन्तु जब पानी ऊपर से नीचे की ओर आता है । तब झगड़ैल धूल कितना ही इतराये, कितना ही चिकोटी काटे, लेकिन एक बूँद से पस्त होकर शरणागत हो जाती है । इस कविता मे अज्ञेय ने बादल के जल के माध्यम से किसानों की संवेदना को अभिव्यक्त दी है । उसे कितना ही कष्ट क्यों न मिले, किन्तु उसे आशा रहती है कि ऊपर वाला बादलों के माध्यम से जल बरसा कर उसके सारे कष्टों को धूल-धूसिरत कर देगा । 'मैं वहाँ हूँ'[12]

शीर्षक कविता मे कोदई खाता है और गेहूँ खिलाता है, मड़िया में रहता है और महलो को बनाता है, कज्जलपुता खानो मे उतरता है पर चमाचम विमानो को आकाश मे उडाता है, कचरा ढोता है, झल्ली लिए फिरता है, तन्दूर झोंकता है, रद्दी बटोरता है, रिक्शे में अपना प्रतिरूप लादे खींचता है-आदि प्रयोगो ने लोकजीवन की बेबस ऑखो की छटपटाहट को हृदय-स्पर्शी रूप में अभिव्यक्त किया है ।

अज्ञेय जब लोकभाषा के शब्दो को "विशेषण" के रूप मे प्रयुक्त करते है तो कविता नूतन सवेदनाओ को प्रस्तुत कर लोक जीवन की दुर्धर्ष कहानी कहती है । 'औद्योगिक बस्ती'[13] शीर्षक कविता में चिमनियों के विशेषण के लिए 'मुँहझौसी' का प्रयोग किया है । लोकभाषा में मुँहझौसी एक प्रकार की गाली है । 'मुँहझौंसी' का अर्थ जिसका मुँह झुलस गया है । वह जो कुछ भी कहती है वह सुनने वाले को धुँए के समान असह्य और असवेद्य होता है । कवि ने चिमनियो को मुँहझौसी इसलिए कहा है कि उसका धुँआ लोक-जीवन के लिए असह्य होने के साथ उन्हे विनष्ट करने वाला भी है । इन उद्योगो मे ग्रामीण अंचल के मजदूर जलते हुए लौह की भॉति स्वय जलते रहते है, इस आशा के साथ कि वह शीघ्र ही दु खों से मुक्त हो जायेंगे, किन्तु उनकी आशाए ही बहेलिये की भॉति जाल बिछाकर उनको छलती रहती है ।

इसी प्रकार अज्ञेय ने 'अनुभव परिपक्व' कविता में लोकभाषा के 'खाली' शब्द को मिट्टी के विशेषण के रूप में प्रयोग करके गरीबी का ऐसा चित्र खींच दिया है जिसमें सहृदय डूबकर उबर नहीं पाता । 'खाली मिट्टी दे दो'[14] में 'खाली' विशेषण केवल मिट्टी का विशेषण ही नहीं है वरन् मॉ की परवशता को अभिव्यक्त करने के लिए प्रयुक्त है । बालक यह जानता है कि मेरी मॉ अभाव की प्रतिमूर्ति है । उसे दीपावली के अवसर पर टीन का लट्टू लेने की अभिलाषा है । गुड़ियों के मेला में एक दो पैसे के कागज की फिरकी खरीदना चाहता है । पर यह जानकर कि, मॉ यह दिलाने में असमर्थ है, अन्ततः

कहता है मॉ मुझे बस 'खाली' मिट्टी दे दो. । कवि ने बच्चे के द्वारा 'खाली मिट्टी' शब्द का प्रयोग कराकर बालक की अनुभव परिपक्वता के साथ-साथ मॉ की ऑखो की विवशता, उसके दारिद्रय भरे जीवन तथा उसके वात्सलयपूर्ण जल से भरे नेत्रों को मूक अभिव्यक्ति दी है ।

अज्ञेय ने जहॉ कहीं भी विशेषण और विशेष्य को लोकभाषा में एक साथ रखा है वहॉ एक हृदय-सवेद्य अर्थ की उपस्थिति है । 'यह कली'[15] शीर्षक कविता में 'झुटपुट' अधेरे शब्द का प्रयोग कवि ने बडे प्रभावशाली ढग से किया है । 'झुटपुट' का अर्थ होता है थोडा-थोडा अंधेरा हो जाने का समय अर्थात् सूर्यास्त का समय । 'झुटपुट' शब्द स्पष्ट करता है कि अंधेरा निरन्तर गहराता जायेगा । ऐसे समय में वह कली, जो पूर्ण यौवन को प्राप्त नहीं है यौवन सुलभ चाचल्य से रहित है, अत्यन्त भोली-भाली है, नगर के राजपथ मे विद्युत प्रकाश में पैर रखती है और वहाँ वंचको द्वारा उसका सर्वस्व हरण कर लिया जाता है । बिना लहर के ही ऐसे विषम ज्वाल में फॅस जाती है जिसके अस्तित्व का उसे बोध ही नहीं था । अज्ञेय ने झुटपुट अंधेरे के माध्यम से ग्राम्य-जीवन की मर्यादित संस्कृति को ही अभिव्यक्ति प्रदान नहीं की, वरन नगर की अपसंस्कृति की नग्नता को भी उजागर किया।

अज्ञेय प्राचीन उपमान, बिम्ब व प्रतीक आदि को निरर्थक तो नहीं मानते, किन्तु उससे बधे रहना भी उचित नहीं समझते । उन्होंने इस सन्दर्भ में "कलगी बाजरे की"[16] शीर्षक कविता में स्पष्ट किया कि अगर मैं प्राचीन उपमानों का सहारा नहीं लेता तो इसका मतलब यह है कि ये उपमान अपनी वास्तविक चमक खो चुके हैं, ठीक उसी तरह से, जिस तरह बर्तन अधिक घिसने से अपनी वास्तविक चमक या आभा खो देता है । अत कविता को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए नये उपमानादि का चुनाव कत्लई अनुचित नहीं है । नूतन प्रयोग करने की विवशता केवल अज्ञेय की ही नहीं है, जो भी

सृजनशील, प्रतिभा सम्पन्न कवि होगा, वह नयी प्रभावकारी सृष्टि के लिए अवश्य ही व्याकुल रहता है । अज्ञेय ने कुशल कवि की भॉति नव-उपमानो बिम्बों व प्रतीको के द्वारा नूतन व सहज प्रभावी अर्थ की सर्जना करने में सफलता प्राप्त की है । वे सिर्फ नवीनता के ही आग्रही नहीं रहे है वरन् पुराने प्रतीकों, बिम्बों व उपमानों को नये रूप मे प्रस्तुत करने मे भी सफल रहे है ।[17]

लोक सवेद्य भावो की सृष्टि में अज्ञेय के उपमान सर्वत्र सफल रहे हैं क्योंकि वे लोक-जीवन के बीच प्रचलित रूपाकार के सृजन के लिए ही कविता में अवतरित होते हैं । "मैने कहा पेड" शीर्षक कविता मे कवि अज्ञेय मिट्टी के महत्व को जीवन से जोडते हुए कहते है कि वृक्ष की जडे मिट्टी मे जितनी नीचे होती है उतना ही वृक्ष आकाश में उठता जाता है।[18] उनकी दृष्टि मे मिट्टी केवल मिट्टी मात्र नहीं वरन् दीन-दलित, व्यथित का जीवन है । जिसकी आत्मा दीन-दुखियों के पकिल जीवन मे जितनी गहराई तक प्रविष्ट होने में समर्थ होती है, वह व्यक्ति भी उतना ही उत्थान या यश को प्राप्त करता है ।

"औद्योगिक बस्ती"[19] शीर्षक कविता में कवि ने माल से लदी हुई रेल (उपमेय) की तुलना चिहुकती, रंभाती और अफराये डॉगर से की है । डॉगर दुबले-पतले चौपाए को कहा जाता है । इस 'डॉगर' उपमान के लिए विशेषण रूप मे कवि ने तीन शब्दों का बडा सुन्दर प्रयोग किया है । 'चिंहुकती' विशेषण डॉगर के भय को अभिव्यक्त करता है। 'रभाती' विशेषण उसकी उत्कठा को और 'अफराये' विशेषण उसकी रोग-ग्रस्तता को अभिव्यक्त करता है । "डॉगर" शब्द यह बताता है कि जैसे दुबला-पतला पशु चलने मे लडखडाता रहता है उसी प्रकार रेलगाड़ी भी माल से लदी होने के कारण धीरे-धीरे लडखडाती हुई चल रही है । इसीलिए कवि ने उसकी चाल को अभिव्यक्त करने के लिए 'ठिलती चलती जाती है,' कहा है । मजदूरों के खून-पसीने से कमाई हुई सम्पत्ति को लादे

हुए रेलगाडी डागर के समान चिहुॅकती हुई (भय खाती हुई), रंभाती हुई (वेदना को प्रकट करती), अफराती हुई (शोकग्रस्त), ठिलती चली जाती है। कवि यह कहना चाहता है कि निर्जीव रेल भी मजदूरो के प्रति किये गये अन्यायों को सह नहीं पाती किन्तु सचेतन पूॅजीपति कुछ टुकडो के लिए मजदूरों के खून-पसीने से क्रीडा करते हैं।

'शोषक भैय्या'[20]शीर्षक कविता में कवि ने शोषितो के रक्त की उपमा सागर की सुन्दर लहर से की । कवि शोषित के माध्यम से शोषक को चुनौती देते हुए कहता है कि तुम मेरे रक्त को जितना चाहो उतना पी लो । सागर शोषित व्यक्ति है और उसका पानी शोषितो का रक्त । सागर सभी आघातो को सह लेता है । शोषित भी शोषको के सारे अत्याचारों को सह लेता है, किन्तु एक दिन ऐसा आता है कि सागर की लहरे जैसे तट को विलीन कर देती है उसी प्रकार शोषितों के रक्त की धारा शोषकों को अपनी क्रान्ति की लपटो मे विलीन कर देती है । कवि का उपमान 'सागर की लहर' एक ओर बाह्य-सौन्दर्य को अभिव्यक्त करती है तो दूसरी ओर उसके भीतर जलती विष की ज्वाला को भी अभिव्यक्त करती है । सागर का अर्थ ही होता है- 'सगर से उत्पन्न होने वाला'। 'सगर' का अर्थ होता है- 'गरल से युक्त' । शोषितों का रक्त भी गरल से युक्त है । इस अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए कवि ने 'सागर की लहर' उपमान रखा है । लहर शब्द बाह्य रूप में भले ही मनमोहक हो, किन्तु यह वह विष की लहर है जो शोषक के लिए एक दिन काल बनेगा । जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा- "वह मैं नहीं, वह तो तुम्हारा मेरा सम्बन्ध है जो तुम्हारा काल है/शोषक भैया ।"

कवि ने 'सागर की लहर' उपमान के माध्यम से शोषको को भयाक्रान्त ही नहीं किया है वरन् शोषितो को सफल क्रान्ति करने की प्रेरणा प्रदान की है ।

काव्य मे प्रेषणीयता व प्रभविष्णुता की वृद्धि हेतु अज्ञेय प्रतीकों की अनिवार्यता स्वीकार करते है । पश्चिमी प्रतीकवादियों से परिचित अज्ञेय की कविताओं में प्रतीको की

अधिकता है । उनकी कुछ कविताएँ- 'यह कली',[21] 'केले का पेड',[22] 'यह द्वीप अकेला',[23] आदि पूर्णतया प्रतीकात्मक होने से व अन्य कविताओ मे भी प्रतीको की बहुलता होने से उन पर प्रतीकवादी होने के आरोप लगे । पर अज्ञेय प्रतीकवादी नहीं है । क्योकि प्रतीक उनके लिए साध्य नहीं, बल्कि सम्प्रेषण का महत्वपूर्ण साधन है ।[24] उनके अनुसार "जो सीधे-सीधे अभिधा मे नहीं बँधता, उसे आत्मसात करने या प्रेषित करने के लिए प्रतीक काम देते है ।"[25]

उन्होंने जिस तरह से शब्दों को नये-नये अर्थो से सँवारा, उसी तरह पुराने प्रतीको को (दीप, बत्ती, शिखा, घट, नदी, कली, नौका, चॉद, तारा, सूर्य, मछली, बूँद, सागर, लहर, तट, पगडण्डी, भोर टेसू आदि) नयी प्रतिपत्ति के साथ प्रयुक्त किया । साथ ही नयी सवेदनाओ के अनुरूप सॉप, द्वीप, गिरगिट, हरी घास, अहेरी, दोलती कलगी बाजरे की, सागर लहर आदि नये प्रतीक स्वतः उपस्थित होकर उनकी कविता को हृदय-सवेद्य बनाते हैं । उनके अधिकाश प्रतीक प्रकृति से लिए गये हैं, जो लोक जीवन व उनकी संवेदनाओ की सफल अभिव्यक्ति करते हैं । जीवन के बीच से चुने गये प्रतीक भी उनकी कविताओ में यत्र-तत्र बिखरे हैं, जो नये अर्थ के द्वारा नवीन परिचय का रस प्रदान करते है ।

'टेसू'[26] शीर्षक कविता मे अज्ञेय ने ग्रीष्म को क्रान्ति का प्रतीक माना है । ग्रीष्म रूपी क्रान्ति जब लू के दुर्दमनीय घोडे पर चढकर आयेगी, तो कवि की दृष्टि में वह विकराल अग्नि से उत्पन्न होने वाला अवतार पुरूष ही होगा । जब-जब यह वसुन्धरा दुष्टो के अत्याचार से परितप्त होती है, तब तब भगवान अवतार लेकर दुष्टों का संहार करते है । अज्ञेय की दृष्टि मे क्रान्ति अवतारी पुरूष है और टेसू पुष्पक्रान्ति के अग्रदूत का प्रतीक है । यह अग्रदूत वनखण्डो मे मशाल के रूप में प्रज्वलित होता रहता है जो क्रान्ति के आगमन की सूचना देता है । यह क्रान्ति आधारहीन, असभ्य, अत्याचारी नगर

को जलाने मे सक्षम है । जब तक इसका आगमन नहीं होता, तब-तक वसुन्धरा का अपने पति-रूप पावस से मिलना सम्भव नहीं होगा । अर्थात् क्रान्ति से ही व्यथित धरित्री का कल्याण सम्भव होगा । यह 'टेसू' प्रतीक व्यथित लोगो के प्रति अज्ञेय की संवेदनाओं को व्यक्त करता है । 'मरू और खेत'[27] शीर्षक कविता में अज्ञेय ने मरू को ऐसे वज्र-हृदय वाला पूँजीपति माना है, जिसके हृदय में ममता नहीं है और खेत को गरीब दुःखी किसानो के रूप में चित्रित किया है । ममताहीन पूंजीपति कभी विकराल लू बनकर किसानो या दीन-दुखियो के हृदय को जलाता रहता है और कभी पाला के रूप में उनके द्वारा श्रम से अर्जित किये गये अनाज या उनकी तुच्छ सम्पत्ति को विनष्ट कर देता है । किन्तु किसान या दलित वर्ग इन अत्याचारो को हँस कर सह लेता है । क्योकि उनमे जिजीविषा है, नूतन सर्जना की अभिलाषा है, इसलिए वह कहता है कि मेरी छाती से एक दिन क्रान्ति का अकुर फूटेगा जो मेरे जैसे सताये हुए लोगों के अपरिमित आनन्द का कारण बनेगा ।

"बत्ती और शिखा"[28] शीर्षक कविता में कवि ने अपनी लोक-सवेदना को प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यंजित किया है। बत्ती श्रम-जीवियों की प्राणोत्सर्ग की भावना को व्यक्त करती है और शिखा पूजीपतियों के वैभव की प्रतीक है । श्रमजीवियों के हृदय को निचोड़-निचोडकर पूँजीपतियो की वैभवरूपी शिखा अपनी अरूणिमा को बिखेरती रहती है। पूँजीपति रूपी शिखा इतनी कृतघ्न है कि जिसके रक्त से उसके वैभव का निर्माण होता है, उसी के सिर पर पैर रखकर अन्य पूँजीपतियों से साँठ-गाँठ करती है । यह बात श्रमजीवियो के दु.ख को दूना करती है । किन्तु फिर भी उसे तो पूँजीपतियों के ऐश्वर्य को बर्धित करने के लिए क्षण-क्षण जलना ही पड़ता है ।

"काँच के पीछे मछलियाँ"[29] शीर्षक कविता में मछली उन असहाय और निर्बल व्यक्तियो की प्रतीक है, जिसे पैसेवाला मनचाहे दाम पर खरीदता है । जिस प्रकार

मछलियॉ मौत को सामने देखती हुई भी अपने को (विवशता के कारण) समर्पित कर देती है उसी प्रकार दलित व पीडित अपनी मौत से स्वय समझौता कर बेबसी के कारण अपने को बेचता रहता है। उसका आहार बनाने वाला पूॅजीपति बडे प्रेम से आपस में मिलजुल करके उसे खाता रहता है अर्थात् शोषण करता रहता है ।

कथ्य को सम्पूर्णत पाठक तक पहुॅचाने की ललक रखने वाले अज्ञेय नूतन माध्यमो की सर्जना करते है, पर इनके नये प्रयोगो मे लोक प्रचलित शब्दो, लोक-बिम्बों व लोक प्रतीको की कमी नहीं है । उनके नये प्रयोग कवि की विवशता को द्योतित नहीं करते, वरन् स्वाभाविक रूप से कवि की लेखनी को नयी आभा दे जाते हैं । सीधे लोक जीवन से जुडी हुई उनकी कवितायें तो भाषिक-सहजता के कारण स्वत ही खुलती चली जाती है । ऐसी कविताएं कम अवश्य है, पर इनका प्रभाव चिर स्थायी है ।

निष्कर्ष :-

परिवर्तन संसार का दूसरा नाम है । जब तक नूतन-सर्जना है तभी तक ससार का सौन्दर्य है । इसी परिवर्तन को आधार बनाकर इन स्वातन्त्र्योत्तर कवियों ने प्राचीन सभी रूढ़ियों को तोडने मे सफलता प्राप्त की है । इनकी आरम्भिक रचनाएं भले ही मार्क्सवादी विचारो से अप्रभावित रही हों, किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत के शासको की कुटिल शासन-नीतियों ने प्रत्येक जागरूक कवि को मार्क्सवाद के प्रभामण्डल की ओर आकर्षित होने को बाध्य कर दिया। मार्क्सवाद के चिन्तन ने कवियो के विचारो के साथ-साथ उनकी भाषा को भी प्रभावित किया है ।

यह स्वाभाविक है कि नदी जब पहाड़ी मार्ग को छोडकर मैदानी भाग की ओर बहेगी, तो उसके जल में सर्वाङ्गीण परिवर्तन होगा। हिन्दी के विकास की लम्बी परम्परा मे परिवर्तन कर कवियों ने भाषा की तलाश में नये प्रयोगो को स्वीकार कर भाषा को सशक्त बनाने का प्रयास किया है। इससे कुछ कवियों की भाषा दुरूह हो गयी, पर उनकी

लोक-सवेदना से सम्बद्ध कवितायें सहज स्वाभाविकता लिए हुए जन-समुदाय को प्रभावित करने में सक्षम है । नागार्जुन, धूमिल, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन ऐसे कवि है जिनकी भाषा सरल, सपाट और सहज है । इनमे भी नागार्जुन ने मैथिली भाषा के शब्दो और त्रिलोचन ने अवधी भाषा में आम आदमी की सवेदनाओ को सजीव रूप मे प्रस्तुत किया है । इन दो कवियों के बिम्बो, उपमानों और प्रतीकों में सचमुच समाज के सामान्य जनो की असहनीय पीडा के साथ-साथ उनके जीवन के खुशी के क्षणो की भी सफल अभिव्यक्ति हुई है । केदारनाथ की सरल और सुबोध भाषा ने भी बिम्बों, प्रतीको और उपमानों को नये रूपो मे प्रयुक्त कर दल-दल मे सॉस लेने वाले दलित शोषित के अछूते जीवन के प्रत्येक तन्तुओं को चित्रित किया है । धूमिल भी नागार्जुन, त्रिलोचन व केदार से पीछे नहीं है । उनकी भाषा मे जो आग है वह अन्य कवियों मे नहीं है । इन कवियों की रचनाओं मे प्रयुक्त लोक-ध्वनियों ने कविता को अत्यधिक सशक्त बना दिया है । नागार्जुन और त्रिलोचन ने प्रकृति की प्रत्येक क्रिया-जन्य ध्वनियो को अपनी कविताओं में इस प्रकार समाहित किया है, मानों प्रकृति अपने निनाद को इनकी कविताओं के शब्दों में प्रविष्ट कराने के लिए स्वयं चली आ रही हों । केदारनाथ अग्रवाल और धूमिल ने भी प्रकृति की ध्वनियो को स्वाभाविक रूप मे अपनी भाषा मे आबद्ध किया है । इन कवियो की प्राकृतिक ध्वनियो में लोक जीवन की सवेदनाएं अन्तर्निहित है ।

गिरिजा कुमार माथुर की भाषा प्राञ्जल, किन्तु सरल है । उन्होंने अपनी भाषा को अकृत्रिम ही रखा है । यद्यपि ये अलङ्कार, प्रतीक, बिम्ब और उपमानो के अधिकाधिक प्रयोग से अपनी कविताओं को बचाते है । किन्तु ऐसा नहीं हो पाया है । इनके दृश्यादि बिम्बो मे लोक-जीवन की मर्मान्तक सवेदना है । इनका दृश्य-बिम्ब पाठक को आम-आदमी के हृदय मे प्रवेश कराने की क्षमता रखता है । रघुवीर सहाय ने स्पष्ट रूप से कविता के कलापक्ष से अपनी रचना को मुक्त रखने की उद्घोषणा की है ।

इनकी रचनाओं मे उपमान, प्रतीक और बिम्ब कम मिलते है । सपाट बनायी इनकी कविता की विशेषता है जिसके द्वारा वे सत्ता व व्यवस्था पर गहरी चोट करते है । अज्ञेय प्राचीन उपमानो को 'मैले' और 'बासी' की सज्ञा देकर नवीन उपमानो, नव-बिम्बो व प्रतीको से अपनी रचनाओ को नया रूप प्रदान करते है । उनके नये प्रतीक आम-आदमी की सवेदना को बडी गहराई से व्यक्त करते हैं । मुक्तिबोध अपनी लम्बी कविताओं मे दृश्य और श्रव्य-बिम्ब को एक साथ प्रस्तुत करते हैं । इनके उपमान, प्रतीक व बिम्ब सर्वथा नवीन और आम आदमी की व्यथाओं को व्यंजित करने मे सफल हुए हैं । मुक्तिबोध की लम्बी कविताओ की विशेषता यह है कि वे सम्पूर्ण वातावरण की सर्जना कर आम आदमी के प्रत्येक क्रिया-कलापो व शोषक वर्ग के कुकृत्यो को दृश्य के रूप में प्रस्तुत कर देते है।

आम-आदमी की सवेदनाओ को प्रभावी रूप मे अभिव्यक्त करने के लिए सभी कवियो ने लोकजीवन मे व्याप्त शब्दो, मुहावरों, कहावतो, लोकोक्तियों का आश्रय लिया है। कवि का कथ्य भले ही आम जीवन की व्यथा कथा कहता हो, पर 'माध्यम की जटिलता' आम पाठक को आकर्षित मे उसे अक्षम बनाती है । इस बात को ध्यान में रखते हुए इन कवियो ने माध्यम की सरलता का विशेष ख्याल रखा है । मैथिल, अवधी बुन्देलखण्डी व ठेठ ग्रामीण शब्दों की छटा बिखेरती व मुहावरों, कहावतो से सुसज्जित नागार्जुन, त्रिलोचन, केदार व धूमिल की कवितायें ,आम पाठक को आकर्षित करने मे पूर्णतया सक्षम है । यों तो मुक्तिबोध की कविताओं में भी लोक प्रचलित शब्दों व मुहावरों-कहावतो की कमी नहीं है पर शैली की जटिलता उन्हें दुरूह बनाती है । अत. उनकी कविताएं आम आदमी के जीवन की व्यथा अभिव्यक्त करते हुए भी आम-पाठक से दूर हो जाती है । गिरिजा कुमार माथुर, रघुवीर सहाय और अज्ञेय की रचनाओं में इस प्रकार के प्रयोग अल्प हैं किन्तु अत्यन्त प्रभावोत्पादक हैं ।

वस्तुत जीवन की बहुविध जटिलताओ को पहचानने वाले देश की गौरवशाली जनपक्षीय धारा से जुड़े रहने वाले, जनता से, एकात्मक भाव-सम्बन्ध बनाने वाले इन कवियो ने कथ्य व काव्य-भाषा दोनो ही सदर्भो मे लोक से जुडकर अपनी स्वाभाविक पहचान बनायी है ।

पंचम अध्याय – सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

नागार्जुन की कविता और भाषा संवेदना

(1) "वे और तुम" (शीर्षक कविता), उद्घृत – नागार्जुन चुनी हुई रचनाये–2, सम्पादक शोभाकान्त , पृ0 145 ।

(2) "मास्टर" (शीर्षक कविता) , उद्घृत–नागार्जुन चुनी हुई रचनाये–2, सम्पादक शोभाकान्त मिश्र, पृ0 98 ।

(3) "दूर, एक टेकरी पर विराजमान है मादा भेडिया"। "भेडिया के चरणो मे"– शीर्षक कविता । उद्घृत –"नागार्जुन"– डा0 प्रभाकर माचवे, पृ0 84 ।

(4) "निकला हवा खाने/गेहुअन का पोआ ।"
"वणिक्य पुत्र" (शीर्षक कविता) , नागार्जुन चुनी हुई रचनाये–2, सम्पादक शोभाकान्त मिश्र, पृ0 83 ।

(5) "धरती धरती है/पेन्हाई हुई गाय नही ।"
"धरती" (शीर्षक कविता), नागार्जुन चुनी हुई रचनाये–2 , सम्पादक शोभाकान्त पृ0 80 ।

(6) "अन्न पच्चीसी" (शीर्षक कविता) नागार्जुन चुनी हुई रचनाये–2 , सम्पादक शोभाकान्त पृ0 204 ।

(7) "खुरदुरे पैर" (शीर्षक कविता) ,
उद्घृत – नागार्जुन चुनी हुई रचनाये–2 , सम्पादक शोभाकान्त पृ0 121।

(8) "तुम तो नही गयी थी आग लगाने" (शीर्षक कविता) ,
नागार्जुन चुनी हुई रचनाये–2 , सम्पादक शोभाकान्त मिश्र पृ0 209

(9) "क्या हम" (शीर्षक कविता)
उद्घृत – नागार्जुन चुनी हुई रचनाये–2 , सम्पादक-शोभाकान्त मिश्र,पृ0 272

(10) ''कारो के जमघट देखो, देखो कुबेर के छौने'' । ''यह उन्मत्त प्रदर्शन'' (शीर्षक कविता) नागार्जुन – डा0 प्रभाकर माचवे, पृ0 63।

(11) ''चाट रहे है कुछ प्राणी बाहर जूठन (उच्छिष्ट) के दोने ''।
''यह उन्मत्त प्रदर्शन'' (शीर्षक कविता)''नागार्जुन''–डा0 प्रभागर माचवे, पृ0 63 ।

(12) ''घिन तो नही आती है'' (शीर्षक कविता),
उद्घृत – ''नागार्जुन चुनी हुई रचनाये–2'' – सम्पादक शोभाकान्त मिश्र पृ0 133 ।

(13) ''पूरी स्पीड मे है ट्राम '' ''घिन तो नही आती'' (शीर्षक कविता) ,
उद्घृत – ''नागार्जुन चुनी हुई रचनाये–2'' – सम्पादक शोभाकान्त मिश्र पृ0 133 ।

(14) ''खाली है थाली , खाली है प्लेट''
''खाली नही और खाली'' (शीर्षक कविता) ,
उद्घृत – ''नागार्जुन चुनी हुई रचनाये–2'' – सम्पादक शोभाकान्त मिश्र पृ0 60।

(15) ''सपूत क्या ऊपरसे टपके है ?'' शीर्षक कविता।
प्यासी पथराई ऑखे (कविता सग्रह) – नागार्जुन, पृ0 17।

(16) ''आदम का तबेला'' शीर्षक कविता।
''प्यासी पथराई ऑखे'' (कविता सग्रह) – नागार्जुन, पृ0 18।

(17) ''26 जनवरी, 15 अगस्त'' शीर्षक कविता।
''तुमने कहा था'' (कविता सग्रह) – नागार्जुन, पृ0 81।

(18) ''इनकी उर उष्मा मे अब ये/जेल–सेल सब गल जायेगे। कब होगी इनकी दीवाली?''
(शीर्षक कविता), खिचडी विप्लव देखा हमने,, (क0स0) – नागार्जुन , पृ0 94।

(19) '' अकाल और उसके बाद'' (शीर्षक कविता)
''सतरगे पखो वाली'' (कविता सग्रह) – नागार्जुन, पृ0 32।

(20) ''ऐसा क्या अब फिर–फिर होगा'' – (शीर्षक कविता) ।

''सतरगे पखो वाली'' (कविता सग्रह) – नागार्जुन, पृ0 58–59।

(21) ''गीले पॉक की दुनिया गई है छोड'' (शीर्षक कविता) ।

''सतरगे पखो वाली'' (कविता सग्रह) – नागार्जुन, पृ0 52–53।

(22) ''आदम का तबेला'' (शीर्षक कविता) ।

''प्यासी पथराई ऑखे'' (कविता सग्रह) – नागार्जुन, पृ0 18।

(23) ''मुर्गे ने दी बॉग'' शीर्षक कविता।

''खिचडी विप्लव देखा हमने'' (कविता सग्रह) – नागार्जुन, पृ0 65।

(24) ''छोटी मछली शहीद हो गई'' शीर्षक कविता।

''खिचडी विप्लव देख हमने'' (कविता सग्रह) – नागार्जुन, पृ0 40।

(25) उद्घृत-''नागार्जुन की कविता''– अजय तिवारी, पृ0 171।

(26) ''सत्य'' (शीर्षक कविता)

''खिचडी विप्लव देखा हमने'' (कविता सग्रह) – नागार्जुन, पृ0 30–31।

(27) '' लोकतन्त्र के मुँह पर ताला'' (शीर्षक कविता)

''इस गुब्बारे की छाया मे'' (कविता सग्रह) – नागार्जुन, पृ0 22।

(28) ''भारत पुत्री नगरवासिनी'' शीर्षक कविता।

''इस गुब्बारे की छाया मे'' (कविता सग्रह) – नागार्जुन, पृ0 69।

(29) ''वो अन्दर से बॉस करेगे'' (शीर्षक कविता) ।

''तुमने कहा था'' (कविता सग्रह) – नागार्जुन, पृ0 62।

(30) ''रामराज'' शीर्षक कविता।

''इस गुब्बारे की छाया मे'' (कविता सग्रह) – नागार्जुन, पृ0 62–63।

(31) "गुठलियो के दाम आयेगे" शीर्षक कविता।

"इस गुब्बारे की छाया मे" (कविता सग्रह) – नागार्जुन, पृ0 34।

(32) "शासन की बन्दूक" (शीर्षक कविता) ।

"तुमने कहा था" (कविता सग्रह) – नागार्जुन, पृ0 46।

(33) "देख लो, इनके कई–कई माप है" (शीर्षक कविता) ।

"तुमने कहा था" (कविता सग्रह) – नागार्जुन, पृ0 58।

(34) "कब होगी इनकी दीवाली ?" शीर्षक कविता।

"खिचडी विप्लव देखा हमने" (कविता सग्रह) – नागार्जुन, पृ0 94।

(35) "इन्दु जी क्या हुआ आपको" शीर्षक कविता।

"खिचडी विप्लव देखा हमने" (कविता सग्रह) – नागार्जुन, पृ0 10।

(36) "खूब सज रहे" शीर्षक कविता।

"खिचडी विप्लव देखा हमने" (कविता सग्रह) – नागार्जुन, पृ0 109।

(37) "खाली नही और खाली" शीर्षक कविता।

"उद्घृत – नागार्जुन चुनी हुई कविताये–2, सम्पादक–शोभाकान्त मिश्र, पृ0 60–61।

(38) "पीपल के पीले पत्ते" (शीर्षक कविता)

"उद्घृत – नागार्जुन चुनी हुई कविताये–2, सम्पादक–शोभाकान्त मिश्र, पृ0 18–19।

केदारनाथ अग्रवाल की कविता की भाषा में लोक संवेदना

(1) दूर कटा कवि/ मै जनता का ,

X X X X

लिए हृदय मे कविता थाती

मै ताने हूँ अपनी छाती ।"

"आग का आईना" (कविता सग्रह) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 75।

(2) "अपूर्वा" (कविता सग्रह)– केदारनाथ अग्रवाल, भूमिका, , पृ0 12।

(3) "अपूर्वा" (कविता सग्रह)– केदारनाथ अग्रवाल, भूमिका, , पृ0 13।

(4) "मुझे प्राप्त है जनता का स्वर

X X X X

मै उस धन से नही बिकूँगा ।" "जनता का बल " शीर्षक कविता ।

कहे केदार खरी–खरी – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 128।

(5) "आग का आईना" (कविता सग्रह)– केदारनाथ अग्रवाल, भूमिका, , पृ0 18।

(6) "गाओ साथी" (शीर्षक कविता) ।

कहे केदार खरी–खरी (कविता सग्रह) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 133।

(7) "फूल नही , रग बोलते है" (कविता सग्रह)– केदारनाथ अग्रवाल , पृ0 172।

(8) "फूल नही , रग बोलते है" (कविता सग्रह)– केदारनाथ अग्रवाल , पृ0 183।

(9) "बोले बोल अबोल" (कविता सग्रह)– केदारनाथ अग्रवाल , पृ0 ५7।

(10) "बोले बोल अबोल" (कविता सग्रह) केदारनाथ अग्रवाल , पृ0 24।

(11) "आग का आईना"– केदारनाथ अग्रवाल , पृ0 43।

(12) "आग का आईना"– केदारनाथ अग्रवाल , पृ0 7 ।

(13) ''आग का आईना''– केदारनाथ अग्रवाल , पृ0 85।

(14) ''प्रगतिशील काव्य धारा और केदारनाथ अग्रवाल''– डा0 राम विलास शर्मा, पृ0 206।

(15) ''आग का आईना''– केदारनाथ अग्रवाल , पृ0 39।

(16) ''अपूर्वा''– केदारनाथ अग्रवाल , पृ0 23।

(17) ''फूल नही रग बोलते है'' (कविता सग्रह)– केदारनाथ अग्रवाल , पृ0 109।

(18) ''फूल नही रग बोलते है''– केदारनाथ अग्रवाल , पृ0 177।

(19) ''फूल नही रग बोलते है''– केदारनाथ अग्रवाल , पृ0 34।

(20) ''फूल नही , रग बोलते है''– केदारनाथ अग्रवाल , पृ0 5, (भूमिका से)।

(21) ''फूल नही , रग बोलते है''– केदारनाथ अग्रवाल , पृ0 31।

(22) ''फूल नही , रग बोलते है''– केदारनाथ अग्रवाल , पृ0 82।

(23) ''कहे केदार खरी–खरी''– केदारनाथ अग्रवाल , पृ0 96।

(24) ''कहे केदार खरी–खरी''– केदारनाथ अग्रवाल , पृ0 89।

(25) ''कहे केदार खरी–खरी''– केदारनाथ अग्रवाल , पृ0 8 ।

(26) ''कहे केदार खरी–खरी''– केदारनाथ अग्रवाल , पृ0 126।

(27) ''कहे केदार खरी–खरी''– केदारनाथ अग्रवाल , पृ0 127।

(28) ''आपका सिक्का बराबर चालू रहे,/जहॉ कुछ न होता दिखे–।''

''बोले बोल अबोल'' (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 55।

(29) ''प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल''– डा0 राम विलास शर्मा , पृ0 185।

(30) ''प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल''– डा0 राम विलास शर्मा , पृ0 184।

(31) ''प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल''– डा0 राम विलास शर्मा , पृ0 165।

(32) ''प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल''– डा0 राम विलास शर्मा , पृ0 177।

(33) "बोले बोल अबोल" (भूमिका से) – केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 11।

(34) "प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल"– डा0 राम विलास शर्मा ,पृ0 142।

(35) "आग का आईना" – केदारनाथ अग्रवाल , पृ0 17।

(36) "अपूर्वा" – केदारनाथ अग्रवाल , पृ0 32–33।

(37) "फूल नही, रग बोलते है" – केदारनाथ अग्रवाल , पृ0 17।

(38) "अपूर्वा" केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 96।

त्रिलोचन की कविता की भाषा में लोक संवेदना

(1) "कोई समझ न पाये अगर तुम्हारी बोली/तो उस बोली का मतलब क्या, मौन भला है।'

X X X X

"भाषा का इस जीवन से चोली/दामन का साथ है।"

"अनकहनी भी कुछ कहनी है" (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 78।

(2) "त्रिलोचन के बारे में" – सम्पादक गोविन्द प्रसाद, पृ0 63।

(3) "दिगन्त" (सानेट) – त्रिलोचन, पृ0 58 ।

(4) " बडे–बडे शब्दो मे बडी–बडी बातो को

कहने की आदत औरो मे है पर मेरा

X X X X

दिये हृदय के भाव, उपेक्षित थी जो भाषा

उसको आदर दिया, मरूस्थल मन का सीचा।"

"उस जनपद का कवि हूँ" (क0स0) – त्रिलोचन, साक्षात्कार (जुलाई–अगस्त 1989), पृ0 89 पर उद्धृत ।

(5) "माटी मडई बसा रहा धुरियान/
केहर अजोर लखान कि जिउ खुरियान।"
उद्धृत – त्रिलोचन के बारे मे – सम्पादक गोबिन्द प्रसाद, पृ0 161।

(6) "किकुरी मारे जाडा थाम्हा जाइ ।
जउले नस–नस खून चलइ गरमाइ ।
X X X X X
अब केउ चितवत नाही टेकरी और ।"
उद्धृत – त्रिलोचन के बारे मे – सम्पादक गोबिन्द प्रसाद, पृ0 164।

(7) "धरती" – त्रिलोचन, पृ0 75।

(8) "धरती" – त्रिलोचन, पृ0 89।

(9) "ग्वैडे आया, और हाथ दोनो है खाली।"

उद्घृत – जहॅा शब्द सक्रिय है – नन्द किशोर नवल, पृ0 79।

(10) "जाडे का आनन्द यही है रस गन्ने का ।

ताजा–ताजा पीना, कोल्हाडो मे जाना, ।" पृ० वही, पृ० 78 ।

(11) "पाट ताल को/खेत बनाया, मडई से घर किया । "

उद्घृत – जहॅा शब्द सक्रिय है – नन्द किशोर नवल, पृ0 78।

(12) "लोटा–डोर फॅासकर जल काढा ।"

उद्घृत – जहॅा शब्द सक्रिय है – नन्द किशोर नवल, पृ0 82।

(13) उद्घृत – जहॅा शब्द सक्रिय है – नन्द किशोर नवल, पृ0 82।

(14) "ताप के तापे हुए दिन"– त्रिलोचन,"आलोचक" शीर्षक , पृ0 48।

(15) "फूल नाम है एक" (क0स0) – त्रिलोचन ।

(16) "ताप के तापे हुए दिन" (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 42।

(17) "आरर डाल नौकरी है/यह बिलकुल खोटी । "

"ताप के तापे हुए दिन" – त्रिलोचन, पृ0 54।

(18) "हस के समान दिन उडकर चला गया"

X X X X X

रात निविड मौन पास

आई जैसे बॅधकर ।"

"धरती" (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 120।

(19) "धरती" (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 121।

(20) "धरती" (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 124 ।

(21) "सरदी के ठिठुरे शरीर के/अग अग को छूकर

सूरज की किरणो ने/बँधी मुट्ठियो को खोला ।"

"धरती" (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 47।

(22) "सबका अपना आकाश" (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 32।

(23) "सबका अपना आकाश" (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 24।

(24) "सबका अपना आकाश" (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 16।

(25) "सबका अपना आकाश" (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 44।

(26) "ताप के तापे हुए दिन" (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 50।

(27) "अनकहनी भी कुछ कहनी है" (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 15।

(28) "ताप के तापे हुए दिन" (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 64–65।

(29) "सबका अपना आकाश" (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 11।

(30) "धरती" (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 27।

(31) "धरती" (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 82।

(32) "अनकहनी भी कुछ कहनी है" (क0स0) – त्रिलोचन, पृ0 34।

(33) "अनकहनी भी कुछ कहनी है" – त्रिलोचन, पृ0 98।

(34) "अनकहनी भी कुछ कहनी है" – त्रिलोचन, पृ0 48।

(35) "अनकहनी भी कुछ कहनी है" – त्रिलोचन, पृ0 56।

(36) "फूल नाम है एक" – त्रिलोचन, पृ0 26।

(37) "अनकहनी भी कुछ कहनी है" – त्रिलोचन, पृ0 50।

(38) "धरती " (कविता सग्रह) – त्रिलोचन, पृ0 95।
(39) "अनकहनी भी कुछ कहनी है" – त्रिलोचन, पृ० २२ ।
(40) "फूल नाम है एक" (क0सं0)– त्रिलोचन, पृ0 75।

(41) उद्घृत– "त्रिलोचन के बारे मे" – सम्पादक गोबिन्द प्रसाद, पृ0 166।

(42) "सबका अपना आकाश" – त्रिलोचन, पृ0 37।

(43) "सबका अपना आकाश" – त्रिलोचन, पृ0 35–36।

(44) "सबका अपना आकाश" – त्रिलोचन, पृ0 17।

(45) त्रिलोचन ने अग्रेजी छन्द "सॉनेट" को भारतीय रूप मे परिवर्तित कर नया रूप दिया।

(46) "अनकहनी भी कुछ कहनी है" – त्रिलोचन, पृ0 63।

सुदामा पाण्डेय "धूमिल" की कविता की भाषा में लोक संवेदना

(1) दृ0 "आजकल" (मार्च 1980), पृ0 7

(2) समकालीन कविता का यथार्थ – डा0 परमानन्द श्रीवास्तव, पृ0 122 \

(3) "नया प्रतीक" (पत्रिका) – फरवरी 1978, पृ0 4–5 ("कविता पर एक वक्तव्य" धूमिल),
(उद्घृत "कटघरे का कवि "धूमिल" – डा0 ग0तु0 अष्टेकर, पृ0 189)

(4) "नया प्रतीक" पत्रिका, फरवरी 1978, पृ0 4–5, ("कविता पर एक वक्तव्य" धूमिल),
(उद्घृत "कटघरे का कवि "धूमिल" – डा0 ग0तु0 अष्टेकर, पृ0 188)

(5) "भाषा की रात" शीर्षक कविता
"ससद से सडक तक" (कविता सग्रह) – धूमिल, पृ0 96–97

(6) (क) जिनके सण्डासघरो मे खाँसी / किवाडो का काम करती है।"
"ससद से सडक तक" (कविता सग्रह) – धूमिल, पृ0 50

(ख) "सिर्फ चूहो की लेडियो / बिनौलो और स्वभग की आतुर मुद्राओ की / मौसमी नुमाईश है।" दृ0 वही – पृ0 31

(7) "आजकल", (मार्च 1980) पृ0 8, सम्पादक द्रोणपरि कोहली

(8) "मोचीराम" शीर्षक कविता
"ससद से सडक तक" (कविता सग्रह) – धूमिल, पृ0 37

(9) "कविता" शीर्षक कविता
"ससद से सडक तक" (कविता सग्रह) – धूमिल, पृ0 8

(10) धूमिल और उसका काल सघर्ष – ब्रह्मदेव मिश्र, पृ0 84

(11) "नया प्रतीक" (पत्रिका) फरवरी, पृ0 4

(12) "कल सुनना मुझे" (कविता सग्रह) धूमिल पृ0 51, 52 ।

(13) "कल सुनना मुझे" (कविता सग्रह) धूमिल (भूमिका – विद्यानिवास मिश्र) ।

(14) "राज कमल चौधरी के लिए" (शीर्षक कविता), पृ0 31 ।

"ससद से सडक तक" (कविता सग्रह) – धूमिल,

(15) "जनतन्त्र के सूर्योदय मे" शीर्षक कविता, पृ0 12 ।

"ससद से सडक तक" (कविता सग्रह) – धूमिल

(16) "कविता" (शीर्षक कविता), पृ0 ८ ।

"ससद से सडक तक" (कविता सग्रह) – धूमिल

(17) "वसन्त" (शीर्षक कविता), पृ0 21 ।

"ससद से सडक तक" (कविता सग्रह) – धूमिल ।

(18) "कल सुननामुझे" (शीर्षक कविता) – धूमिल (भूमिका विद्या निवास मिश्र)

(19) "मुनासिब काररवाई" (शीर्षक कविता) , पृ0 85 ।

"ससद से सडक तक " (कविता सग्रह) – धूमिल ।

(20) "मुनासिब काररवाई" (शीर्षक कविता) , पृ0 85 ।

"ससद से सडक तक " (कविता सग्रह) – धूमिल ।

(21) "मोचीराम" (शीर्षक कविता) , पृ0 38 ।

"ससद से सडक तक " (कविता सग्रह) – धूमिल ।

(22) "वसन्त" (शीर्षक कविता) , पृ0 20 ।

"ससद से सडक तक " (कविता सग्रह) – धूमिल ।

(23) "कविता" (शीर्षक कविता) , पृ0 8 ।

"ससद से सडक तक " (कविता सग्रह) – धूमिल ।

(24) ''प्रौढ शिक्षा'' (शीर्षक कविता) , पृ0 48 ।

''ससद से सडक तक '' (कविता सग्रह) – धूमिल ।

(25) ''बीस साल बाद'' (शीर्षक कविता) , पृ0 10 ।

''ससद से सडक तक '' (कविता सग्रह) – धूमिल ।

(26) ''पटकथा'' (शीर्षक कविता) , पृ0 127 ।

''ससद से सडक तक '' (कविता सग्रह) – धूमिल ।

(27) ''कल सुनना मुझे'' – धूमिल ''वारिस मे भीगकर'' (शीर्षक कविता) पृ014 ।

(28) ''कवि 1970'' (शीर्षक कविता) , पृ0 62 ।

''ससद से सडक तक '' (कविता सग्रह) – धूमिल ।

(29) ''न कोई छोटा है/न कोई बडा है।

मेरे लिए हर आदमी एक जोडी जूता है। जो मेरे सामने/
मरम्मत के लिए खड़ा है।''
''मोचीराम'' (शीर्षक कविता) , पृ0 37 ।

''ससद से सडक तक '' (कविता सग्रह) – धूमिल ।

(30) ''नया प्रतीक'' (पत्रिका) , फरवरी 1978, पृ0 4–5 (कविता पर एक वक्तव्य – धूमिल)

(उद्घृत – कटघरे का कवि धूमिल–डा0 ग0तु0 अष्टेकर, पृ 188) ।

(31) ''आजकल'' (पत्रिका) , मार्च 1980 पृ0 8, सम्पादक – द्रोणवीर कोहली ।

(32) ''अकाल दर्शन'' (शीर्षक कविता) , पृ0 17 ।

''ससद से सडक तक '' (कविता सग्रह) – धूमिल ।

(33) ''किसी आदमखोर जबडे की तरह/उस मकान का फाटक खुल जाता है।

और देखते ही देखते/एक समूचा और मुस्कराता हुआ आदमी उसके भीतर नमक के ढेले सा/घुल जाता है''

''ससद से सडक तक '' – धूमिल पृ0 51।

(34) ''बीस साल बाद'' (शीर्षक कविता) , पृ0 10 ।

''ससद से सडक तक '' (कविता सग्रह) – धूमिल ।

(35) ''शान्ति पाठ'' (शीर्षक कविता) , पृ0 26 ।

''ससद से सडक तक '' (कविता सग्रह) – धूमिल ।

(36) ''भाषा की रात'' (शीर्षक कविता) , पृ0 97 ।

''ससद से सडक तक '' (कविता सग्रह) – धूमिल ।

(37) ''पटकथा'' (शीर्षक कविता) , पृ0 104 ।

''ससद से सडक तक '' (कविता सग्रह) – धूमिल ।

(38) ''खेवली'' (शीर्षक कविता) , पृ0 87।

''कल सुनना मुझे'' (कविता सग्रह) – धूमिल ।

(39) ''हत्यारी सम्भावनाओ के बीच'' (शीर्षक कविता) , पृ0 79 ।

''ससद से सडक तक '' (कविता सग्रह) – धूमिल ।

(40) ''कल सुनना मुझे'' (क०सं०) – धूमिल , पृ0 66 ।

(41) ''कल सुनना मुझे'' (कविता सग्रह) – धूमिल (भूमिका – विद्या निवास मिश्र)।

मुक्तिबोध की कविता की भाषा में लोक संवेदना

(1) "नयी कविता का आत्म सघर्ष तथा अन्य निबन्ध" – मुक्तिबोध, पृ0 13 ।

(2) "कामायनी एक पुनर्विचार" – मुक्तिबोध , पृ0 5 ।

(3) "एक रग एक राग" (शीर्षक कविता), भूरी–भूरी खाक धूल (क0स0)–मुक्तिबोध, पृ0 10 ।

(4) "क्या करे । जीवन के तथ्यो के / सामान्यीकरणो का/

करना ही पडता हमे असामान्यीकरण ।"

"इसी बैलगाडी को" (शीर्षक कविता) , पृ0 28 ।

"भूरी–भूरी खाक धूल" (कविता सग्रह) – मुक्तिबोध ।

(5) "मालव निर्झर की झर–झर कचन रेखा" – (शीर्षक कविता), पृ0 118 ।

"भूरी–भूरी खाक धूल" (कविता सग्रह) – मुक्तिबोध ।

(6) "ॲधेरे मे" (शीर्षक कविता), पृ0 286 ।

"चॉद का मुॅह टेढा है" (कविता सग्रह) – मुक्तिबोध ।

(7) "मै तुम लोगो से दूर हूॅ" (शीर्षक कविता), पृ0 122 ।

"चॉद का मुॅह टेढा है" (कविता सग्रह) – मुक्तिबोध ।

(8) "नक्षत्र खण्ड" (शीर्षक कविता), पृ0 152 ।

"चॉद का मुॅह टेढा है" (कविता सग्रह) – मुक्तिबोध ।

(9) "जब प्रश्न चिन्ह बौखला उठे" (शीर्षक कविता), पृ0 178 ।

"चॉद का मुॅह टेढा है" (कविता सग्रह) – मुक्तिबोध ।

(10) "एक अरूप शून्य के प्रति" (शीर्षक कविता), पृ0 136 ।

"चॉंद का मुॅंह टेढा है" (कविता सग्रह) – मुक्तिबोध ।

(11) "चमचक की चिनगारिया" (शीर्षक कविता), पृ0 163 ।

"चॉद का मुॅह टेढा है" (कविता सग्रह) – मुक्तिबोध ।

(12) "सामने दीखे–/उलझनो, प्रश्नो के ठूॅठ ।।/ठूॅठो की सुखी हुई/डालो पर, दानवी/ किसी बदनीयती के सावधान गिद्ध/जिन्हे देख/याद आती खुर्राट निगाहे/दॉव–पेच –झगडे व युद्ध/टीले के सीने मे, भभककर, अडता है/जिद भरा कोई मजमून ।"

"चम्बल की घाटी मे" (शीर्षक कविता), पृ0 245 ।

"चॉद का मुॅह टेढा है" (कविता सग्रह) – मुक्तिबोध ।

(13) "ये आये, वो आये, ये चले आये

नोचते चले गये

चिदी खीच चर्र से फाडते चले गये

मेरा बुश–कोट अब लत्तर है।"

"ये आये, वो आये" (शीर्षक कविता), पृ0 15 ।

"भूरी–भूरी खाक-धूल" – मुक्तिबोध ।

(14) "क्षितिज पर भूरे व काले से बादल
घने – घने, बिखरे
रजाई के चिथरे ।"

"चम्बल की घाटी मे" (शीर्षक कविता), पृ0 250 ।

"चॉद का मुॅह टेढा है" – मुक्तिबोध

(15) "मुझे पुकारती हुई पुकार" (शीर्षक कविता), पृ0 89 ।

"चॉद का मुॅह टेढा है" – मुक्तिबोध

(16) "चॉद का मुॅह टेढा है" (शीर्षक कविता), पृ0 55 ।
चॉद का मुॅह टेढा है (क0 स0) – मुक्तिबोध

(17) ''थामता नभस् दो हाथो से, ।''

''एक अन्त कथा' (शीर्षक कविता) पृ0–134।

'चॉद का मुँह टेढा है'' – मुक्तिबोध ।

(18) ''अधेरे से निकलो, जगल भटको।''

''ओ काव्यात्मन् फणिधर'' (शीर्षक कविता) पृ0–142।

''चॉद का मुँह टेढा है (क0स0) मुक्तिबोध।

(19) ''राह का हर कोई कुत्ता जिसे छेडता है, छेकता है।''

''एक अरूप शून्य के प्रति'' (शीर्षक कविता) पृ0–137।

''चॉद का मुँह टेढा है मुक्तिबोध।

(20) ''चुपचाप सरकते चलो, पास उसके पहुँचो।''

''ओ काव्यात्मन् फणिधर'' (शीर्षक कविता) पृ0 – 145।

''चॉद का मुँह टेढा है''-मुक्तिबोध।

(21) ''मन मे जो बात एक कराहती रहती है''

''एक स्वप्न–कथा'' शीर्षक कविता, पृ0–193।

''चॉद का मुँह टेढा है मुक्तिबोध।

(22) ''एक अन्त कथा'' (शीर्षक कविता) पृ0–128।

''चॉद का मुँह टेढा है'' – (कविता सग्रह) – मुक्तिबोध।

(23) ''देखकर चिहुँकते है प्राण''

''मुझे याद आते है'' (शीर्षक कविता) पृ0–94।

''चॉद का मुँह टेढा है''-मुक्तिबोध।

(24) ''मुझे याद आते है'' (शीर्षक कविता) पृ0–95।

''चॉद का मुॅह टेढा है मुक्तिबोध।

(25) ''मुझे याद आते है'' – (शीर्षक कविता) पृ0–98।

''चॉद का मुॅह टेढा है''-मुक्तिबोध।

(26) ''मेरे सहचर मित्र'' (शीर्षक कविता) पृ0–115।

''चॉद का मुॅह टेढा है''-मुक्तिबोध।

(27) ''उखडते चौखटो मे ही

खडाखड खिडकियॉ नचती ,

भडाभड सब बजा करते खडे बेडोल दरवाजे।''

चकमक की चिनगारियॉ (शीर्षक कविता) पृ0–168।

''चॉद का मुॅह टेढा है'' – मुक्तिबोध।

(28) ''एक स्वप्न–कथा'' (शीर्षक कविता), पृ0 183।

''चॉद का मुह टेढा है'' – मुक्तिबोध।

(29) मेरे सहचर मित्र (शीर्षक कविता), पृ0–117।

''चॉद का मुॅह टेढा है'-मुक्तिबोध।

(30) ''जब प्रश्न चिन्ह बौखला उठे'' (शीर्षक कविता) पृ0–183।

''चॉद का मुॅह टेढा है''-मुक्तिबोध।

(31) ''एक रग का राग'' शीर्षक कविता, पृ0–9।

''भूरी–भूरी खाक–धूल'' (कविता सग्रह) – मुक्ति बोध।

(32) ''भाग गयी जीप'' (शीर्षक कविता) पृ0–18।

''भूरी–भूरी खाक धूल''(क0स0) – मुक्ति बोध।

(33) "भविष्य धारा" (शीर्षक कविता) पृ0–68।

"भूरी–भूरी खाक धूल" – मुक्तिबोध।

(34) भविष्य धारा (शीर्षक कविता) पृ0–65।

"भूरी–भूरी खाक धूल" – मुक्तिबोध।

(35) भविष्य धारा (शीर्षक कविता), पृ0–67।

"भूरी–भूरी खाक धूल" – मुक्तिबोध।

(36) "भविष्य धारा" (शीर्षक कविता), पृ0–65।

"भूरी–भूरी खाक धूल" – मुक्तिबोध।

(37) "चॉद का मुँह टेढा है" (शीर्षक कविता) पृ0–59।

"चॉद का मुँह टेढा है" (कविता सग्रह) – मुक्तिबोध।

(38) "ऐसे अतिक्षीणकाय कष्टजीवी बालक के जीवन सा

रामू का गुलाम दिन

मुक्ति के सपनो मे डूबकर

द्रोह की ज्वालाओ से चूमने लगा आसमान।"

"जिन्दगी का रास्ता" (शीर्षक कविता), पृ0–178।

भूरी–भूरी खाक धूल – मुक्तिबोध।

(39) "बेचता है आत्मा को/वेश्या के देह सा व्यभिचार के लिए ।

मिर्ची की धॉस की खॉसी सी/पीडित उन्हे करती है।"

"जिन्दगी का रास्ता" (शीर्षक कविता), पृ0–179 ।

भूरी–भूरी खाक धूल – मुक्तिबोध।

(40) ''काले – से काढे की-सी

मानवी पीडा को

पीना पडा तले से गले तक ।''

''जिन्दगी का रास्ता'' (शीर्षक कविता), पृ0–183 ।

भूरी–भूरी खाक धूल – मुक्तिबोध।

(41) ''ओ अक्षयवट, यदि तुम न रहे होते/मेरी इन गलियो/तो अन्धकार के सिन्धु तले/ ''

''/मै कही पडा होता सूने मे/किसी चोर की गठरी सा,/रह अन्धकार के भूसे सा।''

''मेरे सहचर मित्र'' (शीर्षक कविता) , पृ0 115–116 ।

''चॉद का मुँह टेढा है'' – मुक्तिबोध।

(42) ''कल्याणमयी करूणाएँ फेकी गयी/रास्ते पर कचरे जैसी ।''

''एक अन्त कथा'' (शीर्षक कविता) , पृ0 132 ।

''चॉद का मुँह टेढा है'' – मुक्तिबोध।

(43) ''लेकिन तुम भी खूब हो/सूनेपन के डीह मे अँधियारी डूब हो।''

''एक अरूप शून्य के प्रति'' (शीर्षक कविता) , पृ0 137 ।

''चॉद का मुँह टेढा है'' – मुक्तिबोध।

(44) ''अन्धेरे मे'' (शीर्षक कविता) , पृ0 277 ।

''चॉद का मुँह टेढा है'' – मुक्तिबोध।

(45) ''सूरज के वशधर'' (शीर्षक कविता) , पृ0 172 ।

''भूरी–भूरी खाक धूल'' – मुक्तिबोध।

(46) ''सूखे कठोर नगे पहाड'' (शीर्षक कविता) , पृ0 226 ।

''भूरी–भूरी खाक धूल'' – मुक्तिबोध।

(47) ''सघर्ष करता हुआ तू जीवन का खीच चित्र/मिथ्या की हत्या कर बुद्धि के,

आत्मा के विष–भरे तीरो से/खीच चित्र मानव का प्राणो के रूधिर की लकीरो से ।''

''सत्य के गरबीले अन्याय न सह'' – (शीर्षक कविता), पृ0 197 ।

''भूरी–भूरी खाक–धूल'' (क0स0) – मुक्तिबोध।

(48) ''अन्याय को चुनौती दे कि उभर उठ ।।''

''सत्य के गरबीले अन्याय न सह'' – (शीर्षक कविता), पृ0 199 ।

''भूरी–भूरी खाक–धूल'' – मुक्तिबोध।

(49) ''एक स्वप्न कथा'' (शीर्षक कविता), पृ0–198।

''चॉद का मुँह टेढा है'' – मुक्तिबोध।

(50) एक अन्त कथा (शीर्षक कविता) पृ0 131–132।

''चॉद का मुँह टेढा है'' – मुक्तिबोध।

(51) ''प्रतीको और बिम्बो के/असंस्कृत रूप मे ही रह/

हमारी जिन्दगी है यह।''

''चकमक की चिनगारियॉ'' (शीर्षक कविता) पृ0–166।

''चॉद का मुँह टेढा है'' – मुक्तिबोध।

(52) ''ओ काव्यात्मन् फणिधर'' (शीर्षक कविता) पृ0 147–148।

''चॉद का मुँह टेढा है'' – मुक्तिबोध।

(53) ''कल जो हमने चर्चा की थी'' – (शीर्षक कविता) पृ0–125।

''चॉद का मुँह टेढा है'' – मुक्तिबोध।

(54) ''अधेरे मे'' (शीर्षक कविता), पृ0–256।

''चॉद का मुँह टेढा है'' – मुक्तिबोध।

(55) ''लोक साहित्य की भूमिका'' – डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, पृ0–195।

(56) ''सबको राम–राम करने को चाहता है जी।''

''मुझे याद आते है'' (शीर्षक कविता) पृ0–99।

''चॉद का मुँह टेढा है'' – मुक्तिबोध।

(57) ''दिल भर उठता है/ओस–गीली झुलसी हुई चमेली की आहो से।''

''मुझे याद आते है'' – (शीर्षक कविता) पृ0–98।

''चॉद का मुँह टेढा है'' – मुक्तिबोध।

(58) ''मुझे याद आते है'' – (शीर्षक कविता) पृ0–98।

''चॉद का मुँह टेढा है'' – मुक्तिबोध।

(59) ''हर चीज, जब अपनी'' (शीर्षक कविता) पृ0–90।

''भूरी–भरी खाक धूल'' – मुक्तिबोध।

(60) ''इस नगरी मे'' (शीर्षक कविता) पृ0–154।

''भूरी–भरी खाक धूल'' – मुक्तिबोध।

(61) ''खूब बजाओ, जिनका खाओ उनका बाजा/पख काटकर, जीभ काटकर/'राज'–हस हो जाओ' प्यारे/ अपने को चाहे सिकोड लूँ/फिर भी उनकी चौखट मे फिट होना मुश्किल।''

''एक प्रदीर्घ कविता का प्रस्ताविक'' (शीर्षक कविता), पृ0–162 ।

''भूरी–भरी खाक धूल'' – मुक्तिबोध।

(62) ''सत्ता की छाती बैठी/गला दबाकर जनता जग की।।''

''जब वृद्धा मॉ के अन्तर की'' (शीर्षक कविता), पृ0–164।

''भूरी–भूरी–खाक धूल'' (कविता सग्रह) – मुक्तिबोध।

(63) ''पिस गया वह भीतरी/औ'' बाहरी दो कठिन पाटो बीच।''

''ब्रह्म राक्षस'' (शीर्षक कविता) पृ0–41।

''चॉद का मुँह टेढा है'' – मुक्तिबोध।

(64) ''इस नगरी मे'' (शीर्षक कविता), पृ0–15।

''भूरी–भूरी–खाक धूल'' (कविता सग्रह) – मुक्तिबोध।

(65) ''ओ काव्यात्मन् फणिधर'' शीर्षक कविता, पृ0–150।

''चॉद का मुँह टेढा है'' – मुक्तिबोध।

(66) ''इस नगरी मे'' शीर्षक कविता, पृ0–153।

''भूरी–भूरी–खाक धूल'' (कविता सग्रह) – मुक्तिबोध।

(67) ''एक रग का राग'' (शीर्षक कविता), पृ0–12।

''भूरी–भूरी–खाक धूल'' (कविता सग्रह) – मुक्तिबोध।

(68) ''विक्षुब्ध बुद्धि के मारक स्वर'' (शीर्षक कविता) पृ0–40।

''भूरी–भूरी–खाक धूल'' (कविता सग्रह) – मुक्तिबोध।

(69) ''एक रग का राग (शीर्षक कविता) पृ0–9।

''भूरी–भूरी–खाक धूल'' (कविता सग्रह) – मुक्तिबोध।

(70) ''हर चीज, जब अपनी'' (शीर्षक कविता) पृ0–86।

''भूरी–भूरी–खाक धूल'' (कविता सग्रह) – मुक्तिबोध।

(71) ''हर चीज, जब अपनी'' (शीर्षक कविता) पृ0–90।

''भूरी–भूरी–खाक धूल'' (कविता सग्रह) – मुक्तिबोध।

(72) ''एक अरूप शून्य के प्रति'' (शीर्षक कविता), पृ0–139।

''चॉद का मुँह टेढा है'' – मुक्तिबोध।

(73) ''मेरे लोग'' (शीर्षक कविता), पृ0–106।

''चॉद का मुॅह टेढा है'' – मुक्तिबोध।

(74) ''ये आये, वो आये'' (शीर्षक कविता) पृ0–15।

''भूरी–भूरी खाक धूल'' – मुक्तिबोध।

(75) ''सूरज के वशधर'' (शीर्षक कविता) पृ0–170।

''भूरी–भूरी खाक धूल'' – मुक्तिबोध।

रघुवीर सहाय की कविता की भाषा और लोक-संवेदना

(1) "यथार्थ यथास्थिति नही" – रघुवीर सहाय, पृ0–55।

(2) "स्वाधीन व्यक्ति" (शीर्षक कविता), पृ0–15।

"आत्महत्या के विरूद्ध" (कविता सग्रह) – रघुवीर सहाय।

(3) "नयी कविताएँ एक साक्ष्य" – रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ0–38।

(4) "कलम लिये बैठा है/शब्दो की खोज मे/लेखक स्वच्छन्द है।"

"स्वच्छन्द लेखक" (शीर्षक कविता) पृ0–101।

"लोग भूल गये है" – (कविता सग्रह) – रघुवीर सहाय।

(5) पूर्वग्रह (पत्रिका), नवम्बर–दिसम्बर 1976, पृ0–11।

(उद्धृत–रघुवीर सहाय का कविकर्म–सुरेश शर्मा, पृ0 104–105)।

(6) "फिर बजा देगे हम –/

काल को इसी तरह बुत्ता देते हुए, चुने हुए अश–मथर गति मे।"

"कभी–कभी दुनिया को फिर से" (शीर्षक कविता), पृ0–46।

"कुछ पते कुछ चिट्ठियॉ" (कविता सग्रह) – रघुवीर सहाय।

(7) "उनकी बच्चियो ने जवॉ होकर दादियो की काठियॉ पाई।"

"औरते" (शीर्षक कविता) पृ0–44।

"कुछ पते कुछ चिट्ठियॉ" – रघुवीर सहाय।

(8) "रिजरफ रेल" (शीर्षक कविता) पृ0–25।

"कुछ पते, कुछ चिट्ठियॉ" – रघुवीर सहाय।

(9) "रगो का हमला" (शीर्षक कविता) पृ0 18–19।

"लोग भूल गये है" (कविता सग्रह) – रघुवीर सहाय।

(10) "मैले नाखून वाले चीकट लडके ने। नही सुना जो मैने पूछा था।"

आत्महत्या के विरूद्ध – रघुवीर सहाय, पृ0–82।

(11) "हॉफती हडैली वह दौडी घर की ओर बस की दिशा मे/

एक चिडचिडी जिन्दगी लेस–पोतकर।"दृ0 वही, पृ0–82।

(12) "गिरीश की मृत्यु" (शीर्षक कविता), पृ0 80–82।

आत्महत्या के विरूद्ध (कविता सग्रह) – रघुवीर सहाय।

(13) "तब वह अजीब गध आती है सीले बरोठे की
फिर इस तस्वीर की चौखट के पार्श्व से टिकी हुई
आधी–सी छाया, ।"
"यथार्थ" (शीर्षक कविता) पृ0–86।
"कुछ पते कुछ चिट्ठियॉ" – (कविता सग्रह) रघुवीर सहाय।।

(14) (अ) "घुटन के बाहर" (शीर्षक कविता) पृ0–38।

"कुछ पत्ते कुछ चिट्ठियॉ" – रघुवीर सहाय।

(ब) "घुटन के बाहर" (शीर्षक कविता) पृ0–38।

"कुछ पत्ते कुछ चिट्ठियॉ" – रघुवीर सहाय।

(15) "रघुवीर सहाय का कविकर्म" – सुरेश शर्मा, पृ0–149।

(16) "रघुवीर सहाय का कविकर्म" – सुरेश शर्मा, पृ0–151।

(17) "उसे इतनी जल्दी मार लेना होगा
कि वह नदी मे फिर न आने पाए।"
"मनुष्य–मछली युद्ध" (शीर्षक कविता) पृ0–36।
"लोग भूल गये है" (कविता सग्रह) – रघुवीर सहाय।

(18) "नीचे/सूखे पत्तो के ढेर से उठता धुऑ
हवा ने उसे हॉ–ना कर बखेर दिया।"
'पत्तो का धुँआ"(शीर्षक कविता) पृ0–53।
"आत्महत्या के विरूद्ध" (कविता सग्रह) रघुवीर सहाय।

(19) "स्रखे मुँह से रचता है वृक्ष जब वह सूखे पत्ते गिराता है

ऐसे कि ठीक जगह जाकर गिरे धूप मे छॉह मे

' ' ' ' ' ' ' और जो परिवर्तन उसमे हवा करे।"

"रचता वृक्ष" शीर्षक कविता, पृ0–39।

"आत्महत्या के विरूद्ध" (कविता सग्रह) – रघुवीर सहाय।

(20) "कटोरे के पेदे मे भात/गोद मे लेकर बैठा बाप

फर्श पर रखकर अपना पुत्र/खा रहा है उसको चुपचाप।"

"अकाल" (शीर्षक कविता) पृ0–62।

"आत्महत्या के विरूद्ध" – रघुवीर सहाय।

(21) "बच्चे की मॉ" शीर्षक कविता, पृ0–70।

"कुछ पते कुछ चिट्ठियॉ" – रघुवीर सहाय।

(22) "फरमाइशी सम्भोग मे सुनो एक उखडी सॉस की।

सॉय–सॉय ।" "आत्महत्या के विरूद्ध" रघुवीर सहाय, पृ0–22।

"गन्ध भीड से नही स्त्री के पीठ से आती है/ रगी–चुँगी पजाबिन धुली–पुँछी बगालिन रूखी मराठिन के/सर से मरे इन्तजार की गध ।"

X X X

पडित राजाराम के ठण्डे कमरे में/भीड का हिसाब हो रहा था।/

वहॉ मैने पण्डित जी को/सूँघा।" द्र0 वही , पृ0 23।

(23) – द्र0 – "लोग भूल गये है" – रघुवीर सहाय, पृ0–82।

(24) "दोनो अपने–अपने हिस्से के पूए ले/ जैसे थे जहॉ वहॉ पर बैठे खाते है/

उतने मे सब बच्चे एकदम् से जगते है/उठ पडते है मुसकाते है सो जाते है।"

"लोग भूल गये है" रघुवीर सहाय, पृ0–58।

(25) "हर समय एक नयी क्रूरता पैदा होती रहे/

जैसे एक मौसम बनाकर पकाया हुआ बेफसल फलफूल।"

"सच क्या है?" (शीर्षक कविता), पृ0–22।

कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ – रघुवीर सहाय।

(26) "जितना समेट हम लेते है गठरी मे

जादू के खेल सी टोकरी खाली निकलती है।"

"वृद्ध का वक्तव्य" (शीर्षक कविता) पृ0 23–24।

"कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" – रघुवीर सहाय।

(27) "तेज रफ्तार से भागती मोटरे

और उनके बीच मे एक पागल पैदल एक बडी चिडिया सी– चादर खोले हुए नगी

स्त्री।"

"पागल औरत" (शीर्षक कविता), पृ0–41।

"कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" – रघुवीर सहाय।

(28) "हत्या की सस्कृति मे प्रेम नही होता है
नैतिक आग्रह नही
प्रश्न नही पूछती है रखैल
सब कुछ दे देती है बिना कुछ लिए हुए पतिव्रता की तरह।"
"हत्या की सस्कृति" (शीर्षक कविता) पृ0–17।
"कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" – रघुवीर सहाय।

(29) "वे भागे जाते है जैसे बमबारी के/बाद भाग जाते हो नगर निगम की/सडाँध

लिए–दिये दूसरे शहर को।"

"फिल्म के बाद चीख" – शीर्षक कविता) पृ0–29।

"आत्म हत्या के विरूद्ध" – रघुवीर सहाय।

(30) "और सदर दरवाजा भिडते ही खड–खड–खड करता है।"

"पिछवाडे की गली मे" (शीर्षक कविता) पृ0–67।

"कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" – रघुवीर सहाय।

(31) "तबला गिडगिडा–गिडगिडा थके जाता था।"

"महफिल मे सितार" (शीर्षक कविता) पृ0–50।

"कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" – रघुवीर सहाय।

(32) ढेलो की खडखडाहट, दूध वालो के खनकते बरतन/जल्दी चलते हुए चप्पलो के हकलाने के से शब्द, पास आते है और दूर चले जाते है"।

"दूसरा सप्तक", सम्पादक–अज्ञेय, पृ0–157।

(33) "सीढियो पर धूप मे" – रघुवीर सहाय, पृ0 140–141।

(34) दृ0 वही, पृ0 140–141।

(35) "भाषा की बधिया हमेशा वक्त के सामने बैठ जाती है।"

"लोग भूल गये है" शीर्षक कविता, पृ0–48।

"लोग भूल गये है" (कविता सग्रह) रघुवीर सहाय।

(36) "वे जो प्रत्येक दिन चक्की मे पिसने से करते है शुरू

और सोने को जाते है।"

"कला क्या है" – (शीर्षक कविता), पृ0–12।

"लोग भूल गये है" (कविता सग्रह) – रघुवीर सहाय।

(37) "भीड मे मैकू और मै" (शीर्षक कविता), पृ0–22।

"आत्महत्या के विरूद्ध" (कविता सग्रह) – रघुवीर सहाय।

(38) "अधिनायक वह महाबली/डरा हुआ मन बेमन जिसका/बाजा रोज वजाता है।"

"अधिनायक" (शीर्षक कविता) पृ0–20।

"आत्महत्या के विरूद्ध" – रघुवीर सहाय।

(39) ''कोट की पीठ मैली न हो ऐसी दो व्यथा/शक्ति दो ।''

''कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ'' – रघुवीर सहाय, पृ0–2 (समर्पण)।

(40) ''प्रार्थना के शब्द'' शीर्षक कविता, पृ0–37।

''कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ'' – रघुवीर सहाय।

(41) ''प्रार्थना के शब्द'' (शीर्षक कविता) पृ0–37।

''कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ'' – रघुवीर सहाय।

(42) खुशीराम बन नही/सका

कत्ल का मसला, बदचलनी का बना, उसने

जैसा किया वैसा भरा।''

''कोई एक और मतदाता'' (शीर्षक कविता), पृ0–73।

''आत्महत्या के विरूद्ध'' – रघुवीर सहाय।

(43) ''सच क्या है ? '' (शीर्षक कविता) पृ0–22।

''कुछ पते कुछ चिटिठ्याँ'' (क0स0) – रघुवीर सहाय।

(44) ''बेसुरे लोग'' (शीर्षक कविता) पृ0–55।

''कुछ पते कुछ चिटिठ्याँ'' – रघुवीर सहाय।

(45) ''स्त्री मर गयी एक,छोटे–छोटे बच्चे छोडकर/ बच्चो की रोटी के सोच मे पड गया मेरा मन/ पैसा जो सिर्फ है मुआवजा मौत का।''

''मुआवजा'' – (शीर्षक कविता), पृ0–67।

''लोग भूल गये है'' (कविता सग्रह) – रघुवीर सहाय।

(46) ''लिख दिया गया स्कूलो मे सुभाषित

'मरता क्या न करता,।''

''मर्ख–मूर्ख मेरी ओर'' – (शीर्षक कविता) पृ0–44।

''आत्महत्या के विरूद्ध'' – रघुवीर सहाय।

(47) ''कुछ पते कुछ चिट्ठियॉं'' – रघुवीर साहय (''निवेदन'' से)

(48) ''आत्महत्या के विरूद्ध'' (शीर्षक कविता) पृ0–85।

''आत्महत्या के विरूद्ध'' – रघुवीर सहाय।

(49) ''जब मर के गया मै बाहर'' (शीर्षक कविता) पृ0–51।

''कुछ पते कुछ चिट्ठियॉं'' – रघुवीर साहय।

(50) ''नयी कविताएँ एक साक्ष्य'' – रामस्वरूप चतुर्वेदी,, पृ0–41।

(51) ''एक ऑसू पिया मैने/एक चीकट बिस्तरे पर एक गीला बेखबर तन लिया मैने/बचा सपने को।''

''मूर्ख–मूर्ख मेरी ओर'' – (शीर्षक कविता), पृ0 44–45।

''आत्महत्या के विरूद्ध'' – रघुवीर सहाय।

(52) ''स्वच्छन्द लेखक'' (शीर्षक कविता), पृ0–99।

लोग भूल गये है – रघुवीर सहाय।

(53) ''हमारी हिन्दी'' (शीर्षक कविता) पृ0–70।

आत्महत्या के विरूद्ध (कविता सग्रह) रघुवीर सहाय।

गिरिजा कुमार माथुर की कविता की भाषा और लोक संवेदना

(1) तार सप्तक – सम्पादक अज्ञेय, वक्तव्य, पृ0–144।

(2) मुझे और अभी कहना है – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0–173।

(3) "है पडे दो चार छप्पर/हॉडियॉ मचिया कठौते/लट्ठ गूदर बैल वक्खर/

मुझे और अभी कहना है – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0–13।

(4) "आदमी हो ठीकरे सा/जबकि साधन सामने हो।" दृ0 वही,, पृ0–132।

(5) "डूबा व्यक्तित्व सभी/गोफन से फेके हुए पत्थर सी।" दृ0 वही,, पृ0–132।

(6) "टूटती नही है दर्द दु ख की घुमेर यह।" द्व0 वही,, पृ0–151।

(7) "क्योकि प्रतिभा के सामने/हर गद्दीदार गावदी/फटीचर का बॉस सिर्फ तोता–रटी बोलता/भोदुओ की यह अपार भीड/कनफुसियो मे कहती है।" दृ0 वही,, पृ0–218।

(8) "जो अँधेरी रात मे भभके अचानक/चमक से चकचौध भर दे/

मै निरन्तर पास आता अग्नि ध्वज हूँ।" दृ0 वही,, पृ0–152।

(9) "खरीददार की टोह मे/घूम रहे कवि, लेखक सम्पादक।" दृ0 वही,, पृ0–218।

(10) दृ0 वही पृ0–219।

(11) "गठरी–पुटरी,, मोटे झोले, ठलुआ बैठे बीडी पीते/

पता नही है/ अगले दिन का।" दृ0 वही,, पृ0–296।

(12) "हर चॅदिरा मे छिपी एक रात कृष्ण।" दृ0 वही पृ0 – 134।

(13) "पर इतिहास के पहिए हॉके नही जाते है।" दृ0 वही,, पृ0–237।

(14) "घिघियाती बकरी की अहिंसा–में चाकू।" दृ0 वही,, पृ0–216।

(15) "बरजती/मेरी ही बौनी आवाज को।" दृ0 वही,, पृ0–190।

(16) ''झॉइयो मे उगी/नीर– तल से जरी।'' दृ0 वही,, पृ0–191।

(17) ''–चूर फूलो झरी।'' दृ0 वही,, पृ0 –191।

(18) दृ0 वही,, भूमिका, पृ0–36।

(19) दृ0 वही,, पृ0–278।

(20) मै वक्त के हूँ सामने (कविता सग्रह) – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0–58।

(21) दृ0 वही,, पृ0 58–59।

(22) ''रोको/नदी मे आते अर्राते पानी को।'' दृ0 वही,, पृ0–33।

(23) ''बद करो/सारे खिडकी दरवाजे। हमे धूप से खतरा है।''दृ0 वही,, पृ0–33।

(24) ''अपनी पीढी से सवाल।''दृ0 वही,, पृ0 29–30।

(25) ''किन्तु जिन्दगी की मिठास का रस लेने को/
हमने कटुता से जमकर सघर्ष किया है।''
मुझे और अभी कहना है –गिरिजा कुमार माथुर पृ0–83।

(26) ''जो सुबह ओस गीले खेतो से आती है। मिठी हरियाली खुशबू गन्ध हवाओ मे''

दृ0 वही,, पृ0–68।

(27) ''मैने ललछौहा बीज/गहरे मे बोया था/''

मै वक्त के हूँ सामने (क0स0) गिरिजा कुमार माथुर, पृ0–38।

(28) ''हम सब बौने है/उनकी नजर मे/ क्योकि हम जन है/साधारण है''

मुझे और अभी कहना है – गिरिजा कुमार माथुर, पृ–181।

(29) ''चौथा चुपचाप पीछे से जाकर/सिहासन ही उठा ले जाता है/

हाल पर बाहर से ताला जड देता है।'' दृ0 वही,, पृ0–184।

(30) भोथरे हैं हल कुल्हाडी।'' दृ0 वही,, पृ0–132।

(31) "लालिमा साँझ की सिमट रही जैसे घर लोटते किसान–बहू/काम दिन भर का करके खेतो से/लाल मुँह हो रहा है मेहनत से।" दृ0 वही – पृ – 121।

(32) "हाथ मे चॉद सा चमक हैसिया।" द्र0 वही – पृ0 121।

(33) "वत्सल छाती सी पहाडियॉ/दूध पिलाने आतुरा/बच्चे सा सूरज सो जाता है। लेकर मुँह मे ऑचरा/" दृ0 वही,, पृ0–167।

(34) "एक मासूम निरपराध बच्चे सा सहसा एक धक्का दिया जायेगा। उप उपराधो के लिए/जो मैने नही किये।" दृ0 वही,, पृ0–178।

(35) मै वक्त के हूँ सामने (क0स0) गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 83, 84, 85।

(36) तार सप्तक – सम्पा0 अज्ञेय, वक्तव्य, पृ0 145–146।

(37) मुझे और अभी कहना है – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0–128।

(38) "सॉस लेता है वियावॉ/ हर तरफ गुपचुप खडी है/जनपदो की आत्माएँ।" "मुझे और अभी कहना है" गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 – 131।

(39) "नयी जगहॅ है ठौर ठिकाना/कही न उसका राह बिछाएँ/ बोरी–बण्डल–बर्तन भॉडे रूका हुआ हर कदम ववण्डर।" दृ0 वही,, पृ0 296–297 ।

(40) दृ0 वही,, पृ0 367।

(41) धूप के धान (कविता सग्रह) – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 – 73।

(42) "सो जा, तुझे सुलाए निदिया/ढॅक आचल के छोर से/सो जा परियॉ सपने लाएँ। हो पलको के कोर से।" मुझे और भी कहना है – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0–378।

(43) दृ0 वही,, पृ0 378।

(44) दृ0 वही,, पृ0 365।

(45) दृ0 वही,, पृ0 379–380।

(46) "बुझी हुई सिगरेट रात की पीते–पीते/घडी देखता जाता है वह/
उसका जीवन जीवन–हीन मशीन बन गया।" दृ0 वही,, पृ0–49।

(47) "सूर्य सुनहला उसका डूब रहा/नित कागज के भीतो मे।"दृ0 वही पृ0–56।

(48) "चॉदी के पहियो पर चलती हुई/मोटरो का स्वर सुनता।"दृ0 वही पृ0–50।

(49) "तुम कितना भॉजो/अपनी पन्नी मढी तलवार।"दृ0 वही, पृ0–236।

(50) "जहॉ आदमी को आदमी/पत्थर को पत्थर कहना/बडे जिगरे का काम है।"
दृ0 वही–पृ0–237।

(51) "वह अग्निबीजो को बोती रही/फिर से नया सूरज उगाने के लिए।"दृ0वही पृ0–101।

(52) दृ0 वही,, पृ0 208–209।

(53) दृ0 वही,, पृ0 218।

(54) "एक नये तरह की चुनौती है। जो आदमी को सही नाम देने की/पहिचान मुझे देती है।" मै वक्त के हूँ सामने (क0स0) गिरिजा कुमार माथुर, पृ0–3।

(55) मुझे और अभी कहना है – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 212, 213।

अज्ञेय की कविता की भाषा और लोक-संवेदना

(1) "अद्‌यतन" – अज्ञेय, पृ0–56।

(2) हिन्दी साहित्य, एक आधुनिक परिदृश्य – अज्ञेय, पृ0 202–203।

(3) आत्मने पद – अज्ञेय पृ0 – 199।

(4) हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य – अज्ञेय पृ0 23–24।

(5) अद्यतन – अज्ञेय (रचनात्मक भाषा और सम्प्रेषण की समस्याएँ) पृ0–57।

(6) "पति–सेवा–रत साँझ / उचकता देख पराया चाँद /

लला कर ओट हो गयी।" "अज्ञेय सृजन और सदर्भ" पृ0 – 129 पर उद्‌धृत।

यहाँ 'लला' शब्द नववधू की स्पृहा (लालच भरी मनोकामना) को अभिव्यक्त करने के लिए प्रयुक्त है।

(7) खादर मे/राजा जी के पुरवे है। मिट्‌टी के घरवे है।

बाँगर का कुँआ/राजा जी का अपना है।" सदा नीरा – 2 (अज्ञेय की सम्पूर्ण कविताओ का सकलन), पृ0–60।

यहाँ खादर शब्द कछार, पुरवे = गाँव, घरवे = मिट्‌टी के घर और बाँगर शब्द बाढ मे न डूब सकने वाली ऊँची जमीन के लिए प्रयुक्त होकर लोक–जीवन के सवेदनशील अर्थों को अभिव्यक्त करने मे समर्थ है।

(8) "कैसे आशीर्वच – मुदन्तु सर्वे, प्रसीदन्तु सर्वे।

'सर्वे सुखिनः सन्तु।' गावे कोई" सदानीरा–1 अज्ञेय की सम्पूर्ण कविताओं का संकलन। पृ0–231 ।

(9) तारसप्तक – सम्पादक अज्ञेय, पृ0–222–223

अनुभव के स्तम्भ से अनुभव के स्तम्भ को मिलाता है/जो मानव को एक करता है। समूह का अनुभव जिसकी मेहरावे है/ और जन–जीवन की अजस्र प्रवाहमयी नदी जिसके नीचे से बहती है।" तार सप्तक – सम्पा0 अज्ञेय, पृ0–249।

(10) "अनादिनिधन ब्रहम शब्दतत्व यदक्षरम्।" ।। 1 ।।

"वाक्य पदीय", प्रथम काण्डम्, भर्तृहरि कृत, पृ0–1।

(11) "अरी धूल झगडैल, चढी/पछवा के कन्धो पर इतराती/ले काट चकोटी अब भी।"

– सदानीरा – 1, अज्ञेय, पृ0–303।

(12) सदानीरा – 1, अज्ञेय पृ0 –270, 271, 272 ।

(13) पहाडियो से घिरी हुई इस छोटी–सी घाटी मे

ये मुँहझौसी चिमनियॉ बराबर/धुँआ उगलती जाती है ।

मानव की आशाएँ ही पल–पल/उसको छलती जाती है।"

सदानीरा – 2, अज्ञेय, पृ0 – 37।

(14) "अच्छा मॉ! मुझे खाली मिट्टी दे दो –

मै कुछ नही मॉगूगा/मेले जाने का हठ नही ठानूँगा/

जो कहोगी मानूँगा।" – सदानीरा – 2, अज्ञेय, पृ0–106।

(15) "यह कली/झुट पुट अधेरे मे/पली थी देहात की गली मे/
भोली–भाली/नगर के राजपथ, दिपते/प्रकाश मे गयी छली।"
सदानीरा – 2 अज्ञेय पृ0–51।

(16) "ये उपमान मैले हो गये है/देवता इन प्रतीको के कर गये है कूच/
कभी वासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।"
सदानीरा – 1, अज्ञेय पृ0 – 240।

(17) "रात सान की/कोयल भी बोली/पपीहा भी बोला/मैंने नही सुनी/
तुम्हारे कोयल की पुकार/तुमने पहिचानी क्या/मेरे पपीहे की गुहार।"
सदानीरा–2, अज्ञेय पृ0–379।

(18) "ऊपर उठा हूँ इतना आकाश मे/
जितना की मेरी जडे नीचे दूर धरती मे समायी है।
जो मरण–धर्मा है वे ही जीवनदायिनी है।"
सदानीरा–2, अज्ञेय, पृ0–40।

(19) "बॅधी लीक पर रेले लादे माल/चिहुॅकती और रॅभाती अफराये डॉगर–सी ठिलती चली जाती है।" –दृ0 वही,, पृ0–37।

(20) " मेरा रक्त ताजा है/मेरी लहर भी ताजा और शक्तिशाली है।"
सदानीरा–1, अज्ञेय, पृ0 – 259।

(21) सदानीरा – 2, पृ0–51।

(22) "ये केले के पेड, क्यो नही भगवान ने तुझे रीढ दी/कि कभी तो तू अपने भी काम आता – चाहे तुझे कोई न भी खाता–/न सेठ, न सन्यासी न डॉगर पशु।"
सदानीरा–2, पृ0–223।

(23) "यह दीप अकेला स्नेह–भरा/है गर्व भरा मदमाता, पर इसको भी पक्ति को दे दो।"
सदानीरा–2, अज्ञेय, पृ0–261।

(24) आत्मनेपद – अज्ञेय पृ0 41–45।

(25) दृ0 वही,, पृ0–45।

(26) "अपनी अखण्ड आस्था के साध्य रूप/ मशशाल जला दूँ/न सही क्षयग्रस्त नगर मे/ इस बनखण्डी मे आग लगा दूँ।"
सदानीरा–1, अज्ञेय, पृ0–266 ।

(27) "नव सर्जना मे जो अपने को होम कर होते है आनन्दमग्न/
उनकी तो दृष्टि और होती है।" दृ0 वही – पृ0 – 267।

(28) सदानीरा – 1 – अज्ञेय।

(29) "दाम देगा नही, वसूलेगा/और फिर हम सबको – एक–एक को – एक साथ/
और बडे इत्मीनान से धीरे–धीरे खायेगा/खाता चला जायेगा।"
सदानीरा–2, अज्ञेय, पृ0 – 174।

उपसंहार

साहित्य शब्द का कलात्मक व्यापार नही है। साहित्य शब्द की साधना है। यह साधना मानवीय मूल्यो की स्थापना कर समाज के हित के भाव को प ल्लवित एव विकसित करती है। आनन्द रिक्तता की परिपूर्णता है। अनादिकाल से परिपूर्णता की प्राप्ति के मार्ग का अन्वेषण हो रहा है किन्तु अभी वह मार्ग किसी को प्राप्त नही हो सका है। साहित्य का शिवत्व ही सत्य और सुन्दर है। जिसमे शिवत्व नही है वह असत्य व असुन्दर है। यह शिवत्व व्यापक और सर्वकालिक है। परलोक की कल्पना सुख की चरम परिणति की प्राप्ति के लिए की गयी है। यह लोक दु खो का कारण और विपदाओ का आलय है। सभी निलय कुछ क्षणो के लिए भले ही भौतिक सुख प्रदान कर दे किन्तु आत्मिक–सौन्दर्य की अप्राप्ति के कारण व्यक्ति सदैव अकथनीय पीडा को प्राप्त करता है।

हिन्दी साहित्य का स्वातन्त्र्योत्तर काल सम्पूर्ण प्राचीन मिथको, मूर्तियो और मिथ्यात्मक आदर्शों के खडहर को ध्वस्त करने वाला काल है। इस काल के कवियो ने जीवन–मूल्यो को भौतिक रूप मे व्याख्यायित किया है। मार्क्सवाद के प्रभाव ने काव्य–सौन्दर्य को नये रूप मे प्रतिष्ठित किया है। स्वतन्त्रता की प्राप्ति भारत के लिए महत्ती उपलब्धि रही है, परन्तु जितनी इससे आशा थी ठीक उसके विपरीत परिणति की प्राप्ति हुई। आम आदमी की हड्ड़ियो को बज्र बनाकर उन्ही पर प्रहार करना शासको का मूल–मन्त्र सा बन गया था, इसीलिए इन कवियो ने ऐसे पाषाण–हृदय शासको की कटु आलोचना करते हुए सामान्य जनो की असीम पीडा को अपनी कविताओ मे अभिव्यजित किया है।

वस्तुत 'लोक' शब्द प्रारम्भ से साधारण जनो के लिए प्रयुक्त हुआ है। वैदिक सस्कृत अभिजात्यो की और लौकिक सस्कृत अकुलीनो की भाषा रही है। जब लौकिक साहित्य को

कुलीनो ने स्वीकार किया तब प्राकृत और अपभ्रश,–आम आदमी, जो अल्प शिक्षित, अशिक्षित, श्रमजीवी रहे है – की भाषा बनी। लौकिक सस्कृत मे भी लोक शब्द साधारण जनो के लिए प्रयुक्त हुआ है। वस्तुत सवेदना की अनुभूति आम आदमी के जीवन से ही होती है क्योकि वह वेदना से जन्म लेकर उसकी आग मे अपने यौवन को हवन करता हुआ उसी मे अपनी अन्तिम सॉस लेता है। उसे यह भी ज्ञात नही रहता कि वह भी एक आदमी है, इन्सान है, पृथ्वी का अन्य अभिजात्य वर्ग की ही भॉति हॉथ–पैर व बुद्धि रखने वाला एक मानव है। वह बस पूॅजी –पतियो और सामन्तो के भोग–विलास का एक मात्र साधन बनकर जीता रहता है। वह रात–दिन श्रम करता है, अपने नव्य राजाओ के लिए खून पसीना एक कर देता है और अपना सब कुछ न्यौछावर कर देता है – महाप्रभुओ के चरणो मे ; पर उसे बदले मे मिलता है तिरस्कार, अपमान, उपेच्छा, प्रताडना और जलालत की सुखी रोटी,, वह भी समय से नही। उसकी क्षुधा–अग्नि की शान्ति कभी अन्न से नही होती है परन्तु उसी के रक्त मास से होती है। सूखी हडिडयो को ढोता हुआ सुखद भविष्य की आशा मे वह क्या नही सहता है ?

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त गरीबी दूर करने के लिए जिन–जिन राजनैतिक दलो ने जो–जो भी नारे दिये वे सब शुद्ध छल रहे। क्षुधानल मे जलने वालो को मदिरा पान कराकर इनके बल पर शासन पर कुण्डली मारकर बैठे रहने वाले नेताओ ने इनके साथ सदा विश्वासघात किया। अपने को सुरक्षित रखने के लिए पूॅजी–पतियो से सॉठ–गॉठ कर राजाओ से भी अधिक भोग–विलास के मद मे डूबे रहते रहे। बिडम्बना तो यह है कि दलित–शोषितो के बीच से जो नेता बनते है, वे भी इनके साथ वही व्यवहार करते है जो पूॅजीवादी व्यवस्था करती है। कुछ तथाकथित बुद्धजीवियो के दल भी इन्ही भ्रष्टअत्याचारी निरकुश शासको की विरुदावली गाते हुए उनसे धन पाकर सरस्वती का अपमान करते है।

यद्यपि हिन्दी साहित्य के विकास मे विषय व भाषागत परिवर्तन होते रहे है परन्तु स्वतन्त्रता के बाद की परिस्थितियो के कारण कवियो ने आम–आदमी की समस्याओ को विषय बनाकर अपनी नव्य रचनाओ से हिन्दी साहित्य को एक नया रूप प्रदान किया है। छायावादी कवियो मे मुख्यत निराला ही एक ऐसे कवि है जिन्होने साधारणजनो;–पत्थर तोडने वाली, भिक्षा मागने वाले, प्रकृति के आघातो को झेलते हुए भी खेत–खलिहानो मे सभी के भोजन के लिए अन्न उगाने वालो–को अपनी कविता का विषय बनाकर आने वाले कवियो के लिए भाषा और विषयगत परिवर्तन का ऐसा सेतु प्रदान कर दिया है जिसके माध्यम से सरलता से नूतन, गहन और जटिल विषय की उफनती नदी को पार किया जा सकता है। कविता के वाह्य और अन्तर स्वरूपो मे जो परिवर्तन आया है – क्रमश चल भी रहा है – और भविष्य मे भी चलता रहेगा– यह नूतन सृजन का सकेत है। यद्यपि इसपर परम्परावादियो ने जमकर प्रहार किया है परन्तु पुराना ही सब कुछ श्रेयस् है और नया दोषपूर्ण है – यह नही कहा जा सकता है। प्रत्येक परिवर्तन मे गुण–दोष का सम्मिश्रण रहता है। दृष्टि–भेद से गुण–दोष की मीमासा होती आयी है और होती रहेगी।

प्रत्येक युग का कवि आलोचना से भयाक्रान्त होकर यथास्थिति वाद के लौह पजर मे जकडा नही रहता है वरन् उसे तोडकर लोक–हित या लोक–मगल की बात करता है। इन कवियो ने लोक–हित को वास्तविक रूप मे पहिचानकर उसकी अस्मिता को सुरक्षित रखने का प्रयास किया। वस्तुत समाज के सबसे दुर्बल व्यक्ति के लिए ससार मे कही भी न्याय नही है। उन्हे जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त अन्याय की आग पर चलना पडता है। भारतीय दार्शनिको के सिद्धान्त ने भी 'सुख–दुख की प्राप्ति पूर्व जन्म के कार्यो का फल है' – को बताकर इन्हे यथास्थिति वाद मे सास लेने के लिए बाध्य कर दिया। 'नियति' शब्द ने इनके क्रान्ति–बीज को दग्ध कर दिया है, परम्परा और रूढियो ने इनके पाव मे जजीर डाल दी है। जातिवाद,

सम्प्रदायवाद और ईश्वरवाद ने इनके कर्मठ हॉथो को इस प्रकार निष्क्रिय बना दिया है कि उनके द्वारा किये गये कार्य उनकी क्षुधाग्नि को भी तृप्त करने मे समर्थ नही हो पा रहे है। ऐसा नही है कि वे श्रम नही करते है, पर 'श्रम का फल उनके भाग्य में' नही – यह सोचकर वह शान्त रहते है। भारत की राजनीतिक–व्यवस्था की विचित्रता यही है कि जो दिन–रात अथक परिश्रम की भट्ठी मे अपने को झोके रहते है वे ही सबसे दुखी है।जो उन्हे जलते हुए दूर से देखकर प्रसन्न रहता है वही सबसे सम्पन्न रहता है।

इन सभी कवियो ने अन्याय के साम्राज्य पर हथौडा मारने का प्रयास किया। इनकी भाषा मे कही भी वचना नही है। सीधे शब्दो मे नेहरू के प्रभा मण्डल पर प्रहार करने वाले नागार्जुन ने उनकी सशक्त पुत्री इन्दिरा गॉधी की माया, छल–प्रपच की गन्दी राजनीति को आवरण विहीन बना दिया है। इनकी कविताओ मे शासन की क्रूरता, अन्यायप्रियता और अदूरदर्शिता पर सीधा प्रहार यह सिद्ध करता है कि युगान्तरकारी कवि की दृष्टि खुली हुई होती है और वह सत्य–कथन से भयभीत नही होता है। केदारनाथ अग्रवाल ने भी 'खरी–खरी' बात कहकर स्वतन्त्र भारत के शासको के अपकर्मों का भण्डाफोड किया है। धूमिल का 'संसद से सडक तक' वस्तुत भारत के तथाकथित समाज–सेवको, नकली राष्ट्रभक्तो की काली–काली करतूतो की गाथा है। रघुवीर सहाय, त्रिलोचन, गिरिजा कुमार माथुर, अज्ञेय और मुक्तिबोध जैसे कवियो ने आम आदमी की सॉसो की पीडा को पहचाना है। मुक्तिबोध जब विराट् पुरूष की कल्पना करते है तब सर्वप्रथम यही प्रतीत होता है कि इनका विराट पुरूष औपनिषदिक होगा किन्तु इनका विराट पुरूष क्रान्तिपुरूष है। इनका श्यामवर्ण वाला श्रमिक ही 'राम' और 'श्याम' है। इनकी 'फैटेसी' केवल निरर्थक फैटेसी नही है वरन् भावी यथार्थ का अनुपम चित्र है जिसे मुक्तिबोध जैसा कवि ही देख सकता है। यह क्रान्तिदृष्टा कवि जब वास्तविक कल्पना के आकाश मे उडने लगता है तब वह ऋषियो के ध्यान–लोक की गहराई मे पहुँचकर

जिस फैटेसी का साक्षात्कार करता है वह कुछ लोगो के लिए भले ही उनका पागलपन लगे लेकिन वस्तुत वह भविष्य का यथार्थ चित्रण होता है। मुक्तिबोध की क्रान्ति की बैलगाडी भले ही मन्थर गति से चले किन्तु उबड–खाबड रास्ते को पारकर अपनी मजिल पर अवश्य पहुँच जाती है। वे जानते है कि बौद्धिक वर्ग केवल एक कमरे मे बैठकर कागजो पर ही क्रान्ति के गीत गा सकते है, वे रात्रि मे रावणो के यहाॅ पानी भरते है, भिश्तीगिरी करते है, उनके चरणो मे तेल लगाते है और उनकी जय–जयकार करते है किन्तु दिन मे क्रान्ति के ध्वज को बस अपने घर के एक कोने मे गाडकर अपने को क्रान्ति–बीज का जनक मान बैठते है। मुक्तिबोध को विश्वास है कि इस प्रकार के चिन्तन यथास्थितिवाद के पोषको से भी अधम है क्योकि इनके वाह्य और आन्तर स्वरूप मे विरोध है। क्रान्ति कोई कर सकता है तो केवल शोषित–श्रमिक वर्ग ही। वह अन्धेरे मे भी अपने सभी कार्यों को पूर्ण कर सकता है।

नागार्जुन का भी दलित वर्ग जब विद्रोह की ज्वाला लेकर खडा हो जाता है तब सामन्ती विचारधारा के लोगो के प्रासाद मिट्टी मे मिल जाते है। नागार्जुन, रघुवीर सहाय, धूमिल आदि सभी कवियो का हृदय व्याकुल हो उठता है आम–आदमी की दुर्दशा को देखकर। ये उनके साथ–साथ जीने–मरने के लिए तैयार रहते है। नागार्जुन मुसलमान रिक्शे वाले के बच्चो का चुम्बन लेने के लिए व्याकुल रहते है। रघुवीर सहाय चीकट लपेटे श्रमिक बालक से प्रेम करना चाहते है। अज्ञेय इनकी बस्ती मे साॅस लेना चाहते है। केदार तो अपना सम्पूर्ण जीवन इन्ही के हित के लिए अर्पित कर रहे है। त्रिलोचन तो गाॅव की मिट्टी के कणो से उत्पन्न हुए है। इसलिए वे अपनी कविता मे उन्ही की बात करते है जो दिन–रात धूप, वर्षा और जाडा से युद्ध कर अपने खेतो मे काम करते हुए अमीरो के सुख की सामग्री एकत्र करते रहते है और स्वय घर–विहिन होकर भूखे ही फूटपाथ पर या मडई के कोने मे अपनी नीद से ऑख मिचौली खेलते हुए सूरज की किरणो को जगाते है। उनके जीवन मे बस अमावस्या की

रात्रि ही रहती है। गिरिजा कुमार माथुर की अधेड स्त्री चुपके से उद्यान मे घुसकर माली के ऊँघते रहने पर घास काटती है और सूखी लकडियो को एकत्रित करती है। यही घास उसके लिए रोटी बनती है। रघुवीर सहाय का बूढा बाप अकाल के समय अपने बेटे को फर्श पर लिटाकर बेटे की जगह अपनी गोदी मे कटोरे को रखते हुए चुप-चाप पेदी मे सटे हुए भात को नही अपनी जिन्दगी को खाता है। उनका क्लर्क पूडी को तरसता है। रात्रि मे उसकी पत्नी चुपके से चार पुऐ बनाकर बलवती इच्छा को पूर्ण करना चाहती है तभी उसके बच्चे उठ जाते है और इस कृत्य को देखकर सो जाते है "मुँह ढककर"।

इन कवियो ने ऐसे ही मर्मभेदी चित्र उपिस्थत कर आम-आदमी के प्रति अपनी सवेदनशीलता को अभिव्यक्ति दी है, साथ ही साथ शासन और प्रशासन के ढपोरशखी चरित्र को उजागर किया है। यह सब कुछ इसलिए है कि मानवीय सवेदनाए मर चुकी है। सामन्तवादी विचारधारा किसी न किसी रूप मे शासन पर कुण्डली मारकर बैठी हुई है। गगा के पानी को जिसे गरीबो के घर बहना चाहिए, शासन और प्रशासन अपने घरो की ओर मोड देते है। आम-आदमी इसे अपनी ऑखो से देखता रहता है पर कुछ कर नही पाता है। यदि वह विद्रोह करने का साहस करता है तो उस पर नृशसतापूर्वक गोलियो की वर्षा की जाती है। अखबारो मे सब छपता है लेकिन उसका कोई मूल्य नहीं है। मरने वालो का नाम भी ज्ञात नही होता है क्योकि वह विशिष्ट व्यक्ति नही है। रामदास का हत्यारा बडे विश्वास से रामदास की हत्या करता है और भीड उसे मात्र देखती रह जाती है। गिरीश की मृत्यु होती रहती है। मूर्ति तोडने वाला दूसरी मूर्ति भोली-भाली जनता के हाथ मे थमा देता है। मिस्त्री और उसका बेटा नेहरू युग के पेच को-यह जानते हुए भी कि यह कस नही सकता है, इसकी चूडियॉ घिस गयी है-कसता रहता है। भारत मे दयावती के कुनवा को बेमौत घुट-घुट कर मरना है। महलो की नींव से लुटी हुई अस्मिता वाली नवयुवतियो की सिसकियॉ आती रहती है पर उस महल का

स्वामी आम–आदमी के रक्त की वारूणी को शासको और प्रशासको के साथ पीता रहता है। मुसद्दीलाल सदा मुस्कराता रहता है। योग्य वही है जो सबसे बडा अर्थपति हो। इन कवियो की लेखनी बिकी नही है, इसलिए इन्होने निर्विकार भाव से आम आदमी की कराहती हुई जिन्दगी के उन कारूणिक दृश्यो को प्रस्तुत किया है जिसे देखकर एक बार दानव भी दयार्द्र हो जाय किन्तु भारत के शासक और प्रशासक की ऑखो से घडियाली ऑसू भी नही टपकते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ : प्रकाशन – सूची

मूल ग्रन्थ –

1 अनकहनी भी कुछ कहनी है (कविता सग्रह) – त्रिलोचन
राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2/38, असारी रोड, दरियागज
नयी दिल्ली – 110002 । (दूसरा सस्करण – 1993)

2 अपूर्वा (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल
परिमल प्रकाशन, 17 एम0 आई0 जी0, बाघम्बरी आवास योजना, अल्लापुर,
इलाहाबाद–211006 । (प्रथम सस्करण–1994)

3 आखिर ऐसा क्या कह दिया मैने (क0स0)– नागार्जुन
वाणी प्रकाशन, 21 ए, दरियागज, नई दिल्ली – 110002

4 आग का आईना (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल
परिमल प्रकाशन, 743,मोतीलाल नेहरू नगर, इलाहाबाद–2
(प्रथम सस्करण–1970)

5 ऑगन के पार द्वार (क0स0)– अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली – 110003

6 आत्मगध (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल
परिमल प्रकाशन, 17, एम0आई0जी0, बाघम्बरी आवास योजना, अल्लापुर, इलाहाबाद
–211002 । (प्रथम सस्करण–1988)

7 आत्महत्या के विरूद्ध (क0स0) – रघुवीर सहाय
राज कमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 8,नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली–110002
(तृतीय सस्करण–1985)

8 इत्यलम् (क0स0) – अज्ञेय
नेशनल पब्लिशिग हाउस, दरियागज, नई दिल्ली ।

9 इस गुब्बारे की छाया मे (क0स0)– नागार्जुन
वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागज, नई दिल्ली–110002 । (प्रथम सस्करण–1989)

10 उस जनपद का कवि हूँ (क0स0) – त्रिलोचन
राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा0लि0 , असारी मार्ग, दरियागज, नयी दिल्ली – 110002

11 कल सुनना मुझे (क0स0) – धूमिल
वाणी प्रकाशन , 21–ए , दरियागज, नयी दिल्ली – 110002 (स0–1999)

12 कहे केदार खरी–खरी (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल
परिमल प्रकाशन , 17 , एम0 आई0 जी0 , बाघम्बरी आवास योजना , अल्लापुर, इलाहाबाद – 211006 (प्रथम सस्करण–1983)

13 कुछ पते ,कुछ चिट्ठियॉ (क0स0) – रघुवीर सहाय
राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0, 1 बी , नेताजी सुभाष मार्ग ,नयी दिल्ली – 110002 (प्रथम सस्करण–1989)

14 खिचडी विप्लव देखा हमने (क0स0) – नागार्जुन
सभावना प्रकाशन, रेवती कुज , हापुड – 245101 (प्रथम सस्करण–1980)

15 चॉद का मुॅह टेढा है (क0स0) – मुक्तिबोध
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,18,इस्टीट्यूशनलएरिया, लोदी रोड, "नयीदिल्ली – 110003 (नौवा सस्करण–1988)

16 चैती (क0स0) – त्रिलोचन
वाणी प्रकाशन , 21–ए , दरियागज, नयी दिल्ली – 110002 (प्र0स0–1987)

17 जमुन जल तुम (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल
परिमल प्रकाशन , 17 एम0आई0जी0, बाघम्बरी आवास योजना , अल्लापुर इलाहाबाद – 211006 , (प्र0स0 1984)

18 ताप के ताये हुए दिन (क0स0) – त्रिलोचन
सभावना प्रकाशन, रेवती कुज , हापुड – 245101 (स0–1980)

19 तार सप्तक (क0स0) – सम्पा0 अज्ञेय
भरतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, लोदी रोड ,नयी दिल्ली–110003 (छठा सस्करण–1995)

20 तुमने कहा था (क0स0) – नागार्जुन
वाणी प्रकाशन , 21–ए , दरियागज, नयी दिल्ली–110002 (द्वितीय सस्करण–1988)

21 दूसरा सप्तक (क0स0) – सम्पादक अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ , 18 , इस्टीट्यूशनल एरिया , लोदी रोड , नयी दिल्ली–110003

22 धरती (क0स0) – त्रिलोचन
नीलाभ प्रकाशन , 5– खुसरो बाग रोड , इलाहाबाद , (प्रथम सस्करण–1977)

23 धूप के धान (क0स0) – गिरिजा कुमार माथुर
भारतीय ज्ञानपीठ , काशी (प्र0स0 1955)

24 नागार्जुन चुनी हुई रचनाए–2– सम्पादक शोभाकान्त मिश्र
वाणी प्रकाशन , 21–ए , दरियागज, नयी दिल्ली – 2 (प्र0स0 1985)

25 प्यासी पथरायी ऑखे (क0स0) – नागार्जुन
अनामिका प्रकाशन , 185 , नया बैरहना , इलाहाबाद – 211003 (सस्करण–1982)

26 फूल नही रग बोलते है (क0स0) – केदारनाथ अग्रवाल
परिमल प्रकाशन , 17 एम0आई0जी0, बाघम्बरी आवास योजना , अल्लापुर
इलाहाबाद – 211006 (तीसरा सस्करण–1983)

27 फूल नाम है एक (क0स0) – त्रिलोचन
राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0,1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली–110002 ,(सस्करण–1985)

28 बोले बोल अबोल (कवितासग्रह) –केदार नाथ अग्रवाल
परिमल प्रकाशन , 17 एम0आई0जी0, बाघम्बरी आवास योजना , अल्लापुर
इलाहाबाद – 211006 (प्रथम सस्करण–1985)

29 भूरी–भूरी खाक धूल (क0स0) –मुक्तिबोध
राजकमल प्रकाशन, 8 नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली–110002,
(द्वितीय सस्करण–1987)

30 मुझे और अभी कहना है (क0स0) – गिरिजा प्रसाद माथुर
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन ,18 ,इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदीरोड, नयी दिल्ली–110003 (प्र0स0–1991)

31 मैं वक्त के हूँ सामने (क0स0) –गिरिजा प्रसाद माथुर
नेशनल पब्लिशिग हाउस , दरियागज, नयी दिल्ली – 110002 ,(प्र0स0–1990)

32 लोग भूल गये है (क0स0) – रघुवीर सहाय
राजकमल प्रकाशन, 1 बी , नेताजी सुभाष मार्ग ,नयी दिल्ली – 110002
(तीसरा सस्करण–1989)

33 सतरगे पखो वाली (क0स0) – नागार्जुन
वाणी प्रकाशन , 21–ए , दरियागज, नयी दिल्ली – 110002 (प्र0स0 1984)

34 सदानीरा – 1 (अज्ञेय की सम्पूर्ण कविताओ का सकलन)
नेशनल पब्लिशिग हाउस, नयी दिल्ली

35 सदानीरा – 2 (अज्ञेय की सम्पूर्ण कविताओ का सकलन)
नेशनल पब्लिशिग हाउस, नयी दिल्ली

36 ससद से सडक तक (क0स0)– धूमिल
राजकमल प्रकाशन, 1– बी , नेताजी सुभाष मार्ग , नयी दिल्ली – 110002
(छठा सस्करण–1990)

37 सबका अपना आकाश (क0स0) – त्रिलोचन
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग ,
नयी दिल्ली – 110002, (प्रथम सस्करण–1987)

38 सीढियो पर धूप मे (क0 स0) – रघुवीर सहाय
वाणी प्रकाशन , 21–ए , दरियागज , नयी दिल्ली – 2

39 शब्द (क0स0) – त्रिलोचन
वाणी प्रकाशन , 21–ए , दरियागज , नयी दिल्ली – 2

40 हे मेरी तुम (क0स0) –केदार नाथ अग्रवाल
परिमल प्रकाशन , 17 एम0आई0जी0, बाघम्बरी आवास योजना , अल्लापुर
इलाहाबाद – 211006 (प्रथम सस्करण–1984)

<u>सहायक ग्रन्थ</u> :–

1 अर्थात् – रघुवीर सहाय (सम्पादक – हेमन्त जोशी)
राजकमल प्रकाशन, 1बी , नेताजी सुभाष मार्ग , दयिागज , नयी दिल्ली – 110002
(प्र0 स0 – 1994)

2 अन्तराल– गिरिजा कुमार माथुर (सम्पादक – गोपाल दत्त सारस्वत
श्री राम मेहरा एण्ड कम्पनी , हॉस्पिटल रोड , आगरा , (स0 – 1978)

3 अज्ञेय आज के लोकप्रिय कवि – सम्पादक विद्याानिवास मिश्र
राजपाल एण्ड सस , मदरसा रोड , कश्मीरी गेट , दिल्ली – 6, (स0 – 1978)

4 अज्ञेय काव्य मे प्रागबिम्ब और मिथक – सी0 एस0 राजन
लोक भारती प्रकाशन, 15–ए , महात्मा गॉधी मार्ग, इलाहाबाद–1 (प्र0स0–1992)

5 अज्ञेय सृजन और सन्दर्भ – सम्पादक– डा0 सावित्री मिश्र
लोक भारती प्रकाशन , 15 ए , महात्मा गॉधी मार्ग , इलाहाबाद–1 (प्र0स–1989)

6 आचार्य शुक्ल प्रतिनिधि निबन्ध – सम्पादक सुधाकर पाण्डेय
राधा कृष्ण प्रकाशन , असारी रोड , दरियागज नयी दिल्ली – 110002 (स0–1977)

7 आत्मनेपद – अज्ञेय
नेशनल पब्लिशिग हाउस , दरियागज , नयी दिल्ली – 110002 ।

8 आत्म सघर्ष की कविता और मुक्तिबोध – डॉ हसराज त्रिपाठी
मानस प्रकोशन ,विवेक नगर , प्रतापगढ (अवध) , 230001 (प्र0स0–1982)।

9 आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य परम्परा एव भारतीय सस्कृति – डॉ राकेश चतुर्वेदी
साहित्यवाणी , 28 पुराना अल्लापुर , इलाहाबाद – 211006 (प्र0स0–1987) ।

10 आधुनिक भारतीय साहित्य – बी0एल0 ग्रोवर , यशपाल
प्रकाशन –एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0 रामनगर, नयी दिल्ली – 110055,
(दूसरा सस्करण – 1982)

11 आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियॉ – नामवर सिह
लोक भारती प्रकाशन , 15 ए , महात्मा गॉधी मार्ग, इलाहाबाद–1 (स0–1994)

12 ऑसू – जयशकर प्रसाद
लोक भारती प्रकाशन , 15 ए , महात्मा गॉधी मार्ग, इलाहाबाद – 1 (स0–1995)

13 इतिहास और आलोचक दृष्टि – रामस्वरुप चतुर्वेदी
लोक भारती प्रकाशन , इलाहाबाद (प्र0स0–1982)

14 उद्धव शतक – सम्पादक– डॉ जगदीश गुप्त
सुमित्र प्रकाशन , 18 ए , एल्गिन रोड , इलाहाबाद (प्र0स0–1983)

15 कटघरे का कवि धूमिल – डॉ ग0 तु0 अष्टेकर
पचशील प्रकाशन , फिल्म कालोनी , जयपुर – 302003 (स0–1984)

16 कबीर ग्रन्थावली – सम्पादक– माता प्रसाद गुप्त
साहित्य भवन प्रा0 लिमिटेड, के0पी0 कक्कड रोड, इलाहाबाद, 211003
(प्र0स0–1985)

17 कबीर वाणी पीयूष – सम्पा0 डॉ0 जयदेव सिह व डॉ0 वासुदेव सिह
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, (प्र0स0–1976)

18 कवितावली (उत्तर काण्ड) – टीकाकार लाला भगवान दीन
प्रकाशन केन्द्र, सीतापुर रोड, लखनऊ ।

19 क्रान्तिदर्शी कवि धूमिल – डॉ0 बी0 कृष्ण
डॉ0 एस॰आर0 गुप्ता, सीता प्रकाशन, मोती बाजार, हाथरस (प्र0स0–1994)

20 कामायनी – जयशकर प्रसाद
गोबर्द्धन सराय, वाराणसी – 10 (आवृत्ति–1987)

21 कामायनी एक पुनर्विचार – मुक्तिबोध
राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0, 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली–110002

22 काव्य और अर्थ बोध – त्रिलोचन (सम्पादक – डॉ0 अवधेश प्रधान)
साहित्य वाणी, 28 , पुराना अल्लापुर, इलाहाबाद – 211006 (प्र0स0–1995)

23 काव्य रश्मि – सम्पादक डॉ0 कन्हैया सिह, डॉ0 अनन्त सिह
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी (द्वितीय सस्करण–1979)

24 काव्य समीक्षा – डा0 विक्रमादित्य राय
भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, फरवरी 1967।

25 केदारनाथ अग्रवाल – सम्पादक अजय तिवारी
परिमल प्रकाशन, 17 एम0आई0जी0 बाघम्बरी आवास योजना
अल्लापुर, इलाहाबाद–211006, (प्र0स0–1986)।

26 छायातप – प्रो0 डॉ0 सत्य नारायण त्रिपाठी, डॉ0 रामदेव शुक्ल
विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी (प्र0स0–1983)

27 जनवादी समझ और साहित्य – राम नारायण शुक्ल
विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक , वाराणसी (प्र0स0–1985 ई0)

28 जायसी ग्रन्थावली (पद्मावत) – सम्पादक राजनाथ शर्मा
विनोद पुस्तक मन्दिर , आगरा, (पष्ठ सस्करण–1983)

29 जायसी ग्रन्थावली – सम्पादक रामचन्द्र शुक्ल
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सम्वत् – 2013, (13वॉ सस्करण)

30 धूमिल और उसका काव्य सघर्ष – ब्रह्मदेव मिश्र
लोकभारती प्रकाशन, 15ए, महात्मा गॉधी मार्ग, इलाहाबाद – 1 (प्र0स0–1987)

31 नयी कविताएँ:एक साक्ष्य – राम स्वरूप चतुर्वेदी
लोक भारती प्रकाशन, 15–ए, महात्मा गॉधी मार्ग, इलाहाबाद–1 (स0–1990)

32 नयी कविता का आत्म सघर्ष तथा अन्य निबन्ध – गजानन माधव मुक्ति बोध
विश्व भारती प्रकाशन, धनवटे चेम्बर्स, नागपुर 12 (द्वितीय सस्करण–1977)

33 नागार्जुन – प्रभाकर माचवे (आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि–14)
राजपाल एण्ड सन्स – मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली – 6

34 नागार्जुन – सत्य नारायण
रचना प्रकाशन, किशन पोल बाजार, जयपुर – 1 (प्र0स0–1991)

35 नागार्जुन का रचना ससार – विजय बहादुर सिह
सभावना प्रकाशन , रेवती कुज, हापुड – 245101

36 नागार्जुन की कविता – अजय तिवारी
वाणी प्रकाशन , 21–ए, दरियागज, नयी दिल्ली – 110002 (प्र0स0–1990)

37 नागार्जुन की काव्य यात्रा – डॉ0 रतन कुमार पाण्डेय
विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी (प्र0स0–1986 ई0)

38 पद्मावत का लोकतात्विक अध्ययन – डॉ0 नृपेन्द्र प्रसाद वर्मा
अनुपम प्रकाशन, पटना (प्रथम सस्करण–1979)

39 पद्मावती समय – सम्पादक डॉ0 विश्वनाथ गौड
साहित्य निकेतन, कानपुर (स0–1986)

40 प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल – डॉ0 राम विलास शर्मा
परिमल प्रकाश, 17, एम0आई0 जी0 बाघम्बरी आवास योजना, अल्लापुर,
इलाहाबाद– 211006 (प्र0स0–1986)

41 प्रिय प्रवास – अयोध्या सिह उपाध्याय 'हरिऔध'
खड्ग विलास प्रेस, बाकीपुर, 1921 (द्वितीय बार)।

42 प्रेमघन सर्वस्व (प्रथम भाग) – सम्पादक श्री प्रभाकेश्वर प्रसाद उपाध्याय,
श्री दिनेश नारायण उपाध्याय,
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वितीयावृत्ति, (शक–1884)

43 बाबा नागार्जुन – सम्पादक नरेन्द्र कोहली
वाणी प्रकाशन , 21 – ए , दरियागज , नयी दिल्ली – 2 ।

44 बिहारी रत्नाकर – श्री जगन्नाथ दास रत्नाकर
तारा बुक एजेन्सी, कमच्छा, वाराणसी–221010 (प0स0–अष्टम् आवृत्ति 1994)

45 भक्तिकाव्य और लोक जीवन – शिव कुमार मिश्र
पीपुल्स लिटरेसी , 317 मटिया महल , दिल्ली – 110006 (प्र0स0–1983)

46 भारतीय लोक साहित्य – डॉ0 श्याम परमार
साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग ।

47 भारतेन्दु ग्रन्थावली (पहला खण्ड) – सम्पादक शिव प्रसाद मिश्र
नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, (स0–2027)

48 भारतेन्दु ग्रन्थावली (दूसरा खण्ड) – सकलनकर्ता व सम्पादक ब्रज रत्न दास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (स0–1991)

49 भ्रमरगीत सार – सम्पादक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
विद्या भाष्कर बुक डिपो, ज्ञानवापी, वाराणसी (नवरात्र–2049)

50 मतिराम ग्रन्थावली – सम्पादक कृष्ण बिहारी मिश्र
गगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ (स0–1983वि0)

51 मुक्ति बोध ज्ञान और सवेदना – नन्द किशोर नवल
राज कमल प्रकाशन प्रा0लि0, 1–बी, नेताजी, सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली – 110002, (प्र0स0–1993)

52 मेरे साक्षात्कार – नागार्जुन (सम्पादक – शोभाकान्त)
किताब घर, 24, असारी रोड, दरियागज, नयी दिल्ली– 11002 (प्र0स0–1994)

53 यथार्थ यथास्थिति नही – रघुवीर सहाय (सम्पादक– सुरेश शर्मा)
21ए, दरियागज, नयी दिल्ली – 11002 (स0–1994)

54 युगवाणी – सुमित्रानन्दन पत
भारती भण्डार, प्रयाग, (स0–2004 वि0)

55 रघुवीर सहाय का कवि–कर्म – सुरेश शर्मा
अरूणोदय प्रकाशन, 1/2165, पूर्वी राम नगर, गली न0 16,
मडौली रोड, शाहदरा, दिल्ली – 110032 (स0–1992)

56 राग विराग (निराला)– सम्पादक राम विलास शर्मा
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद – 1 (चौदहवॉ सस्करण–1989)

57 रामचरित मानस – गोस्वामी तुलसी दास (मूल मझली साइज)
गीता प्रेस गोरखपुर, पैतीसवा सस्करण (स0 2038 वि0)

58 रीतिकालीन साहित्य का पुनर्मूल्याकन – डॉ0 राम कुमार वर्मा
साहित्य भवन (प्रा0) लिमिटेड, के0पी0 कक्कड रोड, इलाहाबाद 211003, (प्र0स0–1984)

59 लोक साहित्य का अध्ययन – त्रिलोचन पाण्डेय
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद (प्र0स0–1979)

60 लोक साहित्य की भूमिका – डॉ0 कृष्ण देव उपाध्याय
साहित्य भवन, लिमिटेड, इलाहाबाद (सस्करण–1986)

61 विद्यापति – डॉ0 शिव प्रसाद मिश्र
लोक भारती प्रकाशन,15ए, महात्मागॉधी मार्ग, इलाहाबाद–1 (11वॉ सस्करण–1996)

62 विनय पत्रिका – गोस्वामी तुलसीदास
गीता प्रेस, गोरखपुर , सम्वत् 2032 (पचीसवॉ सस्करण)

63 वे और नही होगे जो मारे जायेगे – रघुवीर सहाय
नेशनल पब्लिशिग हाउस, दरियागज, नयी दिल्ली (प्र0स0–1983)

64 सक्षिप्त रामचन्द्रिका – सम्पादक डॉ0 पीताम्बर दत्त बडथ्वाल
नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, दशम सस्करण ।

65 समकालीन कविता और धूमिल – डॉ0 मजुल उपाध्याय
अनामिका प्रकाशन, 185 नया बैरहना, इलाहाबाद –3 (प्र0स0–1986)

66 समकालीन कविता का यथार्थ – डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव
हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ (प्र0स0–1988)

67 सूरसागर (प्रथम भाग)– सकलनकर्ता स्वामी श्री जयराम देव जी महाराज

68 स्कन्दगुप्त – जयशकर प्रसाद
प्रसाद प्रकाशन,प्रसाद मन्दिर,गोबर्द्धनसराय, वाराणसी–10(आवृत्ति–अगस्त 1986)

69 शब्द जहाँ सक्रिय है – नन्द किशोर नवल
नेशनल पब्लिशिग हाउस, 23, दरियागज, नयी दिल्ली– 110002 (प्र0स0–1986)

70 हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली (भाग–3)
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली (प्र0स0–1981)

71 हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली (भाग 6)
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 8 नेता जी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली , (प्र0स0–1981)

72 हिन्दी कविता का वैयक्तिक परिप्रेक्ष्य – राम कमल राय
लोक भारती प्रकाशन, 15–ए, महात्मा गॉधी, इलाहाबाद –1 (प्र0स0–1981)

73 हिन्दी काव्य धारा – राहुल सास्कृत्यायन
किताब महल, इलाहाबाद (प्र0स0–1945)

74 हिन्दी साहित्य अनिर्दिष्ट शोध–भूमियॉ–भगवती प्रसाद सिह ,
राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली (प्र0स0–1977)

75 हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास – डॉ0 राम स्वरूप चतुर्वेदी
लोकभारती प्रकाशन, 15–ए, महात्मा गॉधी मार्ग, इलाहाबाद–1 (स0–1991)

76 हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य – अज्ञेय
ओम प्रकाश, राधाकृष्ण प्रकाशन, 14, रूप नगर, दिल्ली – 6

77 हिन्दी साहित्य का आदिकाल – डॉ0 हरिश्चन्द्र वर्मा
हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ (प्रकाशन–1988)

78 हिन्दी साहित्य का इतिहास – सम्पादक डॉ0 नगेन्द्र
नेशनल पब्लिशिग हाउस, 23, दरियागज, नई दिल्ली – 110002 (स0–1987)

79 हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामचन्द्र शुक्ल
नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी , तेइसवॉ सस्करण (स0–2047 वि0)

80 हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास – (षोड्श भाग) – सम्पादक
कृष्णदेव उपाध्याय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

81 हिन्दी साहित्य का सक्षिप्त इतिहास – डॉ0 राम कुमार वर्मा
प्रकाशन – राम नारायण लाल , बेनी माधव, प्रयाग, सितम्बर 1961

82 हिन्दी साहित्य कोश (भाग–1) प्रधान सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा
ज्ञानमण्डल लिमिटेड, सन्त कबीर रोड, वाराणसी–1 (तृतीय सस्करण–1985)

83 हिन्दी साहित्य कोश (भाग–2) – प्रधान सम्पादक – धीरेन्द्र वर्मा
ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी –1 ।

84 हुँकार – रामधारी सिह 'दिनकर'
मार्डन पब्लिसर्स, योगी प्रेस, पटना, द्वितीय सस्करण ।

85 त्रिलोचन के बारे मे – सम्पादक गोबिन्द प्रसाद
वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागज, नई दिल्ली–110002 (प्र0स0–1994)

86 ज्ञान शब्द कोश – सम्पादक मुकुन्दी लाल श्रीवास्तव
ज्ञानमण्डल लिमिटेड, सन्त कबीर मार्ग, वाराणसी – 221001 (स0–1986)

<u>संस्कृत ग्रन्थ</u>

1 अथर्ववेद (द्वितीय खण्ड)
प्रकाशन गगा बुक डिपो, घीया मण्डी, मथुरा, 1969

2 अमरकोश– श्रीमद् अमरसिह विरचित
प्रकाशन मुम्बइया सत्य भामा भाई पाण्डरग, इव्येताभि , सन् 1944 (षष्ठ सस्करणम्)

3 अष्टाधायी काशिका (पाठिनीय व्याकरण सूत्र वृत्ति)– व्याख्याकार श्री नारायण मिश्र, प्रकाशन चौखम्बा सस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी–1,(चतुर्थ सस्करण,सम्वत् 2029)

4 ईशादि नौ उपनिषद – व्याख्याकार हरिकृष्ण दास गोयन्दका
प्रकाशन गीता प्रेस गोरखपुर (दशम सस्करण सम्वत 2040)

5 उत्तरराम चरितम् – भवभूति प्रणीतम् – सम्पा0
डा0 श्री निवास मिश्र,महालक्ष्मी प्रकाशन, शहीद भगत सिह मार्ग, आगरा – 282002

6 ऋग्वेद (भाषा भाष्य) – वैद्यनाथ शास्त्री
प्रकाशन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, रामलीला मैदान, नयी दिल्ली – 2

7 ऐतरेय ब्राह्मण का एक अध्ययन – डॉ0 नाथू लाल पाठक
प्रकाशन रोशन लाल जैन एण्ड सन्स, बोरडी का रास्ता, जयपुर ।

8 कादम्बरी (पूर्वार्द्धम्)– श्री बाणभट्ट प्रणीता, सम्पा0 – प्राचार्य मोहन देव पन्त
प्रकाशन श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 6 (स0–1983)

9 द न्यू वैदिक सलेक्शन – पडित कान्ता नाथ शास्त्री तैलग और
डॉ0 ब्रज बिहारी चौबे, प्रकाशन प्राच्य भारती प्रकाशन, कमच्छा, वाराणसी
(प्रथम सस्करण–1965)

10 ध्वन्यालोक – श्रीमदानन्दवर्धनाचार्य विरचित
मोतीलाल बनारसी दास चौक, वाराणसी ।

11 नाट्यशास्त्र (प्रथमो अध्याय)
चौखम्भा सस्कृत सस्थान (विद्या विलास प्रेम), गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी
(सस्करण–सम्वत् 2040)

12 निरूक्तम् (निघण्टु भाष्य) यास्क मुनि
प्रकाशन खेमराज श्रीकृष्ण दास श्रेष्ठिना, श्री वेकेटेश्वर स्टीम प्रेस बम्बई
(सस्करण–सम्वत् 1982)

13 नैषधीयचरित महाकाव्यम् – महाकवि हर्ष प्रणीत , सम्पा0
प0 श्री ऋषीश्वर नाथ भट्टेन, प्रकाशन श्री जे0 एन0 यादव, मास्टर खेलाडी लाल एण्ड सन्स (सस्कृत बुक डिपो) कचौडी गली ।

14 महाभारत (प्रथम खण्ड) – श्री मन्महर्षि वेदव्यास प्रणीत
गीता प्रेस, गोरखपुर (पचम सस्करण–सम्वत् 2044)

15 महाभाष्य (भाग–1)
प्रकाशन सुपरिटेन्डेन्ट गवर्नमेन्ट प्रेस , मद्रास (सस्करण सन् 1948)

16 रघुवशम् – कालिदास (कालिदास ग्रन्थावली – सीताराम चतुर्वेदी)
प्रकाशन बद्री प्रसाद शर्मा, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ,
(तृतीय सस्करण – सम्वत् 2019 वि0)

17 व्याकरण महाभाष्ये नवाह्निकम्
प्रकाशन सत्यभामा बाई, पाण्डुरग इत्येताभि, मुम्बय्या (पचम सस्करण)

18 शुक्ल यजुर्वेद सहिता – श्री महाधराचार्य
प्रकाशन मोती लाल , बनारसी दास बगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली – 7,
(सस्करण 1978)

19 श्रीमद् भगवद्गीता (श्री रामानुज भाष्य)
प्रकाशन गीता प्रेस, गोरखपुर (चतुर्थ सस्करण)

20 श्रीमद् भगवतद्गीता (शाकरभाष्य)
गुजराती प्रिटिग प्रेस कोर, मुम्बई (शाकाब्द 1959)

21 श्री वाल्मिकी रामायणे
गीता प्रेस, गोरखपुर (तृतीय सस्करण)

22 हलायुध कोश – सम्पा0 जयशकर जोशी
हिन्दी समिति, सूचना विभाग , लखनऊ (उ0प्र0) (सस्करण 1967)

<u>पत्र–पत्रिकाएँ</u> :–

1 आजकल, (सितम्बर 1969) – सम्पा0 केशव गोपाल निगम
सूचना व प्रसारण मन्त्रालय, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस,नयी दिल्ली–110001

2 आजकल, (मार्च 1980) – सम्पा0 प्रोणवीर कोहली
सूचना व प्रसारण मन्त्रालय, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस,नयी दिल्ली–110001

3 आजकल (अगस्त 1995) – सम्पा0 प्रताप सिह बिष्ट
सूचना व प्रसारण मत्रालय , प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नयी दिल्ली–110001

4 आजकल (जून 1996) – सम्पा0 प्रताप सिह बिष्ट
सूचना व प्रसारण मत्रालय, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नयी दिल्ली– 110001

5 वर्तमान साहित्य (अगस्त 1992) – सम्पा0 से0 रा0 यात्री ,
विभूति नरायण राय, 109 रिछापालपुरी , गाजियाबाद – 201001

6 वर्तमान साहित्य (सितम्बर 1992) – सम्पा0 से0 रा0 यात्री ,
विभूति नरायण राय, 109 रिछापालपुरी , गाजियाबाद – 201001

7 साक्षात्कार (जून 1992) – सम्पा0 प्रभाकर श्रोत्रिय
मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् , डी – 11 प्रोफेसर्स कालोनी , भोपाल – 2

8 साक्षात्कार (अगस्त 1995) – सम्पा0 ध्रुव शुक्ल
मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् , सस्कृति भवन, बाण गगा चौराहा , भोपाल –462003

9 हिन्दुस्तानी (त्रैमासिक) – सम्पा0 ब्रजेश्वर वर्मा (सूर विशेषाक)
हिन्दुस्तानी अकादमी , प्रयाग ।

संक्षेप में

सम्पा0 – सम्पादक
पृ0स0 – पृष्ठ सख्या
प्र0स0 – प्रथम सस्करण
क0स0 – कविता सग्रह
स0 – सस्करण
स0 – सम्वत्
वि0 – विक्रमी